नयी तालीम

"युवावस्था जीवन का स्वर्णकाल है जब कि (प्रत्येक) व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अमूल्य आदर्श अर्जित करता है और आन्तरिक शक्ति विकसित करता है। हमारी युवापीढ़ी को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वह देश की संस्कृति और उसकी उज्ज्वल परम्परा को समझ लें और उसके लिए जरूर गौरव लें ताकि वह देश के हित में ही उनका अपना हित सम्भावित है ऐसा समझ सके। देश को उनसे बहुत आशाएँ हैं।"

मोरारजी देसाई

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २६] अगस्त–सितम्बर, १९७७ [अंक : १

अनुक्रम

अगस्त–सितम्बर '७७

* 'नई तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नई ताली' का वार्षिक शुल्क बारह रुपए हैं और एक अक का मूल्य दो रु
* पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी सख्या लिखना न भूलें।
* 'नई तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नई तालीम समिति सेवाग्रामके लिए प्रकाशित
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन :

१० और ११ अगस्त को दिल्ली में शिक्षा मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ था जिसका उद्‌घाटन प्रधान मंत्री श्री मोरारजी भाई देसाई ने किया। यह सम्मेलन कई दृष्टि से महत्वपूर्ण था, क्योंकि जनता पार्टी की केन्द्रीय सरकार गठित होने के बाद इसमें शिक्षा की नई नीति निर्धारित करना आवश्यक था। उत्तर भारत के लगभग सभी प्रदेशों में भी राज्य सरकारें जनता पार्टी की ही हैं।

अपने उद्‌घाटन भाषण में श्री मोरारजी भाई ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि १०+२+३ के नए शिक्षाक्रम को तभी सफल बनाया जा सकेगा जब वह महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्तों पर आधारित हो। इसके लिए यह जरूरी है कि हर स्तर पर शिक्षा का माध्यम समाज-उपयोगी उत्पादक श्रम हो। यह भी आवश्यक है कि शिक्षा का सम्बंध आस-पास की विकास योजनाओं से वैज्ञानिक ढंग से जोड़ा जाए और विद्यार्थी समाजसेवा के कार्य को अपनी शिक्षा का अविभाज्य अंग माने। प्रधानमंत्रीजी ने कहा कि यदि हमारी शिक्षा पद्धति में इस प्रकार का कोई बुनियादी परिवर्तन न किया गया तो १०+२+३ का नया शिक्षाक्रम लगभग बेकार साबित होगा। हमारी समस्याएँ हल करने के बजाए उसकी वजह से कुछ नई उलझनें पैदा होंगी और शिक्षित बेकारों की समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

श्री मोरारजी भाई देसाई ने मातृभाषा माध्यम को हर स्तर पर व्यवस्थित ढग से लागू करने पर भी बहुत जोर दिया। हमारी राष्ट्रीय-नीति के अनुसार इस समय हाईस्कूल तक तो शिक्षा का माध्यम सामान्यत मातृभाषा ही है। कालेजो में मातृभाषा माध्यम ऐच्छिक रूप से चलाया जा रहा है। किन्तु मेडिकल और इजीनियरिंग पाठ्यक्रमों की शिक्षा इस समय भी अंग्रेजी द्वारा ही अनिवार्य रूप में दी जा रही है। वर्धा में हमने कालेज स्तर पर मातृभाषा माध्यम का प्रारम्भ सन् १९४६ मे ही किया था। इस अभिक्रम का उदघाटन स्वय राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने किया था। इस समय भी हमारे वर्धा, नागपुर और जबलपुर कालेजो मे एम काम तक सारी वाणिज्य शिक्षा हिन्दी और मराठी माध्यम द्वारा दी जा रही है। मातृभाषा माध्यम को सफल बनाने के लिए कामर्स के टेक्नीकल विषयो पर भी हिन्दी और मराठी मे बहुत-सी सुन्दर और उपयोगी पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। इसलिए यह अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि हमारे देश में ऊँची से ऊँची शिक्षा प्रादेशिक भाषाओ में दी जा सकती है।

किन्तु हमें खेद है कि शिक्षा मन्त्रियो के सम्मेलन ने प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी भाई के विचारो और सुझावो पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होने यही तय किया कि नई शिक्षा प्रणाली को कुछ हेर-फेर के साथ सारे देश में लागू कर दिया जाए। कई प्रदेशो ने तो इसे प्रारम्भ कर भी दिया है। शेष राज्य इसे छठी पचवर्षीय योजना के अन्त तक कार्यान्वित करें। सम्मेलन के प्रस्ताव में बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो का जिक्र भी नही है। मातृभाषा माध्यम को अनिवार्य बनाने के सम्बन्ध में भी कोई सिफारिश नहीं की गई है। योजना आयोग के उपाध्यक्ष प्रो लाकडवाला ने भी अपने सम्मेलन मे दिए गए भाषण में इन विषयो का उल्लेख नहीं किया है। और न केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डा प्रतापचन्द्र चन्द्र ने प्रधानमन्त्री के विचारो का समर्थन किया है। यह सचमुच बडे आश्चर्य व दुःख का विषय है।

नई तालीम समिति की दिल्ली मे तारीख १८ जुलाई को जो बैठक हुई थी उसकी सिफारिशें हम इस अक मे अलग प्रकाशित कर रहे है। हमारा निश्चित मत है कि यदि १०+२+३ के नए शिक्षा-क्रम मे नई तालीम के मूलभूत सिद्धान्तो को ईमानदारी से लागू न किया गया तो वह एक मँहगी निष्फलता साबित होगी। इस समय सारी दुनिया के शिक्षा शास्त्रियो का यह निश्चित मत है कि हमारी शिक्षा का आधार उत्पादक और समाजोपयोगी श्रम हो। यूनेस्को के अन्तरराष्ट्रीय शिक्षा कमीशन ने भी इसी बात पर बल दिया है। हम आशा करते हैं कि केन्द्रीय और राज्य सरकार प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी भाई के सुझावो पर एक बार फिर बहुत गहराई से विचार करगी और शीघ्र ही योग्य निर्णय लेंगी।

"पब्लिक" स्कूलो का भविष्य :

भारतीय ससद के पिछले अधिवेशन म एक प्रश्न का उत्तर देते हुए केन्द्रीय शिक्षामन्त्री डा प्रतापचन्द्र चन्द्र ने कहा था कि पब्लिक स्कूलो को बन्द करा दना उचित नही होगा, क्योकि व अपने ढग से उपयोगी कार्य कर रहे है। किन्तु जनता पार्टी क कई प्रमुख सदस्यो ने अपना स्पष्ट मत जाहिर किया है कि वर्तमान पब्लिक स्कूलो को अपना रग-ढग बदलना ही होगा और यदि व ऐसा न कर तो उन्हे बन्द भी करना जरूरी हो जाएगा। नई तालीम समिति का यह निश्चित विचार है कि अब इन पब्लिक स्कूलो को अपनी वर्तमान पढाई का ढाँचा और तौर-तरीका बदलना ही चाहिए। हमारी राष्ट्रीय नीति के अनुसार पढाई का माध्यम मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा होना चाहिए। किन्तु इन पब्लिक स्कूलो में इस समय भी शुरू से ही बच्चो को अंग्रेजी भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती है। त्रिभाषा फॉर्मूले के अनुसार उनमें राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी उचित स्थान नही दिया जाता। उनका सारा वातावरण भी अंग्रेजी और ईसाई सस्कृति से भरा रहता है। यह सबदृष्टि से बहुत अनुचित है और इस सम्बन्ध में केन्द्र व राज्य सरकारो को जल्द ही योग्य निर्णय लेना चाहिए।

ये पब्लिक स्कूल भले ही चालू रख जाएँ क्योंकि उनमें कुछ विशेषताएँ तो है ही। किंतु यह नितांत आवश्यक है कि उनकी पढ़ाई का ढाँचा हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप हो। यह कहना पर्याप्त नहीं है कि चूंकि वे सरकार से कोई आर्थिक सहायता नहीं लेते इसलिए उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में पूरी आजादी होनी चाहिए। सरकारी सहायता न लेते हुए भी उन्हें राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार अपना ढाँचा ढालना ही होगा। यदि वे ऐसा करने को तैयार न हों तो उन्हें चालू रखने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए। नहीं, तो व आजाद देश के बच्चों और नवयुवकों का एक नया वर्ग खड़ा करते जाएँगे और इसके कारण हमारे राष्ट्र में समानता के बजाय सामाजिक व आर्थिक विषमताएँ और भी गहरी बनेंगी। यह सर्वथा अनुचित और अवांछनीय होगा।

गाँव वालो से संबंध जोड़े

महात्मा गांधी

[बुनियादी शिक्षा को सफल बनाने की दृष्टि से महात्मा गांधी ने श्रीमती शान्ता बहन नारुलकर से सन १९४५ में विस्तृत चर्चा की थी और सुझाया था कि सेवाग्राम के गाववालो से साधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। यह चर्चा नई तालीम के पाठकों के लिए यहाँ दी जा रही है। यह सामग्री अबतक प्रकाशित नही हुई है।]

गांधीजी —गाँव म दिखरकर रहना ठीक नही है। गाव म काम करने के लिए वहाँ रहना है तो कार्यकर्ताओ का जीवन अलग होना जरूरी है यदि एस नही रहगे तो हमारा खात्मा हो जाएगा। अलग रहने स अभिप्राय उनके ही ढग स उनके जैसे घरो और वातावरण म न रहने स है। हमें अलग रहना है पर वहाँ रहते हुए हमारा हाड और हृदय एक होना है। सेवाग्राम की आबादी बढ रही है, दुगुनी हुई है इसीस रोग बढते है। लोगो को जगह चाहिए, घर में हवा चाहिए खेतो में जाकर क्या नही रहते क्योकि चोरो का डर है। इसलिए कैसी भी गदगी हो गाँव म ही रहगे।

बाहर के लोग (कार्यकर्ता) गाँव म रहेंगे व गाँव के नियत्रण में नही रहेंगे। यहाँ नियत्रण का अर्थ ठीक नहीं है तुम्हारा एक एक शब्द तौलकर होता है। बाहर के लोग जो गाँव में रहते है उन्हें गाँव के उत्सव और त्यौहार आदि सामाजिक जीवन में हिस्सा लेना चाहिए, व हर चीज म हिस्सा नही ले सकते। व क्या चीज ले सकते है और क्या नही, यह उन्हें बताना चाहिए। देहात के लोग हमारी नकल करते है परन्तु दूर स ही व समझ नही पाते कि उन्हे हमारे जीवन से क्या लेना है। देहातो की सारी शिक्षा में इतनी अधिक चीजें ग्रहण करना है। यह देखकर भागना नही, उनमें से अच्छी

चीजें ग्रहण करना है। कूड़े को सुधारना है। मैं चाहूँ तो कूड़े कचरे को बम से उड़ा दूँ और दूसरा गाँव बसा दूँ। मगर मैं यह काम नहीं चाहता हूँ। कि बम से उड़ा कर नया गाँव बसाऊँ। चाहे इस काममें (सुधारने) में दो पीढ़ी ही क्यों न लग जाए।

शान्ता बहन —गाँववालों से सम्बन्ध जोड़ने के लिए क्या करें ?

गाँधीजी —घर-घर जाकर बीमारों को देखो, जाकर उनके यहाँ सफाई भी करो, नई तालीम का यह हिस्सा है। जीवन का कोई भी विभाग ऐसा नहीं है जो नई तालीम में नहीं आता, सब चीजों पर उसका कब्जा है। जहाँ तक हो सके तू ही (शान्ता) डाक्टर भी बनेगी। नैसर्गिक-उपचार पर भरोसा हो तो डाक्टर की जरूरत नहीं होगी। एक दिन ऐसा था कि मैं यह सब करता था। परन्तु आज नहीं कर सकता हूँ। इसलिए दूसरों को भी नहीं रोक सकता। इसलिए मरीजों को देखना भी तेरा काम है।

शिक्षक के गुण ये होने चाहिए कि उसका जो विश्वास हो वही करे, वह लोगों को जैसा कहे वैसा करे यह शक्ति उसमें आनी चाहिए उसके पास जितने बच्चे आएँगे, वे उन्हें लेकर उनके घर जाएँगे और उनकी माताओं को सिखाएंगे।

शान्ता बहन —सेवाग्राम में अलग अलग संस्थाओं के काम चलेंगे। उनके सेवाग्राम में चलनेवाली अन्य संस्थाओं के कामों में कहाँ तक मेरी जिम्मेदारी होगी? उनके प्रति मेरा क्या कर्तव्य होगा ? सेवाग्राम में चलनेवाली अन्य संस्थाओं के कामोंमें कहाँ तक मेरी जिम्मे- दारी होगी ?

गाँधीजो —गाँव में काम करनेवाला निश्चित जगह लेकर वह रहे क्योंकि तू तो इस काम को लेकर ही इस काम के लिए बैठेगी। तू मदद माँग सकती है। यदि दूसरे मदद दे सकें तो दें, नहीं तो काम अधूरा रहे सो रहे, परन्तु जवाबदारी तेरी ही रहेगी। तेरे में शक्ति होनी चाहिए, आत्म विश्वास होना चाहिए, कि काम होगा ही तू लाचार न हो, लाचार होगी तो पंगु बनेगी। प्रौढ़-शिक्षा आसा

नही। इन शिक्षितो से काम लेना ही है। देहातियो से काम लेना आसान है। वे अन्य कार्यकर्त्ता तो पढे लिखे है न।

नई तालीम का पूरा चित्र मेरे हृदय में बैठा है मैं ही नई तालीम का जन्म दाता हूँ। मैं जानता हूँ कि वह क्या चीज है। देहातियो को जागृत करना है। जिस शिक्षक में वह स्वभाव पैदा हो गया है वह ही जानेगा। मनुष्य स्वभाव को जीत लेना है।

विषय का विषय ज्ञान हो परतु शिक्षिका और विद्यार्थी दोनो में साथ तो होना ही चाहिए। यदि यह सिद्ध नही होता है तो यह समझना होगा कि कही गलती है।

शान्ता बहन —सेवाग्राम के इर्द गिर्द की सस्थाओ का सेवाग्राम से क्या सबध होगा?

गांधीजी —सेवाग्राम की सब सस्थाएँ मेरा ही काम है। वे अहिंसा मार्ग के काम है। अँग्रेजी तरीको से चलने वाले एक के पीछे अनेक मत्र आए और उसी से यत्र-शास्त्र आया। इसका स्वरूप पश्चिम से आया। वैसी ही विश्व मूर्ति बनी। इसमें सामान्य काम भी हिंसासे करना होता है। यदि हम वैसे बने तो कैसे ठीक होगा? इसके उल्टा हमें शान्ति से मार्ग निकालना है। इसी से हम झझट होती है।

सबको साथ रखना है शान्ति और महब्बत से काम लेना है। "सबको मिलाना" इसमें ही सारी नई तालीम की नीव डाली गई है। अहिंसा से सबको सिखाना चाहते है। सबको साथ लेकर काम करें उसके बाद अक्षर ज्ञान हो। इसलिए उद्योगो का अहिंसा के साथ गहरा ताल्लुक है। इसमे आज के समाज में एक तरफ काम करनेकी वाला है और दूसरा काम लेनेवाला है। लेकिन नये समाज मे अब एक साथ सब काम करेंगे। ये सस्थाएँ मेरी स्वेच्छा से हुआ काम है। अब वहाँ एक दुनिया पैठ गई है। इसलिए मैंने कहा है कि सबसे ज्यादा काम यहाँ ही हो सकता है। अकेला आदमी सब काम नही कर सकता। पहले दर्जे का काम तभी हो सकता है जब सबके साथ सबको मार्फत काम लेनेकी शक्ति आजाए। हम अलग-

अलग कंकरी जैसे हैं मगर हमें एक साथ मिलकर ईंटकी तरह बनना होगा, फिर उनसे घर बनाना है। मेरा सहयोग का अर्थ अंग्रेजी कोऑपरेशन नहीं, वह तो मेरा अहिंसा का सहकार है। हमें गाँव के सामने एक आदर्श होकर दिखाना है। यहाँ की अनेक संस्थाएँ एक के सदृश दिखाई दें। हम एक सौ पच्चीस आदमी एक से ही नजर आएँ तो कुछ बताना नहीं होगा। गाँववाले देख सकेंगे। मकान को बोलने की जरूरत नहीं रुबल को कारी आवाज करते हैं।

बाहर के नए आदमी सेवाग्राम में रहने आएँ तो आएँ मगर तुम्हारी इजाजत से। गाँव के लोग भी इन नए आनेवालों से कहें कि शान्ता बहन की चिट्ठी लेकर आओ। नई तालीम का काम अदृश्य है। किसी को पता नहीं चलेगा कि वह क्या चीज है लेकिन वह नई तालीम होती ही रहेगी। जैसे बच्चे पढते हैं उन्हें पता नहीं कि वे कब पढते हैं मगर वह पढाई तो दिल मे बैठ जाती है, उसमें पीछे हटना नहीं है।

भय निवारण :

शान्ता बहन—देहात में काम करने के लिए गाव वालों के भय को कैसे दूर करें ?

गांधीजी—यदि लोग कहें कि काम मत करो, हमें डर लगता है तो हमें (काम करने वालों को) कहना है कि आपको डर लगता है तो सिपाही से कहकर हमें पकडवा दो। पर हम डटे रहेंगे। सफाई और काम करते रहेंगे। अगर हममें से डर बिल्कुल निकल जाए और लोगों को इस पर विश्वास हो जाए कि हम निडर हैं तो अपने आप उनका डर निकल जाएगा। लेकिन अभी हम में वह नहीं है। यह बात मेरे अनुभव में बाहर है। "बेतिया के लोग डरपोक थे मुझे ऐसा अनुभव नहीं हुआ कि वे चले जाओ या हटो, ऐसा कहेंगे शान्ता बहन की बात भर लूं। सेवाग्राम में वह स्वतंत्र काम चलाएगी यहाँ काम बड़ा है। इतनी संस्थाएँ हैं परन्तु वह उसी चीज को देखेगी जो नई तालीम के दायरे में आ सकती है।

जाजूजी —क्या वह गुड का काम भी देखेगी ?

गाँधीजी —मैं तो कह सकता हूँ कि यदि गुड वाला भी मेरे पास आए तो मैं बता दूँ कि यह कैसे हो सकता है। सब चीज का संशोधन मैं करने वाला हूँ। वह यह अभी नही कह सकती है। यह कहती है मैं स्वतन्त्र रूपसे आपके मातहत काम करूँगी। आपसे पूछकर काम करूँगी क्योंकि यह आपका काम है। आपने कहा है कि सेवाग्राम तैयार हो जाए तो मैं समझूँगा कि सारा हिंदुस्तान तैयार हुआ है।

शान्ता बहन नई तालीम की दृष्टि से बैठेंगी वह शिक्षण की दृष्टि से बैठेंगी तो दूसरा काम बहुत कम रह जाएगा। दूसरा कोई काम करे तो वह उन्हें शिक्षिका की दृष्टिसे बताएगी कि ऐसा करो नही करोगे तो जैसा मन चाहे वैसा चले।

नई तालीम अपने आप चलने वाली चीज है। स्वाश्रयी हो सकती है। गुडवाला अपने आप उसके पास पूछने के लिए आया—शान्ता बहन कैसे करूँ कि लडका को भी साथ ले सकूँ। अगर वह स्वतन्त्र मिजाज का आदमी है तो वह कुछ शांताके लिए एक विषय बन जाता है। ओडनलट है न? उसे सोचना होगा कैसे मैं इसके साथ कैसे चलूँ कि वह मेरे साथ सीधा चले। स्वाश्रयी बनना है तो कोई चीज नई तालीम के बाहर रह नही सकती।

जो काम उस ढाँचे में नही आता वह उसे छोड देगी। उसने मेरा सहारा लिया है कि मैं हिसाब ले लूँ कि वह क्या कर सकती है और क्या-क्या नई तालीम में आता है क्या-क्या नही। दूसरे कार्यकर्ता के पास मैं नई तालीम की बात नही करूँगा। वह ग्राम उद्योग या चरखा ले ले। जितना कर सकते हो करो उस स्वाश्रयी बनाओ।

गाँधीजी —क्या करोगी? अॅडल्ट एज्युकेशन से शुरू करोगी न?

शान्ता बहन —गाँव में तो पूरे समाजसे सम्बन्ध होगा वहाँ वातावरण बनाना होगा और यह अस्वाभाविक भी न हो ऐसा लगता है इसलिए उनके साथ स्वाभाविक सम्बन्ध कैसे बढाया जाए? यहाँ पुरुष है स्त्रिया है, नवयुवक हैं बच्चे हैं। इनमें से कई कुटुम्ब संस्था से सम्बन्ध रखते हैं लेकिन संस्थाका जीवन उनका जीवन है ऐसा नही मानते है। उनमें यह भाव कैसे पैदा किया जाए? ग्राम पचायत

का काम है। मालगुजार भी गाँव का एक प्रौढ है उसपर गाँव की जिम्मेदारी है। ऐसे कई प्रश्न है। इसलिए मुझे गाँव मे जाकर ही रहना होगा। मैंने सोचा है एक एक मुहल्ले में १५ दिन रह कर लोगोंसे सम्बन्ध बढाऊँ और उनमें मिल जाऊँ। वही ठीक होगा न? मेरे साथ यदि और कोई आएँ तो हम सब इसी तरह गाँव मे फैल जाएँगे। शिक्षामें इतनी चीजे आती है उसे देखकर भागना नहीं उसमें से अच्छी चीजें ग्रहण करनी हैं। कूडे को सुधारना है। यदि चाहूँ तो इस कूडे कचरे को बम से उडा दूँ और दूसरा गाँव बसा दूँ मगर यह बात में नहीं चाहता हूँ चाहे उस सुधारके शिक्षा के काम में दो पीढी ही क्यों न लग जाएँ।

शान्ता बहन :—फिर गाँव से सम्बन्ध बढ़ाना है तो किस तरह प्रवेश करूँ?

गाँधीजी :—घरघर जाकर बीमारों को देख रेख और सफाई भी कर। यह नई तालीम का हिस्सा है जीवन का एक भी विभाग ऐसा नही है कि जो नई तालीम मे नहीं आता हो। सब चीजों पर उसका कब्जा है। जहाँ तक हो सके तू डाक्टर भी बनेगी और नैसर्गिक उपचार पर भरोसा हो तो डाक्टरकी भी जरूरत नहीं होगी। एक दिन ऐसा था कि मैंने डाक्टर को नही बुलाया था। उस समय मेरा कदम आगे बढ़ा था। पर आज नहीं कर सकता हूँ। इसलिए दूसरों को भी नही रोक सकता हूँ। मरीजों को देखना भी तेरा काम है परन्तु अभी तेरी यह हैसियत नही है। शिक्षक मे यह गुण होना चाहिए कि जो विश्वास हो वही करे। लोगों को हम कहें और वे वैसा करें यह शक्ति हममें आनी चाहिए क्योंकि जितने बच्चे उसके पास आएँगे वे गुण लेकर घर जाएँगे और माँ बाप को सिखाएँगे।

शान्ता बहन :—सेवाग्राम देहात में अलग-अलग विधायक कार्य अलग-अलग संस्था के मार्फत चलेगा उनके बारे में मेरा क्या फर्ज होगा जैसे ग्राम उद्योग, खादी कार्य, दवा-शाला, इन संस्थाओं के कार्यमें मेरी क्या जिम्मेदारी रहेगी?

गांधीजी —घर लेकर रहे पर निश्चित जगह लेकर रहे क्योंकि जो इस काम को लेकर बैठे वह सारी जिम्मेदारी लेकर चले। तू मदद माँग सकती है। यदि मदद दे सके तो द नही तो काम अधूरा रहे परतु पसदी तेरी ही रहेगी। तेरे में शक्ति होनी चाहिए। आत्म विश्वास होना चाहिए कि काम होगा ही तू लाचार न हो लाचार होगी तो पगु बनगी।

अॅडल्ट एज्युकेशन आसान नही जब कि देहातियोसे काम लेना आसान है। लेकिन शिक्षितो से काम लेना आसान नही है,मगर तेरा आत्म-विश्वास हो कि काम लेना ही होगा। नई तालीम क्या चीज है वह तू अभी नही जानती लेकिन उसका पूरा चित्र मेरे हृदय म बैठा है। म ही नई तालीम का जन्म दाता हूँ। मे जानता हूँ कि वह क्या चीज है। देहातिया को जाग्रत करना है। जिस शिक्षक म यह स्वभाव पैदा हो गया है वह ही जानेगा कि सब मनुष्य स्वभाव को जीत लेना है। उनके साथ किस तरह बातें करनी होगी वह पहचान लेता है। विषय का ज्ञान न हो परन्तु शिक्षक और विद्यार्थी दोनो में साथ होना जरूरी है। यदि यह सिद्ध नही होगा तो कही-न-कहीगलती है यह समझ ले।

शान्ता बहन —गाँव में पानीका इतजाम कैसा हो। पानी तो गदा है और कुएं भी बुरे है।

गांधीजी —बडे परिश्रम से ही सही पर पानी तो उबाल कर पीना है। जो गन्दे कुएँ है उन्हें बद कर द। इस काम म पैसे खच करेंगे क्योंकि ये बीमारी के घर है, ज्यादा कुएँ है, इतने कुओ की जरूरत नही है व बद करने से पलब्लो स्वयूनर भी बनेंगे। आम कुओंके साफ रखने का खर्च तो जनता को ही देना होगा। निजी कुएँ मालिक सुधारें नहीं तो मालकी छोड द और उस पब्लिक फड से सुधारे। इस तरह सब कुएँ हमारे हाथ आ जाएँ। देहात के लिए देहाती वाटर-वर्क बन जाए पर यह कैसे हो यह सोचने की बात है। काम एसा हो कि सारे हिन्दुस्तान के लिए हो सदा हो सस्ता हो। सवाग्राम का आदर्श सबके लिए हो और खर्च भी हो और फिर वह सात लाख देहात के एक नमूना बने।

शान्ता बहन —पारनेरकर भाई कहते हैं कि इलेक्ट्रिसिटी से यह काम आसान होगा।

गाँधीजी —इलेक्ट्रिसिटी के बारे में मैंने कहा है कि मुझे बाँधो मत। पहले तो कह दो कि सारे हिन्दुस्तान में हो सकता है तब मुझे लगेगा इतनी पावर तो लेनी होगी फिर ऐसे कामके लिए पब्लिक फंड जमा कर। पब्लिकका भी हिस्सा रहे और उसमें आश्रम का हिस्सा भी रहे। आश्रम गाँव के किनारे है और हमें तो लोगोंको तालीम देनी है।

शान्ता बहन —आपने कहा था गाँव में रहने जाए तो आश्रम से ही शुरू हो मगर आश्रम का खाना और रहन-सहन सात्विक है और गाँववालों से अलग है व देहात में कैसे रह सकेंगे?

गाधीजी —परिश्रम से ही सही घर पानी तो उबाल कर पीना ही है। मैंने पहले सोचा था देहात में ही रहूँगा मगर चेचक का टीका आदि मुझे नहीं लेना था। मुझे अलग रहना है ऐसा डाक्टर ने इसीलिए कहा था। ब्लानी डाईट के विषय में यह बात है कि थोड़ा दूध तो लेना ही चाहिए प्राणीज प्रोटीन थोड़ा सा भी होनेसे दूसरी प्रोटीन अच्छी पचती है। अतएव थोड़ा प्रमाण दूध का रखें। १० तोला दूध और एक तोला घी मगर सच्चा घी हो।

आशादेवी —बच्चोंको हम १ तोला तेल देते हैं।

गाँधीजी —वह पूरा नहीं है, आज वह चलता है-क्योंकि उन्हें घर में कुछ भी मिलता नहीं मगर अपना माप हम उसपर से न निकालें अपना शरीर ईश्वर का घर यानी जनता का है ऐसा मानते हैं, जनता के कारण हम जिन्दा रहना चाहते हैं तो शरीर अच्छा रखना है। आश्रम में तबीयत बिगडती है उसका कारण यह है कि ये लोग प्रमाण नहीं रखते, तब तबीयत बिगडेगी ही।

सुशीला बहन —यहाँ मसाला वगैरे न होने के कारण स्वादिष्ट खाना नहीं होता इसलिए प्रमाण नहीं रख सकते।

गाँधीजी —स्वादिष्ट खाना नहीं है इसलिए प्रमाण नहीं है यह मैं मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। देहात में जो खाना है वही

खाते हैं खाने में भी कला है। आश्रम-जीवन में शिक्षा देनी है। न तो ज्यादा नहीं और न छोडना ये बातें सीखने लायक है।

शान्ता बहन —खानेमे दूध होना जरूरी है और माँ बाप दूध के लिए पैसा दें ऐसा आपने कहा है, बच्चों को दूध देने के लिए उनके जेब में पैसे कहाँ है ?

गांधीजी –वही तो करना है। उसमें अॅडल्ट एज्युकेशन है। उन्हें जिम्मेवारी समझना है। उनकी कमाने की शक्ति बढाना है। उन्हें भिक्षुक नहीं बनाना है। आखिर उन्हें खाना-पीना तो देना ही है। उसके ढग दो है एक है रूस का। हमें वही चीज अपने ढग से करनी है। यदि हम नहीं कर पाते तो कुछ कमी है। मै मानता हूँ कि वह बनना चाहिए। वहाँ तो उन्होने सारी दुनियां का नहीं सोचा। एक बड समाज का सोचा है। यहाँ तो एक सेवाग्राम लेता हूँ माने सारे दुनियाको ही लेता हूँ। उनका समग्र जीवन लेकर एक सेवाग्राम देहात मे कितना हो सकता है वह देखना है। एक कमाए और सो खाए तो नही हो सकता है। हरेक कमाए और हरेक खाए तो हो सकता है। मुझे मरीज के मरने की परवाह नहीं है मगर मरीज होने से रोकूँ इतना बस है। अच्छे समाज में पशु बहुत कम रहते हैं। बच्चे को तो माँ-बाप खिलाते ही है अच्छे कुटम्ब में बच्चे भी लम्बे अरसे (समय) तक भार नहीं होते। यदि ३–४ वर्ष का भी बच्चा कमाने लगे है तो हमारी तालीम है। कालेजवाले दरिद्री बनते हैं।

सेवाग्राम का आदमी हमारे यहाँ काम करता है। हम इसके बाल बच्चोंको नहीं देखते है हमें उनके साथ के वर्ताव में उनके और उनके बच्चो के साथ के व्यवहार में मित्रता लानी है और रिश्तेदारीकी भावना निर्माण करनी है। वे उनका खाना अलग, कपडे अलग रखते हैं। उसमें भी कला है। वे अपने को अलग समझते है मगर वे हमारे रिश्तेदार और सहकारी साथी है। हमें तो समझना होगा कि हम उनके साथ कैसे चलें अपने को अलग रखते हैं तो उसमें सुधार लाना होगा।

शान्ता बहन –यदि खाने में दूध न मिले तो क्या चीजें देनी होगी ?

गांधीजी —इसीलिए जो मांसाहारी हैं उनसे मैं कहता हूँ कि यदि और कुछ न मिले तो मांस, अण्डे खाओ लेकिन शाकाहारी को कहूँगा साग न मिले तो भूखे मर जाओ। दक्षिण आफ्रिका में सत्याग्रहियोंने शाकाहार के लिए किस तरह तय्यारी जमा की थी वह समझने लायक है। शाकाहारी को वनस्पति-शास्त्र जानना ही चाहिए। देहात के गरीबों को रशिया के लोगों जैसा बनाना है।

शान्ता बहन —सेवाग्राम की आबादी बहुत बढ गई है, नई आबादी बढानी है तो घरोंकी व्यवस्था कैसी हो?

गांधीजी —नया सेवाग्राम बसाना हो तो जगह हम देंगे। लोग घर अपने आप बनाएँ मगर जमीन पर उनका हक नहीं होगा। यदि घर बदलना पडा तो जो दूसरा आदमी आएगा वह घर बनानेमें जितना पैसा लगाया गया होगा उतना देकर घर ले सकेगा। लेकिन लोग घर के लिए जमीन मांगकर घर बसा लेंगे परन्तु पैसे की जगह परिश्रम देकर खाली रहने के लिए घर लेना पसंद नहीं करेंगे।

हमारे हाथ में राजसत्ता नहीं है और मैं आचार-विचार का भी जोर नहीं कर सकता हूँ। मैं जो सत्याग्रह करना चाहता हूँ वैसा हो तो जनता मुझे आप ही सहारा दे देगी। मगर लोग मुझे समझ लें। वे मुझे समझ लें तो फिर मेरा स्वप्न-स्वप्न नहीं रहेगा। हमारे खेतों को मैं उजाड दूँगा और लोगों को बसाने के लिए जगह दे दूँगा। वे आज भी हमारे यहाँ आ जाएँगे लेकिन मैं चाहता हूँ कि वे यह करनेको तैयार नहीं हैं। वे यह चाहेंगे कि जमीन मिल जाए उसके लिए मैं तैयार नहीं हूँ। मैं जमीन का मालिक रहूँ यह वे नहीं मानेंगे। वे तो जमीन मांगेंगे।

शान्ता बहन —गांव में दो किस्म के आदमी हैं। एक तो वे जिनके पास जमीन नहीं है और जमीन के मालिक नहीं बनेंगे लेकिन पैसा और परिश्रम लगाकर मकान बनाना चाहते हैं। दूसरे वे हैं जिनके पास जमीन है पैसा नहीं है यदि वे अपनी जमीन पर घर बनाएँ तो किस्तों द्वारा पैसा अदा करेंगे पर तब तक वे घर पर कब्जा नहीं रखेंगे ऐसे लोगोंको किस तरह मदद करनी होगी?

गांधीजी —इसके लिए एक सहकारी गृह निर्माण समिति बनानी चाहिए। घर बनाने के लिए उन्हें पैसा उधार देना होगा और लोगो को सख्ती बरदास्त करनी पडेगी। जब तक पूरा पैसा अदा नही किया जाएगा तबतक घर, सोसायटी का रहेगा। हमे लोन निकालना होगा।

शान्ता बहन —पुराने घर चोरोके डर से बचे थे। वहाँ लोग पैसे गाडकर रखते थे। इसलिए वे ऐसे थे। यदि कोऑपरेटिव्ह बैंक जैसी पब्लिक लायब्ररी हो तो घर अच्छे बनेंगे।

गाधीजी —यह पहला कदम नही है। वे लोग पैसे घरमें दबाकर रखते हों तो उसे निकलवाना चाहिए। सोना तो सरकार ने सब खीच लिया। १ पौंड में १८ शि दिए। अब जो रखने है उसका प्रबध करके फिर घर बनाना है। इससे डर रहेगा ही नही।

बुनियादी तालीम

मोरारजी देसाई

[१०–११ अगस्त को नई दिल्ली में शिक्षा मंत्रियों का महत्वपूर्ण सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रधान मंत्री श्री मोरारजी भाई देसाई ने बुनियादी तालीम की अनिवार्यता पर बहुत जोर दिया था। उनके उद्घाटन भाषण के मुख्य अंश यहाँ प्रकाशित किए जा रहे हैं।]

यदि हमें अपनी सही हालत में आना है और देश को उन्नत बनाना है— जैसा कि हम उसे उन्नत बनाना चाहते हैं तो उचित शिक्षा को तथा हमारे सपनों और गाँधीजी के रामराज्य के सपनों को पूरा करने को मैं महत्व देता हूँ।

मेरी दृष्टि में कृषि और शिक्षा ये दो विषय अन्य सभी विषयों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। कृषि पर हमारी आर्थिक उन्नति निर्भर है। उसी के चारों ओर आर्थिक उन्नति गढ़ी जानी है। शिक्षा पर हमारे मानव एवं भावी नागरिकों की निर्मिति निर्भर है। हमारे हर एक काल पर हमारी युवापीढ़ी को दी जाने वाली शिक्षा के गुणों का असर पड़ता है।

हम शिक्षा पद्धति की उन खामियों के शिकार हैं जो पाश्चिमात्य विचारधारा द्वारा भारत के धर्म-परिवर्तनार्थ हम पर आरोपित की गई थी और मेकॉले द्वारा अपने मूलाधार से पथ-भ्रष्ट या च्युत कर दी गई थी। यह वही है जो अभी भी अटल है और यही वह दिशा है जिसे हमें बदलना है। मुझे खुशी है कि आप सब इन दृष्टिकोणों पर विचार कर रहे हैं। किन्तु जब तक हम शिक्षा संबंधी अपनी वृत्ति एवं अंतर वस्तु में मूलभूत परिवर्तन नहीं करते तब तक मुझे भय है कि पैवन्द लगाने से कोई लाभ नहीं होने वाला है और यही हो रहा है।

१०+२+३ की शिक्षा संरचना को लीजिए। मैं नहीं जानता कि यह क्या है। मुझे नहीं मालूम कि यह कैसे कोई लाभ पहुँचाएगी। इसने और अधिक बुरे के लिए परेशान कर दिया है। मैं नहीं समझता कि उसने कुछ अधिक भला किया है। शिक्षा में इस तरह का परिवर्तन कोई परिवर्तन नहीं है। मैं समझता हूँ कि अंततः यह जनता को केवल दिग्भ्रमित करता है कि वह सोचने लगती है कि हम कुछ अधिक अच्छा कर रहे हैं।

शिक्षा का उद्देश्य यह देखना है कि उसने मानव को जिस बुद्धिमत्ता और क्षमता को दिया है वह उचित अनुपात में उसको खुद की भी समझ में आती है या नहीं तथा आजीवन वह अपनी बुद्धिमत्ता और क्षमता को बढ़ाते हुए पूरी तरह से भलीभाँति उसका सदुपयोग करता है या नहीं। शिक्षा का यह सही उद्देश्य है और यदि उसकी उपलब्धि नहीं होती है तो शिक्षा अपनी उपयोगिता के उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाएगी। अतः उसे उत्कृष्ट सारभूत चरित्र उत्पन्न करना चाहिए। वह निर्भयता और सत्य प्रदान करे। क्या ये गुण हममें हैं? हम तो दूसरों के लिए चिन्तन, हिम्मत, साहसिकता, भय-रहित प्रोत्साहन के अभाव में एकमेव भ्रष्टाचार और स्वार्थपरता से पीड़ित हैं। यदि हममें उपर्युक्त गुण नहीं आते तो फिर हम क्या करने जा रहे हैं। जीवन में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ तो हैं ही और रहेंगी किन्तु हम उन्हें और अधिक न बढ़ाएँ। यदि हमारे जीवन में सुलझाने के लिए और सामना करने के लिए कठिनाइयाँ नहीं हैं तो सचमुच में जीवन में आनन्द नहीं रहेगा। इसलिए उन्हें हमें ललकारना चाहिए। ऐसा करने में शिक्षा हमारी मदद करे और यही उसने नहीं किया है। महात्मा गाँधी ने इस देश के लोगों को लिया और उसे नई दिशा देने के लिए जो कुछ किया वही कुछ हद तक किया गया है। दुर्भाग्य से शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित लोगों ने जैसा उसे आगे बढ़ाया जाना चाहिए था वैसा नहीं बढ़ाया।

हमें भूत में नहीं जाना चाहिए, न उसकी चीर-फाड़ ही करनी है और न किसी व्यक्ति को दोष ही देना है। मैं सोचता हूँ कि हम सभी उसी तरह की शिक्षा की निष्पत्ति हैं अतः किसी को दोष न दें। यही कारण है कि हमें उससे हानि उठानी पड़ रही है। जो आज उस जगह पर

३

है उनमें से भी किसी की भूल नहीं है किन्तु अब यह हमारी भूल होगी। यह जानते हुए कि कमी कहाँ है और अब हमें क्या करना है, हम इन बाधाओं, विघ्नों को सही स्थिति पर आने की दृष्टि से यदि दूर न करें।

हमारे लिए यह भी कोई अच्छे भाग्य की बात नहीं है कि मुझे यहाँ अँग्रेजी में बोलना पड रहा है और मैं नहीं जानता कि कितनी अधिक अवधि तक मुझे यह करते रहना पडेगा। अँग्रेजी भाषा से मेरी कोई लडाई नहीं है किन्तु उसे हम भारतीय भाषा तो नहीं कह सकते। मेरा तात्पर्य यह है कि क्या भाषायी दृष्टि से भारत इतना गरीब है कि उसकी अपनी भाषा नहीं रह सकती? यहाँ भी हमारी शिक्षा का ही दुखानुभव है और कुछ क्षेत्र में भय और बाधाएँ उत्पन्न की जा रही हैं। मैं किसी के भय को बढाना नहीं चाहता। मैं किसी की बाधाओं को, आपत्तियों को टालना या तरह नहीं देना चाहता। जनता पर ज्वर्दस्ती कुछ लादा नहीं जा सकता। यह प्रजातन्त्र नहीं है। किसी पर कुछ जबर्दस्ती लादने का तो सवाल ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को क्या भारत का हित नहीं सोचना चाहिए? यह कौन करेगा? मैं सोचता हूँ कि केवल शिक्षा अर्थात् शिक्षा के क्षेत्र में लगे हुए लोगों का ही यह कर्तव्य है किन्तु दूसरोंको शिक्षित करने से पहले उन्हें अपने आप को शिक्षित करना है।

शिक्षा मंत्रियों का यही काम है जिसका आपको सामना करना है। यदि आप मुझ से सहमत हैं तो मैं समझता हूँ कि दिशा को बदलने और अच्छी अंतर्वस्तु देने में तथा अपने अनुरूप बनाने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। मैं यह जानता हूँ कि पूरे घूम जाओ की पद्धति से शीघ्र ही कुछ कर सकना सम्भव नहीं है। यह न तो सक्षम तरीका ही है और न वाँछनीय ही। लेकिन यदि हम तय करते हैं कि हमें क्या करना है कहाँ पहुँचना है कैसे हम जल्दी से जल्दी वहाँ पहुँच सकते हैं और हमें जल्दी से जल्दी गन्तव्य स्थान पर पहुँचना है तो हमें उसमें अपरिहार्य विलम्ब न करना चाहिए। और न हमें अपनी क्षमता और पाचन शक्ति से अधिक श्रम ही करना चाहिए। ये वे मापदंड हैं जिनपर हमें अपने कार्यक्रम आधारित करने चाहिए। यदि आप इन शृंखलाओं पर सोचें

तो मुझे विश्वास है कि आप भी उन्हीं निर्णयों पर पहुँचेंगे जिन पर मैं पहुँचा हूँ।

अब शिक्षा के माध्यम की बात। बालकों की शिक्षा का माध्यम आदि से अन्त तक मातृभाषा क्यों न हो? इसमे कहाँ झगड़ा है? इसके बारे मे किसे झगड़ना चाहिए? इसके बारे में कोई नही झगड़ेगा। परन्तु शिक्षा शास्त्री भी कहने लगते हैं कि मातृभाषा की अपेक्षा अँग्रेजी को अधिक महत्व दिया जाए, अपनी सर्वसाधारण भाषा को भी नहीं बल्कि अँग्रेजी को अधिक महत्व दिया जाए। क्या यह दुर्बलता या कमजोरी नहीं है, जिससे हमें क्षति उठानी पड रही है? यदि आप इस कमजोरी का अनुभव करते हैं तो क्या हमे उसे हटाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए? भारत के लिए हानिकारक हुए बिना उसे अधिक से अधिक सम्भाव्य हितावह रीति से हटाइए। और इसे किया जा सकता है। मै नहीं कहता कि प्रत्येक प्रदेश मे प्राथमिक से पीएच. डी. तक मातृभाषा में शिक्षा क्यों नही दी जा सकती? रास्ते मे क्या रुकावट है? यह कहना कि हमारी भाषाएँ विकसित एव समुन्नत नही हैं, केवल हीन भावना है और अपनी ही चीजों के प्रति सम्मानहीनता है। जब अँग्रेज यहाँ थे तब देश के सारे हिस्सों मे देशी रियासतें थी जिनमे शासन का कार्य जनता की भाषा मे चलता था। यदि वे उस कार्य के उपयुक्त नही थी तो उनमें कार्य कैसे होता था? यदि आप किसी भाषा का उपयोग न करे तो स्वभावतः पुस्तके प्रकाशित नही होगी। पर यदि आप पुस्तकों के प्रकाशित होने तक ठहरेंगे और फिर कहे कि भाषा का प्रयोग हो सकता है तो आपको चिरतन काल तक रुकना पड़ेगा। यदि आप भाषा का उपयोग नहीं करते है तो वह समृद्धिशाली नही होती हैं। और हमें तो उसे समृद्धिशाली बनाना है। दुख की बात तो यह है कि कृषि की शिक्षा भी अँग्रेजी मे ही दी जाती है। कृषक उसे कैसे समझेंगे और वे उससे कैसे लाभान्वित होंगे तथा वे गाँवों में दूसरों तक कैसे सम्प्रेषित करेंगे? यही कारण है कि महाविद्यालयों से निकलकर आनेवाले अधिकांश लोग नौकरियाँ ही करना चाहते है और कृषि को समृद्ध नही करते जो कि उन्हें करना चाहिए। अतः मेरी दृष्टि मे ये सब स्पष्ट बाते हैं जिनके

लिए अधिक तर्क की आवश्यकता नहीं है। मैं इन पर अधिक नहीं कहूँगा। यह आवश्यक भी नहीं है।

आप सब शिक्षा मंत्री होने के कारण इसमें उतनी ही रुचि रखते हैं। मैं नहीं मानता कि आप मुझसे अधिक रुचि रखते हैं। वरन् आपकी भी समान रुचि है। मैं आशा करता हूँ कि आप समान रूप में इसलिए रुचि रखते हैं कि एकमात्र शिक्षा मंत्री हो जाना शिक्षा में बहुत रुचि उत्पन्न नहीं करता। वह तो पहले से ही वर्तमान रहनी चाहिए। दुर्भाग्य से अब तक शिक्षा मंत्री के पद इसी प्रकार दिए जाते रहे हैं। मैं आशा करता हूँ कि अब वे ऐसे नहीं होंगे।

हमें यह देखना है कि प्राथमिक स्तर से ही उचित ध्यान दिया जाए क्योंकि यही सब आधार रखा जाता है और हम उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। 'बच्चे को मनुष्य का पिता' कहा जाता है। क्योंकि वह मनुष्य बनता है, वह पिता बनता है और यदि वह ठीक नहीं है तो भावी पीढ़ी ठीक नहीं होती। जो लोग मेरी और आपकी तरह बूढ़े हो गए हैं, या अधेड़ उम्र के हैं या तरुण हैं उनकी कुछ उन्नति कठिन है। चीनी मिट्टी के कप के टूटने के बाद उसमें सुधार सम्भव नहीं है। किन्तु जब वह कच्ची मिट्टी होती है तब उसे चाहे जैसा आकार दिया जा सकता है। इसीलिए यदि हम स्वयं सावधान हैं तो ये बच्चे ही हैं जिनका इन आदर्शों के अनुसार संवर्धन सम्भव है। यदि मैं कहूँ तो कह सकता हूँ कि हमें उन्हें अपने उस साँचे में नहीं ढालना है जो बहुत वांछनीय साँचा नहीं है। और मैं यह प्रार्थना करूँगा कि यहीं हमें प्राथमिक, माध्यमिक एवं महाविद्यालयीन शिक्षा के किस्म-संवर्धन की दृष्टि से विचार करना है।

हम सभी दृष्टियों से बच्चों की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। हम उनके शारीरिक गठन के बारे में नहीं सोच रहे हैं। मैं एक बार कुछ आँकड़े पढ़कर सचमुच चिंतित हुआ था कि भारतीयों की ऊँचाई घट रही है। जब कि अन्य देशों में वह बढ़ती जा रही है, वे ऊँचे होते जा रहे हैं। ऊँचा या नीचा होना उतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं

है जितना कि उन्नत होना अथवा पिछडना। यदि आप गतिहीन या निश्चल रहते हैं तो आप पिछडते हैं या नीच गिर पडते हैं। अत प्रत्येक को प्रगति करनी है। किन्तु हम प्रगति नही कर रहे हैं वरन हम तो पीछे जा रहे हैं। बच्चा के स्वास्थ्य की ओर जैसा कुछ ध्यान दिया जाना चाहिए वैसा नहीं दिया जा रहा है। हम दोपहर के भोजन तथा अन्य अनेक कार्यक्रम सोचते हैं। वे अपने में अच्छे हैं किन्तु एक मात्र वे अपने में बिल्कुल अच्छे नहीं। वे तो बच्चों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने के साधन मात्र हैं। मुख्य इसमें सन्देह नही है कि इनके बिना भी स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जा सकता है।

ईश्वर ने मनुष्य की आश्चर्यजनक सृष्टि की है। वह हर स्थिति में रह सकता है और हर प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद भी अपने को महान बना सकता है। मानव को यह क्षमता दी गई है और शिक्षा में हमें उसे प्राप्त करने की स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि हमें प्रतिकूल परिस्थितियों में रहना चाहिए। कुछ बाधाओं के कारण तथा कठिन परिस्थितियों में होने के कारण किसी को भी न तो चिल्ल-पों मचानी चाहिए, न एकदम निराशावादी ही बनना चाहिए और न हताश ही होना चाहिए। आप दुनिया के अनेक उदाहरणों से देखेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति यदि चाहे और दृढ निश्चयी हो तो बाधाओं को पार कर सकता है। असल में बहुत से महान व्यक्ति सुखी परिस्थितियों की नहीं, वरन् विपरीत परिस्थितियों की उपज हैं। यह जीवन का सत्य है। अतएव बालकों को बचपन से ही यह गुण सिखाया जाना आवश्यक है।

लेकिन यह केवल तभी सम्भव है जब हमारे पास उपयुक्त शिक्षक हों। अन्ततोगत्वा शिक्षक हमारी शिक्षा है। पाठ्यक्रम उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितने कि उपयुक्त शिक्षक। शिक्षक का व्यक्तिगत आचरण और व्यवहार ही बालकों पर अपना प्रभाव डालता है। इसी पर हमें ध्यान देना आवश्यक है। इस दिशा में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने वाली संस्थाओं को अधिक प्रभावशाली बनाया जाना है। वे व्यापारिक संघों में रूपांतरित होने के कारण ह्रासशील हो रही हैं। क्या यदि

अति नांछनीय है? विद्यार्थी प्रभावित होते हैं और फिर इसी कारण छात्रों और शिक्षकों के बीच अशान्ति दिखाई देती है। यह क्यों होना चाहिए? शिक्षकों, विद्यार्थियों और समाज के बीच क्या संघर्ष है? कोई संघर्ष नहीं हो सकता। दोनों के बीच कल्याण की अनुरूपता है। फिर भी वे संघर्ष उत्पन्न करते हैं। इसमें केवल अधिक समझ की आवश्यकता है। इस दिशा में भी हमें सोचना और कार्य करना है।

इसीलिए मेरे मन में कोई सन्देह नहीं है कि बुनियादी शिक्षा को अपने सही रूप में और उपयुक्त शिक्षकों के सहित आना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब कि शिक्षा मन्त्रीगण प्रभावित हो जाएँ और ऐसा करने का दृढ़ निश्चय करें। फिर इसे कोई नहीं रोक सकता। और इस पर आप सब को विचार करना है, आपस में चर्चा करनी है एवं निष्कर्ष पर पहुँचना है। मैं आपको कुछ भी करने पर बाध्य नहीं कर सकता। मैं ऐसा करने का प्रयत्न भी नहीं करूँगा। मैं तो केवल आप लोगों को तब तक मनवाता, समझाता रह सकता हूँ जब तक कि मुझे सफलता नहीं मिल जाती। मैं केवल इतना ही कर सकता हूँ। शिक्षा डंडे का क्षेत्र नहीं है। यह तो और कुछ से मनवाने की प्रक्रिया और आत्मोद्घाटन की ही प्रक्रिया अधिक है। और इसमें इसी तरह व्यवहार किया जाना चाहिए।

यदि आप बुनियादी शिक्षा से प्रारम्भ करते हैं और प्रत्येक विद्यार्थी को हर स्तर पर उत्पादक काम देते हैं तो आप उसे एकदम भिन्न व्यक्ति बना देंगे। वह आत्मविश्वासी अधिक होगा और अपना इन्तजाम कैसे करे, इसे वह जानेगा। प्रथम श्रेणी के एम एस सी, एम ए कुछ इंजीनियर डाक्टर मेरे पास आकर अपनी बेकारी की बात मुझसे कहें यह कितना करुणाजनक दृश्य है? कोई डाक्टर क्यों ऐसा अनुभव करे? कला का व्यक्ति कुछ हद तक अपने को असहाय अनुभव करे यह मैं समझ सकता हूँ, किन्तु यदि उसने उचित शिक्षा प्राप्त की है तो उसे भी ऐसा अनुभव करने का कोई कारण नहीं है। किन्तु ये भी अपने को असहाय अनुभव करते हैं। इसका क्या मतलब है? यह हमारी शिक्षा की कमी को ही बताता है। इसी को हमें ठीक करना है। किन्तु यह तभी हो

पाएगा जब कि हम उन्हें चारित्रिक दृष्टिकोण देंगे जिसकी कि आज नितान्त कमी है। और चारित्रिक दृष्टिकोण अपने से अधिक दूसरों के बारे में सोचने से ही आता है। यह चारित्रिकता ही है जिसकी ओर मैं ले जाना चाहता हूँ। यही चारित्रिकता इस देश की अपनी विशेषता है। यह हमारी संस्कृति का मूल तत्व है। यह मूलाधार है जिसे हमने दृष्टि से ओझल कर दिया है। मैं उसी दृष्टि से शिक्षा को जाँचना चाहूँगा और यही उसमें कमी पाई जाती है। हमें इस कमी की पूर्ति करनी होगी। यह आप ही सोचें कि इसे सर्वोत्तम रीति से आप किस प्रकार कर सकते हैं। उसके करने के अनेक तरीके हो सकते हैं। किन्तु वे सब सक्षम तरीके हों और वे हो सकते हैं यह हमें जानना चाहिए। इस सम्बन्ध में गांधीजी ने हमें बहुत-सी कल्पनाएँ दी हैं। वे केवल कल्पनाएँ ही नहीं हैं किन्तु उन्होंने उदाहरण सहित समझाया है कि हम क्या करना है। वे ऐसे व्यक्ति थे जो दूसरों को तब तक कोई सलाह नहीं देते थे जब तक कि वे स्वयं उसका सफल प्रयोग नहीं कर लेते थे। वे वह कुछ कभी किसी से नहीं कहते थे जो वे स्वयं नहीं करते थे। सचमुच यही वह चारित्रिक दृष्टिकोण है और इसी को हमें युवा पीढ़ी के मस्तिष्क में बैठाना है। इसीलिए इसका कोई उपयोग नहीं है कि मैं आपको यह विस्तार से कहूँ कि आप यह करिए वह करिए। ये वे कसौटी हैं जिन पर हमारे हर कार्यक्रम कसे जाएँ और जाँचे जाएँ।

हमारी विचित्र मनोवृत्ति तो देखिए। यदि हम अंग्रेजी बोलने में गलतियाँ करते हैं तो बहुत लज्जित होते हैं किन्तु अपनी-अपनी मातृभाषा में की जाने वाली गलतियों की हम चिन्ता तक नहीं करते। आप भी उनकी चिन्ता नहीं करते। यह किस प्रकार की शिक्षा है?

आखिरकार सभी शिक्षा मन्त्रियों ने यह स्वीकार किया है कि बालक अथवा छात्र अपनी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण कर सकता है। इसमें कोई मतभेद नहीं है। फिर भी हम लड़खड़ाते हैं क्योंकि हममें दृढ़ विश्वास नहीं है। और जिनमें विश्वास है उनमें आगे बढ़ने की दृढ़ता नहीं है। यही कठिनाई आती है। इस असमंजस में हमें और अधिक नहीं रहना है। उसकी कीमत चुकाने के लिए २० वर्ष काफी लम्बी

अवधि है। अब विना किसी को दोष दिए हम नए सिरे से ठीक से क्रमिक गति बनाएँ जिससे हम वास्तविक शिक्षा की प्रस्थापना कर सकें जो इस देश का भूतकालिक महान वैशिष्ट्य था। देश में पहले ऐसी ही शिक्षा थी। अंग्रेजों के जमाने में वह खो गई और गलत चीज हम पर लाद दी गई। अब हमें यह देखना है कि वह बदल जाती है और उसके स्थान पर उपयुक्त व्यवस्था आती है। उसमें जितनी अच्छी चीजें हैं उन्हें हम अवश्य लेंगे उन्हें हम छोड़ेंगे नहीं। जहाँ से जो भी कुछ अच्छा है सबका हम इसमें समावेश करेंगे। किन्तु यह समावेश तभी हो सकेगा जब कि आधार हमारा अपना हो। यदि आप अपने पैरों पर खड़े होंगे तभी कुछ इधर से उधर ले जा सकेंगे। किन्तु यदि आप अपने पैरों को ही खो देते हैं तो फिर आप क्या ले जाएँगे? आप क्या पा सकते हैं? आप कैसे शक्ति प्राप्त करेंगे? अतः हम उस स्थिति और समय को लाना है और वह आ सकता है क्योंकि इस देश ने सारे संसार के सामने अपनी ५० कार्यशक्ति प्रदर्शित की है जिसको लोग आज प्रशंसा करते हैं। किंतु हम उस प्रशंसा से ग्रसित न हों और न यह मानने लगें कि हम एकदम ठीक हैं। वह तो हमें केवल यह कहने का बल देगी कि हम सही दिशा में हैं और हम आगे बढ़ते जाना है। इसी के बारे में सोचने और आगे बढ़ने के संबंध में मैं आपसे प्रार्थना करना चाहूँगा।

मैं एक बात और कहना चाहूँगा। शिक्षा को सही शिक्षा बनने के लिए सरकारी नियंत्रण के स्फोटक परिणामों से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। क्योंकि सदुद्देश्य युक्त होने पर भी उसका प्रभाव स्फोटक है। वह और कुछ नहीं कर सकती। सरकार को शिक्षा का समर्थन करना और उसे आर्थिक सहायता देनी चाहिए। इसका यह मतलब नहीं है कि वह उस पर पूरा नियंत्रण रखे। ऐसा नहीं होना चाहिए। सरकारी नहीं वरन गैर सरकारी स्तर पर शिक्षा के साथ समुचित व्यवहार होना चाहिए। नियंत्रण का वहीं प्रयोग हो जहाँ कुछ भूलें होती हों। जहाँ सरकार जो चाहती है वह नहीं होता है उसे झटकारिए, खींचिए। यदि कहीं हिसाबी गड़बड़ी है या पैसे का गबन है और गैरजिम्मेदारी है तो अवश्य ही उसके बारे में कहिए। किन्तु यह सब होने पर

भी गैरशिस्त कभी-कभी स्वाभाविक है। इस सबमें अब परिवर्तन होना आवश्यक है। अत मे यह चाहता हूँ कि शिक्षा और सहकार्य दोनो साथ साथ रहें। इनमें सरकार का उस तरह का गलाघोटू नियत्रण न हो। यह आपको देखना है कि इसका अनुभव किया जाता है। मेरी दृष्टि में शिक्षा के क्षत्र में विकेन्द्रीकरण सच्चे अर्थों में होना अनिवार्य है।

मै सोचता हूँ कि जिन मूलभूत बातो को मै आप के सामन रखना चाहता था उनके बारे में मैने आपको कह दिया है। अन्य बातें उनके अनुरूप ही होगी। व आपक लिए है क्योकि आप उनका व्यवहार करग। जहाँ जो आवश्यक हो वह विस्तार आप करेंग। मै तो इन प्रक्रिया में सहायता मात्र कर सकता हूँ इसस अधिक मै कुछ नही कर सकूंगा। प्रत्यक दिशा में मै आपको हर सम्भव मदद करन क लिए तैयार हूँ किन्तु मै उस आप पर लादना नही चाहता। उसस कोई लाभ नही। किन्तु यदि उसकी कोई माग होगी तो वह आपके नियत्रण में है। बस यही मै आपस कह सकता हूँ। आप स दो शब्द कहकर मुझ खुशी है और म प्रस नता का अनुभव कर रहा हूँ। मुझ यह आशा है कि आप उपयोगी निणय करग आर दृढता क साथ उन्हें यथा सम्भव शीघ्रातिशीघ्र उचित रूप में अमल में लाएँग।

■

कार्य-शाला

जाकिर हुसैन

[दूसरे बुनियादी शिक्षा सम्मेलन, जामिया मिलिया, दिल्ली १९४१ के अवसरपर दिए गए उदघाटन भाषणसे]

काम को शिक्षा का आवश्यक अंग बनाए जाने के सम्बन्ध में आज ही कुछ कहा जाता हो ऐसा नही है। लोग इसके सम्बन्ध में बहुत पहले से कहते आ रहे है। कहने वालो मे से प्रत्येक ने इसे अपने ढग से कहा है। किसी के लिए 'काम' सिद्धान्त है तथा उसे पाठय-क्रम में एक विषय के रूप मे स्वीकृत किए बिना इसी रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। अन्यो के लिए यह 'विषय' है तथा इसके लिए तालिका निर्धारित की जानी चाहिए और प्रणालिका तथा पाठ्य-क्रम में आगे कोई परिवर्तन किए जाने आवश्यक नही हैं। तीसरे के लिए काम ऐसा होना चाहिए जिसका मुआवजा मिले और कुछ ऐसा कहते है कि सम्पूर्ण क्रियाशीलता 'आशीर्वादात्मक' है। अत कोई हर्ज नही यदि क्रियाशीलता कुछ उत्पादन नही करती क्योकि बच्चे कुछ मजदूर तो है नही। उनकी क्रियाशीलता ही उत्पादक है। जिनके ये विचार है उनसे मेरा कोई झगड़ा नही है। मै केवल अपनी बात कहना चाहता हूँ और मेरी राय यह है कि जब हम शिक्षा के सन्दर्भ में काम के बारे में कहते है तब हमें उसी काम को लेना है जो शरीर और मस्तिष्क के लिए सचमुच शिक्षाप्रद है। काम ऐसा हो जो मनुष्य को और अच्छा मनुष्य बनाए। मेरा विश्वास है कि अपने किए हुए काम के गुण-दोषो की परीक्षा करने पर मनुष्य उन्नति करता है। जब मनुष्य कोई शारीरिक या मानसिक काम हाथ मे लेता है तब वह उसे अपने लिए तभी शिक्षाप्रद बना सकता है जब कि वह उससे प्रभावित हुआ हो और अपनाए गए काम के प्रति उसने पूरा न्याय

किया हो तथा अपने काम के लिए आवश्यक शिस्त को अपने आप पर आरोपित करने के लिए वह राजी हो। प्रत्येक काम नहीं किन्तु सयोजित काम ही शिक्षाप्रद हो सकता है। यंत्र द्वारा किया जा सकने वाला या यंत्रवत् किया गया काम शिक्षाप्रद नहीं हो सकता। किए जाने वाले काम की योजना हमारे मस्तिष्क में होनी चाहिए। उद्देश्य की पूर्ति हेतु उचित उपाय योजना की मानसिक प्रक्रिया दूसरी सीढी है। फिर सामग्री एव चुने हुए यंत्रोसे काम के क्रियान्वयन का क्रम आता है। तदनन्तर अन्तिम अवस्था म इस बात की जाँच होती है कि तैयार सामग्री मूल योजना के अनुसार है या नहीं। वह उन उचित माध्यमो द्वारा निर्मित है या नहीं जो योजना बनाते समय सोचे गए थे तथा उसमे लगने वाली सामग्री और मजदूरी न्यायसगत है या नहीं। ये कामकी प्रक्रिया की चार निर्धारित स्थितियाँ हैं जो उस शिक्षाप्रद बनाती है। किंतु यही सब कुछ नहीं है। कोई भी काम सतत रूप से दोहराए जाने पर एक सीमा तक निपुणता उत्पन्न करता है। किन्तु शारीरिक, मानसिक या भाषा विषयक नैपुण्य शिक्षात्मक गतिविधियों का उद्देश्य नहीं है। शिक्षित मनुष्य सम्बन्धी हमारे मन म सामान्य विचार निपुण व्यक्ति के नहीं है। निपुणता तो चोरो द्वारा भी प्राप्त की जाती है। धोखेबाजी से पनपने वाले भी और सच को झूठ दिखा सकने वाले भी इसे प्राप्त करते हैं। ऐसी निपुणता शिक्षा का समापन नहीं हो सकता। हम अपने विषय की ओर अधिक व्याख्या यह कहकर करनी चाहेंगी कि काम सचमुच शिक्षाप्रद तभी हो सकता है कि जब वह एकमात्र व्यक्तिगत उद्देश्यो से परे मूल्यो की दृष्टि से अधिक सार्थक हो। मूल्य हमसे भी पर हैं जिन्हे हम स्वीकार या अंगीकार करते या मानते तथा सम्मान करते हैं। वह जो अपने लिए काम करता है निस्सन्देह निपुण हो जाता है किन्तु हम उसे सही रूप में या सचमुच शिक्षित नहीं मानेगे। केवल वह जो उच्च मूल्यो का अंगीकार करता है, सही रूप में अपने आप को शिक्षित बनाता है। इन उच्च उद्देश्यो के अंगीकार करने की इच्छा मे वह केवल अपना मनोरंजन या सतोष ही नहीं खोजता वरन् अपनी संपूर्ण क्षमता एव शक्ति को कर्तव्य रूप में अपने काम की पूर्ति में लगाता है। यह उसके व्यक्तित्व की उन्नति में सहायक होता है एव उसकी चारित्रिक प्रवृत्ति को ऊँचा उठाता है।

सन्तोष और आनन्द की सारी व्यक्तिगत इच्छा। को मनुष्य उन सार मूल्या की सेवा हेतु रूपान्तरित करनेका निश्चय करता है जिन्ह वह सेवा करने योग्य समझता है। उसे अपनी सेवाओं को उस उद्देश्य के अनुरूप बनाने म प्रयत्नशील होना चाहिए जिसके लिए यह समर्पित है। इसके अतिरिक्त चारित्रिक शिक्षा और क्या है ? शिल्प एव शुद्ध मानसिक कार्य दोनो इस प्रकार सचमुच शिक्षाप्रद बनाए जा सकते हैं तथा दोना समान रूप से प्रेरणाहीन अथ च व्यर्थ भी हो सकते हैं। सही कर्मशाला वह है जहाँ काम शुरु करने स पहले बच्चे योजना की आदत अपनाते हैं, उपाया और प्रसाधना के बारे म सोचते हैं और उद्देश्य की दिशा में किए गए कार्य की उपलब्धियो के सम्बन्ध में आलोचनात्मक अध्ययन करते हैं। इस प्रकार वे धीरे धीरे यह अनुभव करेंगे कि जो कुछ वे करना चाहते हैं उसके लिए यदि आवश्यक पूरी शक्ति और कुशलता नही लगाते हैं, फिक्र स और ध्यान पूर्वक नही करते हैं तो अपने कार्य के प्रति गैर ईमानदार और, गैर वफादार होगे। जो काम को शिक्षाप्रद बनाना चाहते हैं उन्ह सतत ध्यान में रखना चाहिए कि बिना निश्चित उद्देश्यके कोई काम नही होता। उसके अपने आदर्श और नियम होते हैं जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती। केवल समय बिताने की दृष्टि से कुछ भी अपरिणामकारक कार्य करते रहना न्याय्य एव सतोषजनक नहीं होता। चीजो स खिलवाड करत रहकर मनोरजन मात्र करते रहने की भी गुंजाइश नही है। किसी उद्दिष्ट से गतिविधि प्राप्त प्रवृत्ति को 'काम' कहते हैं। इसम आत्मालोचन टाला नही जा सकता एव जो इसकी आवश्यकताओ की माँगो की पूर्ति करते हैं उन्हें एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव होता है जिससे अग्रणी और कुछ नहीं हो सकता। काम कठोर आत्मानुशासन है, काम प्रार्थना है।

किन्तु दिव्य कठोर तपस्या एव प्रार्थना में भी मानव स्वार्थपरक हो सकते हैं। स्वग म अपनी जगह की सुरक्षितता का भरोसा करके दूसरो को उनके भाग्य क भरोस छोड देते हैं। सचमुच अपन आदर्शो क अनुरूप होने वाली कार्यशाला व्यक्ति को व्यक्तिपरक एव स्वार्थी कभी नही होने देगी। वह तो सर्वसाधारण उद्देश्य के लिए अपने को एक समाज

के रूप में रूपान्तरित कर देगी। इस समाज में पूर्ण सहयोग वर्तमान रहेगा एवं प्रत्येक को सौंपी गई जिम्मेवारी की पूर्ति द्वारा सर्वसाधारण उद्देश्य की उपलब्धि होगी। प्रत्येक का श्रम सर्वसाधारण ढाँचे से इस प्रकार निर्धारित होगा कि एक की भूल सबके कार्यों को नष्ट कर देगी तथा तेज गति वाला धीमी गति वालेको पीछे न रहने देगा। इस प्रकार यह शाला अपने कार्य के द्वारा अत्यन्त निकट का सम्बन्ध प्रस्थापित करेगी और स्वभावकी विभिन्नता के बावजूद सहकार्य की क्षमता तथा जिम्मेवारी की भावना आदि गुणो का सवर्धन करगी जिनकी दश को आज सचमुच आवश्यकता है। व्यक्तिगत आवश्यकताओंकी पूर्ति की अपेक्षा सामाजिक कर्तव्या का निर्वाह अधिक महत्वपूर्ण है।

सच्ची कार्य शाला सगठित कार्य कलापा से अपन छात्रा को प्रशिक्षित करने मात्र से सतुष्ट नही होगी वरिक इस सगठित कार्य-कलाप से एक ऐसी सहकारी समिति का गठन करेगी जिसमें प्रत्यक, केवल अपनी जिम्मेवारियो से ही अवगत नही है वरिक अपना काम भी पूरा करता है।

मैं समझता हूँ कि सच्ची कार्यशाला अपनी छोटी सी सहकारी समितिको उच्चतर उद्देश्यका साधन बनाएगी बशर्ते कि उसके छात्र व्यक्तिगत लाभपर विजय पाकर सामूहिक दलदल तथा लोभलिप्सा के गड्ढेमें न गिर पड़ें।

सक्षेप में कहा जा सकता है कि कार्यशाला अपने छात्रो द्वारा स्वीकृत जिम्मेवारी को कार्य द्वारा पूरा करना सिखाएँगी—सहकारिता क आधार पर अपन सभी कार्योंका आयोजन करगी और इस विश्वास को पैदा करगी कि शाला एक समाज है और उसका सारा काम समाज की सेवा है। अन्तमें यह इस आकांक्षा को विकसित करेगी कि समाज आदर्श की उस स्थिति तक पहुँच जाए कि जिसकी मानव मस्तिष्क कल्पना कर सकता है। इस प्रकार वह इस विश्वास की आधार शिला रखेगी कि निर्धारित काम का करना समाज के प्रत्येक व्यक्ति का काम है एव उसका नैतिक कर्तव्य है कि व्यक्ति का काम और उसका जीवन हर तरह से अच्छा समाज बनाने में सहायक हो।

■

तरुणाभिनन्दन : एक राष्ट्रीय संस्कार

सादिक अली

[शिक्षा मंत्रालय ने १३ अगस्त को 'तरुण नागरिक दिवस' के रूप में मनाने का आग्रह कई वर्ष पहले दिया था। उसके अनुसार इस दिन गांधी चौक वर्धा में एक महत्वपूर्ण आयोजन किया गया था जिसका उद्घाटन महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री सादिक अली साहब ने किया था। उनके उद्घाटन भाषण का मुख्य अंश यहाँ दिया जा रहा है।]

वर्धा मेरे लिए कोई नई जगह नहीं है। यहाँ मैं अवसर आया हूँ लेकिन आजादी हासिल करने के पहले। जब आजादी के जंग में हम लगे हुए थे तब अक्सर वर्धा आने का मौका प्राप्त हुआ था। उस वक्त भी वर्धा सार्वजनिक महत्व की जगह थी और आज भी वह वैसे ही महत्व की जगह है। मुझे ख्याल था कि कभी न कभी मुझे वर्धा जाना ही होगा। लेकिन अच्छा हुआ कि वह मौका मुझे जल्दी ही मिल गया। मेरे पास आचार्य श्रीमन्‌जी और बहन मदालसाजी ने यहाँ आने का निमन्त्रण भेजा जिसे मैंने खुशी से पसन्द किया। इस समारोह का संबंध नौजवानों से है और वे नौजवान जो आजाद हिन्दुस्तान में पैदा हुए। यह उनकी खुशकिस्मती है। हमारी पीढ़ी के लोग तो एक गुलाम हिन्दुस्तान में पैदा हुए थे। लेकिन हमारी भी खुशकिस्मती थी कि हमने आजादी के जंग में हिस्सा लिया और पुरानी पीढ़ी के बड़े बड़े इन्सानों से मिलने का मौका मिला। हमारे पिछले ७०-८० बरस का इतिहास बड़ा शानदार इतिहास है। उसमें बड़े बड़े इन्सान पैदा हुए और बड़े बड़े विचार उठे। उस जमाने में जो बड़े बड़े इन्सान पैदा हुए उनका नाम लेने की मुझे जरूरत नहीं है। उनमें सबसे बड़े गाँधीजी थे जो यहाँ बर्सों तक रहे। गाँधीजी में बहुत सी खूबियाँ थी बहुत सी विशेषताएँ थी। लेकिन एक विशेषता यह भी थी कि वे हिन्दुस्तान को आजाद करने में लगे हुए थे। आजाद कराने के साथ-साथ उनकी यह भी चिन्ता

थी कि जब मुल्क आजाद हो जाएगा तब आजाद मुल्क कैसा होना चाहिए। गांधीजी का मकसद सिर्फ अंग्रेजो को हिन्दुस्तान से निकाल देने भर से पूरा नही होता था। वे जानते थे कि अंग्रेज को यहाँ से चला जाना पडेगा, लेकिन उनके जाने के बाद हिन्दुस्तान का नक्शा क्या होगा, किस किस्मका हिन्दुस्तान हम यहाँ बनाएँगे ? गांधीजी के विचारा के मुताबिक हिन्दुस्तान में हर कौम का इन्सान बसेगा। सब धर्मों को हिन्दुस्तान में बराबर का स्थान मिलेगा। हमारे देश का एक विधान है, कन्स्टीटयूशन है। गांधीजी ने हिन्दुस्तान का विधान बनाने के काम में कोई खास हिस्सा नही लिया। लेकिन हमारी जो कांग्रेस है उसने सविधान बनाने में खासा हिस्सा लिया। जितने भी कांग्रेस के बडे नेता थे, गांधीजी को छोडकर; उन सबलोगा ने हिन्दुस्तान के विधान को बनाने में अपना पूरा सहयोग दिया जितना भी दम खम था वह इसमें लगाया। हमारा संविधान बना और लोग कहते है कि बडा शानदार सविधान है और इससे ज्यादा अच्छा सविधान बनाना जरा मुश्किल है हमें इसने सविधान से प्रेरणा लेनी चाहिए।

अब हम क्या करना चाहते है ? हमारे पास एक ही काम है— हिन्दुस्तान को बनाना। हिन्दुस्तान को बनाना कोई मामूली बात नहीं है। हिन्दुस्तान मामूली मुल्क नही है। एक विशाल—बहुत बडी आबादी वाला, मुल्क है। इसकी आबादी ३० करोड से शुरू होकर आज ६० करोड तक पहुँच गई है। ६० करोड लोगा की समस्याओं को हल करना जरा मुश्किल काम है। एक कुशल हिन्दुस्तान बनाना ताकतवर हिन्दुस्तान बनाना, शक्तिशाली हिन्दुस्तान बनाना यह गम्भीर उद्देश्य अपने सामने रखकर हमें हिन्दुस्तान को बनाना है तो ऐसा हिन्दुस्तान बनाने के लिए साफ रास्ता भी होना चाहिए। गांधीजी ने दिखलाया है वह रास्ता जिस पर हमको आगे चलना है। आज जो नौजवान हैं पैदा होते हैं और अभी भी हमारे सामने बैठे हुए हैं जिन्होने २१ बरस पूरे कर लिए हैं और जिन्हें अभी मता धिकार प्राप्त हो रहा हैं। वे हिन्दुस्तान के नागरिक हैं। उनको वोट देने का अधिकार मिल रहा है। वे अच्छे नागरिक बनना चाहते

है। लेकिन अगर अच्छा नागरिक बनना है तो साफ रास्ता होना चाहिए। गाँधीजी ने इस मुल्क को एक रचनात्मक कार्यक्रम दिया। सन १९२०–२१ में गाँधीजी ने कहा कि हिन्दुस्तान को आजाद करना है तो इस मुल्क को सुन्दर तरीके से आजाद कराना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम, दोनों कौमों की एकता लाजिमी है, आवश्यक है। हमारे देश में जो गरीबी, बेकारी है वह दूर होनी चाहिए। इस तरह का रचनात्मक कार्यक्रम गाँधीजी ने हमको दिया। आगे चलकर उन्होंने इन बातों पर अमल करनेको कहा। इस मुल्क के अन्दर बाईस कमजोरियाँ हैं, बाईस बीमारियाँ हैं। अगर हमें अपने मुल्कको स्वतंत्र करना है, ताकतवर बनाना है तो हमको इन बीमारियों को दूर करना चाहिए। चाहे वह गरीबी की समस्या हो, चाहे बेकारी की समस्या, बेरोजगारी की समस्या। हमारे आपस के जो झगड़े हैं वे सब खत्म होने चाहिए। हिन्दुस्तान को बनाने का पूरा नक्शा तब सामने आएगा, इससे पहले नहीं। वह नक्शा जो गाँधीजीने बताया जिसमें ऊपर बताई गई सभी खामियों, बीमारियों को दूर करना है। जब तक हम उनके बताए रास्ते पर नहीं चलेंगे तब तक एक कुशल हिन्दुस्तान, ताकतवर हिन्दुस्तान, आजाद हिन्दुस्तान नहीं बना सकेंगे।

हमारे संविधान में हर आदमी को स्वतंत्र होना चाहिए। आर्थिक सामाजिक न्याय होना चाहिए। प्रेस स्वतन्त्र होना चाहिए। हर आदमी को काम मिलना चाहिए। हिन्दुस्तान के अन्दर यह सब चीजें होनी चाहिए। जैसा मैंने आपसे कहा, दो रास्ते हैं-- एक सरकार का रास्ता और दूसरा गाँधीजी का रास्ता। दोनों एक रास्ते नहीं हैं, कुछ भिन्न हैं, लेकिन बहुत-सी बातों में समानता है। हम देखते हैं सरकार की तरफ; सेंट्रल गवर्नमेंट की तरफ। देखते हैं स्टेट गवर्नमेंट की तरफ। देखते हैं भारत सरकार की तरफ, पार्लियामेंट की तरफ। यानी हमारे यहाँ सेंट्रल गवर्नमेंट, स्टेट गवर्नमेंट जिला पंचायतें, एम.पी., एम.एल.ए — इन सब का योगदान है एक कुशल सरकार बनाने में और चलाने में। अगर आप समझें कि सारा बोझ इनके ऊपर छोड़ दें एक ताकतवर हिन्दुस्तान, शक्तिशाली हिन्दुस्तान

बनाने के लिए तो यह जरा मुश्किल काम होगा। पार्टी पॉलिटिक्स की जरूरत है हिंदुस्तान में। क्योंकि डमोक्रेसी में किसी राजा-महाराजा का राज नहीं होता बल्कि जनता द्वारा बनाई गई पार्टियों—और उनमें से बहुमत वाली पार्टी का राज्य होता है। लोगों को यह हक है कि व अच्छी से अच्छी पार्टी को वोट दें। जिस पार्टी को ज्यादा मत प्राप्त हो वह सरकार बना सकती है—यह राजनीति है। गांधीजी ने इसको स्वीकार किया कि प्रजातन्त्र प्रशासन में पार्टी पॉलिटिक्स की जगह है। लेकिन क्या हर चीज में पार्टी-पॉलिटिक्स घुस जाए? बहुत से क्षेत्र हैं जिनका पॉलिटिक्स से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह बड़ा विशाल क्षेत्र है। वह बड़ा लम्बा चौड़ा क्षेत्र है। पार्टी क्षेत्र के अन्दर कुछ लोग हिस्सा लेंगे जब कि वोट देने का अधिकार—आजाद मुल्क बनाने का अधिकार हर एक व्यक्ति को है। इसमें हर आदमी हिस्सा ले सकता है। हर आदमी हकदार है चाहे वह किसान हो मजदूर हो डाक्टर हो इंजीनियर हो चाहे विद्यार्थी हो टीचर हो—वे सब हमारे नागरिक हैं। आज जो एम पी चुनकर आते हैं उनकी जिम्मेदारियाँ हैं। किसान मुल्क के लिए फसल उगाता है और डाक्टर लोगों की बीमारी दूर करता है और अपनी कमाई भी करता है। उसको अपनी कमाई भी करनी है घर का इंतजाम भी करना है मुल्क की भी कुछ खिदमत करनी है। लेकिन सिर्फ हम अपनी भलाई के लिए जीने का काम करेंगे तो यह मुल्क के प्रति वफादारी नहीं होगी। हर आदमी को ८० फीसदी अपने तथा अपने परिवार वालों के प्रति कर्तव्य निभाना चाहिए और २० फीसदी देश के प्रति। अगर हम इस तरीके से काम करेंगे तो कोई शक नहीं कि बहुत जल्द ही एक कुशल हिंदुस्तान शक्तिशाली हिंदुस्तान बनाने में कामयाब हो जाएँगे।

कुछ लोग कहते हैं कि अहिंसा में ताकत नहीं होती। गांधीजी का कहना था कि अहिंसा में जितनी ताकत होती है उतनी ताकत किसी में भी नहीं होती। इसका उदाहरण आप लोगों के सामने है कि दुनिया की सबसे बड़ी ताकतवर मानी हुई फौज को हमारे यहाँ से हटना पड़ा, चला जाना पड़ा। अपने मुल्क को आजाद करने के लिए हमें अपने यहाँ

५

से गरीबी, शिक्षा में सुधार तथा गाँवो और शहरों की दूरी को कम करना पडेगा औद्योगीकरण करना पडेगा। कुछ लोगों का कहना है कि गांधीजी औद्योगीकरण नही चाहते थे। उनका यह कहना बिलकुल गलत है। गाँधीजी औद्योगीकरण चाहते थे देश को आगे ले जाना चाहते थे लेकिन वे शहरो का औद्योगीकरण नही चाहते थे। वे चाहते थे कि हर गाँव आगे बढे।

अभी मैने आपसे पार्टी पॉलिटिक्स की बात कही थी। हमारे सिस्टम में पॉलिटिक्स का अपना क्षेत्र है अपनी जगह है और बहुत अच्छी जगह है, महत्वपूर्ण है। लेकिन बहुत से ऐसे क्षेत्र भी है जहाँ पॉलिटिक्स को आने की जरूरत नहीं है। एक पार्टी के अन्दर हर आदमी हिस्सा ले सकता है। लेकिन जिस मकसद के लिए हम आज यहाँ इकट्ठा हुए है वह एक अच्छी चीज है नौजवानो के लिए। गुजरात में इसकी शुरुआत हुई और सम्माननीय मदालसाजी चाहती है कि यह चारो तरफ फैले। हमारे देश मे आज भी बहुत से नौजवान है जो बेकार है परेशान है। हर नौजवान इज्जत के साथ अपना सिर ऊँचा करके जिन्दगी जी सके। हिन्दुस्तान की आजादी की रक्षा करना हर नागरिक का कर्तव्य होना चाहिए। यह बहुत आवश्यक है।

गांधीजी का ख्याल था—गरीबी की समस्या को आसानी से हल नही किया जा सकता। इतने बडे मुल्क के अन्दर क्या हम सब लोगो को काम दे सकते है? हर आदमी को काम मिले—आजादी भी रहे, डेमोक्रेसी अच्छी तरह से चले। हमारे जो अधिकार है सुरक्षित रहे। हमारे जो कर्तव्य है उनका भी हम पालन करें। हमारे अधिकार और कर्तव्य दोनो बराबरी से हर नागरिक द्वारा अमल मे लाए जाएँ। यह हिंदुस्तान का एक नक्शा है। गांधीजी से हम प्रेरणा ले सकते है और लगातार लेते रहगे। दुनिया उनसे प्रेरणा ले रही है। गाँधीजी का आखिरी मकसद दुनिया को बदलना था। गाँधीजी दुनिया को बदलना चाहते थे। दुनिया के समाज को बदलना चाहते थे। लेकिन हिन्दुस्तान का और उद्देश्य कामयाब हो गया तो वह मजबूत, ताकतवर बनेगा और

तभी वह दुनिया के ऊपर अपनी छाप डाल सकता है। अगर हम सही रास्ते पर चले, सही मायने में हमारी ताकत बनी तो एक न एक दिन हम दुनिया के ऊपर अच्छा असर डालेंगे। आज हरएक देश शांति की बात करता है। दुनिया की दो बड़ी फौजी ताकतें भी दुनिया में शांति स्थापित करना चाहती हैं। लेकिन जो रास्ता गांधीजी ने बताया है जिस पर हम चलने की कोशिश करें तो मैं समझता हूँ कि दुनिया भर में अच्छा असर डाल सकेंगे।

मुझे बहुत खुशी है कि बहन मदालसा ने यह नई संस्था बनाई है। १५ बरस से अपने यहाँ चलाकर मजबूत करने के लिए उसे धीरे धीरे फैलाया, जिसका नौजवानों से ताल्लुक है। मेरी शुभकामनाएँ उसके साथ हैं। मेरी आशा है कि यह संस्था पनपती जाएगी और ज्यादासे ज्यादा लोगों का भला करेगी और मुल्क की भी भलाई करेगी। मैं श्रीमती मदालसाजी का शुक्रिया अदा करता हूँ।

अब हम सब यह प्रतिज्ञा करें।

* भारत के प्रति कानून द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति हम वफादार और निष्ठावान रहेंगे।
* राष्ट्र के स्वातंत्र्य तथा उसकी एकता की रक्षा करने और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए हम समर्पण की भावना से कार्य करते रहेंगे।
* किसी कार्य सिद्धि के लिए हम कभी हिंसा का आश्रय नहीं लेंगे।
* प्रदेश, भाषा, धर्म और जाति सम्बन्धी सभी मतभेदों को तथा आर्थिक व राजकीय कठिनाइयों को हम शान्तिमय तरीकों से सुलझाने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

जय हिन्द !

■

छठी योजना गांधी वादी हो

श्रीमन्नारायण

अब तक महात्मा गाँधी का नाम रस्मी तौर पर लिया जाता था, इसलिए पिछले चुनाव की जीत के बाद २३ मार्च को जब जनता-पार्टी के ससद सदस्यो ने राजघाट पर गाँधीजी द्वारा शुरु किए गए काम को पूरे मनोयोग से आगे बढाने की शपथ ली तो एक सुखद आश्चर्य हुआ। इससे पहले जनता-पार्टी के घोषणा-पत्र मे यह वायदा किया गया था कि अगर वह सत्ता मे आई तो अन्त्योदय तथा आर्थिक व राज नैतिक सत्ता के सब से निचले स्तर तक विकेन्द्रीकरण के गाँधीवादी सिद्धान्तों के आधार पर देश के विकास की कोशिश करेगी। हमें उम्मीद है कि जनता-पार्टी के लोग महात्मा गाँधी की समाधि पर ली गई प्रतिज्ञा को सच्ची लगन से निभाएँगे।

गाँधीजी के विचारो को लेकर बुद्धिजीवी तथा युवा पीढी के कुछ लोगो के मन में कभी-कभी यह शक पैदा होता है कि विज्ञान तथा तक-नालॉजी के आधुनिक युग में क्या गाँधीजी के आदर्श और कार्य-पद्धति देश के विकास की दिशा में कोई सार्थक भूमिका निभा सकते हैं। पर इधर पश्चिम मे एक नई हवा देखने में आई है। अमरीका तथा यूरोप के देशों मे ऐसे बहुत से लेख तथा पुस्तकें पिछले दिनो प्रकाशित हुई हैं जिनमें गाँधीजी को न सिर्फ आज के लिए उपयोगी बताया गया है बल्कि कहा गया है कि उनके विचार हमारे समय से बहुत आगे हैं। जापान के 'मीज्यो विश्वविद्यालय' के प्रो मोरियोतो इन दिनो गाँधीजी पर शोध कर रहे हैं। एक बातचीत मे उन्होने बताया, उनका यह दृढ विश्वास है कि गाँधीजी अपने समय से सौ बरस आगे थे। इसी तरह अमरीकी पत्रिका 'न्यूजवीक' के स्तम्भकार आरेन्द्रा तारजी चिताची ने गाँधीजी के विचारो पर लिखी एव प्रभावशाली लेखमाला में कहा है कि विभिन

मुद्दों पर गांधीजी के विचारों को अब पश्चिमी बुद्धिजीवियों के बीच उत्तरोत्तर स्वीकृति प्राप्त होती जा रही है। वहाँ लोग यह स्वीकार करने लगे हैं कि पश्चिम की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का हल गांधीजी की इस उक्ति में निहित है कि हमारी जरूरतें तो पूरी हों पर उन जरूरतों को हम सीमित रखना चाहिए। यह सही है कि धरती पर हमारी जरूरत भर के लिए हमेशा पर्याप्त साधन रहे हैं और हम पर वे हमारी लालच को कहाँ तक पूरा करेंगे?

अर्जेनटीना में हुए संयुक्तराष्ट्र के पिछले सम्मेलन के दौरान इस बात की तरफ हमारा ध्यान खींचा गया था कि आने वाले कुछ ही दिनों में पानी की बूंद तक तेल के बराबर महँगी हो जाएगी। उन्नत देशों में ऊर्जा का संकट मुँह बाए है। यह सही है कि विकास के रास्ते में ऊर्जा आदि के भयंकर अभाव से भविष्य में आने वाली मुश्किलों की तरफ 'रोम क्लब' द्वारा किए गए इशारे को दुनिया के विभिन्न हिस्सों में अर्थशास्त्रियों तथा वैज्ञानिकों द्वारा चुनौती दी जा रही है। हडसन' संस्थान के संस्थापक निर्देशक हरमन कान ने अपनी हाल में प्रकाशित एक किताब 'अगले दो सौ वर्ष' में दावा किया है कि मानव जाति का भविष्य बहुत सुनहरा है, आने वाले समय में सब तरफ लोग सम्पन्न हो जाएँगे और वे प्रकृति की शक्तियों पर काबू पा लेंगे। पर ये लोग भी मानते हैं कि धीरे धीरे कोयले तथा तेल से मिलने वाली ऊर्जा को सौर ऊर्जा तथा भूताप पर आधारित तकनालाजी से बदलना होगा।

कुछ महीने पहले टाइम पत्रिका में लिखे एक लेख में फ्रैंक ट्रिपेट ने कहा था कि आधुनिक विज्ञान और तकनालाजी को अब पहले की तरह 'गौ-माता' नहीं समझा जाता अब वैज्ञानिक उपलब्धियों को भी लोग शक की नजर से देखने लगे हैं। आणविक शक्ति जिसे अभी हाल तक विज्ञान की मानवता को एक महान् भेंट समझा जाता था, अब आशंका की नजर से देखी जाती है। लोगों में यह एहसास बढ़ता जाता है कि जिस अणु से सम्पन्नता बढ़ाने में मदद मिल रही है उसी से बम भी बनाया जाता है और इससे दुनिया किसी भी समय तबाह हो सकती है। डा शूमाखर ने अपनी ताजा किताब 'स्माल इज

ब्यूटीफुल' में लिखा है,बुद्धिमता इसी में है कि विज्ञान और तकनालॉजी को एक नई समन्वित, सौम्य, अहिंसक, श्रेष्ठ और सुन्दर दिशा दी जाए। अपनी किताव मे उन्होंने गांधीजी के इस विचार की तरफ ध्यान खींचा है कि दुनिया को उत्पादन की बजाय बहुजन के लिए उत्पादन पर जोर देना चाहिए। आदमी लघु है और लघु ही सुन्दर होता है। प्रो. डायमण्ड ने 'मनस' के एक हाल के ही अंक में प्रकाशित अपने लेख में 'नौकरशाही की विवेकपूर्ण समाप्ति', साझे-स्वामित्व और पैदावार के साधनों के विकेन्द्रीकरण की वकालत की है। इसी तरह ब्राइन ईजली ने अपनी किताब 'लिबरेशन एंड द एम ऑफ साइन्स' में तकनालॉजी की तमाम मँहगी योजनाओं को तत्काल खत्म कर देने की सलाह दी है और कहा है कि 'विज्ञान का विकास उस सीमा के भीतर रहकर ही किया जाना चाहिए जिसमें मनुष्य के प्रति आदर और प्यार तथा प्रकृति से अनुराग बना रहता हो।'

ओ. ई. सी. डी. पेरिस के विकास केन्द्र ने इस वर्ष एक उल्लेखनीय शोध प्रकाशित किया है, उसका शीर्षक है 'टुवर्डस ए री-डिफोनीशन आफ डेवेलपमेंट' इस किताब के सम्पादक का कहना है कि 'विकास' एक भ्रामक विचार है। तेज विकास का एक अनिवार्य परिणाम यह होता है कि अमीर और गरीब तबको के बीच तनाव बढता चला जाता है और निर्माण की बजाय विध्वंस की तकनीक अधिक प्रभावी हो जाती है। इसके सम्पादक इस निश्चित राय के हैं कि ऐसा विकास जो एक आदमी को दूसरे के खिलाफ करता हो, मूर्खतापूर्ण है। उन्होंने इस धारणा को गलत बताया है कि पूरी दुनिया के विकास का कोई एक मॉडल हो सकता है। उनका कहना है कि हर समाज को अपना रास्ता खुद तय करना है। जरूरत इस बात की है कि पूंजी निर्माण और पैदावार के ढांचे का पुनर्गठन किया जाए, उत्पादन के साधनों का पुनर्वितरण हो ताकि कुछ देशों के इस क्षेत्र में आर्थिक साम्राज्यवाद को समाप्त किया जा सके।

यूनेस्को प्रेस द्वारा प्रकाशित एक और पुस्तक 'कल्चर,सोसायटी एण्ड इकॉनामिक्स फार ए न्यू वर्ल्ड' में भी उसके सम्पादक ने तकनालॉजी

के साम्राज्यवाद के विरुद्ध चेतावनी दी है। 'जो देश अपनी तकनालॉजी का विकास नही कर पाए वे दूसरे देशो से तकनालॉजी उधार लेकर अपना नुकसान ही करते है, इस किताब के सम्पादक का कहना है कि हमें आदमी के श्रम के उपयोग के नए तरीके विकसित करने होंगे' विविधता का सिर्फ सांस्कृतिक मूल्य ही नही है—उसके ठोस आर्थिक लाभ भी है। इसे विकास के रास्ते की रुकावट नही समझना चाहिए गांधीजी ने भी ठीक यही बातें कही थी।

विकास की तेज दर के प्रति दुनिया भर में अर्थशास्त्री अब सशक हो उठे है। जापान जिसने पश्चिमी आर्थिक ढांचे को अपनाकर पिछले दस सालो में अपनी पैदावार दुगनी कर ली थी अब विकास की दर को कम करने की योजना बना रहा है ताकि प्राकृतिक साधनो को चुक जाने से बचाया जा सके और राष्ट्रीय जीवन में सांस्कृतिक मूल्यो को पुनर्स्थापित किया जा सके।

पिछले वर्षों से विकसित देश हवा और पानी के सदूषण की गम्भीर समस्या का सामना कर रहे हैं। पूरी दुनिया में सदूषणशास्त्री और पर्यावरण वैज्ञानिक उन तरीको की खोज में लगे है जिनसे इस जहरीले सदूषण को रोका जा सके।

यूरोप और अमरीका के लोगो में योग के प्रति असाधारण रूप से दिलचस्पी बढी है। वे अपनी बीमारियो का इलाज मँहगी दवा और जटिल चिकित्सा पद्धति की बजाय आसान सस्ते और घरेलू उपायो से करना पसन्द करते हैं। कुछ दिन पहले विश्व स्वास्थ्य सगठन ने भी विकासशील देशो को आसान और सस्ते देशी इलाजो को बढावा देने की सलाह दी थी। पश्चिमी देशो में बड शहरो में जडी-बूटी की नई दुकानें तथा योग सिखाने क नए केन्द्र बढ रहे है। वहाँ अधिकाधिक लोग प्राकृतिक चिकित्सा की तरफ झुक रह है।

भारत में पूर्ण शराबबन्दी किए जाने पर गांधीजी हमेशा जोर देते थे। आज पश्चिम के विकसित देशो में भी शराब की लत को लेकर चिंता बढती जा रही है। अमरीका और रूस की सरकारें शराब

प्राप्त लेखक सखरोव ने भी अहिंसा को एक श्रेष्ठ अस्त्र माना है। हमारी पिछली शताब्दियों के इतिहास ने राजनैतिक उद्देश्यों को पाने के लिए हिंसा के प्रयोग की निरर्थकता को बिलकुल पक्के तौर पर साबित कर दिया है।

मुझे पूरा भरोसा है कि जनता पार्टी गाँधीजी के सपने के भारत को साकार करनेमें कोई कसर न उठा रखेगी। कई वर्षों पहले महान फ्रांसीसी दार्शनिक रोमा रोलाँ ने कहा था—'कुछ अर्थों में तो गाँधीजी आज के विज्ञान से भी आगे बढ गए थे, भविष्य की समस्याओं को उन्होंने भाँप लिया था। इस अर्थ में वे एक अत्याधुनिक व्यक्ति थे। मुझे जरा भी शक नहीं है कि गाँधीजी के विचार कभी पुराने नहीं पड़ेंगे, वे हमेशा हमें भविष्य का रास्ता खोजने मे मददगार साबित होंगे।'

हमें उम्मीद करनी चाहिए कि छठवीं योजना का प्रारूप गाँधीवादी आदर्शों के अनुरूप होगा। गाँधीजी के समाजवाद की कल्पना राजनैतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। इसका अर्थ है हमारी विकास योजनाओं को इस तरह बनाया जाए कि वे नीचे गाँव तक पहुँच सकें। वे योजनाएँ लोगों के लिए हों और उन्हीं के सहारे चलाई जाएँ। सामूहिक कार्यक्रमों के माध्यम से उनमें आत्मनिर्भरता बढे और इस तरह सरकार का दखल कम से कम होता चला जाए ऐसी कोई गाँधीवादी योजना तभी सफल हो सकेगी जब राष्ट्रीय स्तर पर पूरी सादगी और किफायत बरती जाए।

जीवन कुटीर
वर्धा (महाराष्ट्र)

बुनियादी तालीम का एक प्रयोग

राधाबहन

लक्ष्मी आश्रम को गाँधीजी के आशीर्वाद के साथ पूज्य सरला बहनजी ने कुमाऊँ की महिलाओं के लिए बुनियादी तालीम की संस्था के रूप में वर्ष १९४६ में प्रारम्भ किया था। पूरे उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में सर्वोदय विचार का व लोकशक्ति जागरण की दिशा में जो कार्य हुआ है वह इस संस्था की दी गई प्रेरणा की एक उपलब्धि है। साथ ही इसके भीतर बुनियादी तालीम की दृष्टि से जो अनुभव आया, जो परिणाम निकला वह भी एक उपलब्धि है।

पर्वतीय क्षेत्र की ग्रामो से आई बालिकाएँ ही हमारी छात्राएँ हैं और उन्ही ग्रामो से आई हैं। हमारी शिक्षिकाएँ औसत में हमारी पारिवारिक पूर्व भूमिका यह है कि हम श्रम प्रधान रहे हैं उसमें भी अकुशल श्रमही प्रधान रहा है शिक्षा अध्ययन अथवा चिंतन मनन की परम्परा नही रही है। न ही सिलाई कढाई गृहकार्य कुशलता, बालसगोपन मशीनो पर काम करने का कोई पारिवारिक सस्कार रहा है। इस प्रकार की हम छात्राएँ व शिक्षिकाएँ इस सस्था में एकत्र हुई हैं जहाँ हमारे ग्रामीण जीवन के अनुकूल गौशाला म गायें व भैंसें हैं जिनके लिए खेतो पहाडी ढलानो व पेडो से चारा काटकर सिर पर ढोकर ले आती हैं छोटी सी खेती है जिसम सागभाजी व फल पैदा करने के लिए कम्पोस्ट खाद तैयार करके उसे सिर पर ढोकर खतो को देती हैं। हाथ स चलाने वाले औजारो से खेत खोदन होते हैं और पहाड के सीमित पानी को बटोर-बटोर कर सिचाई करनी होती है। साथ में एक उद्योग शाला है जहाँ यहाँ क पर्वतीय भोटिया लोगो के परम्परागत चर्खो कालीन अड्डो क्तुओ तथा बागेश्वरी चर्खो पर कताई बुनाई का काम हम

सीखनी व करती हैं। हमारे छात्रावास जीवन में भी जंगल से लकड़ी व घास ले आना मोटर सडक से अपने भोजनालय के लिए अनाज को ढोकर ले आना जैसे सभी कार्य पूर्णत पर्वतीय ग्रामीण पद्धति पर होते हैं, सारांश कि माहौल पूर्णत पर्वतीय ग्राम का है।

किन्तु खेती में खुदाई आदि के सुधरे औजार छात्रावास में साफ हवादार घर व फ्लश शौचालय उद्योग शाला में रुई कताई के ग्रामोद्योगी यंत्र सिलाई मशीन एवं स्वेटर-बुनाई के हस्त यन्त्र रसोई में विद्युत् चालित चक्की गोशाला में गोबर गैस संयत्र आदि साधन हमारी तालीम के इस परम्परागत माहौल को जीवन का वह विकास देना चाहते हैं जो आज पर्वतीय ग्रामों को स्वावलम्बी, व समृद्ध करने के लिए इस समाज की एक मांग है इस पर्वतीय जीवन की एक आवश्यकता है।

हमारे सामूहिक जीवन द्वारा शिक्षा का पहला आधार यह रहा है कि एक भोजनालय में शिक्षिकाएँ व छात्राएँ एक पंक्ति में भोजन करती हैं। हमारी पूरी संस्था के सदस्यों के लिए एक ही रसोई है। और वह है हमारा सामूहिक भोजनालय। उसी तरह एक छात्रावास की छत के नीचे छात्राओं के विभिन्न टोलियों के साथ शिक्षिकाएँ सोती हैं। और उसी तरह खेत खलिहान, वनप्रान्तर अथवा गोशाला व उद्योग शाला में छात्राएँ व शिक्षिकाएँ सही अर्थों में 'टु सब दि स्वीट' के लिए जुडती हैं अर्थात जीवन के बुनियादी तीन कामों के लिए तीन सहज कार्यक्रम (१) सहभोजन (२) सहजीवन (३) सहकर्म।

इस सारी दिनचर्या में श्रम की प्रतिष्ठा व श्रम शिक्षण के लिए अलग से कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता होती ही नहीं। ना ही कोई औपचारिक कार्यक्रम या विशेष व्यवस्था का आयोजन करना पडता है परन्तु जीवन के जिन मूल्यों को हम देना चाहते हैं उन्हें आसानी से दे पाते हैं। इस सारी व्यवस्था में यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षकों की दृष्टि इस सम्बन्ध में साफ हो कि जीवन की दिशा क्या होगी? हम किस तरह के समाज की स्थापना करना चाहते हैं? प्रत्यक्षत आज हमारा समाज रचना क्या है उसकी समस्याएँ क्या हैं? उसकी गरिमाएँ क्या हैं?

लक्ष्मी आश्रम को ऐसे शिक्षकों की एक पूरी सक्षम टीम आज तक नहीं मिली, यह एक दिक्कत रही है।

बच्चों के ऊपर बौद्धिक ज्ञान का बोझ बढ़ते जाने का क्रम हमारे देश में पिछले कुछ वर्षों से प्रचलित रहा है, याने बढ़ गया है। इस कारण पढ़ाई की किताबों कापियों का बोझ भी बढ़ा है और पढ़ने के घण्टों की संख्या भी परन्तु सह-कर्मयुक्त सहजीवन के अन्दर एक ऐसा शैक्षणिक वातावरण बनता है जिसमें पूरा जीवन ही शिक्षा की एक खुली किताब होता है। यहाँ खाते समय भी भोजन के तत्वों पर साथ-साथ चर्चा होने लगती है, खेत में मिट्टी की रचना व उसके इतिहास का प्रसंग छिड़ सकता है, एक कमरे में रहती हुई छात्राएँ अपनी शिक्षिका से हिन्दी, गणित, इतिहास भूगोल किसी भी विषय की जानकारी ले लेती हैं। इससे हमने पाया है कि बौद्धिक वर्ग के घण्टे ढाई या तीन घंटे बच्चों के लिए पर्याप्त हैं। हम उनके निजी अध्ययन के लिए उन्हें एक या डेढ़ घंटा और भी देते हैं इससे पुस्तकें व कापियाँ स्वतः अपेक्षाकृत कम हो जाती हैं पर बौद्धिक स्तर सामान्य विद्यालयों के बच्चों से किसी हालत में कम नहीं वरन् इन छात्राओं की लेखन व प्रगटन की मौलिकता विशेष होती है।

लोकतन्त्र में नागरिक के सही व्यक्तित्व के लिए हमने तीन पहलुओं पर प्रयोग किया है। **पहला**—छात्रावास में छात्राओं का मन्त्रीमण्डल और सामूहिक कार्य के लिए बनाई गई टोलियाँ, इसके कारण जुटकर काम करने के कर्तव्य व समाज को पहले देकर तब माँग गए अधिकारों के उपयोग का गुण दिन प्रतिदिन छात्राओं के व्यक्तित्व में भजता जाता है। **दूसरा**—ग्रामों अथवा क्षेत्र की समस्याओं के हल में सम्प्रयत्न जुटाना व उनका अध्ययन करना, इसके लिए समय समय पर अलग अलग पहलू तथा **वन-सुरक्षा** इस प्रकार का या यह प्रत्यक्ष कार्य उनके मानस पर स्पष्ट छाप डालना है। **तीसरा**—अध्ययन प्रयास, जो छात्राओं के मस्तिष्क में अपने देश का सजीव चित्र उजागर करता है।

शिक्षण स्वावलम्बन हमारा एक जानदार प्रोग्राम रहा है। आठवीं कक्षा के बाद याने १५ वर्ष की उम्र की छात्राओं को अपनी शिक्षा प्राप्त

कापियाँ पुस्तकें आदि तथा अपने भोजन व वस्त्र पर आने वाला व्यय कदम प्रति कदम स्वयं वहन करने के लिए तैयार होना पडता है। इसलिए छात्रा अपने अध्ययन से अतिरिक्त समय में कोई ऐसी उत्पादक या शैक्षणिक प्रवृत्ति की जिम्मेदारी लेती है जो उसकी आय का जरिया बनती है। एक मोटे अंदाज में प्रथम वर्ष में आय उसके खर्चे की ⅓% द्वितीय वर्ष में ½%, तृतीय वर्ष में ¾% तथा चतुर्थ वर्ष में पूर्ण स्वावलम्बन-इस तरह रहती है। यह क्रम व्यक्तिया की अपनी व्यक्तिगत रुचि व शक्तिया तथा शिक्षिकाओ द्वारा दिए गए मार्गदर्शन व प्रेरणा पर भी निर्भर करता है। किन्तु १५ वर्ष से ऊपर के बच्चे की शिक्षा इत्यादि खर्चे का भार न तो माँ बाप पर पडना चाहिए न ही वह समाज पर ही पडे। साथ ही विद्यार्थी को उत्पादन करके समाज का सहयोगी बनना प्रारम्भ कर देना चाहिए जो एक पहाडी कृषक का लडका १२-१३ वर्ष की उम्र से ही करने लगता है हमारे इस विचार को शिक्षण स्वावलम्बन के इस प्रयोग ने पुष्टि दी है, हमारी कताई बुनाई की उद्योगशाला, खेती गोशाला, विद्यालय एव छात्रावास इन सभी को हमने शिक्षण स्वावलम्बन की प्रवृत्तिया का आधार बनाया है। किन्तु मुख्यत उद्योग शाला उत्पादन कार्य देने का मुख्य रोल अदा करती है।

हमारी समस्याएँ —हमारी उपलब्धियाँ आवश्यक है किन्तु थोडी है। पर समस्याएं कठिन व अधिक संख्या मे है सर्वप्रथम समस्या है सरकार द्वारा नई तालीम की मान्यता नही होना, जिसके कारण हम छात्राओ को दो कारणो से शिक्षा बोर्ड की सामान्य फाइनल परीक्षाओ के लिए तैयार करना पडता है।

(१) परीक्षा के बाद प्राप्त होने वाले शिक्षा बोर्ड के सर्टीफिकेट स, जिसे सरकारी व गैर सरकारी तथा सामाजिक मान्यता प्राप्त है, भविष्य में बहना को आजीविका व अन्य अवसरा के लिए एक सुरक्षितता मिलती है।

(२) योग्यता व शक्तियाँ होते हुए भी अनात्मविश्वास व हीनता की गुत्थी से ग्रसित रहने की स्थिति से मुक्ति मिलती है।

इन दोनो कारणो का उन्मूलन हुआ है। किन्तु इससे नई तालीम की दिशा मे हमे कठिनाइयाँ आई हैं। परीक्षामूलक वातावरण को, जो कि शिक्षा या तालीम के वातावरण का हनन करता है, मन्द करने के लिए हमें बहुत ही मेहनत करनी पडी है। साथ ही छात्राओं को कई व्यर्थ के बौद्धिक विषयो मे समय देना पडा है। जो कि परीक्षाओ के लिए अनिवार्य थे, किन्तु जीवन के लिए बेमेल हैं। आधुनिक परीक्षा पद्धति एव परीक्षामूलकता शिक्षा के सत्व को समाप्त कर देती है और जीवन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोणको दबाकर एव अस्पष्ट काल्पनिकता ले आती है, जो व्यक्तित्व की समरसता व प्रवाह को छिन्न-भिन्न करती है।

लेकिन आत्म विश्वासहीनता या हीन भावना की गुत्थी भी व्यक्तियो के लिए उतनी ही घातक चीजें हैं। आज हम इस दुराहे पर खडे हैं।

मेरे विचार से इसका यह हल है जिसकी ओर लक्ष्मी आश्रम उत्सुकता से देख रहा है।

(१) देश मे नई तालीम के कई स्वतन्त्र प्रयोग हैं। अपनी-अपनी क्षेत्रीयता को बनाए रखकर समग्र शिक्षा का स्वरूप उसमें परिलक्षित हो।

(२) इस प्रकार की शिक्षण सस्थाओ को शासन द्वारा स्वायत्तता प्राप्त हो ताकि आज के इस सक्रमण काल में डिग्री व सर्टीफिकेट आदि की मान्यता मूल्य-भेद न पैदा करे।

(८) नई तालीम का शिक्षण गाँधी विचार मे पल रहे व उसके लिए काम कर रहे रचनात्मक कार्यकर्ता अपनी सन्तानो को दिलाएँ तब यह स्पष्ट होगा कि नई तालीम एक सक्षम मानव बनाने वाली क्रान्तिकारी शिक्षा पद्धति है, न कि गाँधी का मात्र फितूर।

आज तो नई तालीम को न सरकारो से मान्यता मिली है और न ही उसका नाम लेने वाले, उसकी प्रशसा करने वाले रचनात्मक कार्यकर्ताओ से, अत ये दोनो पहलू बराबर महत्वपूर्ण हैं।

आज देश का वातावरण ऐसा है कि इस दिशा में प्रयत्न किया जा सकता है, सरकारी मान्यता से भी आवश्यक पारिवारिक मान्यता है रचनात्मक परिवार की मान्यता, ये दोनों ही प्राप्त हो तो नई तालीम के सजीवन से देश को प्राण मिलेगा।

दूसरी समस्या इस दिशा में जुटकर प्रयोग करने वाली सक्षम टीम का अभाव भी है। जिन शिक्षिकाओं व कार्यकर्ताओं के बल पर हम यहाँ तक पहुँचे वे समाज में अपने जीवन का कार्य इस नहीं बना पाए हैं क्योंकि इसको मान्यता न होना एक मुख्य दोष रहा है।

फिर भी हम आशान्वित हैं कि देश व विश्व, आने वाले दिनों में बुनियादी शिक्षा के महत्व को अधिक से अधिक समझता जाएगा।

■

रचनात्मक कार्य की दिशा

सर्वसम्मत निवेदन

[गाधी स्मारक निधि के १७ १८ १९ अगस्त को नई दिल्लीमें रचनात्मक कार्य सबधी एक विचार गोष्ठी आयोजित की थी। उस विचार गोष्ठी के अन्त में जो सब सम्मत निवेदन प्रकाशित किया गया था। उसे पाठकोंकी जानकारी के लिए यहाँ दिया जा रहा है]

अखिल भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन दिनाक १७ १८, और १९ जुलाई १९७७को नई दिल्लीमें हुआ। उसकी ओरसे रचनात्मक सस्थाओ और कार्यकर्ताओ के सतत विकास के लिए कई व्यापक सुझाव दिए गए थे। इनमें एक यह था कि रचनात्मक कार्य के अध्ययन के लिए एक केन्द्र होना चाहिए जो रचनात्मक सस्थाओ की सेवा उनके काम का पुनर्निरीक्षण और मूल्याकन करके, प्रयोग करके, उनके क्रिया कलापो में अधिक सामजस्य बिठाकर रचनात्मक कार्यकर्ताओ की दक्षता में उन्नति करके तथा क्षेत्रीय कार्य के लिए अधिक कारगर पद्धतियो को सुझाकर कर सके।

अखिल भारतीय सम्मलन के सुझावो को क्रियात्मक रूप देने की दृष्टि स गाधी स्मारक निधि ने एक राष्ट्रीय विचार गोष्ठी आयोजित की। यह गोष्ठी राजघाट स्थित गाधी राष्ट्रीय सग्रहालय म १७ १८, और १९ अगस्त १९७७ को हुई। इसम देश के विभिन्न भागो की रचनात्मक सस्थाओ तथा स्वयसेवी एजेन्सियो से सबधित ४० से अधिक प्रमुख कार्यकर्ताओ न भाग लिया। चर्चा का आधारस्वरूप गोष्ठी के सम्मुख कई विचार पत्र (Papers) थे। जिनमे रचनात्मक कार्यको सघन बनाने के लिए तथा अध्ययन अनुसधान और मूल्याकनकी दृष्टि से रचनात्मक सगठनो की आवश्यकताओ को निश्चित करने के लिए सुझावो की रूपरेखा दी गई थी। गोष्ठी द्वारा विचार किए गए

मुख्य मुद्दों तथा चर्चा के अंत में किए गए सर्वसम्मत निर्णयों को निम्न-लिखित निवेदन के रूप में सर्व सम्मति से स्वीकार किया गया —

१. रचनात्मक कार्य आन्दोलन

गोष्ठी यह मानती है कि, विशेष करके स्वतत्रता के बाद, देश के विभिन्न भागो में रचनात्मक कार्य केवल उन्ही लोगो द्वारा नही किया जा रहा है जो गाधीजी के विचार और आचार से प्रत्यक्ष प्रभावित हुए थे, बल्कि और भी विभिन्न मचो के अतर्गत हो रहा है जिनको सामाजिक कार्य, समाज-सुधार, स्वयसेवी प्रयास जन सहयोग सामुदायिक कार्य जैसे नाम दिए गए है। विभिन्न नाम से किए जानेवाले इन सभी क्रिया कलापो को रचनात्मक कार्य आन्दोलन मानना चाहिए। यद्यपि सामाजिक और रचनात्मक इन एजेन्सियो की देश के आर्थिक और सामाजिक विकास में सम्पूर्ण देन निश्चित ही सीमित है किन्तु राष्ट्र को खुशहाल बनाने की उन सबकी मिली जुली क्षमता असाधारण है। इसलिए इस समय क्षेत्रीय काम में लगे रचनात्मक सगठनो को एक ऐसे राष्ट्रव्यापी विस्तृत आधारवाले आदोलन का बीजबिन्दु मानना चाहिए जो सतत विकसित होगा और अधिकाधिक रूप से ऐसी क्षमता प्राप्त करता जाएगा कि वह न केवल सरकारी कार्यक्रमो का पूरक बने या उनके कार्यान्वियन में सहायक हो बल्कि जनता के समीप काम करके भविष्य के लिए नए मार्ग और नमूने सुझानेवाला सिद्ध हो।

२ मूल उद्देश्य

अपनी प्रसिद्ध पुस्तिका 'रचनात्मक कार्यक्रम उसका अर्थ और स्थान' (CONSTRUCTIVE PROGRAMME ITS MEATING AND PLACE) में गाधीजी ने रचनात्मक कार्य की विभिन्न १९ मदो के बारे में जो मार्ग-दर्शन दिया था उसको ध्यान में रखते हुए गोष्ठी को यह लगा कि इस समय, विशिष्ट विस्तार से भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि उस कार्यक्रम की पृष्ठभूमि में जो सिद्धान्त तथा मूल लक्ष्य थे उन पर ध्यान दिया जाए। यही नही, वर्तमान परिस्थितियो और जनसख्या के विभिन्न भागो की

७

आवश्यकता के प्रकाश में इस कार्यक्रम की पुन: व्याख्या भी आवश्यक है। गांधीजी के सत्य और अहिंसा के बुनियादी मूल्यों के बारे में कार्यकर्ताओं को अत्यन्त सजग और सतर्क रहना है। मानवीय परिस्थितियों और सामाजिक मूल्यों की भाषा में, इनमें यह निहित है कि नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों, लोकतांत्रिक कार्यक्षमता और मानवीय प्रतिष्ठा के प्रति गहरी प्रतिबद्धता हो।

गांधीजी के लिए रचनात्मक कार्य, कुछ निश्चित मूल्यों और परिवर्तन पद्धतियों को ध्यान में रखते हुए, समाज और अर्थव्यवस्था दोनों की पुनर्रचना का माध्यम था। इसलिए रचनात्मक कार्य सम्बन्धी दृष्टिकोण में समुदाय के अंदर सामान्य हित और कर्तव्य की भावना, आपसमें सहभागिता सामुदायिक कर्म तथा आत्म-निर्भरता, स्थानीय संसाधनों का अधिक उपयोग, सर्वोदय के लिए आवश्यक अंत्योदय, रजामंदी और समझा-बुझाकर परिवर्तन पर आग्रह तथा अच्छे ध्येयों के लिए अच्छे साधनों पर बल, अंतर्निहित है। लोककल्याण, राहत तथा अन्य सहायता के परे, रचनात्मक कार्य का आवश्यक उद्देश्य समाज-आर्थिक परिवर्तन और पुनर्रचना तथा स्वतंत्रता, समानता तथा व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आधारित सामाजिक और मानवीय संबंध है। अन्तत. उसकी आशा यही थी कि सर्वोदय के आदर्शों पर आधारित समाज का निर्माण होगा जिसकी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था अहिंसात्मक और शोषणहीन होगी।

गोष्ठी का यह विचार है कि देशभर में व्यापक रूप से रचनात्मक कार्य करने के बजाय, वह कुछ छोटे क्षेत्रों में साधन रूप से किया जाए। ऐसे क्षेत्रों में, जो कुछ ग्रामों के समूह हो सकते हैं या संपूर्ण विकास प्रखण्ड, विभिन्न क्रियाकलापों को, समुदाय के संपूर्ण समर्थन और पहल पर, समग्र दृष्टि से करना है। हर घर में, विशेषरूप से उनमें जो पिछड़ गए हैं, पहुँचनेवाले काम के द्वारा रचनात्मक कार्यकर्ताओं को विकास के ऐसे नमूनों या प्रकार का सृजन करने का काम करना है जो महत्वपूर्ण जरूरतों का समाधान करे और जिनका संतत विस्तार अन्य उपयुक्त क्षेत्रों में किया जा सके।

३. समाज को संगठित करना

गोष्ठी ने इस पर बल दिया कि रचनात्मक सगठनो और पचायत तथा सहकारी सस्थाओ की, जो बहुत सी विकासकीय गतिविधियो की प्राथमिक प्रशासनिक इकाइया हैं, सफलता में घनिष्ठ सबध है। इसलिए समाज में चेतनता और दिलचस्पी का स्तर उठा कर, उनके नियात्मक ढग में सुधार करके तथा उनके कार्यकर्ताओ की दक्षता को बढाकर, रचनात्मक कार्यकर्ताओ और सगठनो का यथासभव प्रयास, उन सस्थाओ को गतिशील बनाने का होना चाहिए।

स्थानीय लोकतन्त्र तथा आर्थिक, प्रशासनिक और नागरिक कार्यों के विकेन्द्रीकरण का आधार ऐसी ग्रामसभा है जिसका सदस्य ग्राम का प्रत्यक प्रौढ हो। इसलिए यह जरूरी है कि जहाँ भी पहले से कानूनी प्रावधान है, इसकी (ग्राम सभा की) बैठक बहुधा होती रहनी चाहिए और उनको इसका प्रयास करना चाहिए कि जनता की राय और उनकी आवश्यकताओ का असर ग्राम पचायतो और अन्य पचायती राज सगठनो के निर्णयो पर पडता रहे। समुदाय के विभिन्न तरह के लोगो की शक्ति के उपयोग के लिए ग्रामसभा के अतर्गत स्त्रियो युवको तथा बच्चो के विशेष सगठन होने चाहिए। ग्राम पचायत द्वारा विशेष कार्यों के लिए रचित समितियो में ग्रामसभा के क्रियाशील सदस्यो को शामिल किया जाना चाहिए, जिससे गाँव के स्तर पर भागीदारी का क्षेत्र विस्तृत हो।

ग्राम समुदाय म दलबदी और विषमताओ के अस्तित्व की ओर भी गोष्ठी का ध्यान गया। उसको लगा कि लोकतात्रिक प्रक्रिया एक आवश्यक अर्थ में सुदृढ बनेगी यदि कम-से-कम प्रखण्ड के स्तर तक राजनीतिक दल किसी ऐसी आचार-सहिता पर सहमत हो जाए जिसमें पदाधिकारियो के चयन और सस्था के निर्णयो में दलगत राजनीति की दृष्टि न होकर समूचे तौर पर जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति आदि की दृष्टि रहे। ग्राम और प्रखण्ड स्तर पर निर्णयो के लिए सर्वानुमति या कम-से-कम सामान्य निर्वाचको के किसी विशाल

बहुमत, जैसे तीन-चौथाई, का आग्रह रखने से बहुत लाभ होगा। इस प्रकार आपसी समझौते की जो भावना निर्मित होगी उससे समुदाय में इसकी क्षमता बढ़ेगी कि वह अपने साधनों और जनशक्ति का उपयोग अधिक दुर्बल लोगों के हित से संबंधित विकास में कर सके।

गोष्ठी ने यह मान्य किया कि अधिक समूहों की शक्ति तथा विकास को बढ़ाने तथा नीचे से अधिकाधिक दबाव डालने की उनकी क्षमता में वृद्धि के कदम उठाने की आवश्यकता तथा प्रासंगिकता है। यह लगा कि खेतिहर मजदूर, ग्रामीण कारीगर और मार्जिनल किसान जैसे लोगों को यथासंभव सामुदायिक संगठन के ढांचे में एकजुट करने के लिए विभिन्न तरीकों को आजमाना और विकसित करना चाहिए, जिससे वे अपने हितों की रक्षा कर सकें और उनकी बहबूदी के लिए उठाए गए सामाजिक तथा आर्थिक कदमों और भूमि धारों का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन हो सके। जनता के अधिक दुर्बल और प्रतिकूल स्थितिवाले विशेष समूहों के आर्थिक और सामाजिक हितों की रक्षा और सुदृढता के लिए बनाए जानेवाले संगठनों में, जाति-उपजाति तथा सामाजिक भेदाभेद का, गैर विचार किए प्रत्येक संबधित व्यक्ति तथा परिवार को समानता तथा सार्वभौम सदस्यता के आधार पर प्रवेश मिलना चाहिये।' ग्रामीण निर्धनों को संगठित करने के प्रयासों के परिणाम सर्वोत्तम तभी निकलेंगे जब कि वे प्रयास गांधी' विचार पर आधारित होंगे, घृणा और शत्रुता से बचा जाएगा और पूरे समुदाय में ही सामाजिक एकता तथा एक-दूसरे के लिए चिंता की विस्तृत भावना को प्रोत्साहन दिया जाएगा। विशेष परिस्थितियों में तथा महान अन्यायों को दूर करने के लिए, अन्तिम विकल्प के रूप में सत्याग्रह किया जा सकता है।

देश के कई भागों में, भूदान तथा ग्रामदान के बड़े बड़े क्षेत्र हैं। जहाँ भी संभव हो, उपर्युक्त प्रस्तावित दिशा में भूदान-भूमि तथा उससे लाभान्वित लोगों के विकास के प्रयोग किए जाएँ और उनका उपयोग पूरे समुदाय के जीवन के पुनर्निर्माण में बीज केन्द्र के रूप में किया जाए।

सामुदायिक स्तर पर अधिक प्रभावी क्रिया तथा अधिक दुर्बल और निर्धन समूहों के सगठना के लिए उपर्युक्त सुझावों के कारगर क्रियान्वयन की दृष्टि से गोष्ठी को यह लगा कि पंचायतों, सहकारी सस्थाओं भूदान तथा ग्रामदान भूमि सुधार विषयक तथा अन्य सबधित वर्तमान कानूनों का आज की आवश्यकताओं और पिछले १०-१५ वर्ष में होनेवाले परिवर्तन के प्रकाश में, केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों के साथ सहयोग करके पुनर्निरीक्षण किया जाना चाहिए।

४. रचनात्मक कार्य क्षेत्र

गोष्ठी ने उन दिशाओं पर भी विचार किया जिनमें विकास के वर्तमान स्तर पर लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए रचनात्मक कार्य को अधिक विस्तृत और व्यापक बनाने की जरूरत है। चुने हुए क्षेत्रों में सघन काम करने वाले रचनात्मक सगठनों को विभिन्न प्रवृत्तियों में समग्रता की पद्धति अपनाने स्थानीय समुदाय को अपने काम में साथ लेने, स्थानीय प्रभावी नेतृत्व को आगे लाने तथा कार्यकर्ताओं के गुण विकास पर, विशेष ध्यान देना चाहिए। गोष्ठी को यह लगा कि कृषि विकास ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, और क्षेत्रीय समुदाय के स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य सबधी देखभाल जैसे सार्वजनिक रीति नीति के बढ़ते हुए कार्य क्षेत्र के लिए रचनात्मक सगठनों के अपने भी स्रोत विकसित करने तथा ज्ञान बढ़ाने के विशेष प्रयास करने चाहिए। रचनात्मक सगठनों को रचनात्मक कार्य सबधी धारणाओं और दायरे को व्यापक बनाना चाहिए। तथा राष्ट्रीय ऐक्य और सांस्कृतिक विकास, जनसंख्या नियत्रण, स्वास्थ्य और सफाई, जलप्रदाय तथा प्रौढ़ शिक्षा जैसे महत्व के क्षेत्रों में भी अपने अनुभव तथा स्रोतों का आवश्यक विकास करना चाहिए।

गोष्ठी ने यह बात स्वीकार की कि विगत वर्षों में विकास प्रशासन का एक सुसम्पन्न ढाँचा निर्मित हो गया है और ग्रामीण लोगों के हित की दृष्टि से अनेक एजेंसियों ने मिलकर काम किया है उदाहरणत जिला और प्रखण्ड का विकास कर्मचारी, पंचायती राज्य और सहकारी

संगठन, कृषि विश्वविद्यालय और प्रशिक्षण तथा शोध में लगी अन्य संस्थाएँ मार्केटिंग बोर्ड्स और विभिन्न क्षेत्रों में काम करते हुए सार्वजनिक और निजी उद्योग कार्यक्रम। इन सभी एजेन्सियों को परस्पर अपने प्रयासों का तालमेल बैठाना चाहिए, और साथ ही दूसरी ओर रचनात्मक संगठनों को, एक सामान्य हित के ऐसे कार्यक्रम में एकदूसरे को भागीदार मानकर उनको अपना निकट सहयोग देना चाहिए।

गोष्ठी को यह अच्छा लगा कि सार्वजनिक रीतिनीति के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में केन्द्रीय और राज्य सरकारें, जैसा कि आवश्यक है, अधिकाधिक क्षेत्र विकास की दृष्टि, अनौपचारिक पद्धतियों के प्रयोग, सामुदायिक क्रिया पर बल, अधिक दुर्बल वर्गों तथा अन्य लक्ष्यनिष्ठ समूहों की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयास और रचनात्मक तथा स्वयंसेवी संगठनों के एक बड़े 'रोल' की दिशा में, प्रगति के साथ बढ़ती जा रही हैं। केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों और स्वयंसेवी संस्थाओं दोनों से अब अपेक्षा है कि सारे कार्य में अधिक जोरदार पहल वे करें। अब यह विशेष रूप से आवश्यक है कि राजकीय विभाग तथा उनकी अन्य एजेन्सियाँ अपनी गतिविधियों, दृष्टि और पद्धतियों से रचनात्मक संगठनों, पंचायतों, सहकारी संस्थाओं आदि को अवगत रखने के लिए विशेष योजनाएँ चलाएँ। व्यवस्थित और सुनियोजित ढंग से तकनीकी सहायता, प्रशिक्षण और फण्ड के बँटवारे की प्रक्रिया का विकास किया जाना चाहिए। कुल मिलाकर ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की जानी चाहिए जिसमें रचनात्मक संगठन, सामुदायिक संस्थाएँ और सभी सरकारी तथा सरकार-निर्मित एजेन्सियाँ, लोगों की सेवा में लगातार भागीदार के रूप में काम कर सकें। प्रत्येक का 'रोल' क्या होगा यह स्पष्ट हो और हर एक उसका ध्यान रखे तथा साथ ही, सारी संरचना और सहायता की शैलियों में लचीलापन भी रहे।

५. कार्यकर्ता शक्ति खड़ी करना और उसका प्रशिक्षण

गोष्ठी में भाग लेनेवालों को अपने-अपने क्षेत्रीय अनुभवों के आधार पर यह लगा कि रचनात्मक संगठनों की सफलता के लिए

सबसे महत्वपूर्ण शर्त कार्यकर्ताओं का गुण स्तर, योग्यता तथा उनकी समर्पित भावना और उनकी उपलब्धि है। जो भी कार्यक्रम हाथ में लेते हैं उनके लिए प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के सहकार की आवश्यकता है। इसलिए, अपने कार्य के फैलाव के अनुसार, रचनात्मक संगठनों के पास कार्यकर्ताओं का ऐसा एक छोटा समूह होना चाहिए जो स्थानीय समुदाय और सरकार तथा संबंधित एजेन्सियों सबके साथ काम करने की योग्यता रखते हों। ऐसे कार्यकर्ताओं के समाज में उनका समुचित स्थान मिलना चाहिए और उचित मानधन तथा अन्य सुविधाओं के लिए उनको आश्वस्त किया जाना चाहिए। देश में कई ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत-से युवा और योग्य व्यक्ति काम कर रहे हैं इस जानकारी से गोष्ठी को प्रोत्साहन मिला। यह भी जानकारी में आया कि बहुत से व्यक्ति जो सरकारी और गैर सरकारी पदों से सेवा निवृत्त हुए हैं जिन्हें पर्याप्त अनुभव है तथा जिनका स्वास्थ्य ठीक है, सेवाभावना से ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने के लिए तैयार हैं। सरकारी कर्मचारियों अध्यापकों तथा दूसरों को अध्ययन-अवकाश की सुविधाएँ मिलनी चाहिए जिससे वे मान्य स्वयंसेवी संगठनों के साथ देहात में स्वयंसेवी कार्य कर सकें।

—जैसा कि पहले ऊपर कहा जा चुका है रचनात्मक संगठनों के कार्यकर्ताओं के पर्याप्त प्रशिक्षण को गोष्ठी बहुत महत्व देती है। उसका सुझाव है कि सामाजिक और स्वयंसेवी संस्थाओं में वर्तमान प्रशिक्षण सुविधाओं और उसकी सक्षमताओं का सर्वेक्षण किया जाए और उसको सबल बनाने के लिए कदम उठाए जाएँ। गोष्ठी ने यह आशा भी व्यक्त की कि केन्द्र और प्रादेशिक सरकारों की जो संस्थाएँ विभिन्न प्रकार के कर्मचारियों के प्रशिक्षण में लगी हैं वे रचनात्मक संगठनों द्वारा मनोनीत कार्यकर्ताओं के लाभ के लिए विशेष प्रशिक्षण और नव संस्करण के कार्यक्रमों को प्रारम्भ करेंगी।

६. रचनात्मक कार्यके लिए साधन

गोष्ठी ने साधनों के प्रश्न पर बड़ी सावधानी से विचार किया जिससे रचनात्मक संस्थाएँ प्रत्यक्ष सेवा करके और ठीक शैलियाँ तथा

पद्धतियाँ कायम कर विशाल जनता की, विशेष रूप से अधिक दुर्बल और प्रतिकूल अवस्थावाले समूहों की आर्थिक और सामाजिक बहबूदी में उचित योगदान कर सकें। इसको लगा कि जिस सीमा तक रचनात्मक संगठनों को विकास योजनाओं के क्रियान्वयन तथा स्थानीय क्षेत्र और समुदायों की सेवा का स्पष्ट 'रोल' सौंपा जाएगा, उस सीमा तक केन्द्र तथा प्रादेशिक सरकारों के संबंधित विभागों और क्षेत्रीय कार्यक्रमों में से वे वित्तीय सहायता ले सकेंगे। इसके बारे में केन्द्र और प्रादेशिक सरकारों द्वारा अपने विभिन्न विभागों और संगठनों को मोटे निदेश दिए जाने की जरूरत होगी।

निकट के वर्षों में, खाद्य और कृषि संगठन 'फ्रीडम फ्रॉम हंगर कैम्पेन' के अंतर्गत तथा अन्य विदेशी स्वैच्छिक सहायता के स्वीकृत स्रोतों से भारत सरकार की मारफत जो सहायता रचनात्मक संगठनों को प्राप्त हुई है, उसकी गोष्ठी ने सराहना की। इस सहायता से स्वयंसेवी संगठनों को काम बहुत अच्छी तरह करने में सुविधा हुई है। फिर भी, गोष्ठी को यह लगा कि विदेशी साधनों का 'रोल' मामूली और पूरक ही हो सकता है, मुख्य प्रयास तो देश के अपने सरकारी और गैर सरकारी साधनों से ही अधिक-से-अधिक सहायता जुटाने का होना चाहिए। गोष्ठी ने इस बात को सर्वोच्च महत्व दिया कि स्थानीय समुदाय की चेतना और प्रेरणा तथा सबके, विशेष रूप से अधिक दुर्बल वर्गों के मंगल के प्रति कर्तव्य भावना में वृद्धि कर, उन समुदायों के साधनों को विकसित किया जाए और सहायता जुटाई जाए। सगोष्ठी ने इस पर ध्यान दिया कि निकट में केन्द्र सरकार ने व्यावसायिक उद्यम को इस दृष्टि से कर में महत्वपूर्ण रियायतें दी हैं कि वे ग्रामीण विकास की योजनाओं में आर्थिक सहायता दें। गोष्ठी ने आशा व्यक्त की कि इन सुविधाओं का उपयोग ऐसे बड़े और सतत बढ़ने वाले विकास-कोष के निर्माण में किया जाएगा जिसका उद्देश्य ग्रामीण समुदायों और रचनात्मक संगठनों के ग्रामीण क्रियाकलापों में सहायता देने का होगा। सार्वजनिक अधिकारियों ने और प्रतिनिधि हितों के सहयोग से इसके लिए तरीके विकसित किए जाने चाहिए।

७. रचनात्मक कार्य अनुभव का विश्लेषण और मूल्यांकन

देश में विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों को रचनात्मक कार्य-अनुभव के सतत विश्लेषण और मूल्यांकन की आवश्यकता पर गोष्ठी ने गहराई से विचार किया। यह वांछनीय है कि रचनात्मक और स्वयंसेवी एजेंसियों द्वारा होनेवाले काम की नियमित जानकारी प्राप्त करने की तथा इस जानकारी और अनुभव को यथासंभव दूसरों को मुहैय्या कराने की पर्याप्त व्यवस्था हो। उनके द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयों, उनकी सफलताओं तथा विफलताओं, का तटस्थ अध्ययन उनके सहयोग से किया जाना चाहिए। रचनात्मक संगठनों की इस बात में सहायता की जानी चाहिए कि जिन समस्याओं का हल अभी तक नहीं मिल सका है उनके संतोषजनक उत्तर की खोज की दृष्टि से वे सृजनात्मक सामाजिक प्रयोग कर सकें। सामाजिक आर्थिक और तकनीकी विकास के क्षेत्रों में जो बहुत सी संस्थाएँ इस समय प्रशिक्षण और अनुसंधान कार्य में लगी हैं, उनके भी साधनों का इस्तेमाल, सामुदायिक स्तर की महत्वपूर्ण समस्याओं के हल में अधिकाधिक सहायता के लिए किया जाना चाहिए।

गोष्ठी का विचार रहा कि रचनात्मक कार्य के अध्ययन और मूल्यांकन के लिए किसी उपयुक्त केन्द्र के स्थापनार्थ शीघ्र कदम उठाए जाएँ तो इन विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यवस्थित प्रयास हो सकता है। यह केन्द्र एक ओर तो इसके लिए प्रयत्न करेगा कि रचनात्मक संगठनों से लगातार सूचना मिलती रहे और दूसरी ओर ऐसा ही प्रयत्न विश्वविद्यालयों और विकास के विभिन्न क्षेत्रों के अनुसंधान और प्रशिक्षण केन्द्र से चलेगा। यह केन्द्र रचनात्मक कार्यकर्ताओं, विकास कर्मचारियों और समाज-वैज्ञानिकों को समय-समय पर अपने अनुभव और चिंतन के आदान प्रदान के लिए तथा अपने ज्ञान और पद्धतियों को, विशेषरूप से उनकी जो सफल सिद्ध हुई हों, जानकारी देने के लिए, एकत्रित करेगा।

प्रस्तावित केन्द्र की स्थापना तथा अध्ययन, विश्लेषण, मूल्यांकन, अनुसंधान और प्रयोग के लिए, जिनका संबंध, रचनात्मक कार्य से

और रचनात्मक तथा स्वयसेवी कार्य-कर्ताओ के प्रशिक्षण की सुधरी पद्धतियो से होगा, एक विस्तृत योजना अधिक सोच विचार के बाद तैयार की जानी चाहिए।

८. राष्ट्रीय और प्रादेशिक नीति

गोष्ठी ने यह आशा व्यक्त की कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकार अपनी ओर से अपनी-अपनी नीति में इसका यथासम्भव प्रयास करेंगी कि रचनात्मक और स्वयसेवी सगठनो की इसमें सहायता की जाए कि वे अ त्यावश्यक सेवाओ के लिए जनता की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा जनता के निकटतम विकासकीय कार्यों के लिए स्थानीय समुदायो की क्षमता और साधन का तथा स्वयंसेवी प्रयासों के सहज शक्यताओं का इस्तेमाल कर सकें। ऐसी राष्ट्रीय और प्रादेशिक नीति के विकास तथा क्रियान्वयन में, रचनात्मक सस्थाएँ खुशी से उस समर्थन और सहायता को देने के लिए तैयार रहेंगी जिसके लिए उनसे इच्छा व्यक्त की जाएगी।

९. रचनात्मक कार्य पर समिति

गोष्ठी को लगा कि विकास के जिस स्तर पर हम पहुँच गए हैं, उस पर समाज कार्य के कई क्षेत्रो में, जैसे आर्थिक और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण, रोजगार का विस्तार, भूमि सुधारो का क्रियान्वयन, ग्रामीण औद्योगीकरण तथा गाँव और उद्योग के सबध में उत्पादन क्षेत्रो का सीमा निर्धारण और आरक्षण तथा सार्वजनिक नीतियो की समीक्षा, शीघ्र करने की जरूरत है।

गोष्ठी ने गाधी स्मारक निधि के अध्यक्ष से यह निवेदन किया कि इस सर्वसम्मत वक्तव्य में दी गई सिफारिश पर आगे कार्रवाई करने के लिए रचनात्मक कार्य पर एक समिति बनाएँ। इस समितिको रचनात्मक कार्य अध्ययन केन्द्र सबधी प्रस्तावो की तफसील म जाना और कुछ विशेष प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्तियो का विशेषतया हरिजन और आदिवासियो सबधित कार्यका, व्यवस्थित पुनर्निरीक्षण प्रारम्भ करना होगा।

राष्ट्रीय रचनात्मक कार्य विचार-गोष्ठी
अध्यक्ष, गांधी स्मारक निधिद्वारा गठित
कार्यान्वयन (फॉलो-अप) समिति

१ डा श्रीमन्नारायण, अध्यक्ष, गाधी स्मारक निधि —अध्यक्ष
२ डा र रा दिवाकर, अध्यक्ष, गाधी शाति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
३ श्री सिद्धराज ढड्ढा, अध्यक्ष, सर्व सेवा सघ, गोपुरी (वर्धा)
४ श्री विचित्र नारायण शर्मा, अध्यक्ष भारतीय खादी ग्रामोद्योग सघ, लखनऊ
५ श्री अण्णासाहेब सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष, गाधी सेवा सघ सेवाग्राम (वर्धा)
६ श्री श्यामलाल, अध्यक्ष, हरिजन सेवक सघ, नई दिल्ली
७ डा सुशीला नैय्यर, अध्यक्ष, अखिल भारतीय नशाबदी परिषद, नई दिल्ली
८ श्री ल म श्रीकान्त, उपाध्यक्ष भारतीय आदिम जाति सेवक सघ, नई दिल्ली,
९ श्री धरमसीभाई खटाऊ, अध्यक्ष, अ भा कृषि गोसेवा सघ, वर्धा
१० श्रीमती लक्ष्मी एन मेनन, अध्यक्ष, कस्तूरबा गाधी नेशनल मेमोरियल ट्रस्ट, इदौर
११ डा मोहनसिंह मेहता, अध्यक्ष, सेवा मदिर, उदयपुर
१२ श्री जे पी नायक, सचिव, इण्डियन काउसिल आफ सोशल साइन्स रिसर्च, नई दिल्ली
१३ श्री सतीशचन्द्र आर—१२।१, राजनगर, गाजियाबाद
१४ श्री पूर्णचन्द्र जैन मत्री, गाधी स्मारक निधि नई दिल्ली
१५ श्री तरलोक सिंह, ११० सुन्दर नगर, नई दिल्ली
(१३–१५) सयोजक

उक्त समिति को तीन तक अन्य सदस्य सहवरण करने का अधिकार होगा।

स्वर-संस्कार

[स्वर वर्णों की जानकारी देने के साथ-साथ उन्हें कविता के माध्यम से सरलतापूर्वक याद किया जा सकता है। इसी दृष्टि से अ से अः तक १२ स्वरों पर आधारित कविताएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं]

स्वर-संकेत :

अ आ इ ई उ ऊ ढम
ए ऐ ओ औ की झम झम
अं अंगूर हमें हैं भाते
अः गीत हम हिल मिल गाते

स्वरावली :

अ

अनन्त है आनन्द अपार
धरती-माता का आधार
शिशु मंगलमय रूप उदार
मानव महिमा अपरंपार

आ

आभा फैल रही सुकुमार
पंछी कलरव करें उदार
तोता मैना चिड़िया रानी
नानी से हम सुनें कहानी

इ

इला श्यामला धरती माता
सुमधुर फल फूलों की दाता
रंग बिरंगी फूल अनेक
ले लूँ मैं उनमें से एक!

ई

ईश्वर की महिमा है प्यारी
भारत माता की बलिहारी
गंगा–जमना बहती धारा
धमक रहा है भाग्य-सितारा

उ

उड़न खटोला उड़ता जाए
बैठे बालक मोद मनाएँ
हिमगिरि पर्वत पर उड़ जाएँ
'जय जय' करते हाथ हिलाएँ।

ऊ

ऊपर से नीचे हम आते
भारत का गुण गौरव गाते
सुमधुर मीठे फल हम खाते
वर्षा में हम खूब नहाते

ए

एक बने हम, नेक बनें हम
सगुण गुणी गुणवान बनें हम
ज्ञानी ध्यानी वीर बनें हम
देशभक्त बलवीर बनें हम !

ऐ

ऐतिहासिक देश प्यारा
हिंद वरदायक हमारा
गगन में चमका सितारा
धन्य धरती दिव्य धारा

ओ

ओजस तेजस् दोनों भैया
बलि बलि जाए प्यारी मैया
साहसी अमित उदार
नैया तैर रही मँझधार

औ

औजार गुणी गुणमय हैं नाम
आते हैं वे सब के काम
करामात ह वे दिखलाते
उनसे खेल खिलौने बनते

अं

अंचल चंचल चांव चांव
कौवा करता कांव कांव
हम्मा हम्मा गौमाता की
जय बोलो गंगा माता की

अः

अः मनोहर है गुलदस्ता
घर में बना पड़ा हो सस्ता
दीदी ने है इसे बनाया
मैया ने है इसे सजाया !

ऋ

ऋ से ऋषि हुए भारत में
अगणित ज्ञानी ध्यानी
आश्रमवासी बनें तपस्वी
ज्ञानी वर विज्ञानी

—मदालसा नारायण

जीवन कुटीर
वर्धा (महाराष्ट्र)

शिक्षा में सुधार

नई तालीम समिति के सुझाव

अखिल भारत नई तालीम समिति की एक आवश्यक बैठक नई दिल्ली मे १७ जुलाई को केन्द्रीय गाधी स्मारक निधि कॉलोनी में हुई थी। उसने शिक्षा सुधार सबधी नीचे लिखे सुझाव शिक्षा मत्री भारत सरकार को दिए है –

केन्द्र तथा अन्य कई राज्यो मे अब जब कि जनता सरकार राष्ट्रीय विकास के विभिन्न क्षेत्र में महात्मा गाधी के आदर्शों को लागू करने के लिए वचनबद्ध है, अखिल भारत नई तालीम समिति आशा करती है कि सरकार निम्नलिखित सुझावो पर गम्भीरता से विचार करेगी।

१– सभी स्तरो पर शिक्षा सामाजिक रूप से लाभप्रद और उत्पादक गतिविधियो के द्वारा दी जाए जो ग्रामीण और शहरी दोनो क्षेत्रो की आर्थिक प्रगति और विकास से सम्बद्ध हो। शिक्षा के विभिन्न स्तरो के पाठ्यक्रम मे कम से कम ५० प्रतिशत समय इन उत्पादक और रचनात्मक गतिविधियो को दिया जाए।

२– प्राइमरी से लकर विश्वविद्यालय स्तर तक पाठ्यक्रमो मे तीन मूल बातो पर विशेष बल दिया जाए —

१– उत्पादक श्रम को शिक्षा का अभिन्न अग मानकर स्वावलम्बन, आत्मविश्वास और श्रम का महत्व।

२– छात्रो और अध्यापको को सार्थक समाज सेवा के कार्यक्रमो से सम्बद्ध कर राष्ट्रीयता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना।

३– नैतिक और चारित्रिक मूल्यो का निर्माण, एकताकी आवश्यकता तथा सभी धर्मों के प्रति समान आदर।

इन पाठ्यक्रमोमें अपनी प्राचीन सांस्कृतिक देन का सामान्य ज्ञान, भारतीय स्वतत्रता सग्राम का सक्षिप्त इतिहास, राष्ट्रीय एकता पर बल देना, अतरराष्ट्रीय सहयोग तथा अहिंसा,लोकतत्र,सामाजिक न्याय और सविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता आदि विषयो को शामिल किया जाना चाहिए।

शिक्षा में उचित समय पर विभिन्न विषयो के पाठ्यक्रमो मे 'गाधी विचार' का अध्ययन भी शुरू किया जाना चाहिए।

३– नई शिक्षा प्रणाली तब ही अर्थपूर्ण हो सकती है जब शिक्षा को नौकरी से सम्बन्ध न किया जाए। सरकारी विभाग तथा निजी

या सरकारी क्षेत्र की नौकरियों में भर्ती के लिए उद्योग, वाणिज्य या सरकारी रोजगार में लगे लोगों के लिए बिना डिग्री के पाठ्यक्रमों की प्रणाली की स्थापना करना आवश्यक है।

४– विभिन्न चरणों में १०+२+३ वाले शिक्षा के ढांचे को अपनाया जाना चाहिए। दस वर्ष की स्कूली शिक्षा के बाद बड़ी संख्या में अनेक प्रकार के द्विवर्षीय व्यावसायिक पाठ्यक्रम चालू किये जाएँ जो छात्रों को रोजगार के अवसर प्राप्त करने और जीवन में स्थिर होने में सक्षम बनाएँ। उच्चस्तर माध्यमिक शिक्षा को बुनियादी शिक्षा के आधार पर व्यावसायिक बनाया जाए। सैद्धान्तिक और व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त छात्रों में कोई अन्तर नहीं रखना चाहिए।

प्रथम दस वर्ष की स्कूली शिक्षा में "शारीरिक और उत्पादक कार्य पर बल दिया जाए तथा अन्य कार्यकलापों का विकास किया जाए और यथासंभव ऐसा प्रशिक्षण दिया जाए जो बच्चों के पर्यावरण के अनुकूल हो।

केन्द्रीय और पब्लिक स्कूलों समेत सभी स्कूल मातृभाषा माध्यम और त्रिभाषा फार्मूले के सम्बन्ध में भी राष्ट्रीय शिक्षा ढाँचे के अनुसार हों तो भारत की विविधतापूर्ण संस्कृति का विस्तार करें।

५– स्कूली क्षेत्र में नए प्रयोगों को प्रोत्साहन देने के लिए "स्वायत्तता प्राप्त कालेज" के समान स्कूलों को भी चलाया जाए।

६– स्कूल और कालेज आस-पास के क्षेत्र में 'व्यावहारिक शिक्षा' के कार्यक्रम चलाएँ। सैद्धान्तिक ज्ञान देने के साथ-साथ विभिन्न व्यवसायों में लोगों की कार्यकुशलता सुधारने तथा उसका स्तर बढ़ाने का भरसक प्रयत्न किया जाए।

७– शिक्षा मंत्रालय देश में बुनियादी शिक्षा की प्रगति की समीक्षा, अनुमान और मार्गदर्शन के लिए एक राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा परिषद की स्थापना करे। राज्य सरकार भी अपने-अपने क्षेत्रों में ऐसी ही बुनियादी शिक्षा परिषदों की स्थापना करें।

८– देश के सम्मुख बुनियादी शिक्षा का अधिक अच्छा आदर्श प्रस्तुत करने के लिए बुनियादी और उत्तर-बुनियादी शिक्षा संस्थाएँ अपने कार्य और अन्य सम्बन्धित शिक्षा में सुधार करने के लिए ठोस प्रयत्न करें।

९– बुनियादी शिक्षा के पक्ष में उचित वातावरण बनाने के लिए अखिल भारत नई तालीम समिति प्रत्येक राज्य में व्यापक आधार पर इकाइयों का गठन करे। ■

नयी तालीम

विद्यालय में परमेश्वर का आनन्दस्वरूप प्रगट होना चाहिए। ईश्वर के रूप तो अनन्त हैं, पर उसके तीन रूप बड़े प्रसिद्ध हैं। एक है सत्य, दूसरा है चित् याने ज्ञान और तीसरा है आनन्द। कर्मयोग में, संसार में, जीवन में सत्य प्रधान होता है। ज्ञानियों की गुहा में और विद्वानों के पुस्तकालय में ज्ञान प्रधान होता है। भक्ति-मार्ग में आनन्द प्रधान होता है। विद्यालय याने भक्ति-मार्ग, याने यहाँ हर चीज़ जो की जाएगी वह आनन्द के लिए ही की जाएगी।

— विनोबा

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २६] अक्टूबर–नवम्बर, १९७७ [अंक : २

सम्पादक-मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वजूभाई पटेल
श्रीमती मदालसा नारायण
डॉ० मदनमोहन शर्मा

वर्ष २६
अंक २

अनुक्रम

अक्टूबर–नवम्बर '७७

* 'नई तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नई तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपए हैं और एक अंक का मूल्य दो रु हैं।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नई तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नई तालीम समिति सेवाग्रामके लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

१ अखिल भारत तथा अन्य शिक्षा सम्मेलन

जनता पार्टी का राज्य दिल्ली व उत्तरप्रदेश के कई प्रदेशों में करीब सात महीने से चल रहा है। इस बीच शासन की ओर से कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। प्रेस व भाषणों की स्वतन्त्रता वापिस दी गई है और आपातकालीन आतंक का वातावरण समाप्त किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि जनता सरकार गांधीजी के सपनों के भारत का निर्माण करने के लिए वचन-बद्ध है। कृषि खादी ग्रामोद्योग मद्य-निषेध, गोसेवा, प्राकृतिक चिकित्सा, आदि रचनात्मक कार्यक्रमों को अहमियत दी जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों के सन्तुलित विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

किन्तु अभी तक शिक्षा सुधार की तरफ पर्याप्त चिन्तन नहीं हो सका है। केन्द्रीय शिक्षामन्त्री डा प्रतापचन्द्र चन्दर काफी प्रयत्न कर रहे हैं कि देशकी शिक्षा पद्धति को नई दिशा दी जाए। प्रधानमन्त्री श्री मोरारजीभाई देसाई ने भी हाल ही में गुजरात विद्यापीठ के अपने दीक्षान्त भाषण में कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। उनके भाषण के मुख्य अंश अन्यत्र इसी अंक में प्रकाशित किए गए हैं। लेकिन अब यह निहायत जरूरी है कि नई शिक्षा-संरचना के सम्बन्ध में ठोस निर्णय लिए जाएँ और उन्हें व्यवस्थित ढग से सारे देश में लागू किया जाए।

इस दृष्टि से अखिल भारत नई तालीम समिति की ओर से दिल्ली में एक शिक्षा-सम्मेलन १८, १९, २० दिसम्बर को आयोजित किया गया है। इसका उद्घाटन स्वय प्रधानमन्त्री श्री मोरारजीभाई करेंगे। डा चन्दर भी इसमें उपस्थित रहेंगे। सभी राज्योंके शिक्षा

मन्त्रियों व प्रमुख विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को आमन्त्रित किया गया है। देशभर के चुने हुए लगभग १५० शिक्षाशास्त्री व बुनियादी तालीम के कार्यकर्ता सम्मेलन में भाग लेंगे। हम आशा करते हैं कि इस सम्मेलन में कुछ निश्चित सर्वानुमति प्रकट होगी जिसके अनुसार भारत की शिक्षा-पद्धति को ढाला जा सकेगा।

यह तो जाहिर ही है कि महात्मा गांधी के विचारों के अनुरूप ही हमें अपनी सभी शिक्षण-संस्थाओं में हर स्तर पर समाज-उपयोगी उत्पादक श्रम को शिक्षा का माध्यम बनाना होगा। यद्यपि विनोबा ने कई बार समझाया है कि कर्म और ज्ञान का अद्वैत ही बुनियादी शिक्षा का मूल मंत्र है। विद्यार्थियों को यह पता ही नहीं लगना चाहिए कि उन्हें उत्पादक उद्योगों द्वारा कोई पाठ्यक्रम सम्बन्धी ज्ञान दिया जा रहा है। यह प्रक्रिया-अनुबन्ध बिलकुल सहज और स्वाभाविक होना चाहिए। छात्र और शिक्षक मिलकर इस कर्म-ज्ञान-यज्ञ में भाग लें—"सहवीर्यम् करवावहै।" यह यज्ञ निरन्तर आनन्द देनेवाला हो तभी वह सही शिक्षा का स्रोत बन सकेगा। यदि विद्यार्थियों को बाल मंदिरों, स्कूल व कालिजों में अध्ययन द्वारा आनन्द की अनुभूति प्राप्त न होती रहे तो वह तालीम निकम्मी ही समझी जाएगी।

हमारी नई सरकार देश की बेकारी व गरीबी को अगले दस वर्षों में समाप्त करना चाहती है। ऐसा करने के लिए शहरों व गाँवों में छोटे उद्योगों व ग्राम-उद्योगों का व्यापक जाल बिछाना होगा। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने की खास कोशिश करनी होगी। जाहिर है कि यह उद्देश्य आवश्यक शिक्षा-सुधार के बिना सफल नहीं हो सकेगा। शिक्षा और विकास-कार्यों के बीच अटूट सम्बन्ध जोड़ना होगा। यह तभी मुमकिन हो सकेगा जब हमारी शिक्षा-प्रणाली गांधीजी की "नई तालीम" योजना के अनुरूप श्रद्धापूर्वक पुनर्गठित की जाएगी।

२. प्राकृतिक चिकित्सा और शिक्षण-संस्थाएँ :

अखिल भारत प्राकृतिक चिकित्सा परिषद् की ओर से १४, १५ १६ अक्टूबर को साबरमती आश्रम, अहमदाबाद में पन्द्रहवाँ अधिवेशन,

सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। उसका उद्घाटन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया। सम्मेलन में देशभर के करीब ६०० प्राकृतिक चिकित्सक व कार्यकर्ता शामिल हुए। विस्तृत चर्चाओं के अन्त में जो प्रस्ताव पारित किए गए वे इसी अंक में अलग दिए गए हैं। कैन्सर, हृदय रोग व कुष्ठ-रोगों के लिए प्राकृतिक चिकित्सा प्रयोगोंपर विशेष प्रकाश डाला गया। यह भी समझाया गया कि भारत के ग्रामीण-क्षेत्रों में जो स्वास्थ्य-योजना चालू की जा रही है उसमें प्राकृतिक जीवन चिकित्सा को प्रमुख स्थान देना अत्यन्त आवश्यक है।

लेकिन यह स्पष्ट है कि देशमें प्राकृतिक जीवन दर्शन को तभी स्थाई रूप से प्रतिष्ठित किया जा सकता है जब इसके बुनियादी सिद्धान्त हमारी शिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में शामिल किए जाएँ और प्रारम्भ में ही बच्चों को प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व समझाया जाए। इस बारे में सम्मेलन ने एक प्रस्ताव भी प्रकाशित किया है। हम आशा करते हैं कि विभिन्न राज्यों के शिक्षा विभाग इस ओर शीघ्र ध्यान देंगे।

३ देश की वर्तमान अवस्था

प्रतिवर्ष हम गांधी जयंती के अवसर पर राष्ट्रपिता का पुण्य-स्मरण करते हैं और उनके रचनात्मक कार्यक्रमों पर आवश्यक जोर देते रहते हैं। हममें से कुछ का ख्याल है कि खादी व ग्रामोद्योग ही महात्मा गांधी की विचारधारा के असली प्रतीक हैं। दूसरों का विचार है कि मद्य-निषेध हरिजन व आदिवासियों का कल्याण व नई तालीम कार्यक्रम विशेष महत्व रखते हैं। अन्य लोगों की धारणा है कि प्राकृतिक चिकित्सा व कुष्ठरोग निवारण की योजनाएँ गांधीजी के रचनात्मक काम की बुनियाद है। दरअसल इन सभी कार्यक्रमों की अपनी विशेष अहमियत है। किन्तु हम यह कभी न भूलें कि बापूकी विचारधारा और जीवन-मूल्यों का सत्व है 'साधन-शुद्धि'। उन्होंने हमें बार बार समझाया था कि यदि हम अपने पवित्र साध्यों के लिए अपवित्र साधनों का इस्तेमाल करेंगे तो असफल ही होंगे। विनोबाजी ने इसे 'गांधीजी के नए अद्वैत' की संज्ञा दी है। साध्य और साधना के बीच कोई दीवार खड़ी नहीं की जा सकती। वे एक दूसरे के अविभाज्य अंग हैं। 'साधन शुद्धि'

का सिद्धान्त प्रकृति के नियमो की तरह अटल है, उसकी अनिवार्यता अपराट्य है। वह कोरा आदर्शवाद नही, नितान्त व्यावहारिक सत्य है।

इस समय देश की अवस्था सचमुच चिन्तनीय है। रोज ही हडतालें घराव व उपवासो के समाचार अखबारोमें छपते रहते है। कानून की व्यवस्था ढीली व अस्त व्यस्त होती जा रही है। प्रत्येक वर्ग अधिक वेतन व मँहगाई भत्ता माँगता है और यह भी चाहता है कि रोजमर्रा के उपयोग की चीजो के दाम कम हो। हम यह नही समझ पा रहे है कि यदि उत्पादन नही बढेगा और मुद्रा की मात्रा निरंतर बढती जाएगी तो कीमतें नियत्रण म लाना कैसे सभव होगा। अगर वर्तमान परिस्थिति पर काबू पाना है तो जनता व विभिन्न वर्गों को अपने जीवन में आत्मानुशासन तो लाना ही होगा न? महात्मा गाधी ने १९३१ में ही स्वराज्य मिलने के पहले स्पष्ट शब्दो में कहा था-- 'अनुशासन और विवेकयुक्त जनतत्र, दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है।' हम इसी प्रकार का प्रजातन्त्र स्थापित करने का पूरा प्रयास करना है।

बापू ने एक और विचार हमें दिया था। वह था अधिकारो के साथ अपने कर्तव्यो का पालन। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया था-- 'मैं तो एक ही अधिकार जानता हूँ--- अपने कर्तव्यो को पूरा करने का अधिकार।' किन्तु इस समय तो हम सब अधिकारो की माँगो के चक्कर म पड गए है। जिम्मेदारियो का हमें बहुत कम भान है। यह दयनीय व चिंताजनक हालत हमारे राष्ट्र के लिए सचमुच बहुत खतरनाक है। भगवान हमें सन्मति प्रदान करे।

४ वर्ग सघर्ष" बनाम सत्याग्रह

कुछ सप्ताह पहले भाई जयप्रकाशनारायणजी ने एक प्रसगपर कह दिया था कि हरिजनो व अन्य कमजोर वर्गो के उत्थान के लिए 'वर्ग सघर्ष' अनिवार्य है। इस विचार को देश म सभी समाचार पत्रो ने महत्वपूर्ण ढग से प्रकाशित किया और उसके कारण काफी गलतफहमी भी पैदा हुई। बाद में श्री जयप्रकाशजी ने कई दफा यह स्पष्ट कर दिया है कि यह 'वर्ग सघर्ष' गाधीजी के आदर्श के अनुसार ही होना चाहिए। उसमें मार्क्सवादी हिंसा व वर्ग कलह का स्थान नही हो सकता। किन्तु

शब्दों के प्रयोग से भी अनावश्यक भ्रम व बुद्धि भेद पैदा हो जाना स्वाभाविक है। इसलिए अच्छा हो यदि हम 'वर्ग-संघर्ष' के स्थान पर 'सत्याग्रह' शब्द का प्रयोग करें। यह शब्द बापू ने दिया था और उसका सही अर्थ अब सारे संसार में व्यापक हो चुका है।

हाल ही में आचार्य कृपलानी ने बिलकुल सही कहा है कि हरिजनों का संरक्षण देने की जिम्मेदारी सवर्णों को सहर्ष उठा लेनी चाहिए। गरीब वर्गों को ही अपनी सुरक्षा के लिए नये संगठन बनाने के लिए मजबूर होना पड़े यह उचित नहीं है। गांधी के देश में इस प्रकार की परिस्थिति नहीं होनी देनी। इसीलिए बापू ने हरिजन सेवक संघ के प्रमुख कार्यकर्ता सवर्णों में से ही चुने थे। इस समय भी हम सभी का पावन कर्तव्य हो जाता है कि हरिजनों व गिरिजनों की हिफाजत की समुचित व्यवस्था की जाए ताकि आए दिन होनेवाली शर्मनाक घटनाएँ बंद हों और भारत में एकता व भाईचारे का शुद्ध वातावरण प्रस्थापित हो सके।

यह भी आवश्यक है कि हरिजनों की समस्याओं को दलगत राजनीति के नजरिए से न देखा जाए। सभी पार्टियों का यह कर्तव्य है कि मिलकर इस कलंक को धोने का प्रयत्न करें।

५ 'बरं का छत्ता'

समाचार पत्रों से ज्ञात होता है कि केन्द्रीय जनता सरकार के कुछ प्रमुख नेता उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश व राजस्थान जैसे विशाल प्रदेशों का विभाजन करके कई नए छोटे राज्य बनाने का विचार कर रहे हैं। मुझे नहीं मालूम कि इन समाचारों में कितना तथ्य है। किन्तु यदि इस तरह का थोड़ा भी विचार किया जा रहा हो तो यह सचमुच चिंताजनक है। जिस समय १९५६ में राज्य पुनर्गठन कमीशन की सिफारिशें प्रकाशित हुई थीं और उनके अनुसार भारत सरकार व कांग्रेस कार्य समिति द्वारा निर्णय लिए जा रहे थे मैं कांग्रेस का एक महामंत्री था। उस वक्त हमें देश के विभिन्न प्रदेशों के नेताओं व कार्यकर्ताओं की मनोवृत्ति का जो अनुभव मिला वह अत्यन्त कटु व शोचनीय था। मुझे कई सप्ताह तक अखिल भारत कांग्रेस कमेटी के जंतर मंतर रोड के दफ्तर में सुबह तीन बजे तक बैठकर सभी तरह के प्रतिनिधि मण्डलों

के सुझावों को शान्ति व धीरज से सुनना पड़ा था। फिर भी कार्यकर्ताओं को पूरा संतोष दिलाना बड़ी ही कठिन समस्या साबित हुई। मैंने स्पष्टतया अनुभव किया कि भाषावार प्रान्त रचना के प्रश्न पर बड़े-बड़े नेता भी अपना भावात्मक व मानसिक संतुलन खो बैठे थे। फिर भी किसी तरह यह मामला तय हुआ। किन्तु बाद में भी इस सिलसिले को बंद करना संभव न हुआ और सन् १९६९ में बम्बई के बड़े प्रदेश को तोड़कर महाराष्ट्र व गुजरात के दो नए राज्य संगठित करने पड़े। तब भी यह चक्र नहीं रुक सका और १९६७ में छोटे पंजाब के भी तीन हिस्से करने पर केन्द्रीय शासन को बाध्य होना पड़ा।

अब फिर इस कठिन व जटिल प्रश्न को उठाना भारत की एकता के लिए बहुत खतरनाक साबित होगा। यह मामला सिर्फ उत्तर के हिन्दी प्रदेशों के पुनर्गठन से समाप्त नहीं होगा। यह हवा देश के अन्य सभी राज्योंमें फैलेगी और उसे रोकना नामुमकिन हो जाएगा। न मालूम देश में कितने और नए राज्य बनाने पड़ेंगे।

जनता पार्टी ने गंभीर संकल्प जाहिर किया है कि वह दस वर्ष में देश की गरीबी व बेकारी दूर करेगी। यह उद्देश्य बहुत महत्वपूर्ण है, और उसको प्राप्त करने के लिए बड़े परिश्रम व सम्मिलित शक्ति की आवश्यकता होगी। इसी बीच अगर राज्यों के पुनर्गठन का पेचीदा मसला खड़ा कर दिया गया तो सभी बुनियादी व ठोस कार्य पिछड़ जाएँगे और राष्ट्र की संगठित शक्ति पूरी तरह बिखर जाएगी।

यह कुछ हद तक सही है कि छोटे राज्यों में आर्थिक विकास की गति अधिक तेज हो सकती है। किन्तु इस कार्य को गतिशील बनाने का एक और भी तरीका है। उत्तर प्रदेश व मध्यप्रदेश जैसे बड़े राज्यों में क्षेत्रीय विकास मण्डल गठित किए जा सकते हैं। जो हो, इस वक्त राज्यों को फिर संगठित करने का विचार कम से कम दस साल तक छोड़ देना ही सब दृष्टि से हितकर होगा। यह एक 'बर्र का छत्ता' है। इस समय उसे छेड़ना देश की एकता को गहरी ठेस पहुँचाना होगा।

गाँव वालों से संबंध जोड़ें

महात्मा गांधी

[बुनियादी शिक्षा को सफल बनाने की दृष्टि से महात्मा गांधी ने श्रीमती शान्ताबहन नारूलकर से सन् १९४५ में विस्तृत चर्चा की थी और सुझाया था कि सेवाग्राम के गाँववालों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। यह चर्चा गत अंक में प्रारम्भ की गई थी। यह किश्त उसकी दूसरी और समापन किश्त है।]

गांधीजी :—क्या करोगी, प्रौढ़ शिक्षा से ही शुरू करोगी क्या ?

शान्ता बहन —हाँ। सेवाग्राम देहात के नौजवानों को हाथ में लेना है उनसे सम्बन्ध बढ़ाना है, उनमें जागृति पैदा करनी है तो क्या करूँ ? कैसे सम्बन्ध बढ़ाऊँ ?

गांधीजी :—यह समझ लो मैं अस्पताल नहीं हूँ, मैं शिक्षक हूँ मुझे उन नव युवकों से काम लेना है वगैर पैसे के। वे मुझे मदद देंगे फिर भी मेरे मन में आता है कि कहीं मुझे वह धोखा तो नहीं देंगे ? लेकिन नव युवकों पर विश्वास करना है और उनसे काम तो लेना ही है।

उनसे बातचीत के जरिए परिचय होगा। जब एकाध से परिचय हो तब उनके घर से ही शुरू करो (घर के बारे में पूछो कि क्या वह परिवार का ख्याल रखता है। उनकी जायदाद के बारे में पूछना। बैल आदि जानवरों की वह ठीक से देखभाल करता है या नहीं। उन्हें वह खाना खुराक क्या देता है। तुम्हें उसे बताना है कि उनसे वह प्रेम से व्यवहार करे। लाठी में आर नहीं लगाए। उसपर वे बताएँगे कि इसके बिना बैल चलते नहीं, पर मेरी नजरमें उनका यह जवाब ठीक नहीं है। जानवरों पर जैसी सख्तियाँ हिन्दुस्तान में होती है वैसी कहीं नहीं होती। उसे घरके बारे में कहो कि यदि छोटे भाई बहन है तो उसे पैखाने आदि की सफाई देखना है।

सेवाग्राम म दो चार जगह बगीचे, मैदान आदि होना चाहिए। वही पहली तालीम होगी। वहाँ उनमे बातें करें और कहें कि अपने साथ अपने अडोसी पडोसीको भी लेते आएँ। बातचीत में ही उन्हें इतिहास भूगोल का ज्ञान देना है। एक बोर्ड तो रखोगी। इच्छा है अक्षर ज्ञान भी दो। इकट्ठा होनेवालो के नाम का परिचय कर लो और थोडा मजाक भी करो। इस तरह परिचय बढाओ उन्हे इकट्ठा करो। उन्हें सहयोगको बात सिखानी है। जो नही जाते उन्हें बलाना है।

मान लो तुम्हारे हाथ सत्ता और जमीन आ गई। सलात का अधिकार सारी पटेल और पटवारी के हाथ में रहता है। यदि जमीन हमारे हाथ में है और हम सब जानकार हैं और फिर हमने बीज बोया, सहयोग से सरकार का कर दे दिया तो हमारा वक्त बच गया और काम भी हुआ। हम सहयोग में ही खेती सिखाएँगे। खेती हाथ में आ जाए तो बैलों का भी सुधार हो सकता है। इस सब में से अपनी सुविधा के अनुसार समय कर करो।

शान्ता —यहाँ तो गोसायटी गाँव वालो की होगी फिर क्या खतरा ?

बापू —यहाँ जो होने वाला है वह यह है कि गुंडे ही पहले हमारे पास आएँगे। कब्जा बडी चीज होती है, फिर इनके पास पैसा भी है। पैसे वालों को गुंडे ही मानो।

गाँव के कुएँ

जो गन्दे कुएँ हो उन्हें बन्द कर दें, इस काम म पैसा खर्च करेंगे क्योंकि ये बीमारी के घर हैं। इतने कुओं की जरूरत नहीं है। इनमें बन्द करने में लोगो ने मनोविनोद के लिए पब्लिक स्वेवेयर भी बनेंगे। जनता के कुओं का खर्चा जनता को ही देना होगा। निजी कुआं मालिक सुधारे, नहीं तो मालिकी छोड दे जिससे जनता के रुपए से उसे सुधारा जा सके। इस तरह सब कुएँ हमारे हाथ आ जाएँगे। देहातो के लिए देहात के बाहर उनमें हो जाएँ, किन्तु वे कैसे हों यह सोचने की बात है। यह काम ऐसा सादा और सस्ता हो कि सारे हिन्दुस्तान में हो सके।

सेवाग्राम का आदर्श सबके लिए और कम खर्च का हो। वहां की खात लाख देहातो के लिए एक नमूना बने। बिजली के बारे में मैं कहूँगा कि मुझे बांधो मत। पहले यह कह दो कि सारे हिंदुस्तान में बिजली हो सकती है तब मुझे लगेगा कि इतनी पावर तो होनी ही चाहिए। ऐसे काम के लिए जनता से धन इकट्ठा करें। जनता की निधि रह उसमें आश्रम का भी हिस्सा रहे। आश्रम भी जनता के ही रुपए से चल रहा है और गांव के किनारे बसा है। हमें तो लोगों को तालीम देनी है।

भोजन :

खाना —गांव में रहने जाए तो आश्रम से ही वह काम शुरु हो एसा आपने कहा है। आश्रम का खाना और रहन सहन सात्विक है और गांववाला से अलग है वे देहात में कैसे रहेंगे और जिनका खान पान सब कुछ अलग है उनस (गांववालो से) कैसे मिलेंगे ?

बापू —बडे परिश्रम से ही सही— पानी तो उबाल कर पीना है। जो यह नही करते वे देहात में कैसे रहते हैं। पहले मैंने सोचा था कि देहात में रहूँगा मगर वॅक्सीनेशन (चेचक का टीका) इत्यादि मुझे नही लेना था। डाक्टर ने इसीलिए मझे अलग ही रहने को कहा था। बैलेन्ड डाईट के विषय में यह बात है कि थोडासा दूध तो लेना ही चाहिए। प्राणीज प्रोटीन थोडा-सा भी लेनेसे दूसरी प्रोटीन—अच्छी पचती है अत एव थोडा प्रमाण दूध का रखें। १० तोला दूध और ९ तोला घी— मगर सच्चा घी हो।

आशा देवी —बच्चाको हम एक तोला तेल दते हैं।

बापू —यह बस नही। घर में (उनको) कुछ मिलता ही नही इसलिए आज वह चलता है। मगर अपना माप हम उसपर से न निकालें। अपने शरीर को ईश्वर का घर अर्थात जनता की धरोहर मानते हैं। जनता के लिए हम जिंदा रहना चाहते हैं तो शरीर को अच्छा रखना ही है। उनके सामने घी खाओ और कहो तुम्हारा इसके बिना चलता है कि तु मेरा चलना सभव नही अत तुम घी लो। वहां आश्रम में तबियत

बिगडती है उसका कारण यह है कि यहाँ लोग मानते हैं कि जितना मिलता है उतना खाना ही चाहिए ऐसे में तो तबियत बिगडेगी ही।

सुशीला बहन —यहाँ मसाला वगैरा न होने के कारण खाना स्वाद नही होता इसलिए प्रमाण नही रख सकते।

बापू —खाना स्वाद नही है इसलिए बहुत खाया जाता है; मैं यह मानने के लिए तैयार नही हूँ। देहात में तो जितना खाना है वह लोग खाते ही है। खाने में भी कला है। आश्रम जीवन में हमें यह शिक्षा देनी है। ज्यादा न लेना तथा झूठन न छोडना इत्यादि बातें सीखने लायक हैं।

शान्ता —खाने में दूध होना जरूरी है और माँ-बाप दूध के लिए पैसा दें ऐसा आपने कहा है। किन्तु बच्चों को दूध देने को उनके पास पैसे कहाँ हैं?

बापू —वह तो करवाना ही है उसमें प्रौढ-शिक्षा है। उन्हें जिम्मेदारी समझानी है। उनकी कमाने की शक्ति बढानी है। उन्हें भिक्षुक नही बनाना है। आखिर में तो उनको खाना पीना देना ही है। उसके दो ढग हैं—एक रूसका है। वे ही चीज अपने ढग से हमें करनी है। यदि हम उन्हें नही कर पाते तो समझ लो कि वही कुछ कमी है। मैं मानता हूँ वह बनना चाहिए। वहाँ तो उन्होने सारी दुनिया की बात नही सोची उन्होने तो एक बडे समाज का सोचा है। मैं एक सेवाग्राम को लेता हूँ इसके माने सारी दुनिया को लेता हूँ। उनका समग्र जीवन लेकर एक देहात में कितना हो सकता है, हमें यह देखना है। एक कमाए और सौ खाएँ यह तो नही हो सकता। हरेक कमाए और खाए तो हो सकता है। मुझे मरीज के मरने की परवा नही मगर मरीज होने से रोकें इतना काफी है। अच्छे समाज में पगु बहुत कम रहते हैं— बच्चे को तो माँ-बाप खिलाते ही हैं किसीको नही लगता कि बच्चा उनके सिरपर बोझ है। अच्छे कुटुम्ब में बच्चे भी लम्बे समय तक भार नही होते। बच्चा ३-४ वर्ष का हुआ और कमाने लगता है। यह तो हमारी तालीम है। कालेज वाले दरिद्री बनाते हैं।

सेवाग्राम का आदमी हमारे यहाँ काम करता है, हम उसके बाल बच्चोको नही देखते। हमे उनके साथ अपने बर्ताव में तथा उनके बच्चो और उनके साथ व्यवहार में मित्रता और रिश्तेदारी की भावना का निर्माण करना है। उनके कपडे अलग उनका खाना अलग और वे भी अपने को अलग रखते है उसमें भी सुधार करना है। वे अपने को हमसे अलग समझते है।

प्रश्न —यदि खाने में दूध न मिले तो कौन-कौन सी चीज देनी होगी ?

बापू —जो मासाहारी है उन्हे मैं कहता हूँ कि यदि और कुछ न मिले तो मास अण्डे खाओ। लेकिन शाकाहारी को कहूँगा कि शाक न मिले तो भूखे मर जाओ। क्योकि शाकाहारी को वनस्पति शास्त्र जानना चाहिए। देहात के गरीबो को जैसा कि रशिया ने बना ठीक वैसा ही बनाना है।

प्रार्थना :

शान्ता —प्रार्थना किस तरह चलाएँ ?

बापू —आम प्रार्थना में राजकर्ता का इल्जाम नही लग सकता मगर यह आम प्रार्थना शायद कठिन होगी। रामचन्द्र तो है—पर राम के सामने शिकायत हो तो हम सहन कर लेंगे, वह तो ईश्वर का नाम है। मैं तो सबका अर्थ बदल देता हूँ। हिन्दू माइथॉलॉजी में ऐसी चीजें भरी पडी है मैं उन चीजो को नही छोड सकता हूँ। जो चीज जीवन में भरी है वह कैसे बदल सकती है ?

सेवाग्राम के मकान :

शान्ता बहन —सेवाग्राम की आबादी बढ गई है, नए बसनेवाले सेवाग्राम में घरो की व्यवस्था कैसी हो ?

बापू —नया सेवाग्राम बसाना हो तो जगह हम देंगे पर लोग अपने घर आप बनाएँ। यदि घर बदलना पडा तो जो दूसरा उसमें आएगा वह उसमें लगा हुआ पैसा देकर घर ले लेगा। जमीन पर उनका (गाँव-वालो का) हक नही होगा। लोग घर के लिए जमीन माँगेंगे, और

घर बसा लेंगे परन्तु खाली रहने के लिए ही वे पैसे की जगह परिश्रम देकर घर लेना पसद नही करेंगे।

हमारे हाथ में राजसत्ता नही है और न तो– आचार-विचार का जोर ही डाल सकता हूँ। जो सत्याग्रह में करना चाहता हूँ यदि वैसा हो तो सल्तनत आप ही मुझे सहारा दे देगी। मगर यदि लोग मुझे समझ लेंगे तो मेरा स्वप्न, स्वप्न नही रहेगा। अपने खेतों को उजाड दूंगा और लोगों को बसने के लिए जगह दे दूंगा, वे आज ही हमारे यहाँ आ जाएँ। लेकिन वे यह करने को तैयार नही है। वे चाहेंगे जमीन हमें मिल जाए, लेकिन उसके लिए मैं तैयार नही हूँ। मकान का मालिक मैं रहूँ (स्टेट रहे) वे यह नही मानेंगे– वे तो जमीन माँगेंगे।

शान्ता बहन —गाँव में दो तरह के आदमी हैं एक तो वे जिनके पास जमीन नही है और जमीन के मालिक न बनते हुए भी पैसा और श्रम दोनो लगाकर मकान बनाना चाहते है और दूसरे वे लोग हैं जिनके पास जमीन है पर पैसा नही, यदि कोई घर बनाए तो वे किश्तो द्वारा उसका रुपया देकर घर ले ल। ऐसे लोगों की मदद कैसे की जा सकती है?

बापू —इसके लिए एक हाउसिंग सोसायटी (गृह-निर्माण सघ) बनानी चाहिए। घर बनाने के लिए उन्हें पैसा उधार देना होगा, लेकिन उन्हें सख्ती बरदाश्त करनी पडेगी। जब तक पूरा पैसा अदा नही किया जाएगा तब तक घर सोसायटी का रहेगा। हमें उधार वसूल करना होगा।

शान्ता बहन —पुराने ढगके घर चोरो के डर से बने थे। लोग पैसे गाडकर रखते थे। यदि को-आपरेटिव बैंक या किसी जनता के खजाने में पैसा रखा जाए तो घर अच्छे बनने लगेंगे।

बापू —यह पहला कदम नही। वे लोग पैसे घर में दबाकर रखते हैं। सोना सरकारने सोच लिया है, अपना दिवाला निकाला है। एक पौंड में १४ शि दिए। सोना तो इस प्रकार चला गया। अब जो धन रखते हैं वह सब निकलवाना चाहिए। उसका प्रबन्ध करना चाहिए। फिर घर बनाएँगे। तो उन्हें चोर डाकू चीते का डर रहेगा ही नहीं। वे घर तो ऐसे का ऐसा ही रखेंगे। हमें तो पहल

उनका डर निकालना चाहिए। जब तक लाठी बदूक नही रहती तब तक लोगो में निर्भयता का वायुमण्डल होना चाहिए। अगर वे वहाँ से आकर जगल में रहने को तैयार है तो मुझे आश्चर्य के साथ ही बडा आनन्द भी होगा। प्लानिंग करना तो आसान है। वी सी मेहता ने यह काम किया है।

शान्ता बहन —मजदूर कहते है हमें जमीन चाहिए।

बापू – वे लोग तैयार है तो हमें कर्ज लोन निकालना होगा हम ऐसा करेंगे और यदि व सहकार को आपरेशन का महत्व समझ गए है तो जिनके पास पैसे है वे पैसे दें जिससे को आपरेटिव बैंक बनाएँ। नाम मात्र को सूद देना है। पैसो का उपयोग होना आवश्यक है जिससे वे बिना दूसरे की मदद के केवल अपनी बुद्धि से देहात खडा कर दें और पीछे हम भी पैसा डालें। जब उन्हें पता चलेगा कि पैसा सूद सहित वापस मिलगा तो पैसा डालने वाल बहुत मिल जाएँगे। सोसाइटी को रजिस्टर कराएँगे जिसस जप्त न हो सके। हम उन्हें तकलीफ में नही डालना चाहते। यदि वे सहयोग न दें तो यह काम शुरू ही नही करना चाहिए– नहीं तो सरकार जैसी बात होगी उनकी मालिकी नही रहेगी।

शान्ता बहन —सुना है कि सरकार न अनाज की पैदावार बढाने के लिए ५०० रुपए देने की बात कही है।

बापू —समझ गया मेरे ख्याल में यह बुरी बात है, सरकार अपना ही काम करना चाहती है, रैय्यत का नही। गन्ने के बारे में ऐसा ही हुआ है इतना बोया गया कि जिसकी हद नही।

शान्ता —लोग यह बात समझ गए है कि उसमें फायदा नही है मगर व यह नही जानत कि दूसरा रास्ता क्या है।

बापू —रास्ता बताना हमारा काम है। मकान इत्यादि का बताया मगर यह दूसरा कदम है, उसस पहले तो उनसे (गाँववालो से) मिलें जुलें और देखें कि उनके स्त्री बच्चे साथ है या नही। वे ही मर्द आलसी बैठे है अथवा काम करत है या नही, यह देखें– उनमें प्रवेश करना है। आर्थिक स्वार्थ को छोडकर नैतिक स्वार्थ रहे तो इससे उनका मन

साफ हो जाएगा और हमें भी पता लग जाएगा कि कहाँ तक लोग हमारा साथ देने वाले हैं। सच्ची मेहनत ही पैसा है।

शान्ता —पैसा लौटाना है तो फिर स्वार्थ क्या ?

बापू —पैसे का लेन देन जहाँ भी रहता है वहा स्वार्थ की व आ ही जाती है। गुंडे कहेंगे कर तो ले पीछे हम गुंडागर्दी तो कर सकते हैं। अतएव ऐसा करेंगे तो पीछे हमें कठिनाइयाँ आएँगी। दक्षिण अफ्रीका म भी गुंडबाजी चलती थी मगर वहाँ दोनो तरफ गुंडे थे।

स्त्री-शिक्षा

प्रश्न —स्त्रियो की शिक्षा किस तरह शुरू करें ?

बापू —घर घर जाकर स्त्रियो के सुख दुख देखो। उन्हें पहिचानो और उनके दुखो को दूर करो। उन्हें समय का उपयोग करना सिखाना है। वे कुछ नही जानतीं—झाड़ू कैसे लगाना, घर कैसा रखना आदि भी बतलाना और सिखाना होगा। स्त्रियाँ पुरुषोकी शिक्षिका है। मेरी ऐसी तालीम तो मौखिक होगी। स्त्री अपने पति के लिए ही नही देहात के लिए भी है यह बात घर-घर में पडोसियो में और फिर देहात में समझाना है। बाद में समझ से काम लेना। आर्थिक मदद में कम पडें। व स्त्रिया स्वार्थ की बातें करेंगी, उनसे बचना होगा। जो भूखो मरते है उन्हें कमाई कैसे करना यह सिखाना होगा।

पहले शारीरिक व्याधियाँ आएँगी और फिर सफाई सम्बन्धी तथा आर्थिक, नैतिक और राजकीय कठिनाइयाँ भी आएँगी। मेरी निगाह में राजकारण तो आखिर में आएगा। खाली आर्थिक मदद ले बैठन से नही चलगा। डाक्टर का काम अलग है खाली दवाई देना है परन्तु शिक्षिकाका काम अलग है। वह जिम्मेदारी है। उनका बजट देखना और बनाना तथा उसमें से कितना कमाया और कितना खर्च किया आदि को देखकर उनके आय-व्यय का अनुमान निकालना है। उन्हें दूसरे धन्धे भी सिखान है। वे तो हमारे रिश्तेदार, सहकारी और साथी है। हमें समझना होगा कि उनके साथ कैसे चलें।

शान्ता – नौजवानों से सम्बन्ध बढ़ाने और उनमें जागृति पैदा करने के लिए कदम कैसे बढ़ाए?

बापू —यह समझ लो कि तुम अस्पताल नही हो, वरन् शिक्षिका हो। शिक्षक आध्यात्मिक है। समझ लो कि मुझे बिना पैसे के, नवयुवकों से काम लेना है। नवयुवकों को यह विश्वास दिला देना है किउनसे मदद लेने में मेरा स्वार्थ नही है इस प्रकार उनसे काम लेना है।

गृह-परिचय —घर के बारे में उससे पूछना और देखना कि परिवार का ख्याल रखता है या नही। जमीन जायदाद के बारे में पूछना—बैल वगैरा की देख भाल करता है अथवा नही क्या खाना खुराक देता है और कैसा व्यवहार करता है। हमें उसे यह बताना है कि उनके साथ (बैल आदि) प्रेम का व्यवहार करें लाठी में आरु न लगाएँ। वह यदि बैल चलता नही ऐसा कहता है तो उसे समझाना होगा। नौजवानों और प्रौढ़ो की शिक्षा के लिए मैं (बापू) तो खेती और जानवरो की देख भाल के विषय में कहना चाहूँगा।

अँग्रजो के जानवरो की देख भाल अच्छी होती है। जानवरो पर अत्याचार न करने के लिए यहाँ भी कानून (कोसलेटी टू एनी मल्स एक्ट) है लकिन नाम मात्र के लिए। जानवरो पर जैसी सख्तियाँ हिन्दुस्तानमें होती है वैसी कही भी नही होती। गधा भी बहुत उपयोगी जानवर है काम बहुत देता है और खाता थोडा है परन्तु उसका जीवन दुख का जीवन है। नौजवानो से इस प्रकार बातचीत क द्वारा सम्बन्ध बढाकर उनके कुटम्बियो के साथ मल बढाना चाहिए। यदि उसकी (नौजवान भाई को) छोटी बहन हो तो उसस कहो कि उसे पाठशाला क लिए दे दें। उसस घर के बारे में पूछो कि वह पैखाना घर आदिकी दखभाल करता है और सफाई देखता है अथवा नही। यह देखो और फिर उससे अपने अडोसी-पडोसियो को भी साथ लान को कहो। सेवा

ग्राम में बगीचे आदि जैसी दो-चार जगह होनी चाहिए। यही पहली तालीम होगी। उनके साथ बातचीत करें और बातचीत के द्वारा ही इतिहास भगोल का ज्ञान दें। एक माला तख्ता रख दें। अक्षर ज्ञान की इच्छा है तो दे दें। इकट्ठा करके उन्हें सहयोग की बात सिखाना है। जो नहीं आते उन्हें बुलाना होगा। मानो कि हमारे हाथ में सत्ता आ गई– जमीन हमारे हाथ आ गई। सत्ता या अधिकार खाली पटेल और तलाटी के हाथ में है, व खाली दो ही हैं। मानो कि वे हमें मान लेंगे। जमीन हमारे हाथ में है, हम जानकार हैं। हम यदि सरकार से बीज बोएँ तो सरकार को कर भी दे दें और थोड़े समय में अधिक काम भी कर लें। हम खेती सिखाएँ तो सहयोग हो खेती एक साथ हो और सहयोग से हो। खेती हाथ में-आ जाने पर हम देखेंगे कि बैलों को भी हम सुधार सकते हैं। मैं तो बदलता चला जाता हूँ इसमें से तुम जितना ले सकोगी लेना, तुम्हारे लिए यह ब्रह्म वाक्य नहीं है। मेरे लिए यह ब्रह्म वाक्य है। तुम सुविधा के अनुसार समझकर करो।

स्वाश्रयी शिक्षा

नई तालीम का अर्थ है उद्योग की मार्फत तालीम देना। यह मूल उद्योग आस-पास के वातावरण उपज इत्यादि को देखकर चुनना होगा। उदाहरणार्थ जहाँ कपास नहीं उगती वहाँ बाहर से कपास लाकर खादी को तालीम का जरिया बनाना ठीक न होगा। अगर खादी का उद्योग लेकर नई तालीम स्वाश्रयी सिद्ध की जा सके तो वही चीज दूसरे उद्योगों को भी लागू की जा सकती है। तालीम स्वाश्रयी बनाने का अर्थ यह है कि जैसे आज के सरकारी स्कूलों में लड़के अपने घर से खाना खाते हैं, कपड़े पहनते हैं उसी तरह नई तालीम के स्कूलों में भी लड़कों के खाने पहनने का भार माता पिता पर रहेगा। आज कल के स्कूलों में किताबों और फीस इत्यादि पर जो खर्च होता है वह बच जाएगा शिक्षक अगर आवश्यक वातावरण पैदा नहीं कर सकता तो नई तालीम स्वाश्रयी नहीं हो सकती। अगर वह वातावरण बनाने में औ लड़कों की बुद्धि को ओजस्वी बनाने में सफल होता है तो शुरू स

लेकर आखिर तक की नई तालीम में सारा खर्च लडको के बनाए हुए कपडे की कीमत के रुपयो में से निकल आएगा।

नई तालीम में किताबो को तो स्थान ही नही। रुई, धुनकी, तकली इत्यादि सामान पर शुरू में थोडा खर्च करना पडेगा उसके बाद तो जो खर्च निकालना होगा वह केवल शिक्षक की तनख्वाह और आवश्यक स्टेशनरी तथा कोई चपरासी इत्यादि रखना पडे तो उसका खर्च इतना ही होगा।

मानो कि एक स्कूल में ३० लडके है वे खेत से कपास लाने से लेकर सूत निकालने और कपडा बनाने तक की सब क्रियाएँ अपने हाथो से करेंगे। हरेक क्रिया को मार्फत शिक्षक उन्हें ज्ञान देगा जिससे कि उनकी बुद्धि दिन प्रति दिन अधिक ओजस्वी होती जाएगी। परिणाम में वे लडके खादी की क्रियाओ से नित्य नई शोध किया करेंगे जिससे कि खादी का उद्योग अधिक उत्पादक और मूल्यवान बनता जाएगा।

लडको का बनाया हुआ कपडा उनके माता पिता मुंह मांगे दाम पर ले जाएँगे। शिक्षक का यह काम होगा कि वह लडको के द्वारा उनके माता पिता में जागृति पैदा करे जिससे कि वे विदेश और मिल के कपडो को छुएँ भी नही। वस्त्र-स्वावलम्बन और खादी का वातावरण पैदा हो। हमें अपना वातावरण पैदा करना ही होगा। आज जहाँ खादी पहुँची है उसके लिए भी हमें वातावरण पैदा ही करना पडा था। परिणाम में आज खादी को कोई उखाड फेंक नही सकता। वही चीज नई तालीम के बारे में भी कही जा सकती है।

लडके, हमारे स्कूलो से निकलने के बाद कमाई करने के लायक होंगे हम उन्हे काम देनेका वचन नही देते। अगर सरकारी स्कूलो में बडा खर्च करके तालीम पाने वालो को भी सरकार नौकरी देनेका वचन देती। मगर हमारे लडके सरकारी स्कूलो से निकले हुए लडको की अपेक्षा अधिक तेजस्वी होंगे, और आसानी से अपने लिए धन्धा ढूंढ लेंगे।

याद रखना है कि सरकारी मदद के लिए वातावरण पैदा करना पडा था। तब तो सत्ता होते हुए भी कुछ कष्ट हुआ था। हमें जो वातावरण

पैदा करना है वह पुनरुद्धार है-- जो मिटाया गया है उसको नए सिरे से और नए तरीके से उठाना है और हम उसको स्वराज्य पाने का शान्तिमय तरीका समझते हैं। इस तरह से करना हमें आसान होना चाहिए क्योंकि हमने ग्रामोंमें सही दृष्टि से तथा सच्चा प्रवेश ही नहीं किया अतएव यह आसान नहीं लगता है। अब नई तालीम चमत्कार ही है और उसमें यह शक्ति नहीं है तो और क्या है ?

बचपन से लडका-लडकी हमारे हाथों में आए और सात वर्ष तक मानो उससे भी अधिक साल तक हमारी मार्फत शिक्षा पाए और फिर भी यदि उसमें स्वावलम्बन शक्ति न आए तो समझना चाहिए कि हम उसका अर्थ पूरा पूरा ग्रहण नहीं कर पाए। जो आधुनिक शिक्षा हमें दी जाती है वास्तव में उसी के कारण हमारे मन में दुविधा होती है कि शिक्षण स्वावलम्बी हो ही नहीं सकता। मेरा दृढ विश्वास है कि यदि नई तालीम स्वावलम्बी न हो तो शिक्षक वर्ग उसे नहीं समझता। मेरे नजदीक नई तालीम के दूसरे लक्षणों में स्वावलम्बिता उसका एक बडा अंग या लक्षण है। अगर यह बात लडके लडकियों के लिए सही है तो प्रेरणा शिक्षण में तो स्वावलम्बिता होनी ही चाहिए। ऐसा मानना कि प्रौढो को शिक्षण की बात ही समझाना मुश्किल है तो फिर मुझे कहना पडेगा कि यह पुराना भ्रम है। हमारी नई तालीम प्रौढ तालीम का तीन चार लक्षण सिखाना भी नहीं है। प्रौढ तालीम का अर्थ है कि प्रौढों को उनकी भाषा की मार्फत हम उनको शुद्ध और सामाजिक जीवनका सब शिक्षण दें। अगर यह आसानी से स्वावलम्बी न बने तो मेरी दृष्टिमें बडा दोष है। यह भूलना नहीं चाहिए कि नए शिक्षण में सम्पूर्ण सहयोग आरम्भ से ही अमल में आना चाहिए। सहयोग का पूरा अर्थ जो जानता है उसके मन में स्वावलम्बिता का प्रश्न उठ नहीं सकता।

वस्त्र स्वावलम्बन :

गुडियाँ देकर खादी मिलने की सुविधा करनी होगी। थोडे सालों में खादी के अर्थशास्त्र को समझाना होगा-- उद्योग तुम्हारा दाम है। स्वावलम्बन करते हारो तो हारो, करते रहो।

नायकम् ने कहा इन लडको की मार्फत आसानी से हम खादी बना लेंगे। वह बहुत सस्ती होगी । उसमें खूबीदार कला रहती है, कष्ट नही होता। उसके साथ जब प्रौढ शिक्षण आता है तो थोडे सालो में सारे का सारा प्रश्न हल हो जाएगा। कोई खर्च नही। सो पहले तो हम उनका अर्थशास्त्र हजम कर लें। इसमें हारने की कोई चीज नहीं है।

बच्चो की शिक्षा :

बापू – हमारा प्रयत्न तो यही होगा कि जितने लडके है सब को हम खीच लें। जो नही आते है तो समझना चाहिए कि हमारी कोई कमी है। उन्हें या उनके बाप को कोई लालच होनी चाहिए कि हमारे लडके हैं उनका शरीर तगडा हो जाएगा। सभ्यता सीखेंगे। मै नही मानता के बच्चे तोडना फोडना सीखेंगे। मैंने बहुत लडको को सिखाया है परन्तु किसी को तूफान करने नही दिया। मै ऐसी तालीम दूंगा जिसमें विध्वसक नही पर क्रियात्मक क्रिया हो।

इसमें कला होती है। बच्चे जन्म से अच्छे या बुरे नही होते। कुछ अलग तो रहता है मगर उसे अच्छा बनाना है। इसस बच्चा पेट में से ही तालीम पाता है। बच्चे के हाथ पैर भी चलत-और हिलते समय कुछ न कुछ करते हैं। वह नही जानता कि वह बच्चा क्या करता है लेकिन उसकी हालचाल क्रियात्मक होती है विध्वसक नही। इसी पर प्रौढ शिक्षण आधारित है अथवा यही उसका आधार है। प्रौढ शिक्षण बाद में आता है। प्रौढा के कारण बच्चा के सस्कार पडते है। बच्च ठीक तालीम पात है तो शुरू से ही रचनात्मक कार्य करते है।

२ या २॥ साल के लडके लडकियाँ शुरू से हमारे हाथ में आ जाएँगे। उनके हाथ पाँव हमारे बताए जैसे रास्ते इस्तेमाल करेंगे तो वे कहाँ तक जाएँगे मैं तो बाँध नही सकता। मार से नही प्रेम से बढ़ाना है।

शिक्षा :

पहले रगो की पहचान होगी। अक्षर ज्ञान चित्र से शुरू करें १, २ (गिन्ती) 'अ' 'आ' आदि वर्ण चित्ररूप से सीख। अक्षर तो चित्र ही होते है। तीनो और बाद में आएँगे (लिखना पढना इत्यादि)

मगर उसे बताना नहीं होगा। एक के चित्र पहले आए तो फिर सब अक्षर चित्रमय हो जाएँगे। जेल में मैंने एक प्राइमरी रीडर लिखा था। आज की तरह मैं तीन चार कभी नहीं सिखाऊँगा। पहले तो पढ़ना ही हाथ में आएगा। लिखना चित्र से शुद्ध होगा–चित्र कोई तोतेका बनाएगा कोई सूतका बनाएगा। इसके साथ उसकी (बच्चेकी) बुद्धि भी जाती है और पैर भी चलते हैं। उसके लिए सब खेल है। काम और खेल दो विभाग नहीं है। वह आगे जाता है तो इसी तरह उसकी जिन्दगी खेल या काम बन जाती है। मेरे पास चन्द घटा खेल और चन्द घटा काम में दो विभाग नहीं। मैं बरसों से ऐसा चला हूँ। मुझे कभी ख्याल नहीं आता कि अब खेलका समय हुआ। मेरे लिए तो लिखना भी खेल है। बारह वर्ष से ऐसा चलता आ रहा है। आज मैं तो कोशिश करता हूँ कि दोनों लिपियाँ एक साथ सीख लूँगा। यह मेरे लिए कठिन लगे मगर बच्चे को शुरू से सीखना खेल होगा और आगे चला जाएगा तो सब खेल ही खेल होगा। मेरे लिए सच्ची नई तालीम यही है कि लड़के खेलते खेलते सीखें। पर भाषा सीखने में जितना समय दिया उसका एक हिस्सा समय में दूसरी दस लिपियाँ सीख सकते थे।

मॅडम मॉंटेसरी ने एक भाषण में मेरे लिए कहा था कि मैं जानती हूँ (जितना) उससे अधिक यह (गांधी) जानता है। वह बात सच्ची है।

ग्राम व्यवस्था・

सार्वजनिक कोष (पब्लिक फण्ड)

प्रश्न —सार्वजनिक कोष हैसियत के अनुसार या साधारण चन्दे के तौर पर जमा करना चाहिए?

बापू — यह (सार्वजनिक कोष के लिए धन जमा करना) अडल्ट वनफ्रेंज का सा होगा। उससे भी आगे जाएँ तो कम से-कम चन्दा (मिनिमम कलेक्शन) रखें। लड़के लड़कियों को एक पैसा और बड़ोंको एक आना देना है और दें। ज्यादा देनेवाले हों तो दें। हमारी शक्ति पैसे पर नहीं। एक एक पैसे की भी बहुत है। करोड़ों को मिला कर जो शक्ति होती है उसे कोई मार नहीं सकता। वहाँ तो सरकार ने

मवान जप्त कर लिए थे, मैंने कहा जंगल में बैठे रहेंगे। खाना लोग देंगे तो ठीक है नहीं तो भूखे मर जाएंगे। नतीजा यह हुआ कि बडा कैम्प बन गया, उनमें सब बडे आए पर बडे डरते भी थे। बडों के साथ लडना भी होगा उन्हें मैंने कहा है कि जिन्दा रहना है तो गरीबों के ट्रस्टी बनकर रहें। उनके पास से सब धन छीन लूं तो जहर बढेगा। उनसे इसी लिए कहता हूँ ट्रस्टी बनो, कमीशन ज्यादा देता हूँ चाहे चौथाई ले लें। उसमें अभिमान है।

माता —कोष (फण्ड) के साथ प्रबन्ध भी होगा?

बापू – हाँ! उसी में तुम्हारी कला आएगी। ऐसा नहीं कि अँग्रेजों की तरह प्रबन्ध हो। वहाँ हमारा द्वारपाल ही तीन चौथाई खा जाता है। तुम्हारा प्रबन्ध इतना सादा होगा कि उसमें चोरी का मौका कम मिलेगा।

"शहर अपनी हिफाजत आप कर सकते हैं। हमें तो अपना ध्यान गाँवों की ओर लगाना चाहिए। 'हमें उन्हें उनकी संकुचित दृष्टि, उनके पूर्वग्रहों और वहमों आदि से मुक्त करना है, और इसे करने के सिवा इसका और कोई तरीका नहीं कि हम उनके साथ उनके बीच में रहें, उनके सुख-दुख में हिस्सा लें और उनमें शिक्षा का तथा उपयोगी ज्ञान का प्रचार करें।'

—मो० क० गांधी

शिक्षकों को स्वतंत्रता चाहिए

विनोबा

[अखिल भारत नई तालीम समिति की ओरसे सेवाग्राम में तारीख १८-१९ और २० सितम्बर को 'शिक्षकों का प्रशिक्षण' विषय पर एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई थी। इसकी अध्यक्षता श्री श्रीमन्नारायण ने की थी। विचार गोष्ठी में शामिल हुए शिक्षकगण तारीख २० सितम्बर को ऋषि विनोबा से मिलने पवनार आश्रम गए थे। उस अवसर पर पूज्य विनोबाजी ने जो विचार व्यक्त किए वे यहाँ दिए जा रहे हैं।]

विनोबाजी —शंकराचार्य ने एक सुन्दर वाक्य लिखा है—'गुरोस्तु मौन व्याख्यानम्। शिष्यास्तु छिन्न संशया'—गुरु ने मौन व्याख्यान दिया और शिष्य छिन्न संशय हो गए। गुरु मौन व्याख्यान नहीं देता और बोलता तो शिष्यों को शंका उत्पन्न होती। लेकिन मौन व्याख्यान दिया तो सब शंकाएँ समाप्त हो गईं।

प्रश्न —संपूर्ण क्रांति के विषय में आप क्या सोचते हैं? शिक्षा का उसमें क्या सहयोग हो सकता है? शिक्षक उसमें क्या करें?

विनोबाजी —एक बार डा जाकिर हुसेन से बाबा की बातें हो रही थीं। बाबा ने कहा आज हालत यह है कि आज जो तालीम चल रही है वह अगर हम लोगों को नहीं देते हैं तो लोग बेवकूफ हो जाते हैं और अगर वह तालीम देते हैं तो वे बेकार बन जाते हैं। तब उन्होंने कहा, आज की तालीम ऐसी है कि उससे लोग बेकार और बेवकूफ, दोनों हो जाते हैं। तालीम का यह वर्णन उन्होंने किया था।

तालीम के बारे में कहने का कुछ भी बाकी नहीं है। बहुत कुछ कहा है और वह सब प्रकाशित हुआ है, किताबें भी बनी हैं। जो कुछ बचा है वह करने का है। मेरा ख्याल है, आप सब करनेवाले लोग होंगे

या सुननेवाले हैं? सुनने को ऐसी मजा है कि एक कान से सुन सकते हैं, दूसरे कान से छोड सकते हैं। इस वास्ते मैं आशा करता हूँ कि आप सुननेवाले नही, करनेवाले भी होंगे।

आज कहा जाता है कि नई तालीम के लिए आज की सरकार अनुकूल है। भगवान जानें कौन अनुकूल है और कौन प्रतिकूल है। मुख्य बात यह है कि आपको सरकार की तरफ देखना नहीं चाहिए। सरकार आएँगी और जाएँगी। आचार्य रहेंगे। इस वास्ते आपको पॉलिटिक्स की तरफ, सरकार की तरफ देखना ही नही चाहिए। उसकी मदद की जरूरत नही है। उसकी मदद माँगनी भी नही चाहिए। शिक्षकों को स्वतन्त्रता चाहिए। जो स्वतन्त्र नही है वे शिक्षक ही नही हैं। वे तो गुलाम माने जाएँगे।

नंबर एक में प्रतिष्ठा है माता की। नंबर दो में प्रतिष्ठा है पिता की। और नंबर तीन में आचार्य की। उपनिषद ने कहा है—मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। इसे आपने भी सुना होगा।

उसमें यह भी आया है कि आचार्य शिष्यों से कहते हैं कि हमारी जो अच्छी चीजें हैं वे लेनी चाहिए और जो अच्छी चीजें नही हैं वे नही लेनी चाहिए। ऐसा स्वातन्त्र्य शिष्यों को, विद्यार्थियों को उपनिषद ने दिया है। वेद में भी वर्णन है गातुविद्! शिक्षक को गातुविद् कहा है। गातु यानी मार्ग। मार्ग दिखानेवाला!! शिक्षाशीचेष्ट गातुविद्! हे शिक्षक, तू उत्तम शक्तिशाली, तू मार्गदर्शक है। तू मार्ग दिखा। तो शिक्षक मार्ग दिखाएँ और लोग उस पर चलें।

आज क्या होता है? आज सरकार शिक्षा देती है। सरकार संस्थाएँ बनाती है मार्ग दिखाती है। बिलकुल पराधीन हो गए हैं शिक्षक! परिणाम यह हुआ है कि हम उत्तरोत्तर बेकार, गुलाम होते जा रहे हैं।

सम्पूर्ण क्रान्ति के बारे में सवाल पूछा है। सम्पूर्ण क्रान्ति का विचार मुझे अच्छा लगता है। संघर्ष क्रान्ति मे जातिभेद मिटाने की बात है। जातिभेद मिट सकता है, उसकी एक शर्त है। मांसाहार

बन्द होना चाहिए। मान लीजिए, कोई जैन है, जो जातिभेद मिटाना चाहता है और अपनी लडकी एक हरिजनको या गिरिजन को देना चाहता है। वह हरिजन या गिरिजन मांसाहारी हो तो जैन अपनी लडकी उसके घर नही देगा। इस वास्ते यह बात ध्यान में रखनी होगी कि जातिभेद मिटाना हो तो मांसाहार बंद होना चाहिए। अन्यथा संपूर्ण क्रान्ति या समग्र क्रांति केवल बोलने की बात होगी और उससे कुछ होगा नही। मैं उस विचारको पसन्द करता हूँ।

प्रश्न —प्रजातंत्र में जनता और सरकार में तो कोई अंतर नहीं है। इसलिए प्रशासन से मदद न लेना किस हद तक सही है?

विनोबाजी —प्रजातंत्र में, जनता और सरकार में बहुत अंतर है। होता क्या है? एक एक पार्टी सामने आती है और कहती है कि हमें वोट दीजिए तो हम आपका उद्धार करेंगे। आजकी यह सरकार दस साल में गरीबी मिटा देगी, ऐसा कहा गया है। तो, आज जो गरीब है, उसे कहो कि संतुष्ट रहो, दस साल में तुम्हारी गरीबी मिटेगी। वह कहेगा, मैं तो आज ही गरीब हूँ। यह सरकार यह करेगी, वह सरकार वह करेगी। गीता क्या कहती है? उद्धरेत् आत्मनात्मानम्।' अपना उद्धार हमे खुद करना चाहिए। लेकिन आज तो जो आता है, वह कहता है, हमे वोट दो, हमे वोट दो। कोई जनता से यह नही कहता कि तुम्हारे उद्धार तुम्हारे हाथ में है। इसलिए गाँव-गाँव को मजबूत बनाना चाहिए। गाँव में सब लोग मिलजुल कर काम करें। गाँव व्यसनमुक्त, अदालतमुक्त हो। गाँव में कोई बेकार न हो। ये सब बाते गाँव में हो। इसलिए गाँव को समझाना चाहिए,' तुम्हारा उद्धार तुम्हारे हाथ मे है।'

प्रश्न —आज की शिक्षा में अध्यात्म को कैसे प्रतिष्ठित किया जा सकता है?

विनोबाजी —एक सुन्दर उपाय है। लेकिन कोई करता नहीं, सब सुनते हैं। होली के दिन सब कचरा वगैरह जला देते है। वैसे तय करो कि हम सारे विद्यार्थी स्कूल छोड देते हैं। शिक्षक सारे बेकार बन रहे है, ऐसा होगा तो सोचने के लिए बाबा के पास आएँगे कि बाबा,

क्या करना है जब, सब स्कूल-कालेज खाली हो गए हैं। यह उपाय है। बाबा तो कहेगा, छोड़ दो स्कूल-कालेज। लेकिन आज बाबा को कौन पूछेगा? आज तो पूछेंगे शिक्षामंत्री को!

सब व्यवस्थाएँ गलत हैं। इसलिए मैंने कहा कि एक दिन जाहिर कर के सब विद्यार्थी स्कूल छोड दें। तो फिर शिक्षा विभाग समाप्त होगा और शिक्षा में सुधार होगा। क्या यह हिम्मत है आप लोगो की? हिम्मते मर्दां तो मदते खुदा।

प्रश्न —लेकिन क्या यह अनिवार्य है?

विनोबाजी —यह शिक्षा पद्धति सुधारने का एक उपाय है। अनिवार्य नही है। मुख्य बात यह है कि शिक्षा स्वतंत्र चाहिए। वैसा आप रखिए शक्तिपूर्वक युक्तिपूर्वक सरकार के सामने कि शिक्षा स्वतंत्र हो, सरकार पर अवलंबित न हो।

प्रश्न —शिक्षा के द्वारा जागतिक शान्ति एक भारतीयके नाते इसे कैसे समझे?

विनोबाजी —भारत में पन्द्रह विकसित भाषाएँ हैं २०० अविकसित भाषाएँ हैं। जब मैं मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्र में घूमता था तब एक सभा में लोगों से पूछा, क्या गांधीजी का नाम आप लोगो ने सुना है? तो उन लोगों ने पूछा कौन गांधीजी? गांधीजी कौन उनको पता ही नही था। फिर पूछा जीजस क्राईस्ट का नाम सुना है? तो उन्होंने तुरन्त कहा सुना है। क्या कारण हुआ जीजस क्राईस्ट को जानने का? कारण उनको किताब मिली है। दो-सौ अविकसित भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद हो गया है। इतना पराक्रम उन लोगोंने किया। हम सारे शिक्षकों ने मिलकर कौन-सा पराक्रम किया है? सारे आदिवासियोंके लिए आपने क्या किया है? यह सारी सोचने की बात है। शिक्षकों का गाँव-गाँव में जाना चाहिए और गाँव गाँव को आजाद करना चाहिए। वहाँ गाँव की सभा बने, गाँव में कोई बेकार न रहे, गाँव की शिक्षा गाँवके हाथ में हो, गाँव व्यसनमुक्त हो, अदालतमुक्त हो। यह काम शिक्षक करें।

मैंने कहा था गाँव गाँव से जो टैक्स वसूल करते हैं, वह अनाज में वसूल हो। आज क्या होता है? अनाज गाँववालों के हाथ में पैसा व्यापारियों के हाथ में। व्यापारी सस्ता खरीदते हैं महँगा बेचते हैं। व्यापारियोंका धंधा चलता है और सरकार को पैसा मिलता है। अगर सरकार गाँववालों से टैक्स के रूप में अनाज ले तो रेल्वे आदि कर्मचारियों तनखा का एक भाग अनाज में दे सकेगी। सरकार कहती है कि हम अनाज रखेंगे तो चूहे खा जाएँगे। मैंने कहा बिल्लियाँ रखो। टैक्स अनाज में लेने की बात अव्यवहार्य नहीं है। चीन में यह बात चल रही है। यहाँ आप करवाइए। बड़ी चीज है। इतना भी आप करेंगे तो बड़ी बात होगी। गाँव आजाद होंगे। गाँव के लिए बाबा ने संदेश दिया है थोड़े में—'मक्खन खाओ कपड़ा बनाओ।'

×

वृक्ष के साथ चिपके रहने से ही शाखाएँ सजीव बनी रह सकती हैं। वृक्ष है प्राचीन परम्परा और शाखाएँ हैं नये संस्कार। हम नये संस्कार ग्रहण करें लेकिन प्राचीन परम्परा से जुड़े रहकर। परिणामस्वरूप एक रास्ता भी बना रहेगा और प्राचीन परम्परा भी खंडित नहीं होगी।

—विनोबा

देश की नई शिक्षा पद्धति

मोरारजी देसाई

मैं देश की शिक्षा पद्धति को लेकर कुछ अनिवार्य परिवर्तन करने के लिए बहुत उत्सुक हूँ। मैंने प्रधान मंत्री का उत्तरदायित्व लेने के बाद 'राष्ट्रीय शिक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्' और 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के प्रमुख अधिकारियों के साथ सलाह-मशविरा किया है। हम अपनी शिक्षा पद्धतिमें कुछ बुनियादी फेरफार करने पड़ेंगे और सो भी एकाध वर्ष में ही। आज की हमारी शिक्षा-व्यवस्था का देश के गरीब लोगों और गाँवों में रहने वालों के साथ मेल नहीं बैठता इसे सभी स्वीकार करते हैं। इसलिए कोई न कोई राष्ट्र-प्राप्ति-ध्येय सामने रखकर हमें अपनी व्यवस्था पर विचार करना पड़ेगा। जो पद्धति चली आ रही है, यदि उसमें बुनियादी परिवर्तन के प्रयत्नोंमें ज्यादा देर होती है तो देश का बहुत नुकसान होगा। इसके साथ ही यह भी देखना होगा कि हमारी शिक्षा-व्यवस्थाका परिणाम समाज की विषमताओं को बढ़ाना न बने। आज की पद्धति उन विद्यार्थियोंको ध्यान में रखकर रूढ हुई है जिन्हें अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं। आवश्यक है कि राष्ट्र के विकास के लिए शिक्षा शुरू से अन्त तक सभी तबकों के लोगों के लिए किसी न किसी उत्पादक प्रवृत्ति के साथ जुड़ी हो। यदि ऐसा नहीं होता है तो शिक्षा पद्धति में परिवर्तन भी नहीं हो सकता—गाधीजी ने इस विषय पर मौलिक चिंतन किया और दुनिया के सामने बुनियादी तालीमकी रूपरेखा रखी। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका, साबरमती, आश्रम, गुजरात विद्यापीठ सेवाग्राम आदि स्थानोंमें इसके सफल प्रयोग किए और बाद में सारे देश के सामने इसे रखा। १९६५ में मैंने भी इस पद्धति पर जोर दिया था और शिक्षाविदोंने उसे स्वीकार भी किया था। किन्तु सरकारी अथवा गैरसरकारी संस्थाओं ने उस पर जो अमल किया उसे बहुत ढीला कहा जाएगा हमने संविधानकी

दृष्टिमें प्राथमिक शिक्षाको जिस तरह सब जगह फैलाना था उसकी ओर भी ध्यान नही दिया। प्राथमिक शिक्षा की समस्या को किस तरह से हल किया जाए इसपर प्रजातंत्र की सफलता का आधार है। हमने सात वर्ष की प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिक कार्यक्रम को सफल बनाने के बदले नई पद्धति के नाम से दस वर्ष की शिक्षा का विकास करने की कोशिश की और नतीजा यह हुआ कि प्राथमिक शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा के पोषक के रूप में जिस तरह ग्रहण नही किया जा सकता उसी प्रकार माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा के पोषक रूप में ग्रहण नही किया जाना चाहिए। यदि हम ऐसा करते है तो ऐसे अधिकांश विद्यार्थी जिन्हें आगे नही पढना है उनका हित नही सधने पाता। प्राथमिक शिक्षा का काम देशवासियोंको अपनी-अपनी मातृभाषा में व्यापक रूप में नागरिक शिक्षण देना है। सात वर्षमें एकदम अनिवार्य, प्राथमिक शिक्षा सात वर्ष के पूर्व की जा सकती है। यह सबसे पहला काम है। इस दृष्टि से सारे देश के पाठ्यक्रम को एक जैसा बनाना जरूरी नही है। प्राथमिक शिक्षा में मिडिल स्कूल का जो भेद रखा गया है उसे भी हटा देना चाहिए और एक सात वर्ष की समूची शिक्षा के स्वरूप पर विचार किया जाना चाहिए जिसे हम सच्चे रूप में प्राथमिक कह सके। देश के कुछ हिस्सो में आठ वर्षो की प्राथमिक शिक्षा है जब कि कुछ जगह सात वर्ष की है। यह असगति भी दूर की जानी चाहिए। यह काम करने के लिए केन्द्रीय सरकार का मुहताज रहना आवश्यक नही है। राज्य सरकारें और सार्वजनिक संस्थाएँ अपने अपने स्थानीय साधनो की दृष्टि से इस प्रकार की पद्धति अपना सकती है। प्राथमिक शिक्षा के दौरान छुट्टियो की जो आज की प्रथा है उसे छोडकर उसका मेल जीवन के साथ बैठाया जाना चाहिए। जैसे छुट्टियाँ ऐसे समय पर ही दी जाएँ जब खेतीका काम जोरो पर चल रहा हो। उस समय विद्यार्थी अपने गाँवो में जाकर उत्पादक श्रम में हिस्सा बँटा सकते है और ऐसी योग्यता प्राप्त कर सकते है जो शालामें दे सकना सहज ही सम्भव नही होता। यदि छुट्टियोंकी पद्धति में परिवर्तन हो जाए तो विद्यार्थी अपनी जीवन व्यवस्था से जुड रह सकते है।

— निरक्षरता हमारी दूसरी गम्भीर समस्या है। हमारे देश में चौदह से पैंतीस वर्ष तक की अवस्था के कोई तेईस करोड़ निरक्षर हैं। यो स्वीकार किया जाना चाहिए कि इन निरक्षर लोगों में पढ़े लिखे लोगों से समझ कम नहीं है, ज्यादा ही है। फिर भी निरक्षरता को दूर करना है और इसके लिए अधिक से अधिक दस वर्ष का समय लगना चाहिए। देश में लगभग साढ़े तीन लाख शिक्षक हैं और विद्यार्थियों की सख्या दस करोड़ है। सेना पर होने वाले खर्च के बाद शिक्षा पर होने वाले खर्च का नम्बर आता है। प्रतिवर्ष इस पर पच्चीस सौ करोड़ रुपये के लगभग खर्च किया जाता है— यह छोटा-मोटा खर्च नहीं है। यदि इतनी जबर्दस्त राष्ट्रीय सम्पत्तिका खर्च करनेवाला पढ़ा-लिखा तबका इसके बदले में कुछ भी देने लायक न बने तो राज्य या समाज की ओर से इस खर्च का समर्थन किस प्रकार किया जा सकता है?

शिक्षा पद्धति को सामान्य लोगों के जीवन के साथ जोडनेके लिए आवश्यक है कि उन्हें मूलभूत और सीधे-सादे जीवनकी शिक्षा देनी चाहिए। झूठे समृद्धि की लालसा पढ़े लिखे वर्ग को सामान्य जनता से अलग कर देती है। इसलिए शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो कि शिक्षित व्यक्ति समाज के लिए आवश्यक चीजों का उत्पादन करने के योग्य बने। इसमे जीविका की अलगसे चिंता करना आवश्यक नहीं रहेगा और उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक समता भी बढ़ेगी।

जीवन व्यवस्था के साथ शिक्षा का मेल तभी बैठ सकता है जब हम उसे विकेन्द्रित करें। सरकार उसमें कम से-कम दखल दे प्रदेश अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार अपनी शिक्षा पद्धति चलाए। इतना ही नहीं हर राज्य के अलग-अलग अचल भी शिक्षा देते हुए अपनी आवश्यकताको दृष्टि में रखें।

गांधीजी ने जब यह कहा कि शिक्षा में उत्पादक श्रम का समावेश होना चाहिए तो उनका तात्पर्य स्थानीय समाज की आवश्यकताओं को पूरा कर सकने वाली शिक्षा के विकास से था। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ज्यादा से ज्यादा हमारी चौथाई आबादी को छूती है। पचहत्तर प्रतिशत आबादी से तो उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं आता। आगामी दस वर्षों

में इस अनुपात को और कुछ नही तो उलट तो देना ही चाहिए। प्राथमिक शिक्षक और विश्व विद्यालय के स्नातक कर्त्तव्य दृष्टि से आगे आकर प्रौढ शिक्षण का काम आगे बढाएँ। इस तरह वे प्रति वर्ष दो करोड निरक्षरों को साक्षर कर सकते है। उन्हें यह उत्तरदायित्व उठाना ही चाहिए। प्रौढ शिक्षा से विभिन्न व्यवसाय की कुशलता बढे इसे ही देखना है। इसी तरह जिन्होने अपना पढना बीच में ही बन्द कर दिया है उन्हें भी घर बैठे आगे पढने की सुविधा जुटानी चाहिए, नही तो अनपढ लोग धीरे धीरे अपढ या निरक्षर होते जाते है। मुझे बताया गया है कि यदि चौदह वर्ष की उम्र तक प्राथमिक शिक्षण दिया जाना हो तो १९८५ तक आज की साढे छह करोड विद्यार्थियो की सख्या को बढाकर साढे आठ करोड तक ले जाना है। इसमे ऊपर के वर्षो में आज डेढ करोड विद्यार्थी है। इसे अगले दस वर्षो में साढे चार करोड तक ले जाना है। इसका अर्थ यह हुआ कि आगामी दस वर्षो से हर वर्ष म ५२ लाख नए विद्यार्थी प्राथमिक शालाओ में आने चाहिए। आज पिछले तीस वर्षो की औसती २४ लाख स अधिक नही है। और पिछले तीन वर्षो म तो वह ११ लाख स भी कम हो गई है। य आकड हमारी प्राइमरी शिक्षा की गभीर समस्याको सूचित करते है। यह स्पष्ट है कि इतनी जबर्दस्त सख्या के लिए स्कूलोका खोला जाना कठिन है, इसलिए जरूरी है कि खेती और गृह उद्योग आदि करते हुए बालको को यांत्रिक शिक्षण का लाभ भी दिया जाए। और इसी प्रकार हम अपनी विशाल जनसख्या को निरक्षर बने रहनस बचाएँ। इस सन्दर्भ में लडकियो के शिक्षण पर और भी विशेष ध्यान देना पडेगा।

प्राथमिक शालाओ म पब्लिक स्कूल नाम से कुछ सस्थाएँ चल रही है। यह असल में मुट्ठीभर भद्र कह जान वाले समाज की शालाएँ है। इसलिए गरीब माता-पिता भी इनक कारण एक निरर्थक होड मे पड जाते है। जरूरी है कि सात साल का प्राथमिक शिक्षण सच्चे अर्थ में पब्लिक अर्थात् सार्वत्रिक किया जाना चाहिए। डा कोठारी आयोग ने कॉमन स्कूल पर अमल करने की बात कही है। नगरपालिकाएँ या पचायतें अपनी पाठशालाओ में जिन साधनो स शिक्षा की व्यवस्था करती

है उनके मुकाबले में कई गुना समृद्धि साधनों के उपयोग के द्वारा पब्लिक स्कूल देश में सामाजिक विषमता को बढ़ाते रहते हैं। इसलिए पब्लिक स्कूलोंकी व्यवस्था कम से कम प्राथमिक शिक्षण की हद तक समाप्त कर देनी चाहिए। १९६५ में मैंने यह बात शिक्षा आयोग के सामने कही थी। हमारा तथाकथित शिक्षित वर्ग इस भेदभाव को समाप्त करने का विरोध करता है। वह भूल जाता है कि शिक्षा की खूबी गुणवत्ता पर आधारित है। शिक्षा देने के साधनों पर नहीं।

अलग से बालमन्दिर चलाने के बजाय प्राथमिक शालाओं में ही पूर्व प्राथमिक वर्ग चलाए जाने चाहिए। हमारा देश बाल मन्दिरों का खर्च अलग से उठाने की हालत में नहीं है। माध्यमिक शिक्षण की हद तक ग्यारहवें, बारहवें वर्गों में पाठ्यक्रम की विविधता और अलग-अलग व्यावसायिक विषयों को रखना जरूरी है। किन्तु यदि हम इस दृष्टि से ग्यारह बारह वर्ग बना डाल तो वह एक बड़ा बोझ बन जाएगा। माध्यमिक शिक्षण का उद्देश्य कोई एक व्यावसायिक शिक्षण होना चाहिए। इसके लिए अलग अलग व्यवसाय की शिक्षा संस्थाओं का खोलना जरूरी नहीं है। सामान्य शिक्षा चलाने वाली संस्थाओं में भी विभिन्न व्यवसायों का तत्व बढ़ाते चले जाएँ तो यह ध्येय साधा जा सकता है।

विश्वविद्यालय में पढ़ना सबके लिए जरूरी नहीं है। इसे ध्यान में रखकर नौकरियाँ देते समय विभिन्न कसौटियाँ सामने रखनी पड़ेगी। हर जवान कुछ इस तरह का काम कर सके कि वह अपने काम के द्वारा अपनी आवश्यकता के परिमाण में वेतन भी प्राप्त कर। करोड़ों निरक्षरोंमें प्रौढ़ शिक्षण का फैलाव करते हुए हम उन्हें तीन वर्षों तक कोई व्यवसाय विशेष भी सिखाएँ। यदि इस बीच में उसे कोई छोटी-मोटी नौकरी भी मिल जाती है तो वह उसे स्वीकार कर सकता है। इस तरह तरुणों में बेकारी का भय समाप्त करने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। बेकारी के भय में आज हमारी तरुण शक्ति निराशा के गर्त में उतरती जा रही है। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को चाहिए कि वे कम से कम छह महीने किसी श्रमिक समाज या गाँव में जाकर कोई काम सीखें। और यह भी अपने शिक्षण का अंग मान कर। राष्ट्रीय सेवा योजना के

द्वारा गरीब और पिछड़े हुए ग्राम-विकास के प्रयत्न चल रहे हैं। किन्तु वे पूरे नहीं पड़ते। वर्ष के अन्त में कोई पन्द्रह दिन का शिविर लगाकर राष्ट्रीय सेवा योजना मान लेती है कि कर्तव्य पूरा हो गया। इससे देश के विकास की दिशा में कोई बड़ा परिणाम सामने नहीं आ सकता। आवश्यक यह है कि अब विश्वविद्यालय का हरेक स्नातक जिस शहर में शिक्षा ग्रहण कर रहा हो उस शहर के कारखानों में काम करता हुआ अपने विषयों का अध्ययन करे और श्रमजीवी वर्ग खेतों आदि में मजदूरी करते हुए किसी उत्पादक प्रवृत्ति के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करे। और प्रौढ़ शिक्षण सार्वजनिक स्वास्थ्य, विभिन्न उद्योगों आदि के द्वारा बहुत अच्छे ढंग से लागू किया जा सकता है। विश्वविद्यालय की शिक्षा को जो एक सामाजिक प्रतिष्ठा मिल गई है, यदि हम उसमें शारीरिक श्रम को जोड़कर बुनियादी परिवर्तन नहीं करते तो नीचे की पाठशालाओं में भी उस तत्व को दाखिल करना मुश्किल हो जाएगा। हमारा आज का शिक्षा जगत 'ऊर्ध्वमूलमध शाखा' की स्थिति में है। विश्वविद्यालय की परम्परागत पोथी-पुराण शिक्षण व्यवस्था अविलम्ब बदल दी जानी चाहिए।

परिवर्तन की प्रक्रिया को तो तत्काल ही प्रारम्भ कर दिया जाना है। हमने १९६७ में स्वीकार कर लिया था कि सारी दुनिया में शिक्षा मातृभाषा में दी जाती है हम भी विश्वविद्यालय तक की शिक्षा मातृभाषामें देंगे और इस काम को १९७७ तक पूरा कर लेंगे। मुझे बताया गया है कि कोई सत्तर विश्वविद्यालयों ने इस सिद्धान्त पर अमल भी किया है, फिर भी उसकी गति मंद है जो तेज की जानी चाहिए। तद्विषयक सेवा को समाप्त करके एकाध बरस में ही साइन्स टेक्नालाजी आदि सारी विद्याशाखाओं पर इसे लागू कर दिया जाना चाहिए। यदि हम सामान्य जनता को साइंस और टेक्नोलॉजी का लाभ देना चाहते हैं तो यह मातृभाषा के माध्यम से हो सकता है। भारतीय धर्म परायण समाज में विज्ञान और धर्म परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि विज्ञान को आध्यात्मिक शक्ति का सहारा नहीं मिलता तो वह मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं बनता। इसलिए गरीब और पिछड़े

हुए लोगों की दृष्टि से भी विज्ञान की खोज और उसे प्रसारित करने के तरीके महत्वपूर्ण गिने जाएँ। ग्राम विकास के अनुरूप टेक्नालाजी को विकसित करना प्राथमिक कर्तव्य बन जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप का मैं शुरू से विरोधी रहा हूँ। राज्य को चाहिए कि वह विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान करे किन्तु विश्वविद्यालयों को भी चाहिए कि वे इसका उपयोग पूरे संयम और उत्तरदायित्व से करें। यदि राज्य हस्तक्षेप करता है तो उसका विरोध होना चाहिए। किन्तु स्वायत्तता के नाम पर विश्वविद्यालय भी राष्ट्र की जरूरतों की अनदेखी नहीं कर सकते। इसी प्रकार शिक्षकों को भी चाहिए कि वे अपने काम की ओर विशेष ध्यान दें। विश्वविद्यालयों को राजकीय हस्तक्षेप से मुक्त रखने का यह मतलब नहीं है कि जिस व्यक्ति को राजनीति में दिलचस्पी हो और जो शिक्षा को भी सच्चे मन से अपना क्षेत्र मानता हो उसे विश्वविद्यालय के काम काज में हाथ बँटाने की गुंजाइश नहीं है। शिक्षित वर्ग में राजनीतिक और राजनीति-विहीन व्यक्ति जैसा कोई भेद नहीं है। मुख्य बात विश्वविद्यालय का सूत्र संचालन करने वाले लोग किसी राजकीय पक्ष में हैं या नहीं— न होकर यह है कि वे साधन-शुद्धि में विश्वास करते हैं या नहीं। प्रजातंत्र को अछूत मानना अवांछनीय है— इतना ही नहीं वह हानिकारक है। राजकीय पक्ष अपनी विचारधारा विद्यार्थियों तक पहुँचाएँ, यह समझा जा सकता है। मुख्य बात कि विचारधारा किस पद्धति से मर्यादा में रहकर पहुँचाई जा रही है, इसी पर ध्यान रखना है। सत्तारूढ दलों को समझना चाहिए कि विश्वविद्यालयों के संचालक सर्व सामान्य नियमों का उल्लंघन किए बिना राजनीतिक विचारों का प्रचार होने दे सकते हैं। किन्तु वे किसी राजकीय आन्दोलन में नहीं पड़ सकते। नियमानुसार सत्याग्रह करने का अधिकार सबको है, किन्तु उसका मनमाना उपयोग नहीं होना चाहिए और न इस तरह से होना चाहिए कि वातावरण में क्षोभ या हिंसा फैले।

मैं स्वीकार करता हूँ कि शिक्षा संस्थाओं और शिक्षा के दैनंदिन कार्य में शिक्षकों का हाथ होना चाहिए। किन्तु सारा का सारा संचालन

उन्ही के हाथ में हो यह भी हितकारी नही है। समाज के नागरिक और शिक्षक इस दिशा मे हाथ बँटाएँ। आज राज्य शिक्षकों के वेतन और सेवा की सुरक्षा की जिम्मेदारी लेता है। इसके बाद शिक्षकों का काम शिक्षा को तेजस्वी और उपयोगी बनाकर उसे अधिकाधिक इन्ही दिशाओं में ले जाना है। जीवन की बुनियादी जरूरत पूरी हों, इतना तो वेतन हर शिक्षक को मिलना ही चाहिए। किन्तु अगर वे समृद्ध समाज से होड़ लेने लगें तो वह कैसे बनेगा। शिक्षकों के लिए विचार की स्वतन्त्रता आवश्यक है जिससे वे निर्भय होकर अपनी बात लोगों के सामने रख सकें। किन्तु अगर वे शिक्षा की संस्था को संसद या विधान सभा सरीखा प्रजातन्त्रीय रंगमच बनाने का प्रयत्न करें तो उसे भी उचित नही माना जाएगा। हम प्रजातन्त्र के बाहरी स्वरूप को लेकर इतना उलझ गए है कि उसकी आत्मा हमारी आखों के आगे से ओझल है। हमारे शिक्षण-संस्थान प्रजातत्र की आत्मा को समझने के सस्थान है। उसके बाहरी स्वरूप पर अड़ना अनावश्यक है।

आज हमारा अधिकाधिक ध्यान गाँवों की ओर रहे, हम निरक्षरता निवारण करे, नशाबन्दी के विचार को फैलाएँ, आदिवासियो और ग्रामोद्योगों का विकास करें— यही हमारी आज की शिक्षा-दृष्टि होनी चाहिए। हम इसी प्रकार गाधीजी के स्वप्न के ग्राम स्वराज्य को संकल्प-पूर्वक सिद्ध करें।

[१८ अक्टूबर को गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद में दिए हुए दीक्षांत भाषण के कुछ अश]

गांधीवादी योजना की रूपरेखा

श्रीमन्नारायण

यह बात साफ तौर पर स्वीकार कर ली जानी चाहिए कि हमारी आर्थिक योजना को अब तक गांधीवादी आधार पर एक बार भी तैयार नही किया गया। पिछले तीस वर्षों तक महात्मा को हम राष्ट्रपिता कहकर पुकारते रहे लेकिन उसके आदर्शों और विचारो को हमने योजनाबद्ध विकास के एक अग के तौर पर कार्यरूप में उतारने की कभी कोशिश नही की। जनता सरकार असल में पहली बार नये भारत के निर्माण में गाधीवादी सिद्धान्तो की मदद लेने के लिए कृत-सकल्प हुई है। मुझे उम्मीद है कि ये लोग इस काम को बिना किसी पूर्वाग्रह के एक मिशन के तौर पर करेंगे।

यहाँ पर राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के लिए कुछ दिशा निर्देशो का उल्लेख उपयोगी होगा जिन्हें छठी योजना बनाते समय सरकार ध्यान में रख सके। यह तो स्पष्ट ही है कि गाधीजी के विचारो के अनुरूप बनी आर्थिक योजना में कृषि के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाएगी। यद्यपि हमारी पचवर्षीय योजनाओ में कृषि के विकास को आर्थिक प्रगति का आधार बताया जाता रहा, लेकिन सचाई यह है कि कृषि, सिंचाई, पशु पालन, डेरी उद्योग तथा कृषि उद्योगो आदि को उनकी जरूरतो को देखते हुए बहुत कम पैसा मिला। भूमि सुधारो पर भी रुक-रुक कर और बडे बेमन से अमल हुआ। और इसका नतीजा यह हुआ कि छोटे किसान और भूमिहीन मजदूरोको विकास का पूरा फायदा नहीं मिल सका।

भोजन चूंकि जीवन की सबसे आवश्यक वस्तु है, अत भारतीय कृषि को देश के विभिन्न भागो की पोषक आहार सम्बन्धी जरूरतो को

पूरा करने लायक पर्याप्त अन्न पैदा करना चाहिए। इस लिहाज से अन्न, दालो तथा मोटे अनाज के मामले मे भी अन्तर-क्षेत्रीय विषमताओ-को योजनाबद्ध तरीके से दूर करना होगा। पिछले दो दशक का अनुभव हमें बताता है कि इस सिलसिले में अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार और परिवहन के विकास के बावजूद हर क्षेत्र या उपक्षेत्र की खाद्यान्नो की जरूरत को पूरा नही किया जा सका। खाद्यान्नो के अलावा लोगो को सतुलित आहार उपलब्ध कराने के ख्याल से दूध, फल और सब्जियो के उत्पादन की तरफ भी ध्यान देना होगा।

विशेषकर पिछडे क्षेत्रो में छोटी सिंचाई योजना पर और अधिक ध्यान दिये जाने की जरूरत है। इसके अलावा अगले पाँच सालो में भारत के सभी गाँवो म पीने के पानी को उपलब्ध करवा दिया जाना चाहिए। मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए वनस्पतिक खाद में रासायनिक खाद को ठीक तरह से मिलाया जाए। खेती में अति-मशीनी करण के बजाय प्रति एक पैदावार बढाने के लिए परम्परागत औजारो और विधि में आवश्यक सुधार के प्रयत्न किये जाने चाहिए। कृषि क्षेत्रो में सहकारिता आन्दोलन को और अधिक व्यापक बनाने के लिए छोटे तथा मध्यम किसानो को और बडी तादाद में उनमें शामिल किया जाना चाहिए। सहकारी खेती को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। पर जमीन को सहकारी खेती के दायरे म लाने के लिए कोई जोर जबरदस्ती न की जाए। खाद्यान्नो तथा पशुओ के हमारे उत्पादन में वृद्धि के लिए मिश्रित उपज की जानी चाहिए। लोगो की प्राथमिक जरूरतो को पूरा करने के ख्याल से हर क्षेत्र को आत्मनिर्भर बनाने के लिए गाँव पचायतो को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए ताकि वे हर गाँव या गाँवो के समूहों में फसलो सम्बन्धी कोई योजना बना सकें।

भूमिहीन मजदूरो को ऐसे सहकारी श्रमिक सगठनो के रूप में सगठित किया जाना चाहिए जो अतिरिक्त श्रमशक्ति को खेती के अलावा गाँव में ही कृषि उद्योगो में खपा सकें। स्थानीय जरूरत के आधार पर ईंधन और कृषि औजार बनाने के लिए आवश्यक लकडी जुटाने की खातिर वनो की खेती का विकास किया जाना चाहिए। गाँवो में सार्व-

जनिक स्वास्थ्य के कार्यक्रम के तौर पर आवश्यक जडी बूटी उगाए जाने के काम को बढावा दिया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रो में सफाई, खाद रोशनी, ऊर्जा की पर्याप्त पूर्ति के ख्याल से बडे पैमाने पर गोबरगैस के सयत्र लगाए जाने चाहिए। जैसा कि विनोबाजी ने सुझाया है लगान को खाद्यान्न की शक्ल में वसूल किया जाना चाहिए ताकि उनका एक भडार बनाया जा सके। अलाभ कर जोतो को लगान से छूट दे दी जानी चाहिए। जमीन की मिल्कियत के दस्तावेजो को सुधार कर उन्हें बिना जरा भी देर किए ठीक कर लिया जाए।

गाँवो के सम्पूर्ण विकास के ख्याल से पशुपालन और डयरी उद्योग के विकास की वैज्ञानिक योजना का होना अत्यन्त आवश्यक है। असल में कृषि भारतीय अर्थ व्यवस्था की रीढ है और पशु पालन कृषि की रीढ है। सदियो तक गाय हमारे गाँवो की खुशहाली का मूलाधार रही है। उसकी वजह यही है कि वह न सिर्फ हमें दूध देती है बल्कि हमारी खती क लिए मजबूत बैल भी दती है। भारत के विभिन्न इलाकोम इसी तरह के दुहरे उपयोग के पशुधन को बढावा दिया जाना चाहिए। हमें सकर गायो के जरिए अधिक दूध पैदा करने की हडबडी में स्वस्थ्य बैलो को बढाने की जरूरत को भूल नही जाना चाहिए। नई तथा ऊसर जमीन को तोडने लिए ट्रैक्टरो का इस्तेमाल किया जा सकता है पर अभी दसियो बरस तक छोटे किसानो को जो आबादी का काफी बडा हिस्सा है मजबूत बैलो और बहतर कृषि औजारो पर ही निर्भर रहना होगा। जापान तक में गाय तथा बैल तेजी स बडी मशीनो की जगह लते जा रहे हैं।

कृषि और पशुपालन के अलावा गाँव की अथ-व्यवस्था को मजबूत बनान और लोगो को भरपूर रोजगार देन के लिहाज म कृषि से पैदा हुए कच्चे माल पर आधारित ग्रामीण तथा कुटीर उद्योग भी बहुत जरूरी है। योजना आयोग की एक गणना के अनुसार अगर एक आदमी गाँव छोडकर शहर में चला आए तो उसे सार्थक काम तथा रहने की साधारण सुविधाए देने में पचास गुना अधिक खर्च आता है। अत यह जरूरी है कि गाँवो से शहरोकी तरफ जाने की वृत्ति को रोका जाए।

यह काम निजी या सहकारी आधार पर कृषि उद्योगों को विकसित करके और उसमें उन्हें काम देकर ही किया जा सकता है। पहली और दूसरी पचवर्षीय योजना में ग्रामोद्योगों के उत्पादन के क्षेत्र निश्चित करने की जो बात कही गई है उस आधार पर उन्हें बड़े उद्योगों की असीम प्रतियोगिता के विरुद्ध संरक्षण दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए कपड़े के मामले में एक निश्चित किस्म से नीचे खादी का ही उत्पादन बढ़ना चाहिए, खाने के तेल की पेराई, गाँव की घानी में ही होनी चाहिए, चप्पल तथा देशी जूते गाँव के मोची द्वारा ही बनवाए जाने चाहिए। गुड़, कपड़ा, धान-कुटाई, भूसा अलग करने तथा दाल बनाने के ग्रामोद्योगों को भी इसी तरह संरक्षण दिया जाना चाहिए। मकानों की सुविधा बढ़ाने के लिए गाँवों में ईंट और खपरैलों के उत्पादन को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहित करना चाहिए।

इसका मतलब यह नहीं है कि कृषि उद्योगों को पिछड़ी हुई टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करते रहना चाहिए। गांधीजी ग्रामीण कारीगरों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के प्रयोग के हिमायती थे। लेकिन वे यह जरूर चाहते थे कि पूंजीगत तकनीक और स्वचालित मशीन के देशों मे अधिकतम उत्पादन और पूर्ण-रोजगार नहीं पैदा होने देना चाहिए। दुनिया के देशोंमें अधिकतम उत्पादन और पूर्ण रोजगार दोनों लक्ष्य पाने के लिए आज दुनिया भर के बड़े अर्थशास्त्री 'मध्य दरजे' या 'उपयुक्त टेक्नालाजी' की बात करते हैं। अतः यह नहीं समझना चाहिए, कि छोटी मशीन आर्थिक आयोजना के लिहाज से व्यावहारिक नहीं है। गाँधीजी यान्त्रिक कुशलता और आर्थिक कुशलता में फर्क करते थे। यह हो सकता है कि बड़ी मशीन यान्त्रिक रूप से अधिक कुशल हो पर वह आर्थिक रूप से अकुशल साबित होती है। चूंकि वह श्रमिकों की छुट्टी कर देती है और इस तरह समाज में बेरोजगारी या अर्द्ध बेरोजगारी जैसी बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं; इसलिए सरकार का यह पहला कर्तव्य हो जाता है कि वह अपनी अर्थनीति के बुनियादी सिद्धान्त के रूप में खादी और कृषि उद्योगों को आवश्यक संरक्षण दे।

ऐसी बात नहो है कि महात्मा गाधी बडे उद्योगो या बुनियादी उद्योगो के बिलकुल खिलाफ रहे हो। 'गाधी वादी आयोजना' में मैंने भारतीय अर्थ-व्यवस्था को मजबूत करने के ख्याल से कुछ रक्षा तथा बुनियादी उद्योगो का प्रावधान किया था। गाधीजी इसके बारेमें चाहते थे कि इस तरह के उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में हो। ताकि उनके माध्यम से उद्योगपतियो के सभावित शोषण से बचा जा सके। उनका कहना यह था कि साधारण लोगो की जरूरत की चीजें पैदा करने वाले कारखानो को विकेन्द्रित आधार पर होना चाहिए।

भोजन और कपडे के अलावा आदमी की जिन्दगी में सबसे जरूरी चीज होती है उपयुक्त निवास। पचवर्षीय योजनाओ में शहरी क्षेत्रो मे तो कम और मध्यम आमदनियो वाले लोगो के मकान बनाने की व्यवस्था की गई है पर उनमें ग्रामीण क्षेत्रो में मकानो के निर्माण की तरफ कोई ध्यान नही दिया गया। इसलिए छठी योजना म ग्रामीण क्षेत्रो में सस्ते और मजबूत मकान बनाए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में यहाँ गाधी जी की कल्पना के आदर्श गाँव का उल्लेख उपयोगी होगा —

'एक आदर्श भारतीय गाँव को इस तरह बनाया जाएगा कि उसमें सफाई का मुमुचित प्रबन्ध हो। उसके मकानो में रोशनी और ताजी हवा के आने जाने की पर्याप्त व्यवस्था होगी। उन मकानों को पाँच मील के घेरे के भीतर मिलने वाले सामान से तैयार किया जाएगा। मकान के बाहर दालान होगे जहाँ घर के लोग अपनी जरूरत भर की सब्जियाँ उगा सकें तथा पशु बाँध सकें। गाँव की गलियाँ और सडकें यथा सम्भव कूडे से मुक्त होगे गाँव में सब धर्मावलम्बियो के लिए पूजागृह होगे एक सभागृह होगा पशुओ का एक सम्मिलित चरागाह होगा, एक सहकारी दुग्धशाला होगी प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय होगे जिनमें मुख्य रूप से उद्योग धधो की शिक्षा दी जाएगी, आपसी झगडो के निपटारे के लिए पचायत होगी। वह गाँव अपनी जरूरत भर का खाद्यान्न, सब्जियाँ, फल और खादी खुद पैदा करेगा। यह है मोटे तौर पर एक आदर्श गाँव की मेरी कल्पना।'

जहाँ तक परिवहन का सवाल है हमारी योजना में सड़क और कच्चे रास्तों को ऊँची प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यह उन्हें आने-जाने की सुविधाएँ उपलब्ध करवाए जाने के ख्याल से ही आवश्यक नहीं है, बल्कि इससे सुदूर गाँवों तक में अधिक उत्पादन तथा व्यापार आदि को प्रोत्साहन मिलेगा। बैलगाड़ी जो आज भी ग्रामीण क्षेत्र में परिवहन का एक महत्वपूर्ण आधार है उसे पर्याप्त खोज द्वारा सस्ती और अच्छी बनाने की कोशिश की जानी चाहिए। यह प्रसन्नता की बात है कि जहाजरानी और परिवहन मन्त्रालय ने नई गाड़ी का एक डिजाइन विकसित करने के लिए एक अध्ययन दल गठित कर दिया है। देश के भीतर पानी के रास्ते परिवहन का भी विकास किया जाना चाहिए। इसे सस्ता और अधिक रोजगार प्रदान करने वाला होना चाहिए।

गांधीजी मजदूरों को खेती और कारखानों के स्वामित्व में सहभागी मानते थे। इस दृष्टि से मालिक और मजदूर के मौजूदा अन्तर को धीरे-धीरे मिटते जाना चाहिए। इसके साथ साथ नौकरी के बजाय अपना स्वतन्त्र धन्धा करने पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। गांधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त सिर्फ पूंजी पर ही लागू नहीं होता। वह श्रम पर भी लागू होता है। असल में जीवन के सभी क्षेत्रों पर वह लागू होता है। गांधीजी ने मजदूर और प्रबन्धकों के बीच के सम्बन्धों के सिलसिले में अधिकारों और कर्तव्यों दोनों पर जोर दिया था। इस लिहाज से मजदूरी को उत्पादकता से जुड़ा हुआ होना चाहिए। बड़ी आमदनी और बोनस का एक भाग शेयर के रूप में दिया जाना चाहिए ताकि मजदूर धीरे-धीरे उस उद्योग या व्यवसाय में वास्तविक भागीदार बन जाएँ और वे अधिक उत्पादन के लक्ष्य में सच्ची दिलचस्पी लेना शुरू कर दें।

हमारी योजना में जनसंख्या पर नियन्त्रण की समस्या भी बहुत महत्वपूर्ण है। अगर ऐसा न हुआ तो बढ़ा हुआ उत्पादन अधिक जनसंख्या में बँटकर रह जाएगा और लोगों को इसका कोई लाभ न मिल सकेगा। लेकिन जनसंख्या पर नियन्त्रण की कोशिश को ऐच्छिक ही होना चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि नौजवान लोग गर्भ निरोध के तरीकों का उपयोग स्वेच्छाचार के लिए न करें।

राष्ट्रीय आयोजना मे दामो पर नियत्रण के काम को भी वरीयता देनी होगी। यह कोई आसान समस्या नही है और इसके लिए निश्चयपूर्वक कडे कदम उठाने होगे। हमारा यह पहला काम होना चाहिए कि हम आम आदमी की जरूरत के उत्पादन को बढाने पर ध्यान दें। अमीर लोगो के ऐश और आराम की वस्तुओ के उत्पादन की बढती हुई प्रवत्ति को कडाई से रोकना होगा। जरूरी चीजो के दामो पर नियत्रण की दीर्घकालीन नीति के रूप में खाद्यान्नो तेल चीनी कपडा सीमेंट तथा कागज के पर्याप्त भडार बनाए जाने चाहिए। शहर और गाँव सब जगह लोगो के हितो की सुरक्षा के लिए एक ताकतवर उपभोक्ता सहकारी आदोलन खडा किया जाना चाहिए। खर्च को रोकने के लिए घरेलू बचत का एक आदोलन चलाया जाना चाहिए। अनावश्यक नियत्रणो को हटा दिया जाना चाहिए। उनमें से सिर्फ आवश्यक नियत्रण ही रहने दिए जाने चाहिए। सरकार की कर नीति में भी व्यापक परिवर्तन की जरूरत है। उदाहरण के लिए मुद्रा प्रसार को रोकने के प्रयत्न दृढता से किए जाने चाहिए। अर्थ व्यवस्था के उच्चवरीयता वाले क्षेत्रो को ऋण की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध की जानी चाहिए। अनुत्पादक तथा फालतू खर्च और प्रदर्शन उपभोग में कटौती की जानी चाहिए इसके लिए कठिन फैसले ही नही लेने होगे बल्कि इसके लिए एक दृढ राजनीतिक इच्छा की भी जरूरत होगी।

हमें महात्मा गाधी की कल्पना का नया भारत बनाने के लिए उनके इन शब्दो को लगातार याद रखना होगा —

मै एक ऐसे भारत के निर्माण की कोशिश करूँगा जिसमें गरीब-से गरीब आदमी को भी यह लगे कि इसके निर्माण में उसका भी महत्वपूर्ण योगदान है। वह एसा भारत होगा जिसमें न कोई उच्च वर्ग होगा और न निम्न वर्ग एक एसा भारत जिसमें सभी समुदाय पूरे सामजस्य के साथ रहते हो। उस भारत में छुआछूत के अभिशाप का नशीली चीजो या दवाओ के अभिशाप का कोई स्थान नही होगा। महिलाओ को पुरुषो के बराबर दर्जा प्राप्त होगा। चूकि हम शेष पूरी

दुनिया के साथ शांतिपूर्वक रहेंगे, इसलिए बहुत छोटी सेना रखेंगे। हम एसे सब देशी और विदेशी हितों का पूरा ख्याल करेंगे जो देश के करोडो आम लोगो के हितो से नही टकराते। निजी तौर पर मैं देशी और विदेशी क फर्क को नापसन्द करता हूँ। यह है मेरे सपनो का भारत।"

अन्तमें, हमें अपनी योजनाओ को गाधीवादी आधार पर इसलिए नही बनाना कि इनके साथ उस महात्मा की स्मृति जुडी है, बल्कि इसलिए कि ये विचार समय के साथ पूरी तरह व्यावहारिक, वैज्ञानिक और उपयुक्त साबित हुए हैं। मुझे इसमें जरा भी शक नही है कि गाधीजी के विचार उनके जीवन मे सार्थक थे, वे आज भी सार्थक है और आने वाले समय में भी सार्थक रहेंगे। गाधी अतीत की यादगार नही है। वे तो भविष्य के दृष्टा थे।

ज्ञान ओढ़ा जाता है, उतारा भी जा सकता है। अनुभव जीने की प्रक्रिया में से समुद्र-मथन की तरह उपजता है।

प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व

[अखिल भारत प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन का पद्रहवाँ अधिवेशन १४, १५ १६ अक्टूबर को डॉ श्रीमन्नारायण जी की अध्यक्षता में साबरमती आश्रम, अहमदाबाद में सम्पन्न हुआ। उसका उद्घाटन प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया। सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव पाठको की जानकारी के लिए दिए जा रहे है।]

१– यह सम्मेलन प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई के इस आश्वासन का हृदयसे स्वागत करता है कि भारत सरकार प्राकृतिक चिकित्सा को एक स्वतत्र पद्धति के रूप में मान्यता प्रदान करनेवाली है। सम्मेलन आशा करता है कि जिन राज्य सरकारो ने अभी तक प्राकृतिक चिकित्सा को मान्य नही किया है वे भी शीघ्र ही इस पद्धति को मान्यता दे देगी।

२– सम्मेलन की राय म प्राथमिक व माध्यमिक कक्षाओं के सभी विद्यार्थियोके पाठ्यक्रमम प्राकृतिक चिकित्सा क मूल विचारोको समुचित स्थान दिया जाना चाहिए ताकि गांधीजी के सयम-प्रधान आदर्श को उनके जीवन म उतारा जा सके। प्राकृतिक चिकित्सा के बुनियादी सिद्धान्तो के प्रचार के लिए रेडियो टेलीविजन व फिल्मो का भी उपयोग किया जाना चाहिए।

३– प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को समग्र जीवन दर्शन क रूप में निरन्तर विकसित करते रहने की आवश्यकता है। इसके लिए यह जरूरी है कि भारत सरकार एक अखिल भारत प्राकृतिक चिकित्सा सस्थान की स्वतत्र रूप स स्थापना करे। सम्मेलन की राय मे इस केन्द्रीय रिसर्च सस्थान का केन्द्र सेवाग्राम हो। इसके क्षेत्रीय केन्द्र कलकत्ता, गोरखपुर, हैदराबाद व उरली काचन में रखे जाएँ।

४– भारत सरकार ने जो ग्रामीण स्वास्थ्य योजना घोषित की है उसके अभ्यासक्रम में प्राकृतिक चिकित्सा को भी स्थान दिया

गया है यह संतोष का विषय है। कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए देश भर के प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र सहायता देने को तैयार रहेंगे। किन्तु इस बात का पूरा ध्यान रखना होगा कि सरकारी ग्राम स्वास्थ्य योजना के अन्तर्गत अन्य पद्धतियों को अधिक महत्व न देकर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के द्वारा ही गाँवों की जनता का स्वास्थ्य कम खर्चीले ढंग से सुधारने का पूरा प्रयास किया जाए।

५– अभी तक प्राकृतिक चिकित्सा के लिए भारत सरकार ने केवल एक केन्द्रीय सलाहकार समिति का गठन किया है। अब यह आवश्यक है कि प्राकृतिक चिकित्सा के लिए भी एक स्वतंत्र अखिल भारतीय बोर्ड को गठित किया जाए। ताकि इस पद्धति का विकास गतिशील बन सके। इस कार्य के लिए समुचित धनराशि भी उपलब्ध करानी चाहिए।

६– यह सम्मेलन राज्य सरकारों से आग्रह करता है कि प्राकृतिक चिकित्सा के प्रसार के लिए प्रत्येक जिले में स्वतंत्र रूप से केन्द्र स्थापित किए जाएँ जिनका संचालन प्रशिक्षित प्राकृतिक चिकित्सकों को सौंपा जाए।

अध्यापक-शिक्षा राष्ट्रीय विचार गोष्ठी सेवाग्राम, १८, १९ और २० सितम्बर, १९७७
सर्वसम्मत निवेदन

अखिल भारत नई तालीम समिति तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित की गई 'शिक्षक पाठ्यक्रम तैयारी की परिकल्पना' विषय पर विचार गोष्ठी १८, १९ और २० सितम्बर, १९७७ को सेवाग्राम में हुई। विचार गोष्ठी के सामने चर्चा का मुख्य विषय राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षक परिषद के लिए तैयार किए गए 'अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम की रूपरेखा' पर विस्तार से विचार करना था। इसका उद्घाटन अखिल भारतीय नई तालीम समिति के अध्यक्ष डा श्रीमन्नारायण द्वारा किया गया। इस विचार

गोष्ठी में सम्पूर्ण देश के जाने माने शिक्षाविदो ने भाग लिया। उसमें शिक्षा विभागो के अध्यक्षो शिक्षा कालेजो के प्रिंसिपलो शिक्षको प्राध्यापको और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। अध्यापक शिक्षा के तीन पहलुओ, यथा, "अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम की परिकल्पना ' समाज शिक्षा को अध्यापक शिक्षा के साथ जोडना ' और अध्यापक शिक्षा सस्थाओ क स्वरूप में परिवर्तन ' पर विचार किया गया।

इस विचार गोष्ठी की चार बैठक हुई तथा एक और बैठक थोडे से समय के लिए पवनार आश्रम में आचाय विनोबा भाव के साथ भी हुई, जिनमें ' पाठ्यक्रम की रूपरेखा क विभि न पहलुओ पर विचार किया गया और निम्नलिखित बातो पर मतैक्य हुआ —

१– देश में इस समय शिक्षा का जो वातावरण है वह यह अपक्षा करता है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था म सभी स्तरो पर गाधीय मूल्य तत्काल लागू किए जाएं। विचार गोष्ठी म यह अनुभव किया गया कि इस बात को ध्यान म रखत हुए कि शिक्षा क्षत्र म आज काय और समाज का नव निमाण करन की आवश्यकता है बुनियादी शिक्षा क प्रमुख सिद्धान्त शिक्षा क सभी स्तरो पर लागू होने चाहिए।

२– शिक्षा म गाधीय मूल्यो को सम्मिलित किए जान की अविलम्ब आवश्यकता क सदभ म अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के प्रारूप में राष्ट्रीय अध्यापक परिषद द्वारा उपयुक्त सुधार करन की आवश्यकता है।

विचार गोष्ठी राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद स यह सिफारिश करती है कि एक छोटी समिति गठित की जाए जो अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम क प्रारूप पर विस्तार स विचार करे और शिक्षा सम्बन्धी गाधीय सिद्धान्तों और मूल्यो क सदर्भ म उसमें अपेक्षित सुधारो के लिए सुझाव दे।

३– विचार गोष्ठी का मत है कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम से देश में ग्रामीण तथा शहरी दोनो ही क्षत्रो की आवश्यकता पूरी होनी चाहिए।

४– विचार गोष्ठी का यह निश्चित मत है कि उच्च शिक्षा देने वाले अध्यापको को भी उचित प्रशिक्षण की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि स्कूल के अध्यापको को।

५– विचार गोष्ठी सिफारिश करती है कि अध्यापक शिक्षा मे सुधार लाने के लिए प्रथमत ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए जो देश की परिस्थितियो के अनुरूप देश में ही विकसित किए गए दृष्टिकोणो और तकनीको पर आधारित हो। यहाँ, अन्य देशो में विकसित नई तकनीको और पद्धतियो को भी आवश्यक सशोधनो और परिवर्तनो के साथ अपनाया जा सकता है।

६– विभिन्न स्तरो पर शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने की नीति के सदर्भ में अनौपचारिक शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया है। अत विचार गोष्ठी सिफारिश करती है कि प्रत्येक अध्यापक को अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र मे प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

८– इस बा० पर विचार गोष्ठी में मतैक्य प्रकट किया गया कि सभी स्तरो पर अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमो में उत्पादक कार्य और सामुदायिक शिक्षा को अभिन्न अग के रूप म सम्मिलित किया जाए।

७– सामुदायिक कार्य के कार्यक्रम में परिसर के भीतर की और परिसर के बाहर की सभी गतिविधियाँ सम्मिलित को जाएँ और उन्हें पाठ्यक्रम के अभिन्न अग के रूप में सुनियोजित रूप मे लागू किया जाए।

९– सभी प्रशिक्षण सस्थाएँ स्वय को स्वावलम्बन सहकारिता तथा लोकतान्त्रिक मूल्यो के आधार पर एक सुसम्बद्ध समुदाय के रूप में सगठित करें।

१०– अध्यापक शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमो को आयोजित करते समय छात्रो के परो और उनके माता-पिताओ के महत्वपूर्ण योगदान को पर्याप्त मान्यता दी जानी चाहिए।

११– नया पाठ्यक्रम अपनाए जाने के लिए अध्यापक शिक्षा सस्थाओ को नया रूप देने के बारे में निम्नलिखित विषयो पर चर्चा की गई।

(अ) क्या एक अध्यापक शिक्षा सस्थान को अपनी निजी स्वाभाविक विशेषताएँ, अपना निजी सरचनात्मक वातावरण और अपनी नई कार्य-पद्धति विकसित करके अपना निजी पृथक् अस्तित्व विकसित करना चाहिए अथवा नही ?

(आ) क्या प्रत्येक ऐसे सस्थान को अपनी आवश्यकताओ और मूल्यो के अनुसार अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमो को आयोजित करने और उनका मूल्याकन करने की पूर्ण स्वतत्रता दे दी जानी चाहिए ?

इन दो विषयो पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई और अनेक विकल्पो का सुझाव दिया गया। इस बारे म निम्नलिखित बातो पर मतैक्य हुआ —

(अ) प्रत्येक अध्यापक शिक्षा सस्थान को राष्ट्रीय उद्देश्यो के दायरे में रहते हुए अपना निजी अस्तित्व विकसित करना चाहिए।

(आ) प्रत्येक सस्थान को इतनी स्वतत्रता प्राप्त होनी चाहिए कि वह पाठ्यक्रम कार्यक्रम में अपनी स्थानीय आवश्यकताओ के अनुरुप उपयुक्त सशोधन और प्रयोग कर सके। ऐसी स्वतत्रता को प्रशासन से समर्थन मिलना चाहिए।

१२– विचार गोष्ठी ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से यह आग्रह किया है कि वह अध्यापक शिक्षा और अध्यापक शिक्षको की शिक्षा के विकास को उच्च प्राथमिकता प्रदान करे और अध्यापक शिक्षा सस्थानो को क्षमता के उस स्तर तक पहुँचने में सहायता दे जो स्तर में अपेक्षित सुधार लाने के लिए आवश्यक हो। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त धन देना चाहिए और इस बात पर बल नही देना चाहिए कि राज्य सरकार और विश्वविद्यालय भी इसके लिए उतना ही धन दें। विचार गोष्ठी ने ऐसा ही आग्रह राज्य सरकारो से भी किया है है कि वे भी अध्यापक शिक्षा स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आवश्यक धन दें। —

★

रहनुमाई

ऐ रहमदिल रहमान
हमको राह दिखला दे,
दुनिया में रहमदिल से भरा
दरिया बहा दे !

कैसा नजर आता जमाना
देख तो लें आज,
खिदमत पर मोहब्बत पर
सचाई पर हमें हैं नाज !

हैरान हैं कुर्बान हैं
कानून पर तेरे,
कुदरत के नजारे नजर हैं
सांझ सबेरे !

जन्नत कहीं दोजख कहीं
पर्वत कहीं पानी,
मयो जग होती है कहीं
होती है कुर्बानी !

है खेल ये कैसा
तमाशा देखते हो तुम,
जरा कुछ नूर दिखला दो
रहम से पेश आएँ हम !

इन्सान दुनिया के सभी
आवाम मिलकर हम,
भरें दिल में रहनुमाई
लुटाएँ प्यार हम हर दम !

—मदालसा नारायण

सेवाग्राम-आश्रम-वृत्त

संकलक, श. प्र. पाडे

(माहे अक्टूबर १९७७)

"गाधी जयती" के शुभ अवसर से इस माह का शुभारभ हुआ। प्रात फेरी, प्रार्थना, अखड सूत्र यज्ञ, गीताई पारायण, सामूहिक सूत्र यज्ञ, सर्व धर्म साथ प्रार्थना तथा सर्व भाषीय भजन के कार्यक्रम से 'चर्खा जयती' मनाई गई। विजया दशमी के अवसर पर कर्मशाला (वर्कशाप) में आयुध पूजा का कार्यक्रम सपन्न हुआ। सारे विभागो से कामो के औजार लाकर सजाए गए थे। भक्ति गीतो के साथ उनका पूजन तथा प्रसाद वितरण हुआ।

इस माह में सेवाग्राम आश्रम के पुराने मित्र और आश्रमवासी, फ्रासके गाधी श्री शातिदासजी सेवाग्राम आश्रम में आकर रहे। आस पास की मस्याआ के प्रतिनिधियो ने आकर उनके साथ भावी कार्यक्रम की चर्चा की। अहिंसा और शाति का विचार विश्वमें दृढ करने की दृष्टिसे भिन्न भिन्न स्थानोपर व्यक्तिगत फुटकर प्रयत्न हो रहे ऐसा श्री शान्तिदासजी ने बताया। ऐसे प्रयत्न करने वाले इन चद लोगो को एकत्रित करके सामूहिक रूपसे इस सम्बन्ध में विचार करने की दृष्टिसे १९७८ के दिसबर में एक सगोष्ठी आमत्रित करने का विचार दृढ किया गया। तथा इस दृष्टि से प्रयत्न शुरू किए गए।

गावो के विकास की समस्याओ को मद्दे नजर रखते हुए अतरराष्ट्रीय वैज्ञानिको का, जो कि एस कामो में प्रत्यक्ष लगे है, सम्मेलन २२ से २५ जनवरी १९७८ में सेवाग्राम आश्रम में सयोजित करने का निश्चय किया गया है और उस दृष्टि से प्रयास भी आरभ हो गए है।

श्री जयप्रकाशजी के अमृत महोत्सव की कालावधि में सेवाग्राम के कार्यकर्ता आस-पास के देहातो में घूम और ग्रामवासियो से मिलकर खुल दिल से चर्चाएँ की।

पूज्य अण्णा साहब सहस्रबुद्धे की ८१ वी वर्षगाठ दिनाक २३ अक्टूबर को मनाई गई। इस अवसर पर सेवाग्राम की सस्थाओंने "वस्त्र स्वावलम्बन" की दृष्टि से प्रयास करने का सकल्प किया। इसके अनुसार २५–१०–७७ को कस्तूरबा हेल्थ सोसायटी में एक बैठक पूज्य अण्णा साहब के उपस्थिति मे हुई और "ग्राम वस्त्र स्वावलम्बन" समिति की स्थापना हुई। इसके अध्यक्ष श्री दत्तोबाजी को बनाया गया। पूनी के कार्य से आरम्भ करने की दृष्टि से गाधी सेवा सघ कस्तूरबा हेल्थ सोसायटी तथा सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान इन सस्थाओ से प्रत्येकी प्रारम्भ में १००० रु लेनें का निश्चित किया गया। इस कार्य की पूर्व तैयारी आरम्भ हुई है।

आश्रम में इस माह में कुल दर्शनार्थी ३०८० आए। जिनमें कुल ८४ ग्रुप्स भी शामिल है। आस्ट्रेलिया तथा जर्मनी के कुल ५ अतिथि आश्रम में रहे। भारत सरकार के गृह राज्य मत्री श्री सोनुसिंह पाटील ने आश्रम को भेंट दी।

आश्रम की स्मारक कुटियो की देखभाल पूर्ववत् की गई। बापू कुटी कम्पाउड के सड हुए खभे बदल दिए गए। शास्त्री कुटीका परिसर ठीक किया गया। सेवाग्राम में आकर बापू पहिली बार जहाँ ठहरे थे वहाँ प्रथम आदि निवास का स्थान अब ठीक किया गया।

आश्रम के दैनिक कार्यक्रम भी पूर्ववत् चले। सुबह के प्रार्थनाओ की कुल औ हाजरी २३ रही। इसमें सुबह ४–२० तथा ५–३० के प्रार्थनाओका अतर्भाव है। साय प्रार्थना की औ हाजरी ११ रही। सुबह शाम की प्रार्थनाओ में "गाधी विचार वाचन तथा अभग ग्रंथो का प्रवचन" नित्य होता रहा।

आश्रम वासिओ में आश्रम प्रतिष्ठान मत्री श्री प्रभाकरजी काफी अस्वस्थ रहे। अन्य आश्रम वासियो का स्वास्थ्य अच्छा रहा। श्री शकरजी मीनाक्षी बहन के स्वास्थ्य उपचार के लिए बाहर गाँव गए। वे अब तक वापिस नही आए।

कार्यकर्ताओ का उत्पादक परिश्रम कार्य इस महीने में अच्छा चला।

सम्पादक-मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायन – प्रधान सम्पादक
श्री वजूभाई पटेल
श्रीमती मदालसा नारायन
डॉ० मदनमोहन शर्मा

वर्ष २६
अंक ३

अनुक्रम

दिसम्बर–जनवरी '७८

- 'नई तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
- 'नई तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपए हैं और एक अंक का मूल्य दो रु हैं।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
- 'नई तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नई तालीम समिति, सेवाग्रामके लिए प्रकाशित और
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन :

अखिल भारत नई तालीम समिति के तत्वाधान में १८-१९-२० दिसम्बर १९७८ को नई दिल्ली में एक अखिल भारत राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया। उसका उद्‌घाटन १८ दिसम्बर को प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया और २० दिसम्बर को केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा. प्रतापचन्द्र चन्द्र ने समापन भाषण दिया। इस सम्मेलन में राजस्थान के राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक, कई राज्योंके शिक्षा मंत्रियों, लगभग ३० विश्वविद्यालयोंके कुलपतियों, कुछ संसद सदस्यों और लगभग १०० अनुभवी शिक्षा शास्त्रियों व बुनियादी तालीम के रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया। सम्मेलन के उद्‌घाटन के सत्र में योजना आयोग के उपाध्यक्ष डा. लकडावाला, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा सतीशचन्द्र और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद के निदेशक डा. मिश्रा ने भी भाग लिया। सम्मेलन के अन्त में जो सर्वानुमति का वक्तव्य पारित किया गया वह इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

यह राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन शिक्षा सुधार की तथा अन्य कई दृष्टि से ऐतिहासिक रहा। विभिन्न राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन और विश्वविद्यालय के कुलपतियों के सम्मेलन अलग-अलग होते रहते हैं। नई तालीम समिति की ओर से भी प्रतिवर्ष एक अखिल भारतीय सम्मेलन आयोजित किया जाता है। किन्तु नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में सभी प्रकार के प्रतिनिधि उपस्थित रहे और उन्होंने चर्चाओं में सक्रिय भाग लिया। प्रधानमंत्री और केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने भी उसको विशेष महत्व दिया और सम्मेलन में अपने विचार भी विस्तार से प्रगट किए। इस दृष्टि से सम्मेलन के अन्त में जो वक्तव्य जारी किया गया उसकी अहमियत जाहिर ही है।

सम्मेलन ने यह स्वीकार किया कि भारत की नई शिक्षा प्रणाली महात्मा गांधी के सिद्धान्तोंके अनुरूप और बुनियादी तालीम के आधार पर ढाली जानी चाहिए और उसका माध्यम समाज-उपयोगी उत्पादक श्रम होना जरूरी है। बुनियादी शिक्षा के सभी आदर्शों को बालमंदिर से लेकर विश्वविद्यालयीन स्तर तक लागू करना, भारत के लिए श्रेयस्कर होगा। अब तो गांधीजी के सिद्धान्तों को शिक्षा के क्षेत्र में विदेशों के लगभग सभी विद्वान और शिक्षा शास्त्री मान्य कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि हमारे देश मे भी अब बुनियादी तालीम को बिना किसी मानसिक ग्रंथियोंके स्वीकार किया जाएगा ताकि विद्यार्थियों को उपयोगी शिक्षा प्राप्त हो सके और वे भारत के अच्छे नागरिक बन सकें।

सम्मेलन ने इस बात पर भी बहुत जोर दिया कि शिक्षा का माध्यम हर स्तर पर मातृभाषा होना चाहिए और विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं द्वारा सभी विद्यार्थियों को पढाने का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। भारतीय भाषाओं के माध्यम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अखिल भारतीय सिविल तथा सैनिक सेवाओं में भरती के लिए जो परीक्षाएँ ली जाती है, उनका माध्यम अँग्रेजी के बजाय प्रादेशिक भाषाएँ ही रखी जाएँ। राष्ट्रीयकृत बैंक तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के उद्योगों की सेवाओं के लिए भी जो परीक्षाएँ ली जाती हैं उन्हें देशी भाषाओं में आयोजित किया जाए। चुनाव के बाद जिन उम्मीदवारों को चुना जाए उन्हें बाद में हिन्दी और अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान दिया जा सकता है। किन्तु जब तक इन शासकीय सेवाओं में भरती होने के लिए अँग्रेजी माध्यम अनिवार्य रखा जाएगा तब तक विश्वविद्यालयों में मातृभाषा माध्यम को सफलतापूर्वक संचालित करना मुमकिन नहीं होगा।

पब्लिक स्कूलों के सम्बन्ध में भी सम्मेलन में काफी चर्चा हुई। यह सभी ने स्वीकार किया कि इन पब्लिक स्कूलों को अपना कामकाज राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के अनुसार ही चलाना चाहिए और मातृभाषा माध्यम तथा त्रिभाषा सूत्र को लागू करने में देरी नहीं करनी चाहिए। यह भी जरूरी है कि इन शिक्षण संस्थाओं में ५० प्रतिशत स्थान समाज के कमजोर वर्गों के प्रतिभा सम्पन्न बच्चों के लिए सुरक्षित रखे जाएँ ताकि उनमें राष्ट्रीय वातावरण का संचार हो सके।

नई शिक्षा सरचना के सम्बन्ध में सम्मेलन की राय रही कि १०+२+३ के बजाय ८+४+३ की योजना अधिक उपयोगी होगी। भारतीय सविधान के अनुसार १४ वर्ष की उम्र तक सभी बच्चो को ७ वर्ष की अनिवार्य और मुफ्त बुनियादी शिक्षा दी जानी चाहिए। उसके बाद ४ वर्ष की उत्तर बुनियादी या माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था होना जरूरी है। यह शिक्षा विद्यालयो में दी जाए, कालजो में नही। माध्यमिक शिक्षण के बाद फिर ३ वर्ष की विश्वविद्यालयीन शिक्षा का प्रवन्ध किया जाएँ। जो विद्यार्थी चाहें वे १० वर्ष की शिक्षा के बाद मैट्रीकुलेशन परीक्षा दे सकते हैं। शेष विद्यार्थी १२ वर्ष की शिक्षा के बाद ही सार्वजनिक परीक्षा में बैठेंगे।

लेकिन सम्मेलन ने यह स्पष्ट राय जाहिर की कि सावधानी के साथ विस्तृत चर्चाओं के उपरान्त जो नई शिक्षा सरचना स्वीकार की जाएँ उसमें फिर अगले १०–१५ वर्षों तक कोई फेर बदल नही किया जाना चाहिए। शिक्षा-नीति में बार-बार परिवर्तन करने से तरह-तरह की मानवीय समस्याएँ पैदा होती हैं और उनसे यथासम्भव बचना चाहिए।

इस बात पर भी बहुत जोर दिया गया कि देश की राजनीतिक पार्टियाँ स्कूलो, कालेजो और विश्वविद्यालयो के कार्यों में किसी प्रकार का दखल न दें। इस सम्बन्ध में उन्हें एक आचारसहिता बना लनी चाहिए ताकि शिक्षण सस्थाएँ दलगत राजनीति के चक्कर में न डाली जाएँ और उन्हें शान्तिपूर्वक अपना कार्य सचालन करने की सुविधा प्राप्त हो सके। हम आशा करते हैं कि सभी राजनैतिक दल इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

हमें पूरी आशा है कि सम्मेलन की सभी सिफारिशों पर भारत सरकार, राज्य सरकारें और विश्वविद्यालय गम्भीरतापूर्वक निर्णय भी लेंगे ताकि अगले सत्र से ही हमारी शिक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार दाखिल किए जा सकें और नवयुवको म नए उत्साह का वातावरण सचारित हो सके।

शोकाकुल हृदयसे :

'नई तालीम' का यह 'राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन विशेषांक' ऐसे दुखद समयमें निकल रहा है जब इसकी प्रेरणास्थली डा *श्रीमन्नारायणजी* इहलोक लीला समाप्त कर हमसे बिदा हो गए।

डा श्रीमन्नारायणजी ने इस सम्मेलन का आयोजन गत १८-१९-२० दिसम्बर को दिल्ली में किया था। मुझे इस सम्मेलन में उपस्थित रहनेका अवसर मिला था। सम्मेलन अपने में अत्यत सफल एवं ऐतिहासिक रहा। स्वय श्रीमनजी इस आयोजन से अत्यन्त सतुष्ट थे और चाहते थे कि उसकी सिफारिशोंपर भारत सरकार, राज्य सरकारें और विश्वविद्यालय गभीरतापूर्वक निर्णय कर। इस कार्यको आगे बढानेके लिए इक्कीस सदस्योकी एक समिति भी गठित की गई थी। किन्तु दुख है कि सम्मेलनकी उपलब्धियो को क्रियान्वित होते देखने से पहले ही वे हम से बिदा हो गए।

इस सम्मेलन के आयोजन के लिए श्रीमन्नारायणजी ने अत्यन्त लगनपूर्वक काफी परिश्रम किया था। वैसे वे श्वास से पीडित तो थे ही पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस परिश्रम का उनके स्वास्थ्यपर भीतरी असर पडा। सम्मेलन की समाप्ति के बाद वे जब दिनाक २ जनवरी को वर्धा लौट रहे थे तब ट्रेन में ही अस्वस्थ हो गए और आग्रामें तत्काल सामयिक लघु उपचारके बाद भी ग्वालियर पहुँचते तक अत्यधिक अस्वस्थ हो गए और अस्पताल पहुँचने से पहले ही इहलोक से बिदा हो गए।

इस विशेषाक के लिए सपादकीय लिखकर उन्होंने मुझे दिल्लीमें ही दे दिया था। 'नई तालीम' पत्रिका के लिए यह उनका अतिम सपादकीय होगा। अक म दी गई सारी सामग्री के सम्बन्ध में वे निर्देश दे गए थे और तदनुसार ही सामग्री दी गई है।

उनका यह असामयिक वियोग केवल 'नई तालीम' के परिवार के लिए ही भीषण आघात है ऐसा नही बरन सारे देश के लिए असह्य

है। उनके अवसानसे अनेक क्षेत्रों में एक रिक्तता उत्पन्न हो गई है जिसकी पूर्ति निकट भविष्यमें कठिन प्रतीत होती है। इसे विधिका विधान मानकर धैर्यपूर्वक सहन करनेके सिवा अब और चारा ही क्या है?

उन्होंने जो विचारोंकी अमूल्य निधि हमें प्रदान की है वह हमें सदा प्रेरणा देती रहेगी और गांधी विचार तथा विनोबा-दर्शन से अभिभूत शिक्षा क्षेत्र के इस ज्योतिस्तंभ का प्रकाश उनके द्वारा छोडे हुए कामोंको पूरा करने में हमारा मार्ग दर्शन करेगा। हम निष्ठापूर्वक उस पथपर अग्रसर होते रहें यही प्रभु से प्रार्थना है।

नई तालीमके इस अकके प्रकाशनमें अबकी बार जो विलब हुआ है उसके लिए सहृदय पाठक क्षमा करेंगे।

—मदनमोहन शर्मा

■

शिक्षामें आमूल परिवर्तन

मोरारजी देसाई

[अखिल भारत नई तालीम समिति की ओरसे दिनांक १८, १९, २० दिसंबर को दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई द्वारा दिए गए भाषण का कुछ महत्वपूर्ण अंश]

अध्यक्ष महोदय और मित्रो ?

मैं चाहता हूँ कि मैं किसी न किसी भारतीय भाषाओं में बोलूं, किन्तु इस समय देश में जो गोरखधंधे (घोटाले) की स्थिति है उसी को प्रकट करने के लिए अपना भाषण अँग्रेजी में दे रहा हूँ। यदि मैं हिन्दी में भाषण देता हूँ तो २ प्रतिशत अँग्रेजीदाँ तथा देशका प्रतिनिधित्व करने की अहम्मन्यता वाले लोग 'अँग्रेजी विरोधी' कहकर मेरी आलोचना करेंगे। देशकी इस समय की इसी प्रकार की स्थिति में हम हैं। मेरी दृष्टि में इस स्थिति के लिए जिम्मेवार वे ही हैं। जब श्रीमनजी ने मुझसे कहा कि वे अखिल भारत नई तालीम समिति की ओर से राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित कर रहे हैं तो मैंने इस विचारका स्वागत किया और उद्घाटन के समय आप के बीच आ गया। यहाँ आने में मेरा मुख्य उद्देश्य यह था कि मैं आपको यह बताऊँ कि मुझे जब भी अवसर मिला तब इन ९ महीनों की अवधि में मैंने क्या किया ? शिक्षा प्रणाली के संबंध में हमें सोचने की सख्त जरूरत है जिससे हम कुछ ऐसे निश्चित निष्कर्षोंपर पहुँच सकें, जिन्हें कार्यान्वित किया जा सके। शिक्षा संबंधी मेरे कुछ स्पष्ट और निश्चित विचार हैं। शिक्षा में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है किन्तु यह बात तब तक संभव नहीं है जब तक कि इसमें शिक्षकों और संस्था-संचालकोंका सहयोग प्राप्त न कर लिया जाए, उन्हें समझाया न

जाए। उन्हीं के सहयोग से यह परिवर्तन लाया जा सकता है। लोक-सभामें कानून पास कर लेने मात्र से यह संभव नहीं है। मैं उनको दोषी करार नहीं देना चाहता जो शिक्षा के संबंध में भिन्न राय रखते हैं, या शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था के संबंध में भी किसी को दोष नहीं देना चाहता। यदि किसी को दोष दिया जा सकता है तो वह अंग्रेज सरकार को ही दिया जा सकता है। और विशेष रूप से मेकॉल को। किन्तु उन्हें भी कैसे दोष दें? उनके कार्य सिद्धि के लिए तो यह आवश्यक ही था। वे तो यहाँ राज्य करना चाहते थे और जनसाधारण को अपने नियंत्रण में रखना चाहते थे। मूलतः तो यह हमारा ही अपराध है कि हम उनके शासन में थे।

शिक्षा, मानवी विकासका प्रभावशाली साधन है। मानव की सभी कृतियाँ उसके द्वारा प्राप्त शिक्षा पर निर्भर हैं। इसीलिए शिक्षा हमारी मूलभूत समस्या है। यही कारण है कि जितनी शीघ्रता से शिक्षा पद्धति में परिवर्तन लाया जाना संभव हो उतनी शीघ्रता से परिवर्तन लाने को मैं उत्सुक हूँ। इस विषय में शिक्षा से सम्बद्ध अनेक लोगों से तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसी धन और विचार देने वाली संस्थाओं से मैं बात कर चुका हूँ।

मैं भाग्यशाली हूँ कि मैंने घर में, शाला में उचित शिक्षा पाई है और महात्मा गांधी से तो और भी अधिक शिक्षा पाई। यही कारण है कि इस संबंध में मुझे विचार पूर्वक एवं वस्तु परक दृष्टि से सोचने को बाध्य किया है। हम सभी बुद्धि लेकर जन्मे हैं फिर भी एक वर्ग-विशेष बुद्धिजीवी कहलाता है। मेरी समझमें नहीं आता कि केवल एक हिस्सा ही कैसे बुद्धिजीवी कहलाता है। इस प्रकार का वर्गीकरण हो गया है। मैं तो यही मानता हूँ कि इस प्रकार के वर्गीकरण का कारण यही है कि हम हमारी बुद्धिका समुचित उपयोग नहीं करते। मनुष्य अपनी बुद्धि का समुचित उपयोग कर सके यही शिक्षा का सही उपयोग है। शिक्षा उसे इसमें सहायता पहुँचाती है। शिक्षा तो आजीवन चलनी चाहिए। आज प्रोफेसर और अध्यापक यह समझते हैं कि वे सब को

शिक्षा दे सकते है जब कि उन्हें यह नही भूलना चाहिए कि विद्या-अर्जन कभी समाप्त नही होता । हम जितनी चाहे उतनी विद्या ग्रहण कर सकते है। यह तो एक भडार है जो कभी खत्म नही होता ।

दुनिया में कुछ ही ऐसे महान लोग होते है जो अपने आपको शिक्षित कर लेते है और सब कुछ जान लेते है। रमण महर्षि और रामकृष्ण परमहस जैसे महान व्यक्तियो ने अपने आपको शिक्षित किया। ऐसे शिक्षक भी थोडे ही होग और व्यक्ति भी कम । रमण महर्षि ने यद्यपि स्कूली शिक्षा पाँचवे या छठे दर्जे तक ही पाई थी किन्तु ऐसा कोई विषय नही था कि जिस पर वे गभीर सलाह नही दे सकते थे । इतना ही नही उन्होने तो पशु और पक्षियो की बोली को भी सीखा था। वे तो चिडिया या गोरैया की भाषा भी जानते थे। किन्तु ऐसे लोग कम होते है। अत शिक्षा और प्रशिक्षण की योजना बनानी पडती है जिससे शिक्षक और प्राध्यापक पहले स्वय कुछ सीखें और फिर दूसरों को सिखाएँ।

महात्मा गाधी हमें इसीलिए बहुत कुछ दे सके, सिखा सके कि उन्होने अपने जीवन में बहुत कुछ सीखा था। उन्होने हमें ऐसा कुछ भी करने को नही कहा जो उन्होने अपने जीवन में खुद न किया हो। अन्य किसी देश को ऐसा शिक्षक मिलने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ है। इसी मूलभूत तथ्य को शिक्षकों और प्राध्यापको को समझना है। मै तो उन्हें केवल सुझाव मात्र दे सकता हूँ। मै उन्हे दोषी नही ठहरा रहा हूँ क्योंकि वे भी तो उसी शिक्षा प्रणाली की उपज है। यही कारण है कि हमें शिक्षा पद्धति में शीघ्र परिवर्तन करने की बात सोचनी पडती है।

मै आपके सामने कुछ बुनियादी बातें रखना चाहता हूँ जिनपर आप विशेष ध्यान दें और कुछ निर्णय, निश्चित निर्णय पर पहुँच सकें। उसके पश्चात् सरकार देखेगी कि वह उन्हें कैसे कार्यान्वित कर पाती है। मै रूपरेखा देकर और फिर जनतासे स्वीकृति प्राप्त करनेके पक्ष में नहीं हूँ। मेरी राय में यह उचित नही है। अत यह निश्चयात्मक रूपरेखा मै आपसे चाहता हूँ । मै तब तक विश्राम नही लूंगा जब तक मै इसे आपसे प्राप्त नही कर लेता हूँ। इसे आप मेरा आह्वान समझें। मै स्वय

चैन नहीं लूंगा और न आपको चैन लेने दूंगा, क्योंकि यह अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। महात्मा गांधी ने स्वयं इसपर विचार किया था, इस दिशा में प्रयोग किए थे तथा हमें कुछ बुनियादी विचार दिए, दिशा दी और उसकी मोटी मोटी रूपरेखा भी दी। उन्होंने डॉ. ज़ाकिर हुसैन की अध्यक्षतामें एक समिति गठित की। ज़ाकिर हुसैन, स्वयं शिक्षा में बहुत रुचि रखते थे और इसी समितिने हमें बुनियादी तालीम दी। बुनियादी तालीमका अर्थ, मेरी समझ के अनुसार स्कूलों और कालेजों में प्राप्त होनेवाली वह शिक्षा है जो हमें अपनी जीवन प्रणाली से प्राप्त होती है। उसकी बुनियाद हमारा जीवन है अतः हमें मानवकी मूलभूत आवश्यकताओंसे प्रारंभ करना चाहिए। मानव की मूलभूत आवश्यकता यह है कि वह अपनी इंद्रियोंको उपयोग में लाए। यदि आप उनका उपयोग नहीं करेंगे तो वे निष्क्रिय हो जाएँगी, यदि मनुष्य निष्क्रिय हो जाता है तो वह जीवनमें निरुपयोगी हो जाता है। यदि इंद्रियोंका उपयोग करना है तो उनका उचित उपयोग किया जाना चाहिए। यदि आप उनका गलत उपयोग करेंगे तो वे गलत दिशा में जाएँगी। यही यथार्थ बुनियादी तालीम है। यही कारण है कि आरम्भ से ही उत्पादक श्रम हमारे पाठ्यक्रम का आवश्यक प्रमुख अंग सोचा गया था, अन्यथा वह श्रम की गलत धारणाएँ उत्पन्न करता है। प्रत्येक काम जो आप कर उत्पादक हो इसका अर्थ है कि वह करनेवाले के लिए और समाज के लिए मददगार हो। अन्यथ वह उत्पादक नहीं है।

अब हमें यह सोचना है कि छात्रों को सिखाने लायक उत्पादक काम कौन-सा है— कताई, बढ़ईगिरी या कृषि। यह सब अपनी अपनी उपयोगिता पर, देशकी आवश्यकता पर तथा लोगोंकी ग्राहिका शक्ति पर निर्भर है। महात्मा गांधी को इसमें कोई शक नहीं थी। उन्होंने कताई से तथा कपडे से अर्थात् बुनाई से प्रारंभ किया और कहा कि भोजन के अतिरिक्त कपडा मनुष्यकी महत्वपूर्ण प्राथमिक आवश्यकता है जिसके बिना वह कुछ नहीं कर सकता। ऋषियों ने भी कपडे से बनी कम से कम लँगोटी तो लगाई ही थी। अतः कपडा मानव की आवश्यकता है। इसकी ओर लक्ष्य दिए बिना हम जीवन में स्वतंत्र कैसे होंगे? पराव-

लम्बिता जीवन का सब से बड़ा अभिशाप है। इसीलिए बुनियादी तालीम का मूलभूत कार्य यह है कि वह शिक्षितों में स्वावलम्ब आत्म विश्वास, सत्य, निर्भयता, स्वतंत्रता जैसे मूल्यों को देने का माध्यम बने। इन गुणों की उपलब्धि के बिना हम जीवन में कुछ भी नहीं कर सकते। मैं देखता हूँ कि विश्व विद्यालय के सर्वोत्तम छात्र आज कल निराश है, हताश है, विफल है। निराशा, हताशा, विफलता, आत्म संदेह का तथा संपूर्ण आत्म विश्वास हीनता का द्योतक है। किसी भी हालत में मनुष्य क्यों निराश होता है? सत्य और निर्भयता ही मनुष्यको उन्नति की उच्चतम स्थिति पर पहुँचा सकते है। अनेक उपलब्धियों के लिए हम पुरस्कृत करते है किन्तु इन गुणों के लिए किसी को पुरस्कृत किए जाते नहीं देखा गया। तब हम शिक्षा के सही उद्देश्यको कैसे हस्तगत कर सकेंगे? मैं आशा करता हूँ कि आप अपने चिन्तन के दौरान इसपर भी विचार-मंथन करेंगे। यह मथन ऐसा हो जिससे उचित निर्णय पर पहुँचा जा सके।

दो तीन बातें ऐसी है जिनपर मैं आपसे विचार करने के लिए प्रार्थना करना चाहूँगा जिनमें शिक्षा के माध्यम का प्रश्न है। देश में सभी स्तर पर शिक्षा का माध्यम बदलकर मातृभाषा करना आवश्यक है। सभी शिक्षा शास्त्रियों ने महसूस किया है कि छात्रों को उनकी मातृभाषाके माध्यम से शिक्षा देने पर वे विषय को भली भाँति ग्रहण कर सकते है क्योंकि बचपन मे वे उसी भाषा में सीखते है। विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करना बहुत कठिन है। वह छात्र पर एक भारी बोझ है। उसकी सभी खूबियों और विशेषताओं को समझने के लिए उसे उन्हें सीखना पडता है और इस प्रकार विषय को सीखने के स्थान पर उस भाषाको सीखने में उसका काफी समय और शक्ति खर्च हो जाती है। छोटे छोटे देशों की शिक्षा ने विभिन्न क्षेत्रों में कुशल लोगों को अधिक संख्या में दिया है। क्योंकि वहाँ शिक्षा मातृभाषा में दी जाती है। यहाँ छात्र पर भाषाका बोझ अधिक है और शिक्षा का माध्यम मातृभाषा नहीं है अत

हमें शिक्षा का माध्यम परिवर्तित कर उसे प्राथमिक से उच्चतम स्तर तक मातभाषा या क्षत्रीय भाषा कर देना चाहिए। प्रतियोगी परीक्षाएँ भी क्षत्रीय भाषाओं में होनी चाहिए। अंग्रेजी का म विरोधी नहीं हूँ। विदेशी भाषा हम सीखें। म अंग्रेजी में बोल रहा हूँ। हिन्दी गुजराती या मराठी की अपेक्षा म अंग्रेजी में अधिक अच्छी तरह बोल लेता हूँ पर मैं आपको यह बता दूं कि जब म अंग्रेजी बोलता हूँ तो मैं अधिक सतर्क रहता हूँ और अंग्रेजी में बोलना मेरे लिए श्रमसाध्य भी है। जब मैं हिन्दी मराठी या गुजराती में बोलता हूँ तो अधिक घरेलूपन का अनुभव करता हूँ और अधिक तेजी से तथा संक्षेप में बोल सकता हूँ। अंग्रेजी ने हमें ब्रिटिश मशीनरी का उपयुक्त पुर्जा बनाने वाला काम ही किया है और इसमें उन्होंने आशातीत सफलता प्राप्त की। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी अंग्रेजी को अपनाकर हमने यह सिद्ध किया है कि हमने भौतिक स्वतंत्रता भले ही प्राप्त कर ली हो किन्तु अंग्रेजियत की मानसिक गुलामी से अभी हम मुक्त नहीं हुए हैं। उससे अभी तक हम जकड़े हुए हैं। क्या हम इस दासता से मुक्त न हों?

हमारी संस्कृति में ही इतना कुछ है कि हम उससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमें दूसरी भाषा या दूसरे राष्ट्रों का मुँह ताकने की आवश्यकता नहीं है।

विदेशी भाषा हम सीखें हमें जाननी चाहिए और स्वभावतः अंग्रेजी क्योंकि उससे २०० वर्षों से हमारा संपर्क रहा है और उसे हमने सीखा है पर विचारणीय यह है कि क्या वह हमें आत्म सम्मान की ओर ले जाएगी? क्या यह कम आश्चर्य की बात है कि हम अंग्रेजी बोलने में तो गौरव का अनुभव करें किन्तु अपनी ही भाषा बोलने में गलतियाँ करें? अब इस पर आप गम्भीरतापूर्वक विचार करें और सोचें कि इसको कैसे ठीक किया जा सकता है? क्षत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के अतिरिक्त मैं तो और कोई रास्ता नहीं देखता।

अंग्रेजी ने भी इतनी शक्ति कहाँ से पाई? महज इसी से कि उसने अपना साम्राज्य स्थापित किया और हम पर लाद दी गई किन्तु हम

साम्राज्य स्थापित करना नहीं चाहते। हमारा अत्यत विशाल देश है अत हमें हीन भावना का अनुभव नहीं करना चाहिए और न हममें उच्च ग्रंथि या हीन ग्रंथि होनी चाहिए। हममें केवल इच्छा ग्रंथि हो अन्य कोई ग्रंथि न हो; अत चली आ रही शिक्षा पद्धति के परिवर्तनके प्रयत्नो में अधिक समय लगाया जाएगा तो देश का ही नुकसान होगा।

इस देश में भी प्रतिभाशाली लोग है जिनकी तुलना दुनियाके किन्ही भी प्रतिभाशाली लोगो से की जा सकती है। विश्व भ्रमण के बादमे तो इस विचार का हूँ कि अन्य देशो की अपेक्षा इस देशमें प्रतिभाशाली लोग अधिक है।

मै जानता हूँ कि प्रचलित परीक्षा पद्धति के भी कारण है। इसकी बुराइयों से भी मै अवगत हूँ। उन बुराइयो को हमें शीघ्र से शीघ्र हटा[illegible] चाहिए। मै तो चाहूँगा कि सभी स्पर्द्धा-परीक्षाओंका माध्यम प्रादेशिक भाषाएँ हो। भाषाको प्रयोगका अवसर मिलने पर वह विकसित होता है अँग्रेजी में भी शक्ति इसी कारण आई है। अँग्रेजी साम्राज्य के कारण वह हम पर थोपी गई। मुझ लोगो को यही यकीन दिलाना है, उनमें विश्वास पैदा करना है। मै नही जानता कि हमें क्या हो गया है? भगवान के लिए इस पर विचार करिए और इस मलभत कमी को सुधारने में हमारी मदद कीजिए। यह हमारे पूर्ण विकास में तथा हमारे देश के विकास में बाधक है। इस सुधार की अत्यधिक आवश्यकता है।

यह भी कहा जाता है कि उपाधियो को नियुक्तियो से अलग कर दिया जाना चाहिए। यह भी गलत धारणा है। हमें जाँच के लिए कुछ न कुछ नियम तो निर्धारित करना ही होगा। यदि आप शिक्षाको वैज्ञानिक और युक्ति युक्त बना देते है तो आपको कोई कठिनाई नहीं है। अन्यथा यदि आप उपाधियोकी उपलब्धि को हटा देते है तो हर जगह प्रत्येक व्यक्ति प्रत्याशी बन जाएगा और फिर उनमे से स्थान के लिए योग्य व्यक्ति के चुनाव का कार्य बहुत मुश्किल हो जाएगा।

परीक्षाओ को हटा देने से हम कैसे जान पाएँगे कि छात्र ने कुछ पढा है। मान लीजिए कि कोई छात्र तेरह वर्षों तक स्कूल या कालेज

में उपस्थित रहा और उसे इसी कारण पी एच डी की उपाधि दे दी गई तो क्या उसे उचित शिक्षा माना जाएगा? किसी न किसी रूपमें परीक्षा का होना तो अनिवार्य है फिर चाहे वह मात्रात्मक हो मासिक हो या वार्षिक। हाँ, वह वैज्ञानिक एवं युक्तियुक्त हो। आजकल नकल करने की जो आदत है और यह आज की शिक्षा पद्धति है जिनके हम शिकार हैं। इसकी ओर भी ध्यान दिया जाना है। आज की शिक्षा हमें मन आत्म निर्भरता आत्म विश्वास एवं भय से मुक्तता नही देती। मानव-विकास के लिए ये गुण अत्यंत आवश्यक हैं जो शिक्षा द्वारा नही दिए जा रहे हैं।

आज के पाठ्यक्रम अत्यंत बोझिल बना दिए गए हैं। यह भी एक बात ही है। मैंने देखा है कि ८ वें ९ वें दर्जे में नग्ह विषय रख गए हैं। मैंने देखा कि छात्र को इतनी किताबें ले जानी पडती हैं कि जिनको वह उठा नहीं पाता। मैं तो बी ए की कक्षा में इतनी भारी किताबें भी नहीं ले जाता था। मैं नही जानता कि ये छात्र हम लोगों में भी कुछ अधिक मोचन हैं। एक बात यह और है कि शिक्षा में हर बार कुछ न कुछ जोडा जाता है, या तो कभी विषय या पुस्तकें जोड दी जाती हैं या फिर वर्ष जोड दिए जाते हैं। शिक्षा सरचना का रूप अभी १०+२+३ है। मैं इस का अर्थ नही समझ पा रहा हूँ। मेरी दृष्टि मे तो तीन स्पष्ट श्रेणियाँ हैं—प्राथमिक, माध्यमिक और महाविद्यालयीन। मेरी दृष्टि में प्राथमिक ७ या ८ वर्ष होना चाहिए। मैं तो ७ वर्ष पसंद करूँगा। जहाँ यह ७ वर्ष हो वहाँ ७+५+३ और जहाँ ८ हो वहाँ ८+४+३ हो सकता है। और फिर इन पद्धति का क्या अर्थ है कि हायस्कूल की शिक्षा के बाद दो वर्षों में कुछ तकनीकी या औद्योगिक शिक्षा दी जाएगी। यह एकदम तुरंत देना कैसे संभव होगा? इससे एक दूसरा असंतोष पैदा होगा।

आज इस बात की आवश्यकता है कि राष्ट्र के विकास हेतु शिक्षा शुरू से अंत तक सभी तबकों के लोगों के लिए किसी न किसी उत्पादन प्रवृत्ति के साथ जुडी हो जिस से वे नौकरी की ओर न दौडें।

आजकी हमारी शिक्षा-व्यवस्थाका देश के गरीब लोगों और गाँवों में रहनेवालो के साथ मेल नही बैठता इसलिए कोई न कोई ध्येय सामने रखकर हमें अपनी शिक्षा-पद्धति पर विचार करना होगा। हमारी शिक्षा कम खर्चीली हो। जरा महाविद्यालयों के छात्रों के जीवन की ओर तो देखिए विशेषत: आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों के तथा इंजीनीयरिंग कालेज के छात्रों के जीवन को देखिए। वे जितना रुपया प्रतिमाह खर्च करते हैं यह केवल उनकी झक मात्र है। उनका यह खर्च हमारे जीवन के लिए यदापि उपयुक्त नहीं है। ऐसे लोग गाँवों में जाकर नही रह सकते। मेरी राय में शिक्षा-पद्धति को सामान्य लोगों के जीवन के साथ जोड़ने के लिए आवश्यक है कि उन्हे मूलभूत और सीधे-सादे जीवन की शिक्षा दी जाए। विश्व विद्यालयों और स्कूलों के छात्रावासो में भी विद्यार्थियों का जीवन सादा रहना चाहिए। शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो कि शिक्षित व्यक्ति समाज के लिए आवश्यक चीजोंका उत्पादन करने योग्य बनें।

पब्लिक स्कूलो का उल्लेख करते हुए प्रधान मंत्रीजी ने कहा— जब अलग अलग वर्ग के लोगों के लिए अलग-अलग तरह के स्कूल हैं तो सभी को शिक्षा के समान अवसर कैसे दिए जा सकते हैं? यद्यपि पब्लिक स्कूलो को एकदम से बन्द नही किया जा सकता तथापि कोई ऐसा विकल्प ढूंढ़ना होगा जिससे सभी को समान रूप से शिक्षा दी जा सके।

देश में चल रहे पब्लिक स्कूल आज समाज में विषमता को बढा रहे हैं। इस तरह की व्यवस्था को पनपने से रोकना चाहिए। यह व्यवस्था वर्ग भेद को जन्म देती है जो समाज के लिए घातक है। जब तक समानताके आधार पर सभी को एक जैसी शिक्षा नही मिलेगी, हम नए समाज की रचना नही कर सकेंगे। समानता हमारी संस्कृति की देन है। अत: इसे स्वीकार किया जाना चाहिए। सभी स्कूलों को समान महत्ता दी जाए। जो व्यक्ति अधिक सेवा करता है श्रेष्ठ है न कि वह जो अधिक व्यय करता है।

मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है और धक्का लगता है कि हमारे कुछ शिक्षित व्यक्ति कहते हैं कि जनतंत्र भारत के लिए उपयोगी नहीं है। भारत में तो जनतंत्र तब से है जब दुनिया इसके विषय में २५०० वर्ष पहले जानती तक न थी। जनतंत्र का उल्लेख पूरी तरह से ऋग्वेद में मिलता है। यही कारण है कि हम सब कुछ सीखने के लिए सब जगह जाते हैं। आपको जो सीखना है वह सीखें लेकिन हमारे यहाँ जो कुछ है उसे भूलें नहीं। उसे हम पहले पूरी तरह सीखें और फिर अन्य बातें सीखें।

मैंने आपका काफी समय ले लिया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा उपकुलपतियों के साथ शिक्षा पर मैं पुनः चर्चा करने वाला हूँ। यहाँ भी मैं केवल उद्घाटन करने के लिए ही नहीं वरन आपसे चर्चा करने और यह कहने आया हूँ कि आप सब कुछ ऐसे ठोस निर्णय करें जिनपर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा उपकुलपतियों के अधिवेशन में विचार किया जा सके तथा संसद में विचार किया जा सके।

अपनी इस अपील के साथ मैं इस सम्मेलन के उद्घाटन की घोषणा करता हूँ।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली

कुछ रचनात्मक सुझाव

डॉ. श्रीमन्नारायण

[राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर प्रस्तुत सुझाव जो सम्मेलन की चर्चा के आधारभूत विषय थे]

आजादी से पहले और बाद के कई दशकों से भारत की शिक्षा-पद्धति की पुनर्रचना के सवाल पर बहस-मुबाहिसे होते रहे हैं और इस संबंध में तरह-तरह के प्रयोग किए जाते रहे हैं। इस बीच अनेक समितियों और आयोगों ने केंद्र तथा राज्य सरकारों के सामने अपनी अपनी सिफारिशें रखी हैं। इस सबके बावजूद हमारी शिक्षा-पद्धति अब भी जहाँ की तहाँ पड़ी हुई है, और उसमें राष्ट्र की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होने की कोई क्षमता दिखाई नहीं दे रही है। इस वर्ष के आम चुनावों के फलस्वरूप नई दिल्ली और कई राज्यों में भी नए दल की सरकार बनी है। इसलिए यह बहुत जरूरी हो गया है कि १९६८ में स्वीकृत शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीति प्रस्ताव में जनता पार्टी के बुनियादी सिद्धांतों के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन किए जाएं। प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई और केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री डा. प्रतापचन्द्र चंदर महात्मा गांधी के आदर्शों और आकांक्षाओं के अनुरूप भारत में शैक्षणिक सुधार पर अपने सुचिंतित विचारों का संकेत दे चुके हैं। अब प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालयीन स्तर तक की नई शिक्षा-प्रणाली का अंतिम रूप और विषय तय करने और साथ ही उसपर तत्काल अमल के स्पष्ट निर्देशों की व्यवस्था में देरी करने की कोई गुंजाइश नहीं बची है।

संक्षिप्त इतिहास

चालीस वर्ष पूर्व, अक्टूबर १९३७ में, शिक्षा मंडल के रजत जयंती समारोह के अवसर पर, राष्ट्रीय शिक्षा परिषद का संयोजन किया गया

था, उसकी अध्यक्षता स्वय महात्मा गाधी ने की थी। इस परिषद की सिफारिश थी कि पूरे देश में सात साल की नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए और "इस अवधि में सारी शिक्षा शरीर-श्रम के द्वारा किसी न किसी उत्पादक काम के माध्यम से दी जानी चाहिए तथा जिन अन्य योग्यताओं का विकास या जो अन्य प्रशिक्षण देना आवश्यक हो, वह सब अभिन्न रूप से यथासभव विद्यार्थी के परिवेश से जुड़ा हुआ हो।" बाद में जाकिर हुसैन समिति ने इस पद्धति पर एक विस्तृत पाठ्यक्रम तैयार किया और इस तरह वह प्रणाली सामने आई जिसे हम बुनियादी शिक्षा या नई तालीम के नाम से जानते हैं।

इस परिषद के दौरान और बाद में भी गाधीजी न यह बात काफी स्पष्ट कर दी थी कि "बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य किसी दस्तकारी के माध्यम से बच्चे का शारीरिक बौद्धिक तथा नैतिक विकास है।" उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि "इस शिक्षा पद्धति की सफलता की कसौटी इसका स्वावलम्बी रूप न होकर यह बात है कि शिक्षार्थी के सपूर्ण मानव-व्यक्तित्व को यात्रिक रीति से नही वरन शास्त्रीय ढग से किसी दस्तकारी की शिक्षा द्वारा निखार दिया गया है।' आगे चलकर आचार्य विनोबा भावे ने समझाया कि गाधीजी ने एक नए प्रकार के अद्वैत का— कर्म और ज्ञान के अद्वैत का— विकास किया है। इस तरह हर स्तर पर शिक्षा समाजिक दृष्टि से उपयोगी उत्पादक प्रवृत्तियो के जरिये दी जानी चाहिए और विभिन्न विषयो के ज्ञान का राष्ट्रीय आयोजना तथा विकास-कार्यो स ठीक तालमेल होना चाहिए। शिक्षण तथा रचनात्मक कार्य का यह पारस्परिक सामजस्य बुनियादी शिक्षा का सार-तत्त्व है।

१९३८ में कई राज्यो की काग्रेसी सरकारो न अपने-अपने क्षेत्र में बडी उमग और उत्साह के साथ बुनियादी शिक्षा क सिद्धान्तो को दाखिल किया। किन्तु १९३९ में द्वितीय विश्व-युद्ध के आरम्भ होते ही उन्हें सत्ता छोडनी पडी। फलत बुनियादी शिक्षा को गभीर

आघात पहुँचा और देश के आजाद होने के पूर्व १९४७ तक इस क्षेत्र मे कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिली। राधाकृष्णन् विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (१९४९) ने बुनियादी शिक्षा के महत्व पर बल देते हुए देश में देहाती कालेजों और देहाती विश्वविद्यालयों की स्थापना की जोरदार सिफारिश की। आगे चलकर माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५३) ने भी माध्यमिक शिक्षा को एक ऐसा विराम-बिंदु माना, जहाँ पहुँचकर विद्यार्थियों को जीवन में अपनी-अपनी पसन्द के खास धंधों में लगने के योग्य बन जाना चाहिए। इस आयोग की सिफारिश थी कि माध्यमिक शिक्षा बुनियादी शालाओं से घनिष्ट रूप से जोड दी जाए। १९५७ में शिक्षा मंत्रालय ने 'द कान्सेप्ट ऑफ बेसिक एजुकेशन' (बुनियादी शिक्षा की परिकल्पना) शीर्षक से एक बहुमूल्य पुस्तिका प्रकाशित की। उसमें इस बात को दोहराया गया था कि 'जिस बुनियादी शिक्षा की कल्पना और व्याख्या महात्मा गांधी ने की वह तत्वत जीवनोपयोगी शिक्षा है, और जो इससे भी बडी बात यह है कि वह जीवन के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा है। इसका लक्ष्य अंतत ऐसी समाज-व्यवस्था की रचना है जो शोषण और हिंसा से मुक्त होगी।' यही कारण है कि "उत्पादक, सृजनात्मक और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी ऐसे कार्य को बुनियादी शिक्षा में केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया है जिसमें सभी जातियों, धर्मों और वर्गों के लडके-लडकियाँ शरीक हो सकते है।" यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर दी गई कि "बुनियादी शिक्षा का मौलिक उद्देश्य साधारण नही है। उसका उद्देश्य बच्चे के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ऐसा विकास है जिसमें उत्पादक कार्य-कुशलता का भी समावेश होगा।" विभिन्न स्तरों पर बुनियादी शिक्षा के अमल में, बिना किसी मानसिक संकोच के, आज भी भारत सरकार द्वारा प्रकाशित इस महत्वपूर्ण पुस्तिका से मार्ग-दर्शन लेते रहना जरूरी है।

कोठारी शिक्षा आयोग (१९६६) ने गांधीजी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा की परिकल्पना का पूर्ण समर्थन करते हुए कहा :

बुनियादी शिक्षा के मुख्य सिद्धान्त इतने महत्वपूर्ण है कि सभी स्तरो की शिक्षा-पद्धति को अपना विषय और रूपाकार उनसे मार्ग-दर्शन लेकर निश्चित करना चाहिए। यह हमारे सुझावो का सार है, और इस बात को ध्यान में रखते हुए हम किसी एक स्तर की शिक्षा को बुनियादी शिक्षा की सज्ञा देने के पक्ष म नही है।" आयोग ने बुनियादी शिक्षा के आवश्यक तत्वों का भी निर्देश किया और उन्हे इन शब्दो में परिभाषित किया "(१) शिक्षा में उत्पादक प्रवृत्ति, (२) उत्पादक प्रवृत्ति तथा भौतिक एव सामाजिक परिवेश से पाठ्यक्रम का अनुबन्ध, और (३) शाला तथा स्थानीय जनसमुदाय के बीच अतरग सम्बन्ध।" फिर भी न जाने क्यो आयोग ने यह स्पष्ट कर देने के बाद भी कि यह परिकल्पना "बुनियादी शिक्षा की उत्पादक प्रवृत्ति की परिकल्पना के समान ही है," और इसलिए इसे प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयीन स्तरो की "शिक्षा का अभिन्न अग" मानना चाहिए, इसके लिए 'कार्य-अनुभव' (वर्क एक्सपीरियन्स) शब्द का प्रयोग किया।

१९६८ में भारत सरकार के शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति प्रस्ताव म इस बात को दोहराया गया कि "शिक्षा-पद्धति का काम राष्ट्रीय सेवा और विकास से प्रतिबद्ध आचारवान सुयोग्य युवक-युवतियो को तैयार करना है।" इसम "शिक्षा-पद्धति को जन-जीवन से और भी घनिष्ट बनाने के लिए उसके रूपान्तरण" की परिकल्पना थी, और "विज्ञान तथा टेकनोलाजी के विकास और नैतिक एव सामाजिक मूल्यों के पोषण सवर्धन" पर जोर दिया गया था। प्रस्ताव में सुझाव दिया गया था कि "कार्य-अनुभव तथा राष्ट्रीय सेवा को, जिसमें राष्ट्रीय सेवा और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के उद्देश्य और चुनौती-भरे कार्यक्रमो मे योगदान करना भी शामिल हो, शिक्षा का अभिन्न अग होना चाहिए।" साथ ही कोठारी आयोग द्वारा सुझाई १०+२+३ की शिक्षा पद्धति को अपनाने की भी सिफारिश की गई थी।

अक्टूबर १९७२ में शिक्षा मंडल और अखिल भारत नई तालीम समिति की ओर से सेवाग्राम में राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन का संयोजन किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया था और उसमें कई राज्यों के शिक्षा मंत्री, कुलपति तथा देश-भर से अनेक शिक्षा-शास्त्री शामिल हुए थे। उसकी ओर से एक सर्वानुमती वक्तव्य जारी किया गया, जिसमें यह सिफारिश की गई कि "सभी स्तरों की शिक्षा गाँवों और शहरों दोनों क्षेत्रों के आर्थिक विकास से जुडी ऐसी उत्पादक प्रवृत्तियों के माध्यम से दी जानी चाहिए जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हों।" वक्तव्य में तीन मूलभूत बातों पर भी जोर दिया गया था :

(१) शैक्षणिक कार्यक्रम के एक अभिन्न अंग के रूप में कार्य-विशेष के उपयोग द्वारा स्वावलम्बन, आत्मविश्वास और श्रम की गरिमा की भावनाओं का पोषण;

(२) विद्यार्थियों और अध्यापकों को सामुदायिक सेवा के अर्थवान कार्यक्रमों में प्रवृत्त करके राष्ट्रीयता तथा सामाजिक दायित्व के बोध का विकास, और

(३) विद्यार्थियों के मानस में नैतिक तथा चारित्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, सभी धर्मों की मूलभूत एकता की समझ और उनके प्रति समान आदर की भावना पैदा करना।

शिक्षा-सम्बन्धी केन्द्रीय सलाहकार समिति तथा शिक्षा-मंत्रियों और कुलपतियों के सम्मेलनों की सिफारिशों के आधार पर शिक्षा मंत्रालय ने पाँचवी पंचवर्षीय योजना के प्रस्ताव तैयार करते हुए १०+२+३ की नई शैक्षणिक पद्धति को स्वीकार किया और यह मतव्य भी प्रकट किया कि इस पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के पूर्व सभी राज्य सरकारों को चाहिए कि वे इसे अपना ले। कई राज्य इसे अपना चुके हैं और अन्य कई राज्यों ने दो तीन साल में इसे अंजाम देने का वादा किया है। शिक्षा मंत्रालय ने इस बात पर भी जोर

दिया कि, "शिक्षा की विकास विषयक आवश्यकताओ और रोजगार के अवसरों में ठीक सबध होना चाहिए और 'कार्य अनुभव' को पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अग होना चाहिए।" राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद् ने 'गाइड-लाइन्स फॉर वर्क एक्सपीरियन्स' (कार्य-अनुभव की मार्गदर्शिकाएँ) शीर्षक एक पुस्तिका में कार्य-अनुभव को "शिक्षा का अभिन्न अग" बनाने पर काफी बल देते हुए इस बात पर जोर दिया कि शैक्षणिक सस्थाओ में ऐसी चीजें तैयार की जाएँ जो बिक और खप सकें। लेकिन सच यह तो शिक्षा की प्रथम दस साला अवधि के लिए परिषद ने जो पाठ्यक्रम तैयार किया उसमें 'कार्य-अनुभव' को बहुत कम समय दिया गया है। प्राथमिक स्तर पर इसे शाला के कार्यों के लिए निर्धारित कुल समय का सिर्फ २०–२५ प्रतिशत हिस्सा ही दिया गया है। माध्यमिक तथा उच्च स्तरो पर सप्ताह के अडतालीस घटो (पीरियडस) म स केवल पाच घटे 'कार्य-अनुभव' को दिए गए हे। इस प्रकार स्कूली स्तर पर बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तो पर वास्तविक अमल बहुत ही कम हुआ है। यह काम ठीक तैयारी क बिना लापरवाही और बिना मन के किया जाता रहा है। इसक उचित अमल क लिए पहले से जितना कुछ कर रखना चाहिए था वह नही किया गया।

बुनियादी शिक्षा.

अब चूंकि जनता सरकार ने गम्भीरतापूर्वक यह सकल्प लिया है कि वह राष्ट्रीय आयोजना को गाधीवादी मूल्यो क अनुरूप ढालगी और उन्ही मूल्यो को ध्यान में रखकर शिक्षा पद्धति की पुनर्रचना करेगी, इसलिए बहुत आवश्यक है कि महात्मा गाधी की कल्पना की बुनियादी शिक्षा को हर स्तर पर, बिना किसी हिचकिचाहट के, व्यवस्थित और ठीक ढग से दाखिल किया जाए। मुझ इसमें तनिक भी सन्देह नही कि बुनियादी शिक्षा कोई 'गाधीवादी सनक' नही, बल्कि शिक्षा-क्षेत्र के अधुनातन चिन्तन पर आधारित एक ठोस योजना है। 'यूनेस्को' द्वारा नियुक्त शैक्षणिक विकास-सबधी

अंतरराष्ट्रीय आयोग ने भी 'लरनिंग टु बी' (जीने की शिक्षा) शीर्षक अपने प्रतिवेदन मे इसे अत्यत महत्व की बात बताया है कि "अध्यापन को विद्यालय की चार दीवारी से बाहर लेजाकर और शैक्षणिक प्रयोजनो के निमित्त अनेक प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक प्रवृत्तियो का उपयोग करके" हर व्यक्ति को "जीवन-पर्यन्त शिक्षा देने" की व्यवस्था की जाए। प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरो की शिक्षा-व्यवस्था के लिए प्रतिवेदन में 'बुनियादी शिक्षा' शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है, जब कि स्वय अपने देश मे हम इन शब्दो से आखें चुराते जान पडते हैं, मानो 'बुनियादी' शब्द से हमारे शिक्षा-शास्त्रियो को एक प्रकार की चिढ पैदा हो गई है।

कई वर्ष पहले जब मैं न्यूयार्क में प्रोफेसर जॉन ड्यूई से मिला था तो उन्होने मुझे अपनी यह निश्चित राय बताई थी कि शिक्षा के सम्बन्ध में गाधीजी के विचार "खुद उनके शिक्षा-शास्त्र से कई कदम आगे है। डाक्टर गुन्नार मिरडाल ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'एशियन ड्रामा' में स्पष्ट शब्दो में कहा है कि "बुनियादी पद्धति की ओर उन्मुख प्राथमिक शिक्षा, भारतीय शालाओं के पाठ्यक्रम और अध्यापन-विधि मे सुधार की तत्पर आवश्यकता का आदर्श समाधान हो सकती है।" अपनी एक हाल की कृति "एजुकेशन फॉर सेल्फ-हेल्प" (स्वावलम्बन के लिए शिक्षा) मे यूनाइटेड किंगडम-निवासी प्रोफेसर कैसल ने वर्धा की बुनियादी शिक्षा-योजना के सबध में कहा है कि यह "भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही दिलचस्प चीज है और सम्भावना है कि इसके परिणाम महत्वपूर्ण निकलेंगे। "बुनियादी शिक्षा के सफल न होने का कारण यह नही है कि इसे आजमा कर देखा गया और यह विफल रही, बल्कि यह अभी तक ठीक से आजमाई ही नही गई है। डॉ इवान इलिच ने तो इससे भी एक कदम आगे जाकर एक ऐसे समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की है जिस मे आज के विद्यालयों का अस्तित्व मिट जाएगा, पारपरिक शैक्षणिक ढांचा अतीत की चीज बन जाएगा, और घर, खेत तथा कल-कारखाने जीवन-भर की व्यावहारिक शिक्षा देने के केंद्र बन जाएँगे।

जनता पार्टी ने सभी नागरिकों को पूरा रोजगार देने और "हर व्यक्ति को गरीबी रेखा से ऊपर ले जाकर एक दशक के अन्दर दरिद्रता का मिटा देने का वादा किया है। इसकी आयोजना-विषयक नई प्राथमिकताओं के अनुसार कृषि ग्रामोत्थान तथा लघु ग्राम्य और कुटीर उद्योगों को विकेंद्रीकृत क्षेत्र में सर्वोच्च महत्व दिया जाएगा। स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाये बिना इन राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव होगी। जनता सरकार के चुनाव घोषणापत्र के अनुसार 'शिक्षा की विषय वस्तु प्रवृत्तिमूलक (फंक्शनल) होनी चाहिए, और उसे जन-जीवन से तथा जिस परिवेश में वह दी जाए उससे सबद्ध होना चाहिए साथ ही यह भी बहुत आवश्यक है कि वह सामाजिक आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य से जुडी हुई हो। 'कार्य अनुभव' के द्वारा शिक्षार्थी के मानस में श्रम की गरिमा प्रतिष्ठित की जानी चाहिए।" इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि शिक्षा के प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक के तमाम स्तरों पर बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त सुनियोजित रीति से अविलम्ब दाखिल किए जाएँ। गाँव के विकास और कृषि से सबद्ध उद्योगों के निमित्त पृथक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना निस्सदेह समय शक्ति और साधनों की बरबादी सिद्ध होगी भारत-जैसे गरीब देश को यह बहुत भारी पडेगा। राष्ट्रीय आयोजना की नई प्राथमिकताओं की जरूरतें पूरी करने के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रमों और प्रशिक्षण की व्यवस्था स्कूलों और कालजों को ही करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में शिक्षा का विविध सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों से अभिन्न रूप से सबद्ध होना जरूरी है। इससे शिक्षा और विकास प्रयत्न दोनों समृद्ध और प्राणवान बनेंगे।

सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षा

भारतीय संविधान के ४५ वे अनुच्छेद का कहना है कि 'राज्य चौदह वर्ष की उम्र तक के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयत्न करेगा।' इस निर्देश के अनुसार अधिकांश राज्यों ने आठवें दर्जे तक सार्वत्रिक प्राथमिक (बुनियादी) शिक्षा की

व्यवस्था कर दी है। साधारणत प्राथमिक विद्यालयों की पहली कक्षा में बच्चे को पूरे छ साल का हो जाने पर दाखिल किया जाना चाहिए। नई शिक्षा-पद्धति में दस साल की स्कूली शिक्षा की तजवीज है। इसके बाद दो साल में समाप्त हो सकने वाली 'टर्मिनल नेचर' की व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था है। लेकिन हमारे आर्थिक साधनों को देखते हुए १६ वर्ष की उम्र तक दस साल मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देना व्यावहारिक चीज नही होगी। गुजरात विद्यापीठ के अपने हाल के दीक्षान्त भाषण में प्रधान मंत्री मोरारजी देसाई ने यह सुझाव दिया कि सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा की अवधि केवल सात साल होनी चाहिए। लेकिन सविधान के निर्देश को ध्यान में रखते हुए देश-भर के सभी बच्चो के लिए चौदह साल की उम्र तक ७ वर्ष की प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना वाछनीय होगा। जाकिर हुसैन समिति ने भी आठ साल की अवधि की सिफारिश की थी। इस अवधि मे विद्यार्थियो को बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो के अनुरूप सृजनात्मक प्रवृत्तियो के माध्यम द्वारा सामाजिक दृष्टि से उपयोगी शिक्षा दी जानी चाहिए।

शिक्षा-क्रम मे उत्पादक कार्य के लिए पूरी अवधि का लगभग आधा समय दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त बच्चो को भारत की सामाजिक सस्कृति की विरासत से भी अवगत कराना चाहिए, अर्थात् उन्हें लोकतात्रिक मूल्यो, अहिंसा, सामाजिक न्याय और सर्वधर्म-समभाव की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। कहने की जरूरत नही कि प्राथमिक या बुनियादी स्तर के पाठ्यक्रमो मे भाषा, प्रारभिक विज्ञान, गणित, स्थानीय भूगोल और आरोग्य तथा सफाई से सबधित बुनियादी बातो— जैसे प्राकृतिक-चिकित्सा द्वारा रोग-निरोधक उपाय, जडी-बूटियो का उपयोग आदि— को भी शामिल किया जाना चाहिए।

यह बहुत आवश्यक है कि नए ढग की प्रारम्भिक या बुनियादी शिक्षा ग्रामीण और शहरी दोनो क्षेत्रो में एक साथ आरम्भ की जाए। गाँवो और शहरो में अपनाई जानेवाली उत्पादक प्रवृत्तियाँ तो

अलग अलग प्रकार की होंगी, लेकिन 'कार्य-विशेष द्वारा ज्ञानार्जन का मुख्य सिद्धान्त', सभी स्कूलों में समान रूप से लागू किया जाना चाहिए, ताकि ग्रामीण लोगों के मन पर यह छाप न पड़े कि उन्हें घटिया किस्म की शिक्षा दी जा रही है। आरम्भ में हमने सिर्फ देहाती इलाकों में बुनियादी शालाएँ खोलकर यही भूल की, उसे दोहराया नहीं जाना चाहिए। १९३८ में राज्यों में जो कांग्रेसी सरकारें बनी उनके सीमित आर्थिक साधनों को देखते हुए गांधीजी यही चाहते थे कि बुनियादी शालाएँ पहले गाँवों में खोली जाएँ। तीस साल की राजनीतिक स्वतंत्रता और आयोजित आर्थिक विकास के उपरान्त अब शिक्षा के मामले में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच कोई दुराभाव नहीं रखे जा सकते।

इसी वर्ष अगस्त महीने में आयोजित शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन ने सिफारिश की थी कि छठी आयोजना के अंत तक सार्वत्रिक प्रारम्भिक शिक्षा (६-१४ के आयु-वर्ग के निमित्त) के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखना चाहिए। बालिकाओं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों के बच्चों को स्कूलों में दाखिल करने की ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा। इन महत्वपूर्ण लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हर राज्य को विकास-खंड स्तर पर तफसीलवार योजनाएँ तैयार करनी चाहिए। निर्धारित अवधि में वांछित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनौपचारिक या गैररस्मी शिक्षा भी रखना पड़ेगी जिसमें अंश-कालिक शिक्षण, बहु-बिंदु प्रवेश और लोचदार नीचे के वर्ग से चढ़ाने की पद्धति भी रहे।

माध्यमिक शिक्षा :

माध्यमिक शिक्षा, अर्थात् उत्तर बुनियादी शिक्षा १४ वर्ष की आयु के बाद नवी कक्षा से आरम्भ होनी चाहिए और बारहवीं कक्षा तक याने १७ साल की उम्र तक चलनी चाहिए। इस प्रकार, माध्यमिक विद्यालयों में जिन चार वर्षों तक शिक्षा दी जाएगी, उनमें से अंतिम दो वर्ष रोजगार के अवसर सुलभ कराने वाले व्यवसायों की शिक्षा

में लगाए जाने चाहिए। चूंकि इन डिप्लोमा पाठ्यक्रमों का स्वरूप ऐसा होगा जो शिक्षार्थी को तैयार करके जीवन के लिए एक निश्चित मंजिल तक पहुँचा देंगे, इसलिए इन्हें पूरा कर लेने के बाद अधिकांश विद्यार्थी या तो अपना ही धंधा शुरू कर लेंगे या दूसरों के यहाँ चलने वाले अलग-अलग धंधों में खप जाएँगे। लेकिन जो विद्यार्थी भविष्य में कभी उच्चतर शिक्षा प्राप्त करना चाहते हों, उनकी आकांक्षा पर कोई रोक नहीं होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, माध्यमिक शालाओं में अंतिम दो वर्षों तक दी जानेवाली व्यावसायिक शिक्षा का स्वरूप ऐसा नहीं होना चाहिए जो आगे विद्यार्थियों के लिए विद्योपार्जन में कोई अवरोध या काम करे। अन्यथा ज्यादातर प्रतिभाशाली बच्चे इस व्यावसायिक प्रशिक्षण की ओर से विमुख हो जाएँगे और जो बच्चे इसे ग्रहण करेंगे उन्हें अल्पबुद्धि माना जाने लगेगा।

यह बड़े दुःख की बात है कि राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् ने माध्यमिक शिक्षा की +२ अवस्था को व्यावसायिक और ज्ञान प्रधान (अकादमिक) इन दो धाराओं में बाँट दिया है। व्यावसायिक धारा के विद्यार्थियों से अपना ५० प्रतिशत समय व्यावहारिक कार्य में लगाने की अपेक्षा रखी जाएगी, और शेष समय वे भाषाएँ, विज्ञान और गणित, साहित्य तथा शास्त्रीय विषयों (ह्यूमेनिटीज) के अध्ययन में लगाएँगे। निस्संदेह, यह बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी शिक्षापद्धति है। लेकिन परिषद् की योजना में ऐसी तजवीज भी है कि ज्ञान प्रधान धारा को चुननेवाले विद्यार्थियों से व्यावसायिक कार्य में समय लगाने की अपेक्षा ही नहीं रखी जाएगी। अपना ७५ प्रतिशत समय तो वे विज्ञान, समाज-शास्त्र तथा साहित्य-सहित अन्य शास्त्रीय विषयों के अध्ययन में देंगे और शेष २५ प्रतिशत समय भी भाषाओं की शिक्षा लेने और सामान्य अध्ययन में ही लगाएँगे। परिषद द्वारा पेश की गई योजना में निस्संदेह यह एक गंभीर भूल है। ऐसी योजना पढ़ाई के कमरों में बंद वर्तमान शिक्षा-पद्धति को ही स्थायित्व प्रदान करने में सहायक होगी और कालेजों तथा स्कूलों की

ओर भागने का मौजूदा सिलसिला ज्यो का त्यो कायम रहेगा। इस लिए माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायोन्मुख होने की सारी चर्चा कोरा सपना बनकर रह जाएगी। स्वभावत अधिकाश विद्यार्थी पढाई लिखाई वाली धारा चुनेंगे ऐसे युवक बहुत कम मिलग जो व्याव सायिक धारा को अपना कर लोगो की दृष्टि में अपन को 'मदबुद्धि' साबित करना चाहें।

परिषद की पुस्तिका में कहा गया है कि अकादमिक धारा के विद्यार्थियो के लिए भी 'कार्य-अनुभव' पर जोर देना अनिवाय होना चाहिए और ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिसमे ये विद्यार्थी हर साल कम स कम एक महीना फार्मों कारखानो और दफ्तरो में काम करना सीखत हुए बिता सकें। यदि इस चीज को अकादमिक धारा के पाठ्यक्रम क अभिन्न अग क रूप म शामिल नही कर लिया जाता तो यह एक शुभच्छा मात्र बनकर रह जाएगी इस पर अमल कभी नही होगा। इसलिए वाछनीय यह है कि विविध व्यावसायिक पाठ्यक्रमो की एक ही मुख्य धारा हो और साथ म भाषा साहित्य विज्ञान गणित समाज शास्त्रो और शास्त्रीय विषयों (ह्यूमेनिटीज) के अध्ययन की भी व्यवस्था कर दी जाए। शिक्षा विकास सम्बधी 'यूनस्को' आयोग (१९७२) की यह राय बहुत समीचीन थी ' विभिन्न प्रकार क शिक्षण— जैस सामान्य वैज्ञनिक, तकनीकी और व्यावसायिक— क बीच की दुर्भेद्य दीवारें गिरा दी जाएँ और प्राथमिक स लकर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा को एक साथ सैद्धातिक टकनोलाजिकल व्यावहारिक और शारीरिक रूप प्रदान कर दिया जाए।"

विभिन्न क्षत्रो का तकनीकी आर्थिक सर्वेक्षण करके माध्यमिक शालाओ के ११ वे और १२ वें दर्जों क लिए व्यावसायिक और तकनीकी ढग के विविध पाठ्यक्रम सावधानी के साथ तैयार किए जाने चाहिए। इन पाठ्यक्रमों में विद्यार्थियो को दाखिल करत हुए इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि स्थान विशेष म किस आव

श्यकता को पूरा करने योग्य शिक्षा की जरूरत है और वहाँ किस तरह के रोजगार की गुंजाइश है, क्योंकि इनके बिना समाज की सच्ची आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती। शैक्षणिक विस्तार और आर्थिक विकास की ऐसी व्यवस्थित क्षेत्रीय आयोजना के अभाव में विद्यार्थियों को घोर निराशा ही हाथ लगेगी, और कालेजों में दाखिला लेकर भविष्य के बुरे दिनों को टालते रहने की प्रवृत्ति ज्यों की त्यों कायम रहेगी। इससे शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को जीवन में प्रवेश करने के लिए पूरी तरह तैयार करने के ध्यान से रखे गए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा।

माध्यमिक शालाओं की नवीं और दसवीं कक्षाओंमें किसी विशेष समुदाय के भौतिक परिवेश और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप उपयोगी ढंग की सामान्य शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। भाषा, विज्ञान, गणित, समाज-शास्त्र, साहित्य आदि मुख्य विषयों के अतिरिक्त अनेक वैकल्पिक विषय भी रखे जाने चाहिए, ताकि विद्यार्थी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार चुनाव करके उनका अध्ययन करें। कहने की जरूरत नहीं कि इस स्तर पर भी शिक्षा का केन्द्र स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादक प्रवृत्तियाँ ही होनी चाहिए। प्रथम सार्वजनिक परीक्षा देश के सारे राज्यों में दस साल के अन्त में समान रूप से आयोजित की जानी चाहिए। व्यावसायिक पाठ्यक्रम का चुनाव आम तौर पर मैट्रिकुलेशन स्तर की शिक्षा पूरी करने के बाद ही किया जाना चाहिए। कारण, इसी उम्र तक विद्यार्थी की बुद्धि इतनी परिपक्व हो सकती है कि वह अपने भविष्य के सम्बन्ध में सोच समझकर कोई ठीक निर्णय ले सकता है।

लेकिन इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि चार साल की माध्यमिक शिक्षा अविभाज्य इकाई मानी जाए; अंतिम दो वर्षों के पाठ्यक्रमों की शिक्षा की व्यवस्था भी कालेजों में नहीं, बल्कि स्कूलों में ही होनी चाहिए। भारत जैसे विकासशील देश को ऐसे विद्यार्थियों को कालेज की शिक्षा देना नहीं पुसा सकता जो माध्यमिक शिक्षा पूरी

करके उपयोगी नागरिकों की तरह जीवन-क्षेत्र में प्रवेश कर जाने का इरादा रखते हैं। ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के लिए गुंजाइश करने के उद्देश्य से कालेजों को 'कनिष्ठ' (जूनियर) और 'वरीय' (सीनियर) ऐसे दो हिस्सों में बाँटने की व्यवस्था ठीक नहीं है और इसलिए इसको बन्द कर देना चाहिए।

सामान्य शाला पद्धति :

कोठारी आयोग की सिफारिश के अनुसार, माध्यमिक स्तर पर सार्वजनिक शिक्षा के लिए सामान्य शाला पद्धति की व्यवस्था होनी चाहिए। जाति, वर्ग या धर्म के किसी भेद-भाव के बिना सभी बच्चों को इन शालाओं में दाखिले का समान अवसर सुलभ होना चाहिए। इन सामान्य शालाओं में विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा दी जानी चाहिए और उचित अनुशासन के साथ कार्यकुशलता कायम रखनी चाहिए, ऐसी पद्धति सामाजिक समानता तथा राष्ट्रीय एकता में सहायक होगी; और इसके अंतर्गत गरीब और अमीर लड़के साथ-साथ शिक्षा पाएँगे, जिससे समतावादी समाज के विकास में मदद मिलेगी।

बहरहाल, कम-से-कम मौजूदा पब्लिक स्कूलों से, जो सिर्फ समृद्ध वर्गों के बच्चों की पहुँच के अन्दर हैं, साफ कह देना चाहिए कि वे अपनी रीति-नीति बदलकर राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति के ढाँचे में अपने को ढालें। इस दृष्टि से उन्हें जो परिवर्तन करने पड़ सकते हैं उनमें शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाओं को बनाने और त्रिभाषा-सूत्र को लागू करने की बातें भी शामिल होनी चाहिए। वे सरकार से कोई आर्थिक सहायता नहीं लेते, महज इसीलिए उन्हें अपने वर्तमान रूप में चलने नहीं रहने दिया जा सकता। ये स्कूल हमारी उभरती हुई पीढ़ी को एक विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देते हैं और उनका मानसिक सपोषण विदेशी तौर-तरीकों से करते हैं। इस प्रकार उनकी प्रवृत्ति वर्ग-भेद कायम रखने की ओर बन जाती है और वे भारतीय लोकतन्त्र के बुनियादी लक्ष्यों के खिलाफ चलते हैं। उन्हें सामान्य राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के अनुसार समान शिक्षा की व्यवस्था तो करनी ही चाहिए, साथ ही अपने कक्षाओं के ५० प्रतिशत स्थान समाज के

अब तक माध्यमिक शिक्षा मुख्यत: मध्य और उच्च मध्य वर्गों के बच्चों तक ही सीमित रही है। अब इस स्तर की शिक्षा का लाभ अधिकाधिक प्रमाण में सुविधाहीन तथा कमजोर वर्गों के बच्चों को मिलना चाहिए। इस दिशा में तत्काल कदम उठाने चाहिए, इसमें विलम्ब की कोई गुंजाइश नहीं बची है। यह काम नये तरीकों को अपनाकर किया जा सकता है। इन तरीकों में अंश-कालिक और अनौपचारिक शिक्षण को भी स्थान मिलना चाहिए। गावों के गरीब लेकिन प्रतिभाशाली बच्चों को ढूंढ निकालने के लिए सुनियोजित प्रयत्न किया जाना चाहिए और उदार छात्र-वृत्तियों की व्यवस्था करके इन प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थियों को सक्रिय सहायता दी जानी चाहिए। संक्षेप में, भारत में समाजवादी समाज की रचना के लिए माध्यमिक स्तर पर सबको शिक्षा के समान अवसर सुलभ कराने की बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यद्यपि सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीय मेल-जोल की दृष्टि से सामान्य शाला पद्धति काफी उपयोगी चीज है, किन्तु राज्य सरकारों को चाहिए कि वे शैक्षणिक संस्थाओं को अध्यापन के तरीकों, परीक्षा-सुधार, पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने और अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के क्षेत्रों में नए-नए प्रयोग करने के लिए निश्चित प्रोत्साहन दें। एकरूपता पर जोर देने का नतीजा यह कदापि नहीं होना चाहिए कि शिक्षा के क्षेत्र में नई-नई खोजों और अनुसंधान की प्रवृत्ति रुद्ध हो जाए। कोठारी-आयोग द्वारा सुझाई गई स्वायत्त कालेजों की परिकल्पना में उपयुक्त सुधार और परिवर्तन करके उसे माध्यमिक शिक्षा पर भी लागू किया जा सकता है। इसके फलस्वरूप ये संस्थाएँ ऐसे नए सुधार आरम्भ कर सकती हैं जो विभिन्न दिशाओं में शिक्षा के स्तर को उठाने में सहायक हों। तात्पर्य यह कि शैक्षणिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप न्यूनतम रहना चाहिए।

विश्वविद्यालयीन शिक्षा :

इस बात पर आम तौर पर मतैक्य है कि विश्वविद्यालयीन स्तर पर, प्रथम उपाधि पाठ्यक्रम की अवधि तीन साल हो। केन्द्रीय शिक्षा

कमजोर वर्गों के प्रतिभा-सम्पन्न बच्चों के लिए सुरक्षित रखने चाहिए और इन बच्चों के शिक्षण पर होनेवाला खर्च सरकार को उठाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इन स्कूलों को आठवें दर्जे तक कोई शुल्क नही लेने देना चाहिए क्योंकि चौदह साल की उम्र तक निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की सुविधा जुटाना हमारा संवैधानिक दायित्व है। कहने की जरूरत नही कि जो पब्लिक स्कूल राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति को स्वीकार करने से इनकार करें उन्हें बिना किसी विशेष तहस-मुलाहिजे के बद कर देना चाहिए। किन्तु ऐसा करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३० में अल्पसख्यक समुदायो को दिए गए अधिकारो पर कोई आँच न आए।

राष्ट्रीय शिक्षा अनुसधान तथा प्रशिक्षण परिषद और राज्य सरकारो ने दस-साला स्कूली शिक्षा के लिए जो पाठ्यक्रम तैयार किया है वह सचमुच ही बहुत बोझीला है। विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए निर्धारित पुस्तको और अभ्यास पुस्तिकाओ की संख्या बहुत ज्यादा है और बच्चो को अपनी पीठ पर अपने भारी बस्ते लादे जैसे-तैसे विद्यालय की ओर जाते देखकर बड़ा दुःख होता है। इसके अलावा पुस्तकीय ज्ञान पर बहुत ज्यादा जोर दिया जाता है और उत्पादक या सर्जनात्मक कार्य के नाम पर तो वहाँ शायद ही कुछ हो। स्कूलों के पाठ्यक्रम पर विचार करके उनमें बड़े परिवर्तन सुझाने के लिए एक विशेष समिति की नियुक्ति करके शिक्षा मन्त्रालय ने बहुत अच्छा काम किया है। आशा है यह समिति जल्दी ही अपनी रिपोर्ट देगी और अधिकारी इसकी सिफारिशो पर शीघ्रता से अमल करेंगे। यह काम अगले अकादमिक सत्र के पूर्व पूरा हो जाए, यह वाछनीय है। पाठ्यक्रम के बोझ को हल्का करने का मतलब शिक्षा के स्तर को कम करना या उसकी गुणवत्ता को घटाना नही है। स्कूलो को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे छुट्टियो की अवधि कम करके उनका उपयोग सर्जनात्मक प्रवृत्तियो तथा स्थानीय आवश्यकताओ के अनुरूप सामुदायिक सेवा में करें।

[नई तालीम,

अब तक माध्यमिक शिक्षा मुख्यतः मध्य और उच्च मध्य वर्गों के बच्चों तक ही सीमित रही है। अब इस स्तर की शिक्षा का लाभ अधिकाधिक प्रमाण में सुविधाहीन तथा कमजोर वर्गों के बच्चों को मिलना चाहिए। इस दिशा में तत्काल कदम उठाने चाहिए, इसमें विलम्ब की कोई गुंजाइश नहीं बची है। यह काम नये तरीकों को अपनाकर किया जा सकता है। इन तरीकों में अंश-कालिक और अनौपचारिक शिक्षण को भी स्थान मिलना चाहिए। गावों के गरीब लेकिन प्रतिभाशाली बच्चों को ढूंढ निकालने के लिए सुनियोजित प्रयत्न किया जाना चाहिए और उदार छात्र-वृत्तियों की व्यवस्था करके इन प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थियों को सक्रिय सहायता दी जानी चाहिए। संक्षेप में, भारत में समाजवादी समाज की रचना के लिए माध्यमिक स्तर पर सबको शिक्षा के समान अवसर सुलभ कराने की बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यद्यपि सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीय मेल-जोल की दृष्टि से सामान्य शाला पद्धति काफी उपयोगी चीज है, किन्तु राज्य सरकारों को चाहिए कि वे शैक्षणिक संस्थाओं को अध्यापन के तरीकों, परीक्षा-सुधार, पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने और अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग करने के लिए निश्चित प्रोत्साहन दें। एक-रूपता पर जोर देने का नतीजा यह कदापि नहीं होना चाहिए कि शिक्षा के क्षेत्र में नई नई खोजों और अनुसंधान की प्रवृत्ति रुद्ध हो जाए। कोठारी-आयोग द्वारा सुझाई गई स्वायत्त कालेजों की परिकल्पना में उपयुक्त सुधार और परिवर्तन करके उसे माध्यमिक शिक्षा पर भी लागू किया जा सकता है। इसके फलस्वरूप ये संस्थाएँ ऐसे नए सुधार आरम्भ कर सकती हैं जो विभिन्न दिशाओं में शिक्षा के स्तर को उठाने में सहायक हों। तात्पर्य यह कि शैक्षणिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप न्यूनतम रहना चाहिए।

विश्वविद्यालयीन शिक्षा :

इस बात पर आम तौर पर मतैक्य है कि विश्वविद्यालयीन स्तर पर, प्रथम उपाधि पाठ्यक्रम की अवधि तीन साल हो। केन्द्रीय शिक्षा

सलाहकार समिति के सुझाव के अनुसार सामान्य पाठ्यक्रम (पास कोर्स) दो साल का और विशिष्ट पाठ्यक्रम (ऑनर्स कोर्स) तीन साल का रखा जा सकता है लेकिन यह तय करना देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों पर छोड़ देना बेहतर होगा। विश्वविद्यालय आयोग ने विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा के महत्व पर बहुत जोर दिया है। उसका हेतु यह है कि उच्चतर शिक्षा विद्यार्थियों को मुख्यत 'बाबूगिरी' के लिए तैयार करने का साधन बनकर न रह जाए। कहने की जरूरत नहीं कि विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रमों को सबधित क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों से जुड़ा हुआ होना चाहिए, ताकि उच्चतर शिक्षा पर होने वाले खर्च के एक अच्छे-खासे हिस्से का उपयोग युवक-युवतियों को राष्ट्रीय आयोजनाओं के अतर्गत आवश्यक विशिष्ट कार्यों के लिए प्रशिक्षित करने में हो सके। विश्वविद्यालयों तथा विकास-योजनाओं के बीच ऐसा समन्वय स्थापित करके ही हम आज की इस जबर्दस्त असगति को दूर कर सकते हैं कि एक ओर तो बड़ी सख्या में ऐसे पढ़े-लिखे लोग पड़े हैं जिन्हें रोजगार नहीं मिलता और दूसरी ओर उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित लोगों के अभाव में बहुत-सी विकास-योजनाओं पर अमल नहीं हो पा रहा है।

स्पष्ट है कि कालेजों और विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को दाखिल करने में विवेक से काम लेना होगा। मसलन, इस बात का ध्यान तो रखना ही होगा कि पुस्तकालयों, प्रयोग शालाओं और अध्यापकों की कहाँ कितनी सुविधा सुलभ है साथ ही विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए प्रशिक्षित स्नातकों (ग्रेजुएट) की माँग का भी खयाल रखना होगा। नई शिक्षा-पद्धति के अधीन यह आशा की जाती है कि माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के बाद कम-से-कम आधे विद्यार्थी या तो अपने प्रयत्नों से अपने-अपने निजी रोजगार आरम्भ कर लेंगे या उन्हें विभिन्न प्रकार के धधों में दूसरों के यहाँ पूरे समय का काम मिल जाएगा। पूर्वस्नातक पाठ्यक्रमों (अडर ग्रेजुएट कोर्सेज) में केवल उन्हीं विद्यार्थियों को प्रवेश देना चाहिए जो विभिन्न ज्ञान शालाओं

की उच्चस्तर शिक्षा के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हों और जिनके पास उसके लिए अपेक्षित तैयारी हो। स्नातकोत्तर (पोस्ट-ग्रेजुएट) पाठ्यक्रमों में तो दाखिले को और भी सीमित रखना होगा तथा इसके लिए विद्यार्थियों के चुनाव की कसौटी और भी कड़ी रखनी होगी। इस मामले में सुयोग्य और विशेषज्ञता प्राप्त लोगों की हमें सचमुच कितनी आवश्यकता है इस पर ध्यान रखना होगा। भारत-जैसे गरीब देश के लिए यह पुसाने लायक बात नहीं है कि वह स्नातकोत्तर शिक्षा पर लंबी-चौड़ी रकमें लगाए और जो लोग ऐसी शिक्षा पूरी करके निकलें वे या तो देश का अपनी प्रतिभा के लाभ से वंचित करके दूसरे देशों की जरूरतें पूरी करने बाहर चले जाएँ या यह हाथ पर हाथ धरे बेकार बैठे रहें।

समाज के अपेक्षाकृत सुविधाहीन वर्गों के लोगों को उच्चस्तर शिक्षा की विविध सुविधाएँ सुलभ कराने के लिए अंशकालिक शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रमों की व्यवस्था बड़े पैमाने पर की जानी चाहिए। इससे रोजगार में लगे नौजवानों को अपनी शैक्षणिक योग्यता में वृद्धि करके अपने-अपने रोजगार-क्षेत्र में तरक्की करने का अवसर प्राप्त होगा। शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीति प्रस्ताव में सुझाव दिया गया है कि 'अंश-कालिक तथा पत्राचारीय पाठ्यक्रमों के माध्यम से प्रदान की जानेवाली शिक्षा को वही दर्जा दिया जाना चाहिए जो पूर्ण कालिक शिक्षण को प्राप्त है।"

शिक्षा का माध्यम

अब सब स्वीकार करने लगे हैं कि सभी स्तरों की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिए। लगभग सभी राज्यों में प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर यह स्थिति कायम भी हो चुकी है। अपवाद या तो 'पब्लिक स्कूलों' और आंग्ल भारतीय समाज द्वारा संचालित स्कूलों या उन राज्यों में ही देखने को मिलते हैं जिनकी सरकारी भाषा अंग्रेजी घोषित की गई है। उच्च स्तर की तकनीकी

और विशेषीकृत शिक्षा देनेवाली अखिल भारतीय संस्थाओं को छोड़ कर अन्य सभी भारतीय विश्वविद्यालयों में अविलंब, शिक्षा के माध्यम के रूप में क्षेत्रीय भाषाओं को अपनाने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। जहाँ क्षेत्रीय भाषा-भाषी लोगों के सिवा अन्य भाषाई लोग पर्याप्त संख्या में हों वहाँ हिन्दी या अँग्रेजी माध्यम वाली कुछ संस्थाएँ चलाई जा सकती है।

समान अकादमिक स्तर कायम रखने के लिए बहुत ही तकनीकी ढंग की शिक्षा देनेवाले कालेजों और विश्वविद्यालयों में अभी कुछ समय और, शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी रखा-जाए, यह बात तो समझ में आ सकती है, लेकिन कृषि कालेजों और विश्वविद्यालयों में अँग्रेजी माध्यम का चलन निस्संदेह एक गंभीर विसंगति है। जब राष्ट्रीय आयोजन मे कृषि-विकास को उच्चतम प्राथमिकता दी जा रही हो, तब आवश्यक हो जाता है कि कृषि-शिक्षण संस्थाओं में उच्चतम स्तर की *शिक्षा भी क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से दी जाए।* निश्चय ही यह चीज कृषि-स्नातकों तथा भारत के करोड़ों किसानों के बीच की विशाल खाई को पाटने में किसी हद तक सहायक होगी।

सभी स्तरो की शिक्षा का माध्यम तो अनिवार्य रूप से मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा ही होनी चाहिए, लेकिन सपर्क भाषा हिन्दी और अंतर्राष्ट्रीय भाषा अँग्रेजी का अच्छा काम चलाऊ ज्ञान कराने का आग्रह माध्यमिक और कालेजी दोनों स्तरों पर रखना चाहिए। माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा-सूत्र को समान रूप से सबको अपना लेना चाहिए और इसके प्रति अरुचि और विरोध का भाव छोड देना चाहिए। हिन्दी-भाषी राज्यों में विद्यार्थियों को हिन्दी और अँग्रेजी के अलावा एक कोई आधुनिक भारतीय भाषा, बने तो दक्षिण भारत की कोई भाषा, सिखानी चाहिए, और *अहिन्दी-भाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषा,* हिन्दी और अँग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। मुझे पूरी आशा है कि तमिलनाडु सरकार भी इस राष्ट्रीय नीति को स्वीकार करेगी विश्वविद्यालय स्तर पर भी हिन्दी और अँग्रेजी के उपयुक्त पाठ्य-

क्रम सुलभ कराने चाहिए ताकि राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने और दृढ़ करने के लिए विद्यार्थियों में इन भाषाओं के ज्ञान की अभिवृद्धि की जा सके।

पाठ्य पुस्तकें

क्षेत्रीय भाषाओं को विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए भारतीय भाषाओं में विभिन्न विषयों की स्तरीय पाठ्य पुस्तकें तैयार करना नितान्त आवश्यक है। कुछ साल पहले शिक्षा मंत्रालय ने विभिन्न भाषाओं में विश्वविद्यालयीन पाठ्य पुस्तकें तैयार और प्रकाशित करने के लिए हर राज्य को एक एक करोड़ रुपये की राशि प्रदान की। कुछ राज्यों में इन राशियों का बहुत ठीक उपयोग हुआ है। जरूरी हो तो इसके लिए उन्हें और रकम देनी चाहिए। सब राज्यों में इस महत्वपूर्ण काम को अधिक गंभीरता से हाथ में लेना चाहिए ताकि भारतीय भाषाएँ शिक्षा के सक्षम माध्यम के रूप में विश्वविद्यालयीन स्तर पर अपनाई जा सकें। इसमें देरी करना उचित नहीं है। पाठ्य पुस्तकों को बार बार बदलते रहने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए और उनकी कीमत इतनी कम होनी चाहिए जिससे साधारण हैसियत के विद्यार्थी भी उन्हें खरीद सकें। जहाँ तक बने विभिन्न भाषाओं के तकनीकी शब्द एक से होने चाहिए और जहाँ जरूरी हो कम-से-कम संक्रमण की अवस्था तक अंग्रेजी शब्द भी कोष्ठकों में दिए जाएँ तो बेहतर होगा।

भाषा-नीति

केंद्रीय गृह मंत्री यह घोषणा कर चुके हैं कि भारत सरकार की भाषा-नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है सरकारी कामकाज में हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग साथ-साथ होता रहेगा। प्रधान मंत्री ने भी बार बार कहा है कि देश की आबादी के किसी भी वर्ग पर हिंदी जबरदस्ती नहीं थोपी जाएगी। इससे इस संबंध में चलते रहने वाले विवाद समाप्त हो जाने चाहिए। साथ ही सभी संबंधित लोगों को यह समझ लेना चाहिए कि भारतीय भाषाएँ अपनी पूरी

ऊँचाई तक तभी उठ सकती है जब आमतौर पर प्रशासनिक एवं शैक्षणिक क्षेत्रों में उनका प्रयोग रूढ़ हो जाए।

हमारी शिक्षण-संस्थाओं के आत्यंतिक अँग्रेजी-मोह का एक मुख्य कारण यह है कि भारतीय सिविल तथा सैनिक सेवाओं में भरती के लिए ली जानेवाली परीक्षाओं का माध्यम आज भी अँग्रेजी ही है। माता-पिता स्वभावतः यह उम्मीद लगाए रहते हैं कि उनके लड़के-लड़कियाँ सरकारी सेवाओं में स्थान पाएँगे। इन सेवाओं में प्रवेश के निमित्त होने वाली प्रतियोगिताओं में सफल होने का एक मात्र रास्ता यह है कि लिखित तथा मौखिक दोनों परीक्षाओं के लिए अंग्रेजी भाषा में महारत हासिल की जाए। विचित्र बात है कि आज भी अधिकांश राज्यों में ऐसी परीक्षाओं का माध्यम क्षेत्रीय भाषाएँ नहीं, बल्कि अँग्रेजी ही है। इसलिए बहुत जरूरी है कि इन प्रतियोगिता-परीक्षाओं का माध्यम अँग्रेजी के बजाए क्षेत्रीय भाषाओं को बनाया जाए। स्पष्ट कारणों से अखिल भारतीय प्रतियोगिता-परीक्षाएँ केंद्रीय स्तर पर हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में नहीं ली जा सकतीं, क्योंकि उस हालत में विभिन्न भाषाओं को इस्तेमाल करनेवाले प्रतियोगियों की योग्यता को परखने के लिए सामान्य मापदंड का प्रयोग लगभग असमव होगा। इसलिए उचित यह होगा कि केन्द्र सरकार हर राज्य की आबादी और जब से भारतीय सिविल और सैनिक सेवाएँ आरंभ हुई हैं तबसे उस राज्य के सफल उम्मीदवारों की संख्या, इन दोनों बातों के आधार पर उसके लिए एक 'कोटा' निश्चित कर दें। हर राज्य के निमित्त ऐसा 'कोटा' तय करने के लिए कोई बुद्धिसंगत आधार ढूँढ निकालने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए। क्षेत्रीय भाषाओं में आयोजित प्रतियोगिता-परीक्षाओं द्वारा उम्मीदवारों का चुनाव कर लेने के बाद इन सेवाओं के अखिल भारतीय रूप को कायम रखने के लिए उन्हें हिन्दी और अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान कराया जा सकता है। प्रशिक्षणार्थियों को भारतीय इतिहास, संस्कृति, संविधान तथा पंचवर्षीय आयोजनाओं की मोटी-मोटी बातों की भी जानकारी हासिल

करनी चाहिए। कुछ साल के अनुभव के बाद इस व्यवस्था पर फिर विचार किया जा सकता है।

भारतीय विश्वविद्यालयों को अंग्रेजी के अलावा और भी विदेशी भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहन देना चाहिए। उदाहरण के लिए, कोई कारण नहीं कि स्नातकपूर्व और स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थी फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, रूसी, चीनी, जापानी तथा हमारे एशियाई पड़ोसियों की अनेक भाषाओं का अध्ययन न करें।

भारतीय भाषाओं के विकास में संस्कृत के विशेष महत्व को देखते हुए राज्य सरकारों को स्कूल और विश्वविद्यालय दोनों स्तरों पर इसके अध्यापन की और अधिक सुविधाएँ देनी चाहिए। चूंकि अधिकतर भारतीय भाषाओं का मूल संस्कृत में है, इसलिए इन भाषाओं के पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा का एक पत्र अनिवार्य कर देना चाहिए। इसके अलावा विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं की अतिरिक्त लिपि के रूप में देवनागरी के उपयोग का प्रचार किया जाना चाहिए।

नैतिक शिक्षा

राधाकृष्णन् आयोग और कोठारी आयोग दोनों ने यह सिफारिश की थी कि स्कूलों और कालेजों में भी एकस्तरीय तथा विभिन्न चरणों में बंटे कार्यक्रम के अनुसार नैतिक और धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, सभी शिक्षण संस्थाएँ अपना काम कुछ मिनट की सामान्य प्रार्थना, और यह न हो सके, तो मौन प्रार्थना और ध्यान के साथ शुरू कर सकती हैं। सभी धर्मों के प्रति समान आदर का श्रेयस्कर वातावरण तैयार करने के लिए हफ्ते में एक-दो वर्ग ऐसे शिक्षण के लिए अलग से रख दिए जाने चाहिए। आरम्भिक अवस्था में विद्यार्थियों को महान धर्म-गुरुओं, उनकी प्रसिद्ध कृतियों, और सभी धर्मों में समान रूप से विद्यमान मूलभूत शिक्षाओं से अवगत कराना चाहिए। उच्चतर कक्षाओं में विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। भारत तथा एशिया, अफ्रीका और अमरीका के अन्य विकासशील देशों में बहु भाषी, बहु जातीय तथा बहु-धर्मी समाज की रचना के लिए यह सब अनिवार्य है।

कक्षाओं में धार्मिक शिक्षा देने के अतिरिक्त हमारी शिक्षण-संस्थाएँ वर्ष में पाठ्यक्रमेतर कुछ प्रवृत्तियों का आयोजन करके भी धार्मिक समन्वय और सामाजिक एकता का स्वस्थ वातावरण तैयार कर सकती हैं। आज भारत के सामने अनैतिकता का संकट उपस्थित है और इसलिए तरुण पीढ़ी के मानस पर नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा सर्वोच्च महत्व की बात है। विभिन्न धार्मिक और नैतिक विषयों का अध्ययन करनेवालों को ही नहीं, बल्कि सभी शिक्षकों को इसे अपना दायित्व समझना चाहिए।

परीक्षा-सुधार :

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने ठीक ही कहा है कि "यदि विश्वविद्यालयीन शिक्षा में कोई एक ही सुधार सुझाने की बात उठे तो वह है परीक्षा-सुधार की बात।" यह बात प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों की परीक्षा-पद्धति पर भी अधिक लागू है। मौजूदा पद्धति विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक क्षमताओं को कुंठित करती है। इसीके फलस्वरूप अकादमिक स्तर में गिरावट और अनुशासन में शिथिलता आई है तथा प्रमाण-पत्र, डिप्लोमा और डिग्रियाँ पाने के लिए अनुचित और अवांछनीय तरीकों का उपयोग व्यापक हो गया है। इसलिए वर्तमान परीक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन अत्यावश्यक है। विभिन्न समितियों और आयोगों ने समय-समय पर इस विषय की गहरी छान-बीन करके कई सिफारिशें की हैं। लेकिन इस समस्या को ऊपर-ऊपर से हल करने की कोशिश अब कारगर होनेवाली नहीं है। 'अंक-व्यवस्था' के स्थान पर ग्रेडिंग सिस्टम दाखिल करने का प्रभाव भी सतही ठहरेगा। आवश्यकता केवल परीक्षा-पद्धति में सुधार की नहीं बल्कि संपूर्ण शिक्षा-पद्धति में सुधार की है। यदि विभिन्न स्तरों की शिक्षा का केंद्र उत्पादक और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी प्रवृत्तियाँ बनाई जाती हैं और उसमें समाज की प्रत्यक्ष सेवा के कार्यक्रमों को स्थान दिया जाता है तो विद्यार्थियों का उत्तीर्ण होकर उच्चतर कक्षाओं में दाखिल

होना वर्ष के अंत में एक व्यापक परीक्षा पर निर्भर नहीं करेगा, बल्कि उत्पादक और पाठ्यक्रम के साथ की प्रवृत्तियों में उनके प्रति-दिन भाग लेने पर मुनहसर होगा। ऐसी सह-पाठ्यक्रमीय प्रवृत्तियों में खेल-कूद, समाज सेवा तथा विद्यार्थियों का सामान्य अनुशासन और आचरण भी शामिल होंगे। वस्तुपरक दृष्टि से आंतरिक मूल्याकन का मार्ग सुगम बनाने के लिए इन प्रवृत्तियों का तफसील रखना जरूरी होगा। यदि आंतरिक मूल्याकन के विवरण व्यवस्थित रीति से रखे जाएँ और ये विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा बाहरी परीक्षकों द्वारा जाँच के लिए सदा सुलभ रहें तो व्यक्तिगत कारणों से होनेवाली भूलो की गुंजाइश बहुत कम हो जाएगी। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों के सर्वांगीण व्यक्तित्व और उपलब्धियो का मूल्यांकन करने के लिए व्यावहारिक कार्यों और मौखिक परीक्षाओं को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। संक्षेप में, अंतरिम काल में बाहरी परीक्षा और परीक्षकों की आवश्यकता से छुटकारा पाना भले ही व्यावहारिक न हो, फिर भी आंतरिक मूल्यांकन की पद्धति पर आज की अपेक्षा बहुत अधिक जोर दिया जाना चाहिए। यदि हमारे स्कूलों और कालेजों में बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त दाखिल कर दिए जाएँ तो परीक्षा-सुधार की कठिन समस्यां लगभग स्वतः ही हल हो जाएगी।

डिग्रियों और नौकरियों का विच्छेद

अभी विभिन्न सरकारी विभाग अपने कर्मचारी लोक सेवा आयोगों के माध्यम से, मुख्यतः उम्मीदवारो की डिग्रियों के आधार पर, चुनते हैं। फलत विद्यार्थियों में डिग्री हासिल करने के लिए सही-गलत तरीकों से परीक्षाएँ पास करने की प्रबल प्रवृत्ति देखी जाती है, क्योंकि ये एक प्रकार से नौकरियाँ पाने की सनदें होती हे। कई वर्ष पूर्व केन्द्र सरकार ने इस विषय की गहरी छान-बीन के लिए विशेष समिति नियुक्त की थी। समिति की सिफारिश थी कि भारतीय प्रशासनिक विभागों को अध्ययन के अपने पाठ्यक्रम निर्धारित करने चाहिए और उन्हीं पाठ्यक्रमों के अनुसार उम्मीदवारों की परीक्षा लेकर उनका चयन करना चाहिए। सिफारिश के मुताबिक, ऐसे विभागों को

विश्वविद्यालयों की डिग्रियाँ पानेवालों को ही चुनने का आग्रह छोड़ देना चाहिए। गैर-सरकारी नियोजकों को भी ऐसा ही करना चाहिए। ये पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ग्यारहवें और बारहवें दर्जों में दाखिल किए जा सकते हैं, और इनमें पढ़ाए जानेवाले विषय विभिन्न विभागों की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुसार तय किए जा सकते हैं।

डिग्रियों से नौकरियों को अलग कर देने से कालेजों और विश्वविद्यालयों में दाखिले के लिए अनुचित आपा-धापी खत्म हो जाएगी और परीक्षाओं में प्रचलित भ्रष्ट तरीके मिट जाएँगे, इतना ही नहीं इससे सरकार को भी अपने विभागीय कार्यों के लिए बेहतर उम्मीदवार मिल सकेंगे। इस महत्वपूर्ण सुधार को संपन्न करने का एक व्यावहारिक तरीका सरकारी नौकरियों में प्रवेश की उम्र कम कर देना है। उदाहरण के लिए अगर सरकारी नौकरी में प्रवेश करने की १९ साल कर दी जाए तो आज विद्यार्थियों में कारकून तक का काम पाने की अधिक सुविधा के ख्याल से कालेजों में दाखिला लेने की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है वह अपने आप समाप्त हो जाएगी।

राज्य सरकारें तो मुख्यत राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर, विभिन्न क्षेत्रों में पारम्परिक ढग के नये-नये विश्वविद्यालय स्थापित करने में एक दूसरे से होड करती जान पडती हैं। यह बहुत ही हानिकर चीज है और इससे देश के सीमित साधनों की बरबादी होती है। इसलिए उच्चतर शिक्षा में इस तरह की बरबादी और जड़ एकरूपता से बचने के लिए नए विश्वविद्यालयों की स्थापना पर कुछ निश्चित अकुश लगाना चाहिए। शिक्षा आयोग की यह सिफारिश बहुत उचित है कि "जब तक विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग की सहमति न ले ली जाए और धन की पर्याप्त व्यवस्था न हो जाए तब तक कोई नया विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया जाना चाहिए।"

गाधीजी ने वहुत स्पष्ट शब्दो में यह राय जाहिर की थी कि उच्चतर शिक्षा का खर्च राज्य को नही वल्कि अपने लिए आवश्यक स्नातको को प्रशिक्षित करने के लिए विभिन्न उद्योगो और व्यावसायिक पढियो को उठाना चाहिए। उदाहरण के लिए स्वय गाधी जी के ही शब्दो में "*टाटा कपनी से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह* राज्य की देख रेख में इजीनियरो के प्रशिक्षण के लिए एक कालेज चलाए और मिल एसोसिएशन अपनी जरूरत के स्नातको को प्रशिक्षित करने के लिए कालेज चलाए। इसके अतिरिक्त इसका भी कोई कारण नही है कि उच्चतर शिक्षा पानेवाले सम्पन्न विद्यार्थियो के माता पिता समाज द्वारा उनपर किए जाने वाले खर्च को पूरा करने के लिए पर्याप्त शुल्क न दें। हाल में आयोजना आयोग के उपाध्यक्ष डा गाडगिलवाला ने शिक्षा मन्त्रियो के सम्मेलन में कुछ ऐसा ही विचार व्यक्त करते हुए कहा "उच्चतर शिक्षा की जो शाखाएँ समाज के लिए वहुत लाभदायक है और फिर भी जिनमें विद्यार्थियो के पर्याप्त सख्या में दाखिल होने की सभावना नही है उनको छोड कर हमें शेष उच्चतर शैक्षणिक प्रवृत्तियो का खर्च स्वय शिक्षार्थियो द्वारा उठाए जाने की सभावना का पता लगाने की कोशिश करनी चाहिए।

इस बात पर किसी प्रकार के मतभेद की गुंजाइश नही है कि आबादी के अपेक्षाकृत कमजोर वर्गों के लाभ के लिए प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र को विस्तार और समृद्धि प्रदान करने के निमित्त पर्याप्त साधन जुटाने के उद्देश्य से हमारी उच्चतर शिक्षा के वर्तमान व्यय को नियोजित ढग से कम से कम करने की जरूरत है। विशिष्ट ढग की राष्ट्रीय योजनाओ के लिए शीर्षस्थ कर्मचारी सुलभ कराने के निमित्त उच्चतर शिक्षा का अपना अलग महत्व है इससे इनकार नही किया जा सकता किन्तु इस तथ्य की ओर से भी आँखें बद नही की जा सकती कि भविष्य में भी बच्चो

की जिनकी संख्या करोडों तक पहुँचेगी, प्रारम्भिक, व्यावसायिक और माध्यमिक शिक्षा सुलभ कराने के लिए हमें शीघ्र ही आज की अपेक्षा बहुत अधिक धन की जरूरत पडेगी।

नई शिक्षा सरचना

इस प्रकार, जैसा कि इस निबन्ध में सुझाया गया है, नई शिक्षा सरचना ८+४+३-- अर्थात् आठ वर्ष की अनिवार्य बुनियादी शिक्षा, व्यावसायिक तत्वों की प्रमुखता से युक्त चार वर्ष की उत्तर बुनियादी या माध्यमिक शिक्षा और चार साल की विश्वविद्यालयीन शिक्षा--हो सकती है। कोठारी आयोग द्वारा सुझाई गई और सामान्यतया भारत सरकार द्वारा स्वीकृत १०+२+३ की सरचना में उपर्युक्त सुझावों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। जो राज्य अब तक सिर्फ सात वर्षों की प्रारंभिक शिक्षा देते आए हैं उनमें यह सरचना ७+५+३ की हो सकती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मैट्रिकुलेशन परीक्षा सारे देश में समान रूप से दस साल की शिक्षा पूरी होने पर आयोजित की जानी चाहिए।

लेकिन यह बात साफ समझ लेनी चाहिए कि सावधानी के साथ विशद चर्चा के उपरान्त सरकार एक बार जिस किसी सरचना को स्वीकार कर ले उसमें अगले दस पद्रह वर्षों तक कोई फेर-बदल नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षा नीति में बार-बार परिवर्तन करने से तरह-तरह की मानवीय समस्याएँ पैदा होती हैं, इसलिए ऐसे परिवर्तनों से यथासभव बचना चाहिए।

और कुल मिलाकर देखें तो नई पद्धति और सरचना के अधीन बुनियादी शिक्षा के मौलिक सिद्धान्त की सफलता की आशा रखते हुए उसी समाज में लागू किया जा सकता है जिसमें शारीरिक तथा बौद्धिक श्रम के बीच के अतर को कम-से कम कर दिया गया है। भारत में मजदूरी और आय की ऐसी नई नीति के अभाव में हमारी शिक्षा प्रणाली को गाधीवादी मूल्यों के अनुरूप नया मोड देने की सभावना निश्चित रूप से मृग तृष्णा ही बनी रहेगी। जनता पार्टी के चुनाव-

घोषणापत्र के अनुसार, करों की अदायगी के बाद न्यूनतम और अधिक-तम आयों के बीच के अंतर को कम करके १ २० पर और कालान्तर से १ १० पर लाना होगा।

प्रौढ शिक्षा .

यह सचमुच बडी चिंताजनक बात है कि पिछले कई दशको के दौरान किए गए विभिन्न प्रयत्नो के बावजूद हमारी आबादी का लगभग ८० प्रतिशत भाग आज भी निरक्षर है। स्त्रिया के बीच निरक्षरता का प्रतिशत और अधिक है। लोगो को लोकतांत्रिक सस्थाओ के सचालन मे बुनियादी स्तर से सहयोग करने की सामर्थ्य प्रदान करने के लिए ही नही, बल्कि उत्पादन कार्यक्रमो, विशेष रूप मे कृषि तथा ग्रामो-द्योगो से जुडे ऐसे कार्यक्रमो के अमल में गति लाने के लिए भी आम जनता की निरक्षरता को मिटाना बहुत आवश्यक है। राष्ट्रीय विकास में गति लाने के लिए बडी बडी औद्योगिक तथा व्यावसायिक सगठनो में भी कार्यकर्त्ताओ को अपने काम के ख्याल से (फवशनली) साक्षर बनाया जाना चाहिए। इस दिशा में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो को आगे बढकर मार्ग-दर्शन करना चाहिए। साक्षरता अभियान के सगठन में शिक्षकों और विद्यार्थियो का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना होगा। उनका सहयोग विशेष रूप से सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवा कार्य-क्रमो के अग के रूप मे प्राप्त करना चाहिए। जैसा कि शिक्षा सबधी राष्ट्रीय नीति प्रस्ताव में इगित किया गया है स्वय खेती बाडी करनेवाले किसानो को शिक्षण देने तथा युवको को अपने लिए आप ही किसी न किसी रोजगार की व्यवस्था कर लेने के लिए प्रशिक्षित करने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।'

इस सदर्भ में गाधीजी के इस विचार को ध्यान मे रखना योग्य होगा कि "केवल साक्षरता कोई शिक्षण नही है, 'और ' प्रौढ शिक्षा बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो पर आधारित होनी चाहिए।" केवल पढने लिखने और कुछ हिसाब जोडने का ज्ञान कराने के बदले भूमि-हीन श्रमिको, किसानो, कारीगरो तथा कारखाना मजदूरो के उत्पा-दन कौशल को बढाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। साक्षरता से

लोगों में बेहतर नागरिकता-बोध जगाने और उनके व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन को समृद्ध बनाने कीभी आशा की जाती है। शिक्षासंबंधी यूनेस्को आयोग का सुझाव है कि "साक्षरता कार्यक्रमों को नागरिक जीवन और अपने कार्यक्षेत्र से संबंधित बुनियादी शिक्षण से जोड़ देना चाहिए।"

अगले चंद बरसों में हमें साक्षरता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक व्यापक जन-आन्दोलन की आवश्यकता होगी। इस आन्दोलन के लिए पूरे समय के कार्यकर्त्ता रखना बहुत व्ययसाध्य होगा। हो सकता है, यह इतना खर्चीला निकले कि हमारी हिम्मत इसे शुरू करने की ही न पड़े। इस राष्ट्रीय अभियान में बहुतसी स्वयंसेवी संस्थाओं, सरकारी नौकरों, वकीलों, डाक्टरों और अन्य लोगों की सेवाएँ प्राप्त करनी होंगी। समाचारपत्र, रेडियो, टेलीविजन आदि जनसंपर्क के साधनों तथा दृश्य-श्रव्य उपादानों का सही उपयोग किया जाना चाहिए। शिक्षकों और विद्यार्थियों के शिक्षण में चूँकि सामुदायिक सेवा और उत्पादक प्रवृत्तियाँ अनिवार्यतः शामिल रहेंगी, इसलिए उनके शिक्षण के अंग के रूप में उनसे इस कार्यक्रम में सहयोग लेना चाहिए। अकादमिक वर्ष के दौरान सिर्फ चंद हफ्ता के लिए वे ऐसे अभियानों में शरीक हों तो यह चीज न तो वैज्ञानिक होगी और न इससे कोई प्रयोजन सिद्ध होगा। सच तो यह है कि स्वयं शिक्षा-पद्धति को आद्योपान्त कामकाजी (फंक्शनल), सृजनात्मक और उत्पादक, सभी कुछ बन जाना चाहिए।

भारत सरकार ने हाल में केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा मंडल का गठन किया है। मंडल ने सिफारिश की है कि पाँच साल के अंदर आबादी के १५–३५ के आयु वर्ग के बीच प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के लिए सभी संभव कोशिश की जानी चाहिए। इस राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सरकारी और गैर-सरकारी एजेंसियों को अपने कार्यक्रमों के बीच पारस्परिक समन्वय स्थापित करना होगा।

स्पष्ट है कि कोई भी शिक्षा-प्रणाली कागज पर चाहे जितनी आकर्षक प्रतीत हो, उसका सफल कार्यान्वियन तो ठीक प्रशिक्षित ऐसे अध्यापकों के बल पर ही संभव है जो कोई बड़ा काम करने के आदर्श और समर्पण की भावना से ओत-प्रोत हों। अपने सम्पर्क में आनेवाली उदीयमान पीढ़ी के चरित्र को सही ढाँचे में ढालना अध्यापक का काम है; वे सच्चे अर्थ में राष्ट्र-निर्माता हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विद्यार्थियों को समाज के प्रति अपना दायित्व निभाने के निमित्त प्रशिक्षित करने के लिए उन्हें कुछ भी उठा नहीं रखना चाहिए। लेकिन अध्यापकों के सामाजिक दर्जे को ऊपर उठाने और उन्हें दैनिक आर्थिक परेशानियों से मुक्त करने की जिम्मेदारी राज्य की है। ईंट-सीमेंट और लोहे-इस्पात पर जरूरत से ज्यादा खर्च करने के बजाय, प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के वेतनों मे वृद्धि करना कहीं अधिक लाभकारी होगा। शैक्षणिक संस्थाओं के स्तर का निर्णय उनके भव्य भवनों के आधार पर नहीं, बल्कि उनमें नियुक्त अध्यापकों की योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए।

इस वर्ष सितम्बर माह में सेवाग्राम मे शिक्षकों के प्रशिक्षण पर आयोजित गोष्ठी ने सिफारिश की थी कि बुनियादी शिक्षा के मुख्य सिद्धान्तों को अध्यापक-शिक्षण सहित, सभी स्तरों की शिक्षा में ओत-प्रोत हो जाना चाहिए। "सभी स्तरों के अध्यापक-शिक्षण कार्यक्रमों के अभिन्न अंग के रूप में उत्पादक कार्य और सामुदायिक शिक्षण के समावेश" पर भी गोष्ठी मे पूरा मतैक्य था। गोष्ठी का सुझाव था कि "सभी प्रशिक्षण-संस्थाओं को अपने-आपको स्वावलम्बन, सहयोग और लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित व्यवस्थित समुदायो के रूप में संगठित कर डालना चाहिए।"

इसके अतिरिक्त, उत्पादक तथा सोद्देश्य शिक्षा-पद्धति के अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए शिक्षकों को विद्यार्थियों के कंधे से कंधा मिलाकर काम करना सीखना चाहिए। इस प्रकार, "सहवीर्यं

करवावहे" का प्राचीन आदर्श और ऊँचे दर्शन की बात नही है, बल्कि फलप्रद शिक्षा के लिए सुझाया एक व्यावहारिक मार्ग है। नए अध्यापकों को कृषि तथा कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण देने के बजाय हमें ऐसा कुछ करना चाहिए जिससे कृषक-अध्यापकों या शिल्पी-शिक्षकों के वर्ग का उदय हो और हम अपनी शिक्षण-संस्थाओं की योग्य अध्यापकों की माँग पूरी कर सकें।

माता-पिता का सहयोग

भारत में शिक्षा पद्धति की पुनर्रचना के काम में सभी स्तरों के विद्यार्थियोंके माता-पिताओं का सक्रिय सहयोग आवश्यक है। आरंभिक अवस्था से ही माता-पिताओं को घर और स्कूल दोनों जगहों में अपने बच्चों की प्रगति की ओर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए, और उनके तथा शिक्षकों के बीच पूरा सहयोग होना चाहिए। इसके लिए हर शिक्षण-संस्था में सक्रिय अभिभावक-अध्यापक संघ का होना जरूरी है। दोनों का ऐसा पारस्परिक सम्पर्क शैक्षणिक स्तर को ऊपर उठाने में सहायक होगा और इससे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास अधिक ठोस बुनियाद पर हो सकेगा। शिक्षार्थियों को अनुशासित करने और उनके सामान्य आचार-व्यवहार में सुधार लाने के लिए भी माता पिताओं की सहायता लेने का प्रयत्न किया जा सकता है। दरअसल, हर घर को सच्चे अर्थों में शैक्षणिक विकास की बुनियादी इकाई बन जाना चाहिए। घर और शाला के बीच दो-तरफा समागम होना चाहिए और दोनों को एक दूसरे के पूरक बनकर एक-दूसरे को समृद्ध करने का काम करना चाहिए।

खेल-कूद

नई शिक्षा-पद्धति के अंतर्गत हमारे स्कूलों और कालेजों में खेल-कूद का विकास बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए। क्रीडा-स्थलों तथा अन्य मनोरंजनात्मक प्रवृत्तियों की सुविधा उदारता के साथ सुलभ करानी चाहिए। शारीरिक शिक्षण कार्यक्रमों के अधीन योगासनों का प्रशिक्षण अनिवार्य कर देना चाहिए। एन सी सी तथा ए एस एस के अतिरिक्त शिक्षण-संस्थाओं में लड़के-लड़कियों

दोनों के लिए स्वार्टिग प्रवृत्ति को सुनियोजित ढग से बढावा देना चाहिए। इससे विद्यार्थियो में न केवल गैर-सरकारी ढग से अनुशासन की बहतर भावना का समावेश होगा, बल्कि उन्हें विविध प्रसगो में सामाजिक सेवा के अवसर भी सुलभ होंगे।

पर्याप्त वित्तीय साधन की व्यवस्था

ऊपर सुनाए गए ढग पर शिक्षा पद्धति की पुनर्रचना के लिए स्पष्ट ही अतिरिक्त वित्तीय साधनों की आवश्यकता पडेगी। पचवर्षीय आयोजनो की दृष्टि से देखें तो हम देखते हैं कि जहाँ तीसरी आयोजना में शिक्षा पर कुल राष्ट्रीय आय का ६.८७ प्रतिशत व्यय करने का प्रावधान था चौथी में वह प्रतिशत घट कर ५ पर और पाचवी में तो ३.२७ पर आ गया। यह सच है कि यदि शिक्षा पर आयोजनाओ के अधीन और उनके बाहर खर्च की जानेवाली राशियो को ध्यान में रखकर देखा जाए तो आकडे कुछ भिन्न तसवीर पेश करेंगे। फिर भी कुल मिलाकर स्थिति किसी तरह सतोषजनक नहीं है। जैसा कि शिक्षासम्बधी राष्ट्रीय नीति प्रस्ताव म सुझाया गया है हमारा लक्ष्य शिक्षा-विनियोग में उत्तरोत्तर वृद्धि करते जाने का होना चाहिए और यथासभव शीघ्र ही हम उसको राष्ट्रीय आय के ६ प्रतिशत तक पहुँचा देना चाहिए। इस दिशा निर्देश के अनुसार छठी पचवर्षीय आयोजना में शिक्षा के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

आखिरकार आगामी वर्षों में शैक्षणिक सुधार की सफलता केंद्रीय जनता सरकार की राजनीतिक इच्छा शक्ति और सकल्प पर निर्भर करेगी। यदि नई सरकार वर्तमान शिक्षा पद्धति को नए साँचे में ढालने के बारे में सचमुच गभीर है तो उसे कई साहसपूर्ण निर्णय लेने होंगे। फूक फूककर कदम उठाते हुए समस्या को हल करने की सतही इच्छा भर से काम नहीं चलेगा। जहाँ सच्ची चाह है राह तो वहाँ मिल ही जाती है।

आज के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा में विचारणीय प्रश्न

श्री रघुकुल तिलक

प्रधान-मंत्री जी के भाषण के बाद मेरे पास बहुत कुछ कहने को नहीं है। किन्तु अध्यक्षजी ने मुझ से कुछ शब्द कहने के लिए कहा है अत मैं अपने को केवल कुछ ऐसी बातो पर ही सीमित रखूंगा, जिन्हें चर्चा के दो दिनो के दौरान विचार-विमर्श हेतु दृष्टि मे रखना आवश्यक है।

यह कहना सही है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली हमारी सामाजिक व्यवस्था का एक भीतरी अंग है। समाज में जो ताकत या जो कमी है वह सब हमारी शिक्षा प्रणाली में प्रतिबिम्बित होती है। हमारा समाज अभी भी भर्त्स तथा जाति-ग्रसित समाज है, जिसमे समतल और लम्ब-रूप गतिशीलता बहुत कम है। इसकी प्रति व्यक्ति आय भी बहुत कम है। यद्यपि इन सबपर सबकी समान रूप से सहमति नही है फिर भी इन्हें हमें दृष्टि मे रखना है क्योंकि ये हमारी शिक्षा-प्रणाली में प्रतिबिम्बित होती है। साथ ही हमें यह जान लेना है कि सामाजिक परिवर्तन हेतु शिक्षा अत्यन्त सक्षम और सशक्त माध्यम है। यही कारण है कि जब हम समाज के इन अस्वीकृत तत्वो को हटाना चाहते है तो ऐसा करने को हमारे पास शिक्षा ही एकमात्र माध्यम है। शिक्षा को यदि सामाजिक स्थितियो को प्रतिबिम्बित करने और साथ ही उनमें परिवर्तन लाने की दुहरी जिम्मेवारी निभानी है तो उसे प्रासंगिक, सक्षम तथा लचीला होना चाहिए।

प्रासंगिकता स्पष्ट है और हमें यह पहचान लेना चाहिए कि हमारी शिक्षा प्रणाली प्रासंगिक नही रह गई है। जब शिक्षा की यह

प्रणाली स्थापित की गई थी तब यह प्रासंगिक थी। अँग्रेजों का उस समय एक निश्चित उद्देश्य था, वे पढे लिखों के सहारे अपना राजकाज चलाना चाहते थे और सर्वसाधारण को अशिक्षित रखने में ही वे अपना हित देखते थे। किन्तु अब स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अब यह प्रासंगिकता इस रूप में समाप्त हो गई है। अब तो हमें यह प्रयत्न करना है कि अधिकतम संख्या में देशवासी शिक्षित हों। हमारे देश में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन हो गए है और हमारी शिक्षा-व्यवस्था इन तेजी से होने वाले परिवर्तनों के साथ कदम रखने में असफल हो गई है इसी कारण वह अप्रासंगिक हो गई है।

जब गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा दी तब वे इस प्रणाली को सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना चाहते थे। यही हमें समझना है। आजकी शिक्षा को हमे अपने आज के आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक ढांचे के अनुरूप बनाना है। प्रासंगिकता पहली बात है जिसकी ओर हमें ध्यान देना है, तब हमारी शिक्षा प्रणाली लचीली होनी चाहिए। यदि शिक्षा प्रणाली अत्यधिक कठिन और बेलोच होती है तो वह तेजी से होनेवाले सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के साथ कदम नही रख पाएगी अत: उसका लचीला होना अत्यावश्यक है। लचीला बनाने के लिए उसका विकेंद्रीकरण आवश्यक है। लेकिन यदि उसे बहुत अधिक विकेन्द्रित कर दिया जाए तो उसमें परिवर्तन करना बहुत कठिन हो जाएगा। हमारे सविधान-निर्माताओं ने शिक्षा को प्रदेशों पर छोडा यह उचित ही था। मैं भी इस विचार से सहमत हूँ कि शिक्षा प्रादेशिक सरकारोंका विषय रहे। प्रदेशों में दूसरा और विकेंद्रीकरण होना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा, क्षेत्रों और जिलों पर छोड़ देना चाहिए। तब प्रयोग करना अधिक सरल हो जाएगा तथा स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तन किया जा सकना संभव हो सकेगा। अत. हमें यह देखना है कि जो भी शिक्षा प्रणाली हम अंतिम रूप से काम में लाना चाहते हैं वह अत्यधिक बेलोच नही हो जाती है जिससे वह समय के परिवर्तन के साथ कदम न मिला सके।

पिछले कुछ वर्षों में समाज तेजी से बदला है और आगामी कुछ सदियों तक वह सामान्य समय की अपेक्षा अधिक तेजी से बदलेगा अत हमारी शिक्षा प्रणाली का लचीला होना आवश्यक है।

मेरा अन्तिम सुझाव यह है कि हमारी शिक्षा प्रणाली सक्षम हो। वह अपने म निहित उद्देश्यों की ओर सक्षमता से ले जाने वाली हो। हम जानते है कि हमारे विश्वविद्यालय युवकों को इस प्रकार तैयार कर रहे है कि वे रोजी पाने में असमर्थ हो रहे है और जैसा कि हमारे प्रधान मन्त्री जी न ठीक ही कहा है कि उनमें बहुत थोडा ज्ञान होता है और चरित्र तो बहुत ही कम। यह ऐसी बात नहीं है कि जिस पर हम अभिमान कर सकें। यह विश्वविद्यालयों की ही जिम्मेवारी है कि वे जीवन के हर क्षेत्र में समय के अनरूप नेतृत्व दे सकें किन्तु विश्वविद्यालय ऐसा नहीं कर रहे है। अत जो भी प्रणाली हम सोचें वह सक्षम हो अर्थात ऐसे युवक तैयार करने वाली हो जो वर्तमान सदर्भ मे समाज के लिए उपयोगी हों।

उच्च स्तरीय शिक्षा के सबध में भी यही बात है कि वह भी लचीली सक्षम एव उपयोगी होनी चाहिए। मुझे आशा है कि इन्हीं सब दृष्टियों से चर्चाओं म विचार किया जाएगा।

मुझे प्रसन्नता है कि हमारे प्रधान मन्त्रीजी चाहते है कि जो भी निर्णय हो उन्हें तुरन्त लागू किया जाए। जैसा कि अपने प्रास्ताविक भाषण म श्रीमनजी ने सकेत किया है— हमने बहुत सी उपसमितियाँ बनाईं कई कमीशन नियुक्त किए लेकिन कुछ परिणाम न निकला। हम कई सम्मेलन करते हैं समितियाँ बनाते है पर परिवर्तन कुछ नहीं होता। मेरा विश्वास है कि इस सम्मेलन का ऐसा परिणाम नहीं होगा वरन इसम से कुछ न कुछ उपादेय अवश्य निकलेगा। और उसपर शीघ्र अमल किया जाएगा।

शिक्षा आर्थिक परिप्रेक्ष्य में

श्री लकड़ावाला

मैं दो रुकावट से ग्रस्त हूं। एक तो शिक्षा के क्षेत्र में मेरा अनुभव विश्वविद्यालयीन स्तर तक सीमित है और वह भी विशेष रूप से अर्थ शास्त्र विषय तक। मेरी वर्तमान अभिरुचि योजना म है। दूसरी रुकावट यह है इस विषय के दो विशेषज्ञ मुझसे पहले बोल चुके हैं। अत स्पष्ट है कि मेरे कहने के लिए बहुत कम रह गया है। मैं योजना स सम्बद्ध सीमा तक ही अपनी बातों को सीमित रखूंगा।

जैसा कि आप जानते हैं नई योजना म ग्रामों की ओर अधिक झुकाव है, कृषि की ओर अधिक झुकाव है तथा तत्सबंधी तकनीक की ओर अधिक झुकाव है। स्पष्टत इन्हीं झुकावों स शिक्षा का झुकाव प्रभावित है। ऐसी स्थिति में यह भी स्पष्ट है कि हम अधिकतम महत्व प्रौढ़ शिक्षा या अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली को देंग। मैं विश्वास करता हूँ कि आप इस सम्मेलन में इस समस्या पर भी विचार करेंग और अपने आपको केवल औपचारिक शिक्षा तक ही सीमित नहीं रखेंग। औपचारिक शिक्षा के क्षत्रको पार करना तो थोड़ा सरल है क्योंकि इसम तो छात्रों को अन्य कोई विकल्प नहीं होता सिवा इसक कि व पाठशाला म आकर अपना निर्धारित पाठ्यक्रम निर्धारित अवधि म पूरा करें किन्तु प्रौढ़ शिक्षाका क्षत्र तो और अधिक आह्वान का क्षत्र है जहाँ शिक्षाकी प्रासगिकता की सच्ची परख होती है और यदि वह प्रासगिक नहीं होती तो प्रौढ़ लोग उसे स्वीकार ही नहीं करते। इस दृष्टिकोण से मैं आपसे अत्यधिक प्रार्थना करूँगा कि आप कृपया अपनी चर्चाओं क दौरान प्रौढ़ शिक्षा पर अधिक ध्यान देंग।

जहाँ तक प्राथमिक शिक्षा का प्रश्न है, मैं सोचता हूँ कि हमने गत कुछ वर्षों में काफी प्रगति की है। अब मुख्य समस्या अधिक शालाएं प्रारम्भ करने की नहीं है वरन् यह है कि खुली हुई पाठशालाओं म छात्र

आते हैं और निर्धारित अवधि तक शिक्षा ग्रहण करते हैं। छात्रों के केवल भर्ती होने, शालाओं में कुछ दिनों तक उपस्थित होने और उपस्थित होकर सफलतापूर्वक पाठ्यक्रमों को पूरा करने—इन सब में महान अन्तर है। मैं देखता हूँ कि शिक्षकगण केवल भर्ती-संख्याको पूरी करने की ओर ही अधिक ध्यान देते हैं। महत्वपूर्ण तो यह है कि छात्र नियमित रूप से शालाओं में उपस्थित होकर अपना निर्धारित पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा करें। बुनियादी तालीम इस प्रकार की आकर्षक हो कि वह छात्रों को शालाओं में आने, उपस्थित रहने तथा पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए आकर्षित करे।

जहाँ तक उच्च शिक्षा का विशेषतः विश्वविद्यालयीन शिक्षा का प्रश्न है गत तीन वर्षों में हमने इस मद पर काफी रुपया खर्च किया है। मैं यह जानता हूँ कि अन्य प्रगतिशील देशों की तुलना में यह राशि पर्याप्त नहीं है फिर भी गत वर्षों की अपेक्षा हमने काफी अधिक खर्च किया है। अब हम यह देखना चाहिए कि जो कुछ हमने खर्च किया है उसके अनुकूलतम और अधिकतम परिणाम हम मिल रहे हैं क्या? मैं सोचता हूँ कि हमने उच्च शिक्षा को प्रत्येक छात्रके लिए मूलतः बहुत सस्ता बना दिया है। हाँ, इस में तो मुद्दा हो सकता है कि हम गुणवत्ता के आधार पर छात्रों का चुनाव कर उनके लिए उच्च शिक्षा को सस्ता बनाएँ। उच्च शिक्षा को सभी के लिए सुलभ बनाने की उपयोगिता तभी है जब प्रत्येक व्यक्ति उसकी पूरी कीमत चुकाने को तैयार हो। यह एक प्रकार से मुक्त व्यावसायिक अर्थ शास्त्र है और दूसरा समाजवादी अर्थ शास्त्र जहाँ हम प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप तथा उसके द्वारा की गई समाज सेवाओं के अनुरूप देते हैं। मुझे भय है कि इन दोनों में हमने बुरी सुलह या सन्धि की है। हमने लगभग सभी को विश्वविद्यालयीन शिक्षा प्रदान करने की अनुमति देने की प्रणाली अपनाई है और उसके लिए शासकीय अनुदान देते हैं जिसका भार जनता पर पड़ता है। पर आपको ध्यान होगा कि तीन चार वर्ष पहले विदेश में भीषण हड़ताल का सामना करना पड़ा था। जब तक विद्यार्थियों से चर्चा की जाती है तब तक तीन चार दिनों तक तो महाविद्यालय और विश्व-

विद्यालय बद हो जाते हैं। परिणामत छात्र चिंतित हो जाते हैं और जितने दिन पढाई नही होती है उतन दिनकी दी गई फीस के विषय में सोचने लगते है। पढाई की फीस इतनी अधिक होती हैं कि हडताल के कारण या महाविद्यालय के बद होने के कारण न होनेवाले लेक्चर्स के सदर्भ म व सोचने लगते हैं।

हमारी प्रणाली म चूंकि यह मूल्य कुछ नही होता अत महा विद्यालयो या विश्व विद्यालयो द्वारा न किए गए काम को कोई महत्व नही देत। अब हमें अविलम्ब यह सोचना होगा कि हम कवल उन्ही छात्रो को शासकीय अनुदान द जो प्राप्त शिक्षा स अधिक स अधिक लाभ अर्जित करते हैं। दूसरो से हम पूरी फीस वसूल कर या फिर कर्ज के रूपमें उन्हें सहायता द जिसस कज लनवाल समझ पाएँ कि जो शिक्षा वे पाएँग वह उस कर्ज के लायक है या नही।

अब मै अतमें यह कहना चाहता हूँ कि जब जब मै इस प्रकार के सम्मेलनो में शामिल होता हूँ तब तब शिक्षा विशेषज्ञो में एक प्रवृत्ति पाता हूँ और वह है राष्ट्रीय आयमें स शिक्षा के हतु आनुपातिक राशिक सबध की। यह कुल मिलाकर राष्ट्रीय आय के शत प्रतिशत स भी अधिक होती है। आप इस दिशा में भी योजित और जो योजित नही है दोनो पर विचार करें और उसमें भी प्राथमिकता के क्रम स विचार कर। क्योकि विशेषज्ञो के निर्णय राष्ट्र क तद्विषयक भाग्य निर्मितिम सहायक होते हैं और उन्हीके आधार पर कार्य की प्राथमिकता एव महत्ता निर्धारित होती है।

■

शिक्षा की पुनर्रचना

डॉ. सतीशचंद्र

अध्यक्ष महोदय, डॉ चद्र तथा इकट्ठा हुए मित्रगण! मैं यहाँ कुछ कहने की बजाय अधिक सुनने के लिए आया हूँ। प्रधान मत्रीजी ने कृपापूर्वक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इस पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए कहा है कि राष्ट्रीय वरीयताओं की दृष्टि से शिक्षा की पुनर्रचना कैसे की जा सकती है? इन वरीयताओंका उल्लेख बहुत पहले डा कोठारी की अध्यक्षता वाले कमीशन के सामने उनके द्वारा बोल जाते समय कर दिया गया है। उसके बाद भी प्रधान मत्रीजी के साथ चर्चा करते समय भी इनका उल्लेख हो चुका है। केन्द्रीय शिक्षा मत्री डा. प्रताप चन्द्र चदर ने भी सरकारी वरीयता का उल्लेख अनेक अवसरोंपर किया है और जहाँ तक विशद रूप से वरीयताओंका सबध है हम कह सकते है कि देश म इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नही रह गया है। मुझे विश्वास है कि इस सम्मलन में भी इस विषय पर कोई बडा मतभद नही होगा। हमारा सर्वाधिक जोर बुनियादी तालीमपर है जिसम, हम सर्वाधिक जोर चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व निर्माण पर, गुणोंपर, जीवन क मूल्यों को तथा समाजवाद पर दें। ये वे कुछ तत्व हैं जिन्हें आयोग न भी ध्यान मे रखा है। आयोग ने प्रध न मत्रीजी तथा शिक्षा मत्रीजी को एतद्विषयक एक दस्तावेज दिया है और हम आशा करते है कि उनके साथ विस्तृत चर्चा करने का हमे लाभ मिलेगा। उच्च शिक्षा ही नही वरन् वास्तव म सपूर्ण शिक्षा प्रणाली के साथ वरीयता के अतिरिक्त प्राथमिक समस्या-जैसा कि तिलकजी ने कहा था—यह है कि हमारी शिक्षा प्रणाली द्वैध है। हमारी शिक्षा प्रणाली अच्छी तो है लेकिन वह बहुत कम अल्पसख्यक लोगो के लिए मूल्यवान है। इन्ही

अल्प संख्यकों के लिए प्राथमिक शालाएँ हैं : इन्हीं अल्प संख्यकों के लिए पब्लिक स्कूल हैं और जहाँ तक उच्च शिक्षा का सम्बन्ध है यह बताया गया है कि विश्व विद्यालयों तथा विविध व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में ८० प्रतिशत स्थान तो अधिकतम आय के दायरे वाले लोग ही रोक लेते हैं। समस्या यह है कि इस द्वैध शासन से कैसे छुटकारा पाया जाए अथवा इसके बन्धनों को ढीला कैसे किया जा सके ? यह द्वैध प्रणाली अन्य सामाजिक तथा आर्थिक प्रणाली में असमानता की पारम्परिक जड़ है। मैं एक छोटासा उदाहरण देना चाहूँगा। हमारे देश में ४००० से अधिक महाविद्यालय हैं। इनमें लगभग ३२०० विज्ञान या वाणिज्य महाविद्यालय हैं। विश्व विद्यालय अनुदान आयोग ऐसे महाविद्यालयों की सूची रखता है जो उसकी सहायता के अधिकारी हैं। इन अधिकारी महाविद्यालयों को हम दो एफ के अंतर्गत परिगणित करते हैं। इन ३२०० महाविद्यालयों में से केवल २७०० महाविद्यालयों ने दो एफ के अंतर्गत समाविष्ट किए जाने के लिए प्रार्थना पत्र दिए हैं। ये महाविद्यालय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता के पात्र हैं। आयोग इन सभी महाविद्यालयों को सहायता नहीं दे सकता क्योंकि वह तदहेतु छात्र संख्या, प्राध्यापक संख्या, दी जानेवाली न्यूनतम सुविधाएँ संबंधी कुछ मानदंड निर्धारित करता है। वह इसलिए कि आयोग का काम गुणवत्ता को बढ़ाना, मानदंड को ऊँचा करना आदि भी है, केवल सहायता करना मात्र नहीं। अतः जहाँ तक आयोग का सम्बन्ध है, इन २७०० महाविद्यालयों में से केवल २००० महाविद्यालय इसकी सहायता के अधिकारी हैं।

अब यह देखना है कि इस परिस्थिति का सामना हम किस प्रकार करते हैं। यह सब मैं योजना आयोग के उपाध्यक्ष द्वारा की गई टिप्पणी के संदर्भ में कह रहा हूँ। यह सच है कि जब जब विशेषज्ञ इकट्ठा होते हैं तब तब वे अधिक अर्थ (द्रव्य) की माँग करते हैं और योजना आयोग भी विशेषज्ञों की ही एक संस्था है। वे सदा निर्णय कर सकते हैं कि हमारी प्राथमिकताएँ क्या हैं। मैं चाहूँगा कि यह सम्मेलन यह भी निश्चित करे कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की प्राथमिकताएँ क्या हों।

या तो वह प्रत्येक महाविद्यालयों को अनुदान दे या मानदंड से उसका निर्णय अधिक सवधिन हो? अनदान आयोग की आर्थिक मीमाओ को ध्यानमें रखते हुए ही विचार किया जाना इस गरीब देश की आवश्यकता है। हम थोडी थोडी रकम सभी महाविद्यालयों को दे सकते है किन्तु उससे स्तर पर हमारा कोई निबंध नही रह जाएगा और इससे द्वैध व्यवस्था तथ। द्वैध परिणाम ज्यो के त्यो बने रहेंगे और यह थोडी रकम भी थोडे ही महाविद्यालयो को लाभान्वित कर पाएगी। हमारा उद्देश्य यह है कि जितने भी महाविद्यालयो को दे सकें अधिकतम सहायता दें और वह भी विशेषत पुस्तकों और प्रसाधनों के रूपमे। किन्तु हम यह अवश्य ध्यान रखते हैं कि जिले की इकाईवार और चरणवार श्रेष्ठ महाविद्यालयो की स्थापना सभव हो जिससे अधिक से अधिक सख्या में मेधावी (बुद्धिमान) छात्रो को महाविद्यालयीन अध्ययन करने की सुविधा प्राप्त हो सके। अपनाया जा सकने वाला हमारा दूसरा पर्याय या पूरक पर्याय यह है कि गरीव छात्रो को सुविधा दी जाए और इस प्रकार के प्रतिष्ठा प्राप्त महाविद्यालयो में प्रवेश पा सकें। इन दोनो व्यवस्थाओ के लिए पैसे की आवश्यकता है और मैं सोचता हूँ, यदि योजना आयोग सकेत दे और वही सकेत दे सकता है कि कितनी राशि उच्च शिक्षा के लिए निर्धारित की जाए और यदि प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती है तो द्वैध प्रणाली मे छिद्र करना प्रारम्भ किया जा सकता है।

जहाँ तक मै देख पाता हूँ मुझे भय है कि सीमित साधनो के भीतर यह सभव नही है कि आशा की जा सके कि ३२०० महाविद्यालयो को समान उच्चतर तक उठाया जा सके। यदि धन हो भी तो ठीक से आवश्यक योग्यता वाले व्यक्ति उपलब्ध नहीं है। और योजना आयोग प्रयत्न कर रहा है कि उन्नत करनेके कार्यक्रमो द्वारा वर्तमान शिक्षको का स्तर समुन्नत किया जा सके।

मैं प्रासगिकता सबधी समस्या के विषय में कुछ कहने की अनुमति चाहता हूं। यह सचमुच एक गम्भीर समस्या है। किन्तु यह समस्या एक मात्र भारत के लिए ही विचित्र नही है। यूनेस्को द्वारा प्रकाशित 'लर्निंग टु बी' नामक पुस्तक में इस मुद्दे पर विस्तारपूर्वक विशेष जोर

दिया गया है कि ऐसा नही है कि संसारके समुन्नत देश अपनी समस्त समस्याओं को सुलझा पाए हैं और केवल अर्द्ध समुन्नत या अनुन्नत देशो को ही समस्याओं का सामना करना पड रहा है। जितनी तेजी से समाज बदल रहा है जितनी तेजी से तकनीकी परिवर्तन हो रहे हैं उन सबकी दृष्टि से सभी देशो में शिक्षा असामयिक होती जा रही है। हमारे देश में चूकि वह अधिक असामयिक है और इसीलिए प्रासंगिताकी समस्या हमारे यहाँ अन्य देशो की अपेक्षा अधिक कठिन है। लेकिन यहाँ की जिस समस्याको रघुकुल तिलकजी ने उठाया है उसके संबध में मैं स्पष्ट कहूँ कि मैं नही जानता कि क्या उत्तर दिया जाए ? किए जानेवाले परिवर्तन तो सहज ही सुझाए जा सकते हैं लेकिन ज्यो ही उनके कार्यान्वयनकी बात आती है त्यो ही चारो ओर से विरोध होना शुरु हो जाता है।

परीक्षाओं में सुधार का प्रश्न एक ऐसा ही प्रश्न है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अनेक कमीशनों की सिफारिशो को ध्यान में रखते हुए शिक्षामें सुधार की एक योजना प्रस्तुत की जिसमें उसने अतर्गत अक्दान प्रश्न बैंक तथा अन्य कई मद्दो पर बल दिया। जब नई प्रणाली को काम में लाने की बात आती है तब शिक्षक तथा छात्र नई प्रणाली के प्रयोग की अपेक्षा तथा अन्य प्रयोगोंकी अपेक्षा पुरानी प्रणाली का जारी रखा जाना ही अधिक पसन्द करते हैं यद्यपि वे उसके दोषो के जानकार होते हैं। मैं समझता हूँ कि ऐसे सम्मेलन तथा अन्य कई माध्यमो द्वारा वैचारिक वातावरण बनाना होगा। बिना उपयुक्त वैचारिक वातावरण बनाए जो भी परिवर्तन सामने रखे जाएँगे, उन्हे कार्यान्वित नही किया जा सकेगा।

और मैं यह कहना चाहूँगा कि यद्यपि उपाध्यक्ष ने इस बात पर जोर दिया है कि हमने उच्च शिक्षा पर बहुत अधिक खर्च किया है मैं समझता हूँ कि उच्च शिक्षा को हम अधिक ताकतवर बनाना है। जब हम अपने स्तरकी तुलना अन्य प्रगतिशील देशो से करते हैं तो हम पाते हैं कि ऐसा किया जाना आवश्यक है। प्रधान मंत्री जी ने

ठीक ही कहा है कि हम छोटे देशों जितने भी विशेषज्ञ नहीं उत्पन्न कर पा रहे हैं। मानव जीवन के विविध उद्योगों के लिए इन विशेषज्ञोंकी आवश्यकता है और फिर विश्वविद्यालयों का स्तर भी ऊँचा नहीं है जिससे सारी शिक्षा पद्धति पर मैं कसावट आ सके। हम जिस मुद्दे पर बल देना चाहते हैं, वह यह है कि विश्व विद्यालयों को विस्तार की गतिविधियों पर अधिक गंभीर ध्यान देना चाहिए अर्थात् वे यह सोचें कि शिक्षा के क्षेत्र में उच्च स्तर को कायम रखना मात्र ही उनकी जिम्मेवारी नहीं है वरन् प्राथमिक, माध्यमिक एवं संपूर्ण के स्तर शिक्षा को ऊँचा बनाने की भी जिम्मेवारी उनकी है।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण लोगों शहर के लोगों और विशेष रूप से अशिक्षित प्रौढ़ों— इस प्रकार संपूर्ण सामाज के प्रति अपनी जिम्मेवारी का अनुभव उन्हें करना चाहिए। सरकार तथा योजना आयोग के साथ-साथ मैं भी यह कहता हूँ कि प्रौढ़ साक्षरता हमारी प्रधान प्राथमिकता है।

ये कुछ मुद्दे हैं जिनपर आयोग ने प्रधान मंत्रीजी को दिए अपने दस्तावेजों में सामने रखने का प्रयत्न किया है। हम इस सम्मेलन की चर्चाओं तथा मार्गदर्शक निर्णयों की ओर आशा भरी नजरों से देखेंगे।

■

बुद्धिपूर्वक किया जानेवाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ शिक्षा है।

मनुष्य न तो कोरी बुद्धि है न स्थूल शरीर है और न केवल हृदय। सम्पूर्ण मनुष्य के निर्माणके लिए तीनोंके उचित और एक रस मेल की जरूरत होती है और यही शिक्षाकी सच्ची व्यवस्था है।

बुनियादी शिक्षाका उद्देश्य दस्तकारी के माध्यमसे बालकोंका शारीरिक बौद्धिक और नैतिक विकास करना है।

अपने जीवन के प्रत्यक क्षण का सदुपगोग के सिद्धान्त का पालन नागरिकता के गुण का विकास करनेवाली सर्वोत्तम शिक्षा है। इससे बुनियादी तालीम स्वावलंबी भी बनती है।

महात्मा गांधी

भावी कार्यक्रम पर सर्वसम्मत निवेदन

राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन, जो अखिल भारत नई तालीम समिति द्वारा आयोजित किया गया था, दिनांक १८–१९–२० दिसम्बर, १९७८ को नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इसका उद्घाटन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया तथा केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष और नई तालीम समिति के सभापति डा. श्रीमन्नारायण ने इसकी अध्यक्षता की। राजस्थान के राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक के अलावा सम्मेलन में विभिन्न राज्यों के कई शिक्षा मन्त्रियों, विश्व-विद्यालयों के ३० कुलपतियों, कुछ संसद-सदस्यों, स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्रियों और देश के विभिन्न भागों के लगभग १०० अनुभवी बुनियादी शिक्षा क्षेत्र के कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। केन्द्रीय शिक्षामन्त्री डा. प्रतापचन्द्र चन्दर ने समापन भाषण दिया। योजना आयोग के उपाध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के निदेशक, शिक्षा मन्त्रालय के वरिष्ठ अधिकारी वर्ग और प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयीन शिक्षक प्रतिनिधियों ने भी सम्मेलन में भाग लिया।

सम्मेलन के अध्यक्ष द्वारा तैयार किए गए मुख्य विचारपत्रक 'राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली : कुछ रचनात्मक सुझाव' पर सम्मेलन में गहराई से विचार किया गया। तीन दिन की विस्तृत चर्चा के बाद निम्नलिखित निवेदन जाहिर किया गया—

१ अनेकों समितियों और आयोगों की सिफारिशों के बावजूद इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतीय शिक्षा प्रणाली राष्ट्र की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकी है और वह जन-साधारण की तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए भी समयानुकूल सिद्ध नहीं हुई है। ४० वर्ष पूर्व महात्मा गांधी ने

'शारीरिक श्रम और उत्पादक कार्य पर, केन्द्रित तथा बालक के आस-पास के परिवेश से घनिष्ट रूप में सम्बद्ध' बुनियादी शिक्षा की एक योजना देश के सामने रखी थी। इसका अभिप्राय, 'जीवन के लिए शिक्षा, और इससे भी आगे जीवन द्वारा शिक्षा' देना था। बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों का, उनकी उत्पादक क्षमता और स्थानीय समाज से निकट सम्पर्क सहित उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का, विकास करना था। गांधीजी द्वारा परिकल्पित बुनियादी शिक्षा एक गतिशील पद्धति थी जो निश्चित ही बदलती हुई परिस्थितियों मे प्रगति और विकास करनेवाली है।

वर्षों के प्रत्यक्ष अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत में पूर्व-प्राथमिक से विश्वविद्यालय तक सभी स्तरों पर शिक्षा सम्बन्धी मार्गदर्शन और स्वरूप-निर्धारण राष्ट्रपिता द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के आधार पर ही होना चाहिए। सक्षेप में हम कह सकते हैं कि शिक्षा आर्थिक प्रगति और विकास से सम्बन्धित समाजोपयोगी उत्पादक कार्यकलापों द्वारा दी जानी चाहिए।

बुनियादी शिक्षा के इन मूलभूत सिद्धान्तों को, बिना किसी भेद-भाव के, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की सभी शिक्षा सस्थाओं और समाज के सभी वर्गों के लिए लागू किया जाना चाहिए।

२. पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के पाठ्यक्रमों में निम्न तीन आधारभूत मूल्यों पर जोर दिया जाना चाहिए—

(१) शैक्षणिक प्रक्रिया के एक अभिन्न अग के रूप में कार्य-विशेष के उपयोग द्वारा स्वावलम्बन, आत्म-विश्वास और श्रम की गरिमा की भावनाओं का पोषण,

(२) विद्यार्थियों और अध्यापकों को सामुदायिक सेवा के अर्थवान कार्यक्रमों में प्रवृत्त करके राष्ट्रीयता तथा सामाजिक दायित्व के बोध का विकास, और

(३) विद्यार्थियों के मानस में नैतिक, चारित्रिक व मानवी मूल्यों की प्रतिष्ठा, सभी धर्मों की मूलभूत एकता की समझ और उनके प्रति समान आदर की भावना पैदा करना।

इन पाठ्यक्रमों में हमारे देश की समन्वयकारी संस्कृति, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता पर बल देते हुए भारतीय स्वाधीनता संग्राम के संक्षिप्त इतिहास और हमारे संविधान में प्रतिष्ठित अहिंसा, लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय तथा सर्वधर्म-समभाव (Secularism) के आधारभूत मूल्यों को समाविष्ट किया जाना चाहिए।

३. भारतीय संविधान के ४५ वें अनुच्छेद के अनुसार राज्य के चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा मिलनी चाहिए। इस निर्देश के अनुसार सभी राज्य सरकारों को छठी राष्ट्रीय योजना के अन्त तक आठवी कक्षा तक की देशव्यापी प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। बालिकाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों के बच्चों को स्कूलों में दाखिल करने की ओर विशेष ध्यान देना होगा। निर्धारित अवधि में इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए ऐसी अनौपचारिक शिक्षा जारी करना आवश्यक होगा, जिसमें अल्पकालिक शिक्षण, बहु-बिन्दु प्रवेश तथा अगली कक्षा में चढ़ाने की लचीली पद्धति का अनुसरण किया जाए।

जिन राज्यों में प्राथमिक शिक्षा केवल सात वर्ष तक दी जाती है, वहाँ फिलहाल उसी पद्धति को चलने दिया जाए।

छोटे बालकों की, विशेषतः कमजोर वर्ग के बालकों की, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के दौरान जीवन के आधारभूत मूल्यों के शिक्षण की ओर आवश्यक ध्यान दिया जाना चाहिए।

सामान्यतः शाला का ५० प्रतिशत समय उत्पादक, सृजनात्मक और मनोरंजन कार्यों को दिया जाए, जिसमें से कम से कम आधा समय पूर्णतः विभिन्न प्रकार के समाजोपयोगी उत्पादक कार्यों में

लगे। पाठ्य पुस्तकों के वर्तमान भार और अनिवार्य विषयों की बड़ी संख्या को उचित सीमा तक कम किया जाए।

सघन शिक्षा की दृष्टि से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार छुट्टियों म कमी और रद्दोबदल किया जाना चाहिए।

४ प्राथमिक के बाद माध्यमिक शिक्षा चार वर्ष की और वह १२ वी कक्षा पर समाप्त होने वाली हो। इस अवधि म स्थानीय और क्षेत्रीय रोजगार के अवसरों के अनुसार माध्यमिक स्कूलों में विभिन्न प्रकार के तकनीकी और व्यावसायिक पाठ्यक्रम चालू किए जाएँ, जिससे छात्र राष्ट्र के उपयोगी नागरिक के रूप में अपने जीवन में स्थिर होने के योग्य बन सकें। उत्पादक कार्यों के अतिरिक्त पाठ्यक्रमों में भाषा, विज्ञान और गणित, साहित्य सहित समाज-शास्त्र और मानविकी विषय शामिल किए जाएँ। विभिन्न विषयों के चुनाव में पर्याप्त छूट और लचीलापन हो। किन्तु माध्यमिक शिक्षा की एक ही समग्र धारा चले, उसमें 'शैक्षिक' और 'व्यावसायिक' जैसी किसी उपधारा का भेद नहीं होना चाहिए। जैसा कि शिक्षा सम्बन्धी यूनेस्को आयोग (१९७२) ने सिफारिश की है शिक्षा के विभिन्न प्रकारों में 'से कड़े अलगाव को समाप्त किया जाए और प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर से ही शिक्षा एक साथ सैद्धान्तिक, तकनीकी प्रायोगिक और शारीरिक हो।'

माध्यमिक स्तर के अध्ययन क पाठ्यक्रम एक तरह 'अन्तिम' होंगे, किन्तु भविष्य में भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने की छात्रों को छूट होनी चाहिए।

५ माध्यमिक स्तर तक सार्वजनिक शिक्षा की 'सामान्य स्कूल' पद्धति होनी चाहिए, जिसमें सभी बच्चों को जाति, वर्ग या धार्मिक मान्यता के भेदभाव के बिना प्रवेश मिल सके। भारत में एक लोकतान्त्रिक समाजवादी और प्रगतिशील समाज के विकास क लिए यह आवश्यक है।

इस दृष्टि से समय आया है कि 'पब्लिक स्कूल' जो अधिकाश में धनिक वर्ग क बच्चों को शिक्षण दने तक ही सीमित हैं, वे सब

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की मुख्यधारा में आ मिलें, जिसमें मातृभाषा और त्रिभाषा फार्मूला के माध्यम से ही शिक्षण देना भी शामिल है। इसके अलावा इन स्कूलों को कक्षा आठ तक कोई शुल्क लेने की अनुमति भी न दी जाए, क्योंकि १४ वर्ष की आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दिया जाना संविधान द्वारा निर्देशित है। साथ ही, इन स्कूलों से भी ५० प्रतिशत स्थान योग्यता छात्रवृत्तियों (Merit Scholarships) को देकर कमजोर वर्ग के छात्रों के लिए सुरक्षित रखे जाएँ।

६ संक्रान्ति काल में विभिन्न राज्यों के वर्तमान बुनियादी और उत्तर बुनियादी स्कूलों को प्रोत्साहित करने और सुदृढ बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाए। इस कार्य के लिए भारत सरकार केन्द्रीय बुनियादी शिक्षा बोर्ड की स्थापना करे। ऐसे बोर्डों की स्थापना राज्य स्तर पर भी की जाए।

७ विश्वविद्यालय स्तर पर पहला डिग्री पाठ्यक्रम तीन वर्ष का होना चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदाता मण्डल ने सुझाव दिया उसके अनुसार विश्वविद्यालय अपनी इच्छा से दो वर्ष का 'पास कोर्स' और तीन वर्ष का 'आनर्स कोर्स' रख सकते हैं। इस स्तर पर भी शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रम, बुनियादी शिक्षा की पद्धति पर, विविध प्रकार की उत्पादक और विकास परियोजनाओं से सम्बद्ध हो ताकि विश्वविद्यालय शिक्षा वास्तव में उद्देश्यनिष्ठ बन सके।

महाविद्यालयों में प्रवेश चुने हुए छात्रों को दिया जाना चाहिए और वहाँ उपलब्ध पुस्तकालयों प्रयोगशालाओं तथा अध्यापकों की सुविधा तथा वहाँ विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए प्रशिक्षित स्नातकों की माँग आदि का ध्यान रखा जाना चाहिए। इनमें कमजोर वर्ग और अविकसित क्षेत्रों के विद्यार्थियों के लिए समुचित स्थान सुरक्षित रखने चाहिए।

८ शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षा का माध्यम छात्रों की मातृभाषा होना चाहिए। कृषि, इन्जीनियरिंग और डाक्टरी पाठ्यक्रमों समेत भारत के सभी विश्वविद्यालयों में शिक्षाका माध्यम

क्षेत्रीय भाषाएँ अपनाए जाने के लिए पूरे निश्चय के साथ तुरन्त कदम उठाए जाने चाहिए। सक्रान्ति काल में भी मातृ-भाषा के माध्यम से माध्यमिक परीक्षा पास करने वाले छात्रो को इन तकनीकी और व्यावसायिक पाठ्यक्रमो में प्रवेश पाने से न रोका जाए। ऐसे विद्यार्थियो की भाषा सम्बन्धी कमी को पूरा करने के लिए इन सस्थाओ में विशेष व्यवस्था की जाए।

इस सारे लक्ष्य को ध्यान में रखकर आवश्यक पाठ्य पुस्तकें और अन्य साहित्य भारतीय भाषाओ में तैयार और प्रकाशित करने के लिए तुरन्त कारवाई की जानी चाहिए।

९ स्कूलो और कालेजो में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी रहने का एक मुख्य कारण यह है कि भारतीय सिविल तथा सैनिक सेवाओ में भर्ती की परीक्षाओ का माध्यम अभी भी अनिवार्य रूप से अँग्रेजी है। कुछ राज्यो तक में सिविल सेवा परीक्षाएँ अँग्रेजी में होती है। राष्ट्रीयकृत बैंको, बीमा कम्पनियो और सरकारी औद्योगिक सस्थानो में, भर्ती अँग्रेजी भाषा के माध्यम से होती है। इसलिए यह वाछनीय है कि ये सभी परीक्षाएँ क्षेत्रीय भाषाओ के माध्यम से हो। सरकारी सेवाओ में चुनाव के लिए विभिन्न राज्यो का उचित 'कोटा' नियत करने में कोई बडी कठिनाई नही होनी चाहिए। चुनाव के बाद उम्मीदवार इन सेवाओ के अखिल भारतीय स्वरूप को बनाए रखने के लिए हिन्दी और अँग्रेजी दोनो का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते है। सेवाओ के लिए चुनाव की इस नई पद्धति में उम्मीदवार ने अपनी शिक्षा प्राप्त करने के समय जो समाजोपयोगी उत्पादक कार्य किया उस विशेष योग्यता को भी अतिरिक्त मान्यता दी जानी चाहिए। इस व्यवस्था का, अनुभव के आधार पर, कुछ वर्ष बाद पुनरावलोकन किया जा सकता है।

१० वर्तमान परीक्षा प्रणाली का छात्रो की शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक क्षमता पर विनाशकारी प्रभाव पडता है तथा इसके परिणामस्वरूप छात्रो का स्तर गिरा है, उनमें अनुशासन की कमी आई है तथा प्रमाण पत्र, डिप्लोमा और डिग्री पाने के लिए अनुचित

तरीकों का अपनाया जाना व्यापक हुआ है। इसलिए यह आवश्यक है कि परीक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन किया जाए। छात्रों के बौद्धिक विकास का ही मूल्यांकन न किया जाए वरन् समाज की अर्थपूर्ण सेवा के कार्यक्रमों सहित उत्पादक और समाजोपयोगी प्रवृत्तियों में उनके सक्रिय योगदान को भी देखा जाए। वस्तुपरक सरल तरीके से आन्तरिक मूल्यांकन के लिए इन प्रवृत्तियों का विस्तृत ब्यौरा रखना आवश्यक है। संक्षेपत वर्तमान परीक्षा प्रणाली में ठीक ढग का सुधार, मौजूदा स्कूलों और कालेजो में बुनियादी शिक्षा की पद्धति पर उनमें नवीनता लाकर ही किया जा सकता है।

११ विभिन्न प्रकार की नौकरियों से विश्वविद्यालयों की पदवियों का सम्बन्ध विच्छेद किया जाना भी वाछनीय है ताकि कालेजों में प्रवेश चाहने वाली वर्तमान भीड उल्लेखनीय सीमा तक कम हो सके। विभिन्न सरकारी विभाग तथा गैर सरकारी संस्थान भी विश्वविद्यालय की पदवी पर जोर न देकर, अपना पाठ्यक्रम निर्धारित कर प्रतियोगिता परीक्षाएँ ले सकते हैं। ये पाठ्यक्रम ११ और १२ कक्षा में भी लागू किए जा सकते हैं, जिससे छात्र, मात्र क्लर्क का स्थान पाने के लिए अपने अवसर बढाने की उच्च शिक्षा लेने का लोभ न करें।

१२ उपरोक्त नई शिक्षा प्रणाली मिशनरी भावना वाले और निष्ठावान् सुप्रशिक्षित अध्यापकों के बल पर ही सफल हो सकती है। अध्यापकों को केवल तकनीकी व्यक्ति न माना जाए। वे ही वास्तव में राष्ट्र के सर्जक और निर्माता हैं। अध्यापकों को अपनी पूरी शक्ति छात्रों का चरित्र-निर्माण करने में लगानी चाहिए ताकि छात्र वर्ग समाज के प्रति अपना कर्तव्य निभा सकें। राज्य का यह उत्तर-दायित्व है कि वह उनका सामाजिक स्तर ऊँचा करे और इन्हें आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होने योग्य बनाए।

शिक्षक वर्ग की योग्यता और कुशलता बढाने के लिए बुनियादी शिक्षा के आधार पर शिक्षक प्रशिक्षण का कार्यक्रम तुरन्त बनाया जाना और व्यवस्थित रूप से अमल मे लाया जाना चाहिए।

सब प्रशिक्षण संस्थाओं को उत्पादक कार्य, स्वयं सेवा, आपसी सहयोग और लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित सुसम्बद्ध समुदायों के रूप में संगठित किया जाना चाहिए।

१३ देश के सभी राजनैतिक दलों से सम्मेलन अनुरोध करता है कि वे अपने द्वारा बनाई गई उपयुक्त आचार-संहिता को आधार मानकर शिक्षा-संस्थाओं के सहज चल रहे कार्यों में कोई हस्तक्षेप न करें। 'शिक्षा मन्दिरों' के छात्रों और अध्यापकों का दलीय-स्वार्थों के लिए अब और अधिक शोषण नहीं किया जाना चाहिए।

शिक्षा संस्थाओं तथा अन्य क्षेत्रों में हिंसक आन्दोलन और घेरावों को प्रशासन द्वारा दृढ़तापूर्वक रोका जाना चाहिए।

१४ इन सिफारिशों में उल्लिखित नई शिक्षा प्रणाली का ढाँचा अब होगा ८+४+३ अर्थात् आठ वर्ष की निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, चार वर्ष की माध्यमिक शिक्षा और तीन वर्ष की विश्वविद्यालय शिक्षा। जो राज्य अभी ७ वर्ष की प्राथमिक शिक्षा देते हैं वहाँ शिक्षा का ढाँचा ७+५+३ का होगा। साथ ही, उन विद्यार्थियों के लिए, जो माध्यमिक शिक्षा पूरे समय प्राप्त करने की क्षमता नहीं रखते हैं, दस वर्ष की शाला शिक्षा समाप्त करने के बाद मैट्रिक परीक्षा लेने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए एक समान शिक्षा प्रणाली नितान्त वांछनीय है। परन्तु प्रदेश और क्षेत्रीय तथा जिला स्तर पर भी विभिन्न पाठ्यक्रमों को तैयार करने में अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। शिक्षा क्षेत्र में, समान शिक्षा प्रणाली पर जोर देने के कारण, नए सुधार और शोध करने में बाधा नहीं आनी चाहिए।

सरकार को एक राष्ट्रीय नीति के तौर पर शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्तता को मान्य करना चाहिए, और उन पर अपना नियन्त्रण कम से कम कर देना चाहिए।

१५ देश भर में युद्ध स्तर पर प्रौढ़ शिक्षा को आयोजित करने के सरकार के निर्णय का सम्मेलन स्वागत करता है। इस क्षेत्र में

भी बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों को समुचित ढंग से लागू करना होगा ताकि 'कायगत साक्षरता' से जन समुदाय की केवल नागरिक चेतना समुन्नत न हो बल्कि उनकी व्यवसाय सम्बन्धी उत्पादक कुशलता भी बढ़े। अध्यापकों और छात्रों को अपने प्रशिक्षण के एक अभिन्न अंग के रूप में प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम में भाग लेना होगा।

१६ नई शिक्षा प्रणाली को सफलतापूर्वक लागू किए जाने के लिए माता-पिता व संरक्षक वर्ग का संगठित रूप में सक्रिय सहयोग आवश्यक है। वस्तुतः प्रत्येक घर को शिक्षा की एक आधारभूत इकाई के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। शाला और घर दोनों एक दूसरे को समृद्ध करने में परस्पर सहयोगी व पूरक बनें।

१७ बुनियादी शिक्षा के आधारभूत तत्वों को प्राथमिक से विश्वविद्यालय तक के सब स्तरों पर समाविष्ट किए जाने के महत्वपूर्ण प्रसंग में भारत सरकार से निवेदन है कि वह एक उच्च स्तरीय राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन करे जिसमें शिक्षा क्षेत्र की स्वैच्छिक सेवा संस्थाओं का भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो। यह आयोग यथाशीघ्र अपने विस्तृत सुझाव सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करे।

१८ स्पष्ट ही उपयुक्त रूप में शिक्षा के पुनर्नियोजन के लिए अतिरिक्त राष्ट्रीय लागत राशि की आवश्यकता होगी। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान कुल व्यय के मुकाबले में शैक्षणिक व्यय का अनुपात तीसरी पंचवर्षीय योजना के ६ ८७ से घटकर चौथी पंचवर्षीय योजना में ५ प्रतिशत और पांचवी पंचवर्षीय योजना में ३ २७ प्रतिशत तक नीचे आ गया है। यह सही है कि शिक्षा सम्बन्धी योजना के अन्तर्गत और योजना से बाहर के व्यय दोनों को दृष्टि में रखा जाएगा तो थोड़ा भिन्न चित्र सामने आएगा। लेकिन इस पर भी सारी स्थिति सन्तोषकारी होने से परे रहेगी। जैसा कि शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति प्रस्ताव में सुझाया गया है हमारा लक्ष्य, शिक्षा-कार्यक्रम में कुल राष्ट्रीय आय का ६ प्रतिशत व्यय किए जाने का स्तर यथाशीघ्र लाने का होना चाहिए।

१९ सम्मेलन को पूरी आशा है कि इस निवेदन में जो विभिन्न सुझाव दिए गए हैं, उन पर भारत सरकार, राज्य सरकारों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा गम्भीरता से विचार किया जाएगा ताकि इनके कार्यान्वियन की ओर त्वरा की भावना से कदम उठ सकें।

२० साथ ही यह भी आवश्यक है कि जो निर्णय, ध्यानपूर्वक विस्तृत विचार-विमर्श के बाद एक बार लिए जायें उन्हें आगे दस या पन्द्रह वर्ष तक न छेड़ा या परिवर्तित किया जाए ताकि राष्ट्रीय शिक्षा के सारे स्वरूप में एक स्थायित्व और सातत्य सुनिश्चित रह सके। राष्ट्रीय सहमति से निर्धारित शिक्षा का स्वरूप दलीय नहीं समझा जाना चाहिए।

२१ सम्मेलन के अध्यक्ष, सम्मेलन की सिफारिशों के प्रत्यक्ष कार्यान्वियन के लिए २१ सदस्यों की कार्य समिति (Follow-up Committee) नियुक्त करने को अधिकृत किए जाते हैं, जिसे सदस्य सहवरित करने का अधिकार होगा।

■

नई तालीम एक 'तन्त्र' नहीं 'विचार' है। बच्चों की तालीम एक शुभ कार्य है। इसे 'नई तालीम' नाम दिया गया है। लेकिन मैं इसे 'नित्य नई तालीम' कहता हूँ। नित्य नई तालीम का मतलब है, जो कल थी, वह आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं रहेगी। जैसे नदी का पानी। नदी बहती रहती है, लेकिन प्रति क्षण उसका पानी नया होता है। वैसे ही रोजके अनुभव के आधार पर जो नित्य बदलती रहती है, वह है, नित्य नई तालीम!

नई तालीम याने नए मूल्योंकी स्थापना।

विनोबा

सेवाग्राम आश्रम-वृत्त

(नवम्बर, दिसम्बर, १९७७ का)

यद्यपि यह वृत्त नवम्बर, दिसंबर १९७७ का है फिर भी प्रकाशन के लिए जनवरी १९७८ में दिया जा रहा है।

सन् १९७८ तो हमारे लिए महारुद्र के रूप मे प्रगट हुआ। हमारे गाधी परिवार के महाप्राण सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष पूज्य श्री श्रीमन्नारायण जी को महामृत्युने ग्रास लिया। उनका स्वर्गवास हुआ। सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठ न के लिए यह कभी भी पूर्ति न होने वाली क्षति हुई।

ईश्वर उनकी आत्मा को चिरशान्ति दे यही विनम्र प्रार्थनाहै।

दिसम्बर के १८, १९, २० को दिल्ली में अखिल भारत नई तालीम समितिद्वारा अखिलभारतीय शिक्षा परिषद का आयोजन किया गया था जिसकी अध्यक्षता पूज्य श्रीमन्जी ने की थी और दिन रात अथक परिश्रम करके इस प्रयास को सफल बनाया था। पूज्य बापू के शिक्षण विषयक विचारो को भारत के उच्च कोटि के शिक्षाविदो द्वारा स्वीकार कराने में श्रीमन्जी सफल रहे यह विशेष आनंदकी बात है। मृत्यु के पूर्व श्री श्रीमन् जी ने एक बहुत ही बडा कार्य किया यह कहने में किसी तरह का सकोच नही होना चाहिए। सेवाग्राम आश्रम का सारा वातावरण पूज्य श्री श्रीमन्जी के चले जाने से शोकाकुल है।

सेवाग्राम आश्रम में इस अवधि में कुल ११ मेहमान आकर रहे और आश्रम जीवन का अनुभव लिया। इनमें इंग्लेंड, नेदरलैण्ड, हालैण्ड, अमेरिका और जर्मनी की भाई बहनें शामिल है। विशेष अतिथियो में भारत के स्वास्थ्य मत्री श्री राजनारायण, विश्वधर्म सस्थापक श्री बाहउलाह, तथा महाराष्ट्र के वित्त मत्री श्री जोगेश देसाई थे।

इस अवधि मे आश्रम के सारे कार्यक्रम नियमित चले। नई तालीम प्रात, प्रार्थना की औसत हाजरी १२ रही, साय प्रार्थना में औसत हाजरी १२-५० रही, सूत्रयज्ञ में हाजरी ५० रही।

(अ) बापू कुटी में बापू के आसन की सुरक्षा का प्रबंध किया गया दर्शनार्थियों के साथ आने वाले छोटे बच्चे बापू का आसन न बिगाड सकें इसकी व्यवस्था की गई।

(आ) बापू द्वारा उपयोग मे लाई गई चीजों की दीर्घ कालीन रक्षा के लिए पूज्य श्रीमनजी की सलाह से इन स्मारक चीजों पर वैज्ञानिक क्रिया करने के लिए गाधी राष्ट्रीय स्मारक सग्रहालय के कार्यकर्ता श्री शरद पडया के साथ दिल्ली भेज दिया गया। आश्रम परिसर में जो सफाई कार्य प्रतिदिन चलता है वह साधकों द्वारा व्रत भावना से किया जा रहा है।

इस अवधि म कुल ४३४६ दर्शनार्थी आश्रम दर्शन के लिए आए। इनमे १।३ विद्यार्थी थे। कुल २८९ टोलियाँ आश्रम दर्शन के लिए आई थी। इस अवधि में एक शिविर और एक परिसवाद आश्रम प्रतिष्ठान परिसर में हुआ, दिसम्बर ४ से लेकर ८ तक समाज विज्ञान तज्ञों की सगोष्ठी यहाँ के कला भवन में सम्पन्न हुई जिसमें प्रत्यक्ष कार्य मे पडे हुए भारत के अनुभवी कार्यकर्ता शामिल हुए थे। दूसरा एक शिविर २७, २८ २९ दिसम्बर को ग्रामीण मजूर सघ द्वारा सगठित किया गया।

६ नवम्बर को राष्ट्र सत श्री तुकडोजी महाराज के पुण्य स्थ न से १५० पदयात्री एक रात के वात्सल्य के लिए आश्रम में आए थे। २५ दिसम्बर को ईसू जयति के उपलक्ष्य में विशष प्रार्थना का आयोजन कला भवन म किया गया था। नित्य के प्रति ३० तारीख को सामूहिक भोजन सर्व धम केन्द्र के नई तालीम कुटी प्रांगण में हुआ। इस माह में कार्यकर्ताओ का एक दिवसीय शिविर कार्याधिकता के कारण नहीं हो पाया।

तूफान पोडितो क लिए कार्यकर्ताओ द्वारा एकत्रित की गई राशि मदद के रूप में दी गई। ईद के दिन दुर्ग (म प्र) के ज्ञानी श्री सादिक अली ने आश्रम के बापू कुटी में हज मनाया। उन्होंने पवनार जाकर पूज्य विनोबाजी से भी भट की।

श प्र. पांडे
कार्यालय-मंत्री

श्रद्धा सुमन

[डॉ श्रीमन्नारायणजी के असामयिक निधन से उनके अनेक चहेतों के मन दुःखी होना स्वाभाविक है। उनके कुछ महत्वपूर्ण साथियों के श्रद्धा-सुमन यहाँ दिए जा रहे हैं।]

वे वपु तोड़कर आगे चले गए

आज श्रीमनजी की मृत्यु की अचानक खबर मिली। आज ही वे यहाँ पहुँचनेवाले थे। लेकिन वे चले गए। बाबा की उम्र ८२ है, उनकी ६५ साल की उम्र थी। वपु तोड़कर वे आगे चले गए।

गांधी-निधि के अध्यक्ष थे, वे गवर्नर भी थे, राजदूत भी थे। हिन्दुस्तान भरमें कार्य तो उन्होंने अनेक किए हैं।

युवावस्था में शांति रखना, तटस्थ रहना यह उनका गुण था। वे हमेशा सत्वबुद्धि कायम रखते थे। वे हमेशा मध्यमार्ग में चलते थे। यह उनकी एक विशेष बात थी।

मेरे लिए वे सहारा थे।

ऐसे व्यक्ति को आज हमने खोया है। जाना तो सबको है, इसलिए दुःख क्या करना? लेकिन जो इतना साधन करके, समत्व बुद्धि से परलोक गमन करते हैं, उनको निःसंशय सद्गति मिलेगी।

३-१-१९७८ विनोबा

* * *

गोवरधनदास चोखावाला सूरत, गुजरात
१४-१-१९७८

श्री श्रीमन्नारायणजी के जाने से आप सबको भारी चोट पड़ी है। श्रीमती मदालसा बहन पर भी भारी पटका पड़ा है। मुरब्बी जानकी बहन को इस उम्र में भारी आघात महसूस करने का प्रसंग आया है। श्रीमन्जी गुजरात भरमें मीठी सुवास छोड़ गए हैं और आज सब कोई उनको प्रेम से याद करते हैं।

चोखावाला के सप्रेम प्रणाम

कस्तूरबा धाम
१४-१-१९७८

मुरब्बी श्री श्रीमन्नारायणजी के जाने से देश को बहुत बहुत खोट पड़ी। बापूजी के रचनात्मक कार्य को वेग देने के लिए उन्होंने खूब मेहनत करना आरंभ कर दिया था। अभी अभी जात जात के सम्मेलन भरे, काया को घिस डाला। ईश्वर ऐसे आत्मा को शान्ति बक्षेगा ही। गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष उनके जैसा कौन मिलेगा? आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष भी सोचना तो पड़ेगा ही। सभा बुलाने का रहेगा ही बहन मदालसा बहन को मिलने के लिए आना ही है। कब आना होगा यह देखने का रहा है। हमें पास मिल गये है मेरी सेवा आश्रम को देता ही रहूँगा।

आज्ञांकित बालक
कनुके सादर प्रणाम

श्रीमन्जी हम लोगोंके बीच प्रकाश स्तम्भ थे। देश की वर्तमान समस्याओं पर निष्पक्ष निर्भीक तथा नियंत्रित विचार व्यक्त करने वाले व्यक्तियों की आज कितनी कमी है। श्रीमन्जी सदैव जाग्रत थे और दूसरेसे भी यही कामना रखते थे

उनके अधूरे कार्य को हमें पूरा करने में लग जाना चाहिए जिससे उनकी आत्मा को शांति मिले।

७-१-७८

रामचरित्र
हरिसिंह कालेज, खड़गपुरा मुंगेर

श्रीमन्जी की याद में

श्री – हत हुई
मन – खंडित है
नारायण – यह कैसा तेरा समाधान?
जिन्होंने बापू और बाबा की बात
ले जन का काम किया सब ओर
सर्वोदय और सरकार के बीच
बांधा सेतु
संस्थाओं और रचनामें लगे साथियों से
स्नेह सेतु सजोए जीवन भर
राष्ट्र भाषा अर्थ शास्त्र तालीम और
कुदरती इलाज आदि
सभी गांधी कामके बिरवोंको सींचा
अपनी ज्ञान-शक्ति-भक्तिसे
व्यवस्थितता मृदुता और शालीनता
के गुणों को प्रकाशित कर
वे सदाको सुगंधित कर गए
उपवन यह

मगन संग्रहालय
वर्धा ३-१-८७

–देवेन्द्र कुमार

■

वर्ष २६
अंक ४

अनुक्रम

फरवरी–मार्च '७८

* 'नई तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नई तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपए हैं और एक अंक का मूल्य दो रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नई तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नई तालीम समिति, सेवाग्रामके लिए प्रकाशित और
राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा में मुद्रित

शिक्षा में हो क्रांति नई !

सुख शांति समाराधन अपूर्व, दिग् दिगन्त में फैलाना है,
शिक्षा में हो अब क्रांति नई हाँ, करके यही दिखाना है !
यह पुण्य भूमि, भारत स्वदेश, संस्कार प्रवाह चिरंतन है,
एशिया खण्ड है महाद्वीप, में भारतवर्ष प्रतिष्ठित है !
गुण-गौरव गुंजन 'राष्ट्रदेव भव', भाव-रूप हो सदाचरण,
राष्ट्रीय ऐक्य एकता रूप, शिक्षा का हो मंगलाचरण !
विद्यात्मक हो अध्ययन गहन, चैतन्य सजग चिंतन पावन,
सम भाव हृदयमें लहराएँ, आनंद रूप हो नवजीवन !
अंतर में हो संस्कार तरल, सब धर्मों का हो ज्ञान विमल,
जन मान करें, सम्मान करें, आपस में हो सदभाव सरल !
सत्स्नेह प्रवाहित हो अंतर तर, तरल तरंगित उन्नत हो,
आनंदविभोर रहें बालकगण, तन-मन स्वस्थ, समुन्नत हो !
उद्योग-परायण शिक्षण हो, उत्पादन का हो भाव भरा,
दिन दिन उत्साह बढ़े जीवन—अवलंबन सुखमय हरा-भरा !
उत्साही हो, सब विद्यार्थी, सहयोगी हो, तेजस्वी हो,
निर्मल, उज्ज्वल, जागृत, उद्यत, निर्भय हो सभी मनस्वी हो !
जीवन के स्थाई-तत्वों को वे समझें दृढ़ता धरें सभी,
बुनियाद सुदृढ़ हो जीवन की यह लक्ष स्पष्टता धरें सभी !
उत्क्रान्ति प्रदायक हो शिक्षा, हो प्रगतिशील जीवन सुंदर,
संकल्पवान दृढ़ धैर्यवान हो तरुण राष्ट्र-दर्शन सुंदर !

— मदालसा नारायण —

दिल्ली
३१-१२-'७७

*

सर्वोदय के शिक्षा पुरुष श्रीमन्जी के प्रति श्रद्धांजलि—

सुनहला फूल कपास का*

झर गया
सुनहला फूल
कपास का

हाय कटेगी कैसे रातो
कौन बनेगा दियना-बातो
बिछुड गया कविता से गायक—
प्रिय जीवन — निवास का।

शांत बुद्ध का सा मुख-मण्डल
मन था-अमृत भरा कमण्डल
तन था ऐसा पावन जैसे —
दोहा तुलसीदास का।

कितनी आस्थामय थी भाषा
'रोटी का राग' 'अमर-आशा
'रजनी में प्रभात का अंकुर'—
स्वर वाणी-विलास का।

भक्ति विनोबा प्रति थी गहरी
गांधी के सपनों का प्रहरी
था जो रथ सर्वोदय का, पथ —
रचनात्मक प्रयास का।

हुई शिशिर में कैसी बरखा
मौन हुआ सांसो का चरखा
हाय कतेगा कैसे धागा —
शिक्षा के विकास का?

एक आश्रमवासी सेवाग्राम

---

*साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥
—श्री रामचरित मानस

'— श्रीमन्नारायणजी के काव्य संग्रह

हमारा दृष्टिकोण

पुनरीक्षा समिति का विवरण :

एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा दसवीं कक्षा तक की पाठशालाओं के लिए तैयार किए गए पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या पुस्तक तथा पाठ्य पुस्तकों पर ईश्वरभाई पटेल पुनरीक्षा समिति का विवरण भारत सरकार के शिक्षा एवं समाज कल्याण मन्त्रालय द्वारा जनचर्चा हेतु प्रकाशित किया गया है। समिति को निम्नलिखित पुनरीक्षा करने को कहा गया था:—

(१) क्रमवार और विषयवार उद्देश्य जो दसवर्षीय पाठशाला के लिए पाठक्रम सम्बन्धी एन सी ई आर टी के दस्तावेज में अभिन्न अंग के रूप में संबद्ध किया गया है।

(२) एन सी ई. आर टी पाठ्यचर्या पुस्तक तथा पाठ्य पुस्तकों की इस पुनरीक्षा के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म परीक्षण करना। तथा

(३) अध्ययन की योजनाओं का सूक्ष्म परीक्षण करना तथा इस बात की जाँच करना कि क्या (कोई उपयुक्त) अध्ययन की योजना या समय पत्रक या दोनों में कोई उपयुक्त आपरिवर्तन नहीं किए जाने चाहिए तथा कर्मचारियों का उपयुक्त ढाँचा सुझाया जाए।

समिति को नई योजना के व्यवस्था के सिद्धान्त प्रस्थापन की पूरी स्वतंत्रता थी।

३० सदस्यों की इस समिति के अध्यक्ष उपकुलपति थे तथा सभी प्रदेशों के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अध्यक्षों के साथ केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, केन्द्रीय विद्यालय संगठन के डिप्टी कमिश्नर, काउन्सिल आफ इंडियन स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा के मंत्री, अध्यापकों के दिल्ली

स्थित यूनियनों के प्रतिनिधि, दिल्लीके पालक शिक्षक असोसिएशन के प्रतिनिधि तथा तीन अन्य शिक्षाविद् इसमें समाविष्ट थे। अन्य सभी एन सी ई.आर टी. के अधिकारीगण थे।

समिति ने जो सुझाव दिए वे सक्षेप में इस प्रकार है—

१ प्रादेशिक सरकार, स्थानीय अधिकारियों तथा शिक्षा और परीक्षा बोर्डों को पाठ्यक्रम योजना में स्थानीय एव विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप स्वतत्रता होनी चाहिए जिससे उसमें यथार्थता एव लचीलापन आ सके, वह सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त हो, उत्पादक हो तथा सामाजिक सेवाके अनुरूप हो। उसका शालेय पाठ्यक्रम में केन्द्रीय स्थान हो। इस योजना को कारगर करने के लिए कक्षा १ से ४–५ तक २० प्रतिशत समय दिया जाए, कक्षा ५–६ से ७–८ तक प्रति सप्ताह ६ घटे के हिसाब से कुल ३२ घटे, कक्षा ९ से १० तक ६ घटे प्रति सप्ताह के हिसाब स कुल ३२ घटे समय दिया जाए। ( )

२ सामाजिक उपयोगी उत्पादक कार्य को पूरे विषय का स्तर दिया जाए। भाषा को कोठारी कमीशन की सिफारिश के अनुरूप महत्व दिया जाए। कक्षाओं में पढाई २॥ से ३ घटे से अधिक न हो। भाषा को छोडकर पहली दूसरी कक्षा मे काई पाठ्य पुस्तक न हो, तीसरी चौथी पांचवी कक्षा में भाषाकी एक पाठ्य पुस्तक हो, गणितकी एक तथा स्थितिगत अध्ययन क लिए एक पुस्तक हो। अध्यापकों के लिए भी अध्यापन हेतु मार्ग दर्शिका हो। समय सारिणी लचीली हो। अन्य पाठ्य पुस्तक कम की जा सकती है विज्ञान की एक और नागरिकशास्त्र तथा इतिहासकी मिलाकर एक तथा उनकी पृष्ठ संख्या कक्षा ५, ६, ७, ८ के बालकों की उम्र के आधारपर रखी जाए। गृह-कार्य के स्थान पर कक्षा में ही अपनी देखरेख में कार्य कराए जाने की सिफारिश की गई है। स्वाध्याय हेतु सचित्र पुस्तका का प्रकाशन वाछनीय है। ( )

३ गणित और विज्ञान के वैकल्पिक पाठ्यक्रम रहें और उनके पाठ्य-विषय निर्धारित रहें। २ के स्तर पर प्रवेश हेतु गणित या विज्ञान विषयक उपलब्धियों को उन विषयों के विशेष पाठ्यक्रमों हेतु वरीयता दी जाए।

इतिहास, नागरिक शास्त्र तथा भूगोल क्षेत्रीय पाठ्यक्रम के आधारपर पढाया जाए। अन्य वैकल्पिक विषयों में कला के अन्तर्गत संगीत, नृत्य, चित्रकला म से तथा गृह-विज्ञान, कृषि, अर्थशास्त्र, परिनिष्ठित भाषाएँ आदि में से किसी एक का अध्ययन किया जाए।

पाठ्य पुस्तकों की सामग्री ऐसी रहे जो विषय संबंधी आवश्यक जानकारी देने की दिशा में उपयोगी हो। क्षेत्रीय आवश्यकतानुरूप उपयुक्त शिक्षकों का निर्धारण हो तथा उत्पादक कार्य पर अधिक बल दिया जाए। शिक्षक और छात्रों में उपयोगी तथा आवश्यक ताल मेल की आवश्यकता पर भी भर दी गई है।

ये उपर्युक्त सभी कल्पनाएँ सचमुच उत्साहवर्द्धक हैं। फिर भी यदि हम पाठ्यचर्या पर अधिक निकटस अध्ययन करते हैं तो हम उसमें कल्पनाओं और इनके कार्यान्वयन में अधिक स्पष्ट असंगतियाँ पाते हैं कक्षा। ८, ९, १० में सामाजिक उपयोगिता के उत्पादक कार्य में सप्ताह में केवल ६ घंटे ही निर्धारित किए गए हैं। उत्पादक कार्य के संयोजन का जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभव है वे एकदम यह कह देंगे कि कार्य और सामग्री उत्पादन की दृष्टि से सप्ताह में ६ घंटे का समय कोई संतोषजनक परिणाम नहीं दे सकेगा। होगा यह कि ६ घंटे का समय ६ तालिकाओं में परिवर्तित कर दिया जाएगा और तथाकथित अच्छी पाठशालाओं में तो इतना भी समय नहीं दिया जाएगा। अतएव यदि इस दिशा में हम सचमुच गंभीरता पूर्वक सोचते हैं तो इस कार्य के लिए उपयुक्त आवश्यक समय दिए जाने की आवश्यकता पर विचार करना होगा।

भाषाएँ, विज्ञान तथा गणित की पाठ्यचर्या को तो नवोन्मेषिनी कहना कठिन ही है। वे सभी विषयवार ऐसी पाठ्यचर्या हैं जो आजकल सर्वसाधारणत परीक्षावाली निर्धारित अध्यापन प्रणाली में उपयोगमें आती हैं। उनमें पूर्णीकरण के लिए कठिनाई से ही कुछ गुंजाइश होती है। यदि शिक्षा को कार्यशील बनाना है, जैसा कि उसके उद्देश्यों में निर्दिष्ट है—तो उसकी रूपरेखा एकदम भिन्न प्रकार की होनी आवश्यक है। कार्यानुभव, सामाजिक जीवन तथा सामुदायिक उन्नति, स्वास्थ्य

तथा सामुदायिक सफाई जैसे अन्य कार्यक्रमों से ज्ञान तथा कार्य कुशलता की उपलब्धि होनी चाहिए। हमारी पाठ्यचर्या के ढाँचे यह बताएँ कि कार्यानुभव तथा शिक्षा अनुभव कैसे हर कदम पर एक दूसरे से गुँथे हुए और एक दूसरे से विश्वस्त तथा एक दूसरे से पुष्ट हैं।

पुनरीक्षा समिति ने इस दिशा में कोई गंभीर प्रयास किया है ऐसा नही दिखाई देता। जब तक ऐसा नही किया जाता तब तक मुझे भय है कि समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की कल्पना कागज पर ही रह जाएगी।

पुनरीक्षा समिति के गलत गठन के कारण ही ये तथा अन्य कई कमियाँ रह गई है। लोगों का किस प्रकार चयन किया गया है इसका उल्लेख मैंने ऊपर जान बूझकर किया है। यदि समिति ऐसे ही सदस्यों की बने कि जिन्हें वास्तविक कल्पना के अनुरूप कार्य-शिक्षा का शालेय स्तर तक का अनुभव नही है और यदि स्वैच्छिक संगठनों के उपयुक्त प्रतिनिधित्व की व्यवस्था न की गई हो तो क्या परिणाम हो सकते हैं यह स्पष्ट ही है।

यदि जनता सरकार सचमुच शिक्षा में परिवर्तन लाने के लिए उत्सुक है तो उन्हें कार्य के उपयुक्त व्यक्तियों का चुनाव करना चाहिए।

बजुभाई पटेल

बुनियादी शिक्षा : तब और अब

श्री द्वारिकाप्रसाद सिंह

आज से छ महीने पहले मुझे श्री वजूभाईजी ने गांधी शिक्षण भवन में आकर व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किया कि बुनियादी शिक्षा के बारे में मैं अपने विचार दूं। सुनकर मन में भाव उठे यह कैसा देश है जिसमें लोग गांधीजी के सानिध्य में रहे उनके विचारों का अनुभव करते रहे फिर उन्हीं के शिष्य विनोबाजी को सुनते आए फिर भी बुनियादी शिक्षा के तत्वज्ञान को नहीं समझे। फिर मैं इसमें क्या बता सकता हूँ, कैसे समझा सकता हूँ?

मैंने सोचा देश की वर्तमान शिक्षा के प्रति इतना आक्रोश है। महाविद्यालयों विश्वविद्यालयों में संवेदनशीलता असंतोष की भावनाएँ व्याप्त हैं जिससे विघटनकारी प्रदर्शन हो रहे हैं समाज अपनी संस्कृति से जो कि समन्वय का उत्तम उदाहरण मानी जाती है दूर विलीन होता जा रहा है, ऐसे वातावरण में देश के सामने एक ही राह है और वह है बुनियादी शिक्षा की। बापू की देश निर्माण की तपस्या मानव सृजनार्थ दिए हुए मानवमूल्य से अहिंसक क्रांति से नए मूल्यों से नए समाज की स्थापना हो सकती है।

१९६८ में एक अधिकृत शिक्षा-आयोग ने निवेदन प्रस्तुत किया कि प्रत्येक स्तर पर (प्राथमिक माध्यमिक, उच्च) बुनियादी शिक्षा की विशेषताओं को व्यापक रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। एन सी, ई आर टी तथा शिक्षा [illegible] केन्द्र ने उस पर गहराई से सोचा है और सभी ओर से एक ही निर्णय स्वीकृत हुआ कि बुनियादी शिक्षा में ही देश की स्थिति बदलने का सामर्थ्य है। इसको देश में व्यापक रूप से फैलाने में शिक्षक ही अग्रसर होकर कार्य कर सकता है। अतः ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थी जो शिक्षक बनने वाले हैं उनसे मिलने का तथा उनके समक्ष अपने विचार रखने के लिए मुझे यह मौका दिया गया इसलिए मैं आप सबका हार्दिक

आभारी हूँ। सन् १९३८ से मैं बुनियादी शिक्षा के काम में लगा हुआ हूँ। डा. राजेन्द्रप्रसादजी ने मुझे सदाकत आश्रम में बुलाकर कहा था तुम इस शिक्षा में आ जाओ। तब मैं एक हाईस्कूल में शिक्षक का काम करता था फिर भी निष्ठावन्त शिक्षक के नाते मैं उसमें आ गया। इस काम के सिलसिले में राज्य सरकार के उच्चतम ओहदे पर, एक साधारण कार्यकर्ता की हैसियत से काम किया। अतः ये सब विचार मेरे निजी जीवन के अनुभव हैं।

बुनियादी शिक्षा का विकास— यह विषय बहुत व्यापक है और कम से कम ५ व्याख्यान उसके लिए चाहिए फिर भी तीन व्याख्यानों के लिए इस विषय का तीन खंड में विभाजन करेंगे।

(१) अपने देश में बुनियादी शिक्षा का विकास।
- (क) बुनियादी शिक्षा की पृष्ठभूमि
- (ख) कल्पना की आरंभ की स्थिति
- (ग) प्रयोग की स्थिति

(२) १९४७ के बाद बुनियादी शिक्षा के विकास का प्रथम चरण।
- (क) स्पष्ट दर्शन
- (ख) योजना
- (ग) उपलब्धियाँ सिफारिशें

(३) १९५९ से बुनियादी शिक्षा में गिरावट के कारण और निदान, आजादी के बाद शिक्षा की स्थिति, आज की स्थिति तथा जे. पी. की संपूर्ण क्रान्ति में उसकी व्यवस्था।

पृष्ठभूमि — यह मानें कि नई शिक्षा की कल्पना गांधीजी की निजी मौलिक कल्पना थी। बहुत लम्बे समय से १९ वीं सदी के मध्य से हमारे समाज सुधारकों ने देश में आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति में सुधार करने के बारे में सोचा था तथा प्रयत्न किए थे। उन्हीं सुधारकों की सूची में गांधीजी भी हैं।

गांधीजी ने भारत के गाँवों को देखा था, किन्तु बिहार के चंपारन में गाँवों को नजदीक से देखा और जाना। उन्होंने गाँवों में अत्याचारों

का नगा चित्र देखा। वुड रिपोर्ट के बाद भी स्थिति में कोई सुधार नही हुआ था। उन्होने देखा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली से गाँव टूटते जा रहे हैं और गांवो के टूटने से देश जी नही सकता। और बापू ने शिक्षा में चरखा हाथ में लिया। उनकी दृढ मान्यता थी कि ब्रिटिश साम्राज्य चरखे से ही हटाया जा सकता है।

गांवो की आर्थिक सास्कृतिक एव सामाजिक परिस्थिति एकदम बिगडती जा रही थी। इस समस्या का हल करने के लिए राष्ट्रीय विद्यालय चलाने का प्रारम्भ हुआ था ताकि भारत के युवको को सच्ची शिक्षा मिल सके। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेनेवाले युवक जिन्होने कालेज को छोड दिया था उनकी शिक्षा के लिए ऐसे ढग के विद्यालय की आवश्यकता थी जिसमें बिहार गुजरात काशी विद्यापीठ तथा रवीन्द्रनाथ के शाति निकेतन आदि के नाम आते हैं।

१९२० से १९३० तक के दक्षिणी अफ्रिका के अपने निवास के दरम्यान गाधीजी के मन के शिक्षा विचार मूर्तिमान हुए थे उन्ही के विचारो के अनुसार उपर्युक्त विद्यापीठ चलते थ। उन विद्यापीठो से जो स्नातक निकले वे स्वावलम्बी सहयोगी स्वस्थ तथा सामाजिक जिम्मेवारी को समझने वाले नागरिक थे। इन्ही दिनो गाधीजी 'हरिजन' में राष्ट्रीय शिक्षा के बारे में लेख लिखते थे। ये लेख अँग्रेजी में होते थे। श्रीमन्नारायणजी ने बापू से पूछा कि य अँग्रेजीमें लिखे हुए लेख कितने लोग पढ सकते हैं? आप एक राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाइए। १९३७ जून की २२ २३ को वर्धा में एक सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में देश भर के शिक्षाविद शिक्षामन्त्रियो तथा शिक्षको ने भाग लिया। कुल मिलाकर इसमें ८० –८५ लोग थ। सभी ने गाधीजी के विचार सुने। शिक्षा में श्रम काम तथा उद्योग के महत्व के बारे में गाधीजी ने अपने विचार बताए। बापू का यह स्पष्टीकरण जोरदार रहा।

आज हमारे १५ लाख विद्यार्थियो के १५ लाख मस्तिष्क और तीस लाख हाथ निष्क्रिय बना दिए गए ह। एम ए करने के बाद भी उनके जीवन में नैराश्य के सिवा कुछ नही रह पाता। निष्क्रिय शिक्षा

के नैराश्यपूर्ण ३० लाख हाथ और १५ लाख मस्तिष्क से देश का विकास नही हो सकता। हर हाथ को काम मिले हर मस्तिष्क को चिंतन मिले वही सच्ची शिक्षा है, और तभी देश का विकास हो सकता है।

सम्मेलन में बापू ने कहा "मैं दस साल तक अराजकता (Anarchy) सहन कर सकता हूँ किन्तु एक मिनट के लिए भी ब्रिटिश शासन नहीं सह सकता हूँ। ब्रिटिश साम्राज्य देश को हिन्द साम्राज्य के लिए तैयार नही कर सकता। उसे हटाने के लिए एक मात्र प्रभावी साधन है शिक्षा। उसके स्वरूप सम्बन्धी उन्होंने चार सिद्धात निश्चत किए थे—"

(१) देश यदि स्वतन्त्र हुआ तो लोकतंत्र की खरी कसौटी यह होगी कि लोग शिक्षित हो तथा अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक हों। जनतंत्र का विकास सच्ची शिक्षा से होता है। प्रबद्ध नागरिकता के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। एक टोकरी में आम है। उसमें एक भी आम खराब होगा तो सारे आम खराब हो जाएँगे। वैसे ही एक खराब व्यक्ति सारे समदाय को चैन से नही जीने देता। छोड जानेवालो की सरकार की रिपोर्ट पढी होगी। १९६४में मिडल क्लास तक पहुँचते पहुँचते ६९% सातवी तक पहुँचते पहुँचते ८१% और माध्यमिक तक पहुँचते पहुँचते ८०%, इसके बाद के मालूम नही कितने छोड जाते हैं। यह है छोड जानेवालो की स्थिति। जब तक शिक्षा नि शुल्क नहीं होती तब तक गरीब के बच्चे नही पढ सकते। समन्वित समाज रचना के लिए, जनतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था के लिए बच्चो को न्यूनतम शिक्षा देना अनिवार्य है।

(२) जो भी शिक्षा १४ साल की आयु तक दी जाए वह नि शुल्क हो, अनिवार्य हो और अपनी मातृभाषा में हो। किन्तु पाँचवी कक्षा में अँग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य करा दी जाए। पाँचवी से अँग्रेजी शिक्षा की अनिवार्यता की बात का मार्जरी साइक्स ने जोरदार विरोध किया। उनका कहना था कि जहाँ शतप्रतिशत लोगो को अक्षरज्ञान नहीं है वहा पाँचवी से ही अँग्रेजी सीखने सिखाने से क्या फायदा?

(३) शिक्षा स्वावलम्बी हो :— छात्र तथा शिक्षक मिलकर परिश्रम करेंगे। उससे जो कुछ आर्थिक प्राप्ति होगी उसी से शिक्षकों का वेतन तथा विद्यालय का खर्च निकलना चाहिए। १९४६ में इस में परिवर्तन किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा बनाने की योजना तय हुई। उस योजना को बनाने का भार एक समिति को सौंपा गया। उस समिति के अध्यक्ष डा. जाकिर हुसेन थे। उस समिति के सदस्य देश के श्रेष्ठ चिंतकों में से थे। उनका नाम था :—

(१) डा. जाकिर हुसेन	सभापति
(२) श्री ख्वाजा गुलाम सैयदेन	सदस्य
(३) श्री काका कालेलकर	,,
(४) श्री किशोरीलाल मशरुवाला	,,
(५) श्री के. सी. कुमारप्पा	,,
(६) श्री कृष्णदास जाजू	,,
(८) श्री विनोबाजी	,,
(७) श्रीमती आशादेवी	,,
(९) श्री आर्यनायकम्	संयोजक सदस्य

समिति ने २—२।। महीने में अपनी रिपोर्ट दी। रिपोर्ट के पाँच हिस्से थे—

(१) स्वास्थ्यवर्धक क्रियाशीलता :— देश को स्वस्थ रखने के लिए स्वस्थ जीवन-यापन करना पड़ेगा। पाठ्यक्रम ऐसा हो कि अपने तथा अपने परिसर की स्वच्छता तथा स्वस्थता के विषय में जाग्रत बनें तथा उसे स्वच्छ और स्वस्थ बनाने में अपना योगदान दें।

(२) सामुदायिक जीवनयापन :— धर्म, जाति, रहन-सहन विचार, खानपान इनमें विविधता में एकता कैसे हो, उसमें समता, एकता कैसे प्रस्थापित करें इसका बराबर खयाल रखें।

(३) उत्पादक कार्य :— रिपोर्ट में वस्त्रस्वावलंबन, भोजन स्वावलम्बन, लकड़ी और लोहा, खेती, खादी और शिल्प के उद्योगों—

जिनमें प्रशासनिक कठिनाई न हो— की क्रियाओं और मापदंडों को बताया।

(४) समाज सेवा :— छात्र श्रमिक हो किन्तु वह व्यक्तिनिष्ठ न बने यह देखना होगा। उसीसे मनुष्य का संतुलित विकास होता है।

(५) मानसिक विकास :—छात्र के मस्तिष्क, का संतुलित विकास हो।

शिक्षा तीन प्रतिवेशों के आधार पर चलेगी। शिक्षा के केन्द्र में बच्चा होगा। बच्चे का समाज, बच्चे के जीवन के लिए उद्योग और बच्चे के चतुर्दिक व्याप्त प्रकृति ये तीनों उसकी शिक्षा के समर्थ साधन होंगे। उद्योग का स्रोत प्रकृति है। समाज के अवलम्बन से उद्योग चलेगा। प्रकृति के उपयोग में चिन्तन, शोध और विज्ञान की ओर मुड़ना होगा। क्रियाशीलन की व्यवस्था में पारस्परिक श्रम, सहयोग, संस्कार इत्यादि की आवश्यकता होगी। उक्त तीनों आधारों के माध्यम से तरह तरह के ज्ञान-विज्ञान बच्चों को सहज रूप से मिल जाएँगे।

योजना तैयार हुई। गांधीजी के विचार से यह तय किया गया कि जिन प्रान्तों में कांग्रेस का प्रशासन है वहाँ यह नई शिक्षा प्रयोगमें लाई जाए। इसीलिए आसाम, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बम्बई और मद्रास में नई शिक्षा के प्रयोग की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

१९३८ के जून महीने में १५ दिन का एक शिबिर सेवाग्राम में आयोजित हुआ। उस शिबिर का आयोजन हिन्दुस्तानी तालीम संघ ने किया। उस शिबिर में विनोबाजी, काका कालेलकर, किशोरीलाल मशरूवाला, आर्यनायकम्‌जी, आशादेवी, जाजूजी जैसे महानुभावों का लाभ शिबिरार्थी को मिला। कार्यकर्ताओं के शिबिर से लौटने के बाद कांग्रेसी प्रान्तीय सरकारों ने बुनियादी शिक्षण का काम शुरू किया।

नई शिक्षा का दर्शन तो स्पष्ट था। फिर भी उसके अनुसार काम करना कठिन था। मुझे ही कताई, बुनाई में निष्णात बनने में तीन साल लगे।

बुनियादी शिक्षा का काम मुश्किल से एक साल चला होगा कि १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा। कांग्रेस मंत्रिमंडल ने युद्ध प्रारम्भ होते ही त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा के प्रयोग काल में अनुकूलता के लक्षण नहीं दिखाई पड़े। किन्तु वेडछी, गांधीग्राम आदि स्थलोंपर जो प्रयोग हुए उससे साबित हुआ कि इस देश को इसी योजना के साथ जीना होगा।

१९४७ विकास का प्रथम चरण है, जिसके अन्तर्गत बुनियादी शिक्षा का स्पष्ट दर्शन, योजना तथा उपलब्धियाँ और सिफारिशों के विषय का समावेश होता है।

१९३८ से १९५८ तक के २० वर्षका इतिहास बुनियादी शिक्षा के विकास के मध्याह्न का इतिहास है।

अंग्रेज शासकों ने बुनियादी शिक्षा की बारीकी को समझा। ग्रेट ब्रिटन के शिक्षा शास्त्री सार्जेण्ट ने उसका स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि इसी शिक्षा से देश बनेगा। किन्तु उसमें एक बात खटकती है और वह यह कि आप इस शिक्षा में स्वावलम्बन की बात न रखिए स्वावलम्बन को हटा दीजिए। गांधीजी ने कहा सारी शिक्षा योजना का प्राण स्वावलम्बन ही तो है। उसे हटाना नामुमकिन है। स्वावलम्बन ही इस शिक्षा की कसौटी है अम्ल परीक्षा है। स्वावलम्बन के बिना पाठशाला निरुपयोगी है।

एक प्रसंग याद आ रहा है। १९३९ में चंपारन में मैं बुनियादी शिक्षा का प्रयोग कर रहा था। गांधीजी के समक्ष पाठ देना था। स्कूल के बच्चे नंगधडंग, धूलि धूसरित, मटमैले थे। मैं ३२ लडकों को कुएँ पर ले गया, हाथ मुँह, धुलाया, पोंछा, गांधीजी ११ बजे आए किन्तु मेरा सफाई का काम चलता रहा। लडकों को स्वच्छ करके लाया और कताई-कार्य शुरू हुआ। गांधीजी ने समीक्षा की—'शिक्षण कार्यमें निपुण किन्तु कताई ठीक नहीं।' वल्लभस्वामी ने जब उस टिप्पणी का विरोध किया तब गांधीजी ने कहा था मैं आदर्शों में सुलह नहीं कर सकता।

१९४० से १९४५ तक का समय संक्रमण काल था। बिहार में ७२ बुनियादी विद्यालय, २ ट्रेनिंग स्कूल और उत्तर बुनियादी स्कूल खुले।

बिहार में इस प्रकार योजना की यह विशेषता थी कि बिहार के एक कोने में चम्पारन जिले के वृन्दावन क्षेत्र में २८ बुनियादी विद्यालय चल रहे थे, वहाँ बिहार के सभी जिलों में बुनियादी विद्यालय स्थापित किए गए और सभी जिलों में उत्तर बुनियादी और ट्रेनिंग स्कूल खोलनेका निश्चय किया गया। वेडछी, धुलिया आदि में बुनियादी शिक्षा के स्कूल खोलने की योजना बनी। उत्तर प्रदेश में तो एक ही रात में सभी स्कूल बुनियादी शिक्षा के स्कूल बना दिए गए।

स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय शिक्षा बुनियादी शिक्षा है ऐसा प्रयोगों परसे महसूस हुआ। भारत सरकार ने भी राज्य स्तर पर योजना बनाई। उस योजनानुसार राज्य की प्रायमरी शिक्षा बुनियादी शिक्षा रहेगी यह भी तय हुआ। बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रतिष्ठान की स्थापना हुई जो बुनियादी शिक्षा के लिए साहित्य के निर्माण में मदद करता था। ट्रेनिंग कालेज के लिए उन्होंने कुछ सुझाव दिए। (१) परीक्षा महाविद्यालयोंमें सूचनात्मक सामग्री (instructional materials) होने चाहिए तथा उनका आदान-प्रदान हो सके, ऐसी व्यवस्था आवश्यक है। (२) प्रशिक्षण महाविद्यालयों के लिए उसका एक सेवा-क्षेत्र होना ही चाहिए। उस सेवा क्षेत्र में बच्चों के घरों की सफाई, खुला रंगमंच, बालक मंदिर, उद्योग, महिलामंडल, खादगी आदिका, समावेश होगा।

भारत सरकार के निर्देशन के अनुसार राज्य-सरकारों ने नई तालीम का पहला कदम उठाया। राज्य सरकारों ने अपने प्रशिक्षण विद्यालयों और महाविद्यालयों को नई तालीम की तरफ मोडा। नए प्रशिक्षण विद्यालयों के लिए उनके पास नई तालीम के अनुभवी शिक्षक नहीं थे रुढिग्रस्त शिक्षकों से नई तालीम का काम ठीक से नहीं चल सकता था। इसलिए राज्य सरकारों ने अपने कुछ चुने हुए शिक्षकों और निरीक्षकों को नई तालीम में प्रशिक्षण के लिए सेवाग्राम भेजना शुरू किया। हिन्दुस्तानी तालीम संघ ने राज्य सरकारों को इस काम में बड़ी मदद की।

सन् १९५७ से १९५९ के मार्च तक केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों ने नई तालीम की दिशा में दृढतापूर्वक पहला कदम उठाया।

इसी बीच १९५५ में भारत सरकार ने देश में नई तालीम का जो कार्य चल रहा था उसके मूल्यांकन के लिए एक समिति बनाई जिसके निम्न लिखित सदस्य थे।

(१) श्री जी रामचन्द्रन	संयोजक
(२) श्री रामशरण उपाध्याय	सदस्य
(३) डॉ सैयद अन्सारी	सदस्य
(४) डॉ एम डी पाल	सदस्य
(५) श्री जे सी बोस	शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार

इस समिति ने बेसिक शिक्षा के बारे में सात स्तर पर सुझाव दिए। ये सात स्तर इस प्रकार हैं --(१) भारत सरकार, (२) राज्य सरकार, (३) जनता, (४) बुनियादी तालीम के शिक्षकों के प्रशिक्षण कॉलेज, (५) विश्वविद्यालय (६) माध्यमिक विद्यालय (७) प्रायमरी बुनियादी तालीम विद्यालय।

उस दृष्टि से भारतीय बुनियादी शिक्षा का प्रचार कैसे हो, उसके प्रसार के लिए क्या क्या उपाय करना जरूरी है उसके सबन्ध में सुझाव दिए गए थे जिससे शिक्षा-सबधी निश्चित कल्पना स्पष्ट हो सके।

इस प्रकार कार्य का आरम्भ हो गया, जिससे ३ अनुभव स्पष्ट रूप से सामने आए —

(१) यह शिक्षा जनता के जीवन से अलग नहीं होगी, जनजीवन के आधार पर होगी। जो व्यवसाय दिए गए हैं, या सिखाए जाएँगे वे वास्तविक जीवन से ही सबद्ध होंगे न कि केवल स्कूली।

(२) इस शिक्षा के कारण काम करने वाले हरिजन, ब्राह्मण जो एकसाथ नहीं आते थे, उनमें भेद कम होने लगे। गाव के लोगों में भी मनोरंजन में सांस्कृतिक जीवन के प्रति आस्था जाग उठी, संगीत और नाटकका उसमें समावेश होने लगा। इस प्रकार सांस्कृतिक प्रवृत्तियों पर जोर दिया गया।

(३) उत्पादकता — इस शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि विद्यार्थी उत्पादक इकाई बन गया। शिक्षा के साथ उत्पादन द्वारा स्वावलम्बी जीवन की यह कल्पना बिलकुल अभिनव थी।

इस तरह से बुनियादी शिक्षा निश्चित रूप से प्रयोग में साकार हो गई। गुहाई द्वारा टिटावार (आसाम) में अच्छा काम हुआ। क्षितीश राय चौधरी के द्वारा बंगाल में ठीक से नहीं हुआ। उड़ीसा में, बिहार में उल्लेखनीय कार्य हुआ। उन सबके प्रयासों से कुल ५३५ स्कूल खुले, ७४ प्रशिक्षण महाविद्यालय, ७४ महाविद्यालय खुले। १९५७ में सर्वोदय महाविद्यालय की स्थापना की गई। दिल्ली में जामिया मिलिया ने अच्छा काम किया। उत्तर प्रदेश में डा अब्दुर्रहमान खान के नेतृत्व में काफी सफलता मिली। पंजाब, राजस्थान में, असफलता रही। मध्यप्रदेश में काफी विकास हुआ वहाँ तो बापू थे ही। शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाएँ अच्छी तरह सफल हुईं। इस प्रकार विनोबा जी, रविशंकर शुक्ल मिलापचन्द दबे काशीनाथ तिवारी, डा दिवेकर इन लोगों ने बुनियादी शिक्षा के प्रसार में सराहनीय कार्य किया। मद्रास में भी सरकारी या गैरसरकारी स्तर पर अच्छा कार्य किया गया।

इस सिलसिले में सारे प्रायमरी स्कूलों को बुनियादी बनाने की योजना बन रही थी। राज्य-सरकारों ने प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी को पूरा करने के लिए प्रशिक्षण महाविद्यालयों द्वारा एक —अनुस्थापन (O ientation) पाठ्यक्रम चलाने की आवश्यकता को महसूस किया। अतः सेवाग्राम द्वारा यह व्यवस्था की गई। जिसमें सारे देश के लोग आकर २-३ महीना का प्रशिक्षण लेने लगे। ये लोग राज्य स्तर पर उसी प्रकार का एक पाठ्यक्रम चलाते थे। इस तरह से चार क्षेत्रों में यह कार्य बँट गया पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण, और एक जाल की तरह अनुस्थापन का काम चलने लगा।

उसी समय विभिन्न प्रान्तों में नई तालीम के उपलक्ष्य में सम्मेलन होते थे उससे भारत की सारी संस्कृतियाँ सिमटकर राष्ट्रीय स्तर पर एक विशाल भारतीय संस्कृति का रूप मूर्तिमान हो रहा था। भारत

सरकार ने भी एक राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की। जिसमें बुनियादी शिक्षा पर संशोधन कार्य करने के लिए फैलबिन क्लाइड, बेंजामिन, सुलेमान जैसे लोग विदेशों से आते थे और गांधीजी के तत्वज्ञान का अभ्यास करते थे। यह बुनियादी शिक्षा के इतिहास का एक गौरव युग, एक स्वर्ण युग था। उस समय को जब मैं याद करता हूँ तो भीतर से आज भी उल्लास उमड़ आता है।

१९५८ में विनोबाजी ने इस मौलिक कार्य को मद्दे नजर कर के अपना मत लिखा था कि अब बुनियादी तालीम का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है। पर रामचन्द्रन समिति की रिपोर्ट से स्पष्ट हुआ कि कार्य गलत दिशा में चल रहा है। प्रायमरी बुनियादी स्कूल में पढ़े हुए बच्चे जब माध्यमिक विद्यालय में आते थे तो उनका साधा हुआ जीवन उपयोगी नहीं होता था और उद्योग भी बंद हो जाता था। अत: केवल प्रायमरी स्तर पर चलनेवाली शिक्षा निरुपयोगी है। जहाँ बिहार में माध्यमिक स्कूलों में भी उसका काम चलता था वहाँ भी उन विद्यार्थियों को महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं मिलता था। अत: डा. राधाकृष्णन की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण बुनियादी संस्थाओं का आरम्भ हुआ किन्तु वहाँ से डिप्लोमा लेने वाले छात्रों को डिग्री के लिए प्रवेश नहीं मिलता था। अन्य बातें भी थीं। यदि शिक्षक अपना काम निष्ठा से करेंगे तो भारत के नागरिक भी उपयुक्त बनेंगे। और फिर शिक्षक वैसे ही बनेंगे जैसे कि प्रशिक्षण महाविद्यालय होंगे। परन्तु उन्हीं के काम में गिरावट आने लगी।

निष्ठासे काम करनेवाले शिक्षकों का व्यवहार कैसा होना चाहिए इसके सम्बन्ध में बिहार के विद्यालय के एक शिक्षक को समझाते हुए कहा था कि खादी की कल्पना अलग ही है। नौकरी की पूर्वशर्त में खादी पहनना भले ही न हो, खादी के बारे में मैं हृदय परिवर्तन भी नहीं कर सकता पर जरूर कह सकता हूँ कि यह वस्त्र साधारण वस्त्र नहीं है, इसके असल में पीछे तो एक भावना है। अहिंसा की विचारधारा के लिए जीवनयापन करनेकी प्रणाली को अपनाना यही खादी पहनने का लक्ष्य है। उसकी विचार धारा है :—(१) सादा जीवन बिताना, (२) नियमित

श्रम करना, (३) योग्य वर्ताव करना, (४) नशा सेवन न करना, (५) समन्वयपूर्ण जीवन, (६) असंग्रह, (८) हफ्तेमें दो घंटे समाज सेवा करना। उसके लिए अनिवार्य नही कि खादी पहनकर ही उसका महत्व समझना चाहिए, खादी न पहनकर भी खादी के संस्कार मनमें रह सकते हैं। चरखे का उपयोग, तो व्यवसाय के विकेन्द्रीकरण के लिए है।

मेरा तो खादी के साथ सीधा संबंध है इसलिए मैं उसके बारे में स्पष्ट रूप से बता सकता हूँ। रही विकेन्द्रीकरण की बात! अंबर चरखे की कमाई से स्त्रियों को काम मिला। हररोज चार घंटे काम करने से ४ गुंडियाँ बनती हैं, उनसे ९ गज कपड़ा बनता है, साल में ७०००० गज। उतना कपडा गाँव की नंगता दूर करने में मदद करता है। इसीलिए चरखा श्रद्धा का स्थान लेता है।

आपके निर्धारित पाठ्यक्रम में खादी का महत्व ग्रहण कर के अपने संस्कारों की विशेषताओं को कायम रख सकते हैं पर वे जड़ (rigid) न हों लचीले (flexible) होने चाहिए। जिंदगी के लिए जिन तत्वों को नही छोडा जा सकता वे तत्व हैं — (१) सादा जीवन, (२) स्वस्थ जीवन, (३) सहयोगी जीवन, (४) समन्वित जीवन, (५) सांस्कृतिक एकता, (६) कौटुम्बिक भावना, (८) विश्व पारिवारिक जीवन।

कोई भी राष्ट्र इन विचारों को छोडकर जिंदा नही रह सकता।

सभी अच्छाइयों के बावजूद भी प्रशिक्षण में गिरावट आने से उसका भविष्य अच्छा नही रहा। आचार्यों के भरसक परिश्रम के बाद भी उनमें अपार संघर्ष छिड गया।

तब भारत सरकार ने निश्चय किया कि अपने देश में शिक्षा की दो दो प्रणालियाँ एक साथ नही चल सकती अत: एक समन्वित पाठ्यक्रम बनाना होगा। प्रत्येक राज्य का एक ही पाठ्यक्रम होगा, १८ राज्यों ने प्रायमरी व बेसिक तत्वों का समन्वय करके एक पाठ्यक्रम बनाया। समीक्षा इस प्रकार हुई कि उसमें बहुत ही अच्छी बातें हैं। १९५९

के जनवरी से ३ राज्यों में उसपर अमल किया गया, वही उसका पतन का क्षण था। पूरी ईमानदारी से बनाई हुई अच्छी योजना की शुरुआत थी वहीं उसका लय हुआ।

आम जनता की धारणा है कि यह शिक्षा असफल हो गई, पर उसकी उपलब्धियाँ भी हैं और वे बुनियादी शिक्षा की असफलता के बावजूद भी महत्वपूर्ण हैं। इन दो दिनों में आपने बुनियादी शिक्षा का २० वर्षों का इतिहास देखा आज उसकी उपलब्धियाँ देखेंगे जो आपको प्रेरणा दे सकें।

बुनियादी शिक्षा की उपलब्धियाँ तीन खंडों में देखने मिलेंगी।

(१) स्वास्थ्य सफाई— लोगों को सफाई के महत्व का भान हुआ। लोग साफ-सुथरे रहने में गौरव महसूस करने लगे। स्वच्छताका असर जनस्वास्थ्य पर भी पड़ा। वेशभूषा में परिवर्तन हुआ किन्तु लोग सादगी से रहते थे। महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को पारंपरिक जीवन से अलग एक नई दृष्टि मिली। एक ऐसी नई बात जैसे पहले कभी बताई नहीं गई थी, कभी सोची नहीं थी। उदाहरणार्थ पटना के विद्यालय के बच्चे ७० एकड़ का मैदान बिना नौकरों के साफ करते थे। बड़े बड़े अमीरों के लड़के श्रम की ओर उन्मुख हुए, उनके घरों में वैसे दर्जनों नौकर काम करते थे। सांदिपनी आश्रम में कृष्ण सुदामा एकत्र जीवन बिताते थे उसी प्रकार बुनियादी विद्यालयों में गरीब अमीर एक साथ काम करते थे यह एक महान क्रांति थी। इस प्रकार की वृत्ति और वातावरण धीरे-धीरे बनता जाता था। देहातों में मलमूत्र विसर्जन की बड़ी समस्या थी। देश के पाँच लाख गाँवों में बसने वाली स्त्रियों की दर्दनाक स्थिति थी, नई बहुएँ शौच के लिए बाहर नहीं जा सकती थीं। उसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर क्या किया जाए यह सोचा गया और कुछ उपाय भी किए गए। उसीके कारण सर्वोत्तम सुलभ शौचालय; आधुनिक सुविधाओं के साथ बन जो आज भी बिहार में उपयोग में लाए जाते हैं। स्वास्थ्य के बारे में यह एक महत्वपूर्ण कार्य है।

(२) स्वावलम्बन और श्रम का महत्व :— श्रम के काम में लज्जा का भाव जीवन से मिट गया। सुबह की प्रार्थना से लेकर सायंकाल

की प्रार्थना के समय रुक काम किया जाता था। राजा जनक की हल चलाने की कहानी रामायण में है और कम्युनिस्टों का हंसिया और हथौड़ा भी श्रम का प्रतीक है। १९५३ का साल श्रमोत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कृषि बागवानी, सागवानी, फलरक्षण, फल उत्पादन, मधुमक्खी पालन, गोपालन, कुक्कुटपालन, कताई, रंगाई, छपाई, सिलाई, गलीचे दरियों की बुनाई आदि उद्योगों के जरिए ३ लाख ३० हजार की आय हुई। बिहार सरकार ने तय किया कि ऐसे उत्पादन का ५०% फायदा विद्यार्थियों को, और ५०% स्कूल को मिलेगा। बिहार में सरकार के पास ३५ लाख रुपये जमा हो गए। गाँव साफ हो गए, श्रम उत्पादन की दिशा मिल गई।

(३) सांस्कृतिक जीवन —सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के परिवर्तन में गांधीजी सफल हुए थे। वर्गभेद, छूआछूत, छोटे बड़े के भेद मिटे और अपनेपन की भावना पनपी। चंपारन, बेडछी, मछलीपट्टम् आदि जहां जातिभेद ऊंचाई पर था वह कम हुआ।

मनोरंजन के लिए देहातों में लोग शहरों में जाते थे, पर देहातों की मोदमंडलियों के कार्यक्रमों को देखने, सुनने के लिए देहात के लोग इकट्ठे होते थे। अतः सिनेमा के उत्तेजक गाने जो कि शहरों के प्रभाव से गाये जाते थे बंद हुए क्योंकि लोगों ने मनोरंजन के लिए शहरों तक जाना छोड़ दिया। सिनेमा गीतों की जगह भजनों, समूह गीतों ने संगीत ने ले ली।

मेकॅले ने कहा था, हमें भारतीयों को ऐसी शिक्षा देनी है जो रक्त और देह से भारतीय हो किन्तु मस्तिष्क और विचार में अंग्रेजियत रखते हों। इस व्यापक अंग्रेजियत के प्रसार का विरोध बुनियादी शिक्षा के इन विभिन्न कार्यक्रमों से अहिंसक रूप से हुआ। प्रार्थना सभाएँ बनाई गई, बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए गए। बलेरिज ने ७९ स्कूलों का निरीक्षण कर के कहा आत्म ज्ञान का बोध इस शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग है। बिहार के इस १९४३ के कार्यक्रम के बारे में स्टुवर्ड ने रिपोर्ट लिखते समय कहा था कि इस शिक्षा व्यवस्था से उत्पन्न आत्म-विश्वास, स्वावलम्बन ये गांधीजी की आत्मा के परिणाम हैं।

गिरावट कैसे आई? — ऊपर की महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद शिक्षा में गिरावट कैसे आई वह विचारणीय है। समन्वित पाठ्यक्रम के द्वारा धीरे धीरे स्कूल के कार्यों में परिवर्तन होने लगा। उसके निरीक्षक निरीक्षण में विभिन्न प्रकार की सूचना देने लगे जैसे सफाई बंद करो, 'प्रार्थना बंद करो आदि। कताई नहीं हो सकी क्यों कि उसके लिए व्यवस्था भी नहीं थी। अत विद्यार्थी विवश होकर पारंपारिक स्कूल में जाने लगे। लोगों में भी निराशा फैल गई और बुनियादी शिक्षा का आगे का भविष्य बिलकुल निराशाजनक रहा। वैसे भी आदर्श को निर्माण करना आसान है उसे जीवन में उतारना कठिन होता है। गलत लोगों के हाथ में शिक्षा जाने से काम असफल होने लगा। फल-स्वरूप ६०–६८ तक तो यह बिलकुल बंद सी हो गई। इसी काल में कोठारी कमिशन की रिपोर्ट निकल गई। उस में उन्होंने लिखा है कि केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार के बुनियादी शिक्षा के प्रयास आज उसके ढांचेके रूप में ही हैं उसकी आत्मा मर गई है।

आज की वर्तमान स्थिति —आज तो बुनियादी शिक्षा का नामो-निशां नजर नहीं आ रहा है। बिहार में जहां सबसे अच्छा काम हुआ था वहां आज एक भी क्लास नहीं रहा। कितने ही उच्च शिक्षित प्रशिक्षितों को अन्यत्र काम नहीं मिलता है। इस प्रकार जो बुरी परवी चल रही है उसमें आमूल परिवर्तन होना चाहिए। जे. पी. की सपूर्ण क्रान्ति की घोषणा हो चुकी है। उस पार्श्वभूमि में बुनियादी शिक्षा के बीज पनप सकते हैं। बेकारी, शिक्षित विद्यार्थी, राजनेताओं की नीति तथा देश की दुर्दशा की स्थिति में इस बुनियादी शिक्षा से सहारा मिल सकता है।

हमारे पंतप्रधान श्री मोरारजी देसाई ने अपने कार्यकाल के प्रथम भाषण में कहा है— पहले बच्चों को आदमी बनाओ बाद में उन्हें दूसरी बातें सिखाओ। इस कथन को तथा जे. पी. की सपूर्ण क्रान्ति को सफल करने के लिए बहुत ही संगठित प्रयत्न करने चाहिए। बुनियादी शिक्षा के नवनिर्माण का काल है। उसके लिए कुछ सुझाव इस प्रकार है :—

(१) भारत सरकार बुनियादी शिक्षा को कार्यान्वित करने की घोषणा करे।

(२) राज्य स्तर पर भी बुनियादी शिक्षा को क्रियान्वित करने की घोषणा की जाए।

(३) सरकार द्वारा राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा संस्था की स्थापना होनी चाहिए। जिसमें उच्च स्तर के प्रशिक्षित, अनुभवी लोग हों।

(४) राज्य सरकार विश्वविद्यालयों का निर्माण करे।

(५) स्कूलों के लिए जो पाठ्यक्रम बनाया गया उसे १९८७ में नये संदर्भ में प्रस्तुत करना चाहिए। स्कूलों में कार्यशालाएँ हों जिन में प्रत्येक विद्यार्थी बारह घंटे काम करे। काम की समय-मर्यादा इतनी हो कि जब तक वह खुद कमा नहीं सकता।

(६) बुनियादी शिक्षा के लिए उपयोगी साहित्य की निर्मिति योजना सरकार द्वारा बनाई जाए।

(७) प्रशिक्षण कालेज द्वारा जो शैक्षणिक साधन बनाए जाएँ उनका स्कूल स्तर पर तथा महाविद्यालय में भी उपयोग हो।

(८) उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय ऐसे बुनियादी महाविद्यालयों से आए हुए विद्यार्थियों को पूरे विश्वास से प्रवेश दें।

(९) जनता इस में पूरी तरह से सहयोग दे।

ईश्वर करे और हमारी इस योजना को कार्यान्वित करने की सुबुद्धि सरकार को मिले ताकि देश की काया पलट हो जाए।

क्राइस्ट की मृत्यु के बाद ३०० वर्ष के बाद ईसाई धर्म फैला, भगवान बुद्ध के निर्वाण के बाद ३५० वर्ष बाद बौद्ध धर्म पनपा। बीज को अंकुरण में सैकड़ों साल लगते हैं। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा के बीज को चालीस साल हुए हैं। वह पनपकर स्वावलम्बी, स्वाभिमानी, श्रमनिष्ठ सहयोगी, नागरिक तैयार करेगा। उससे लोकतंत्र आधारित, समता पर आधारित एक विशाल हरीतिमा फैलेगी। नये मानव से नया संसार रोशन होगा, देश में गांधी शिक्षण भवन मार्गदर्शन करेगा। अस्तु

(गांधी शिक्षण भवन, बम्बई में १४–१५–१६ फरवरी १९७८ को दिए गए व्याख्यान का सारांश)

❀

सेवाग्राम में नई तालीम

श्री सत्यनारायन

भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राम का एक बालक 'नई तालीम' है जिसकी सेवाग्राम में प्रगति इस सग्राम के ज्वार भाटे के साथ अनन्वित थी। गाधीजी ने इस सग्राम का तथा शिक्षा योजना का दिशानिर्देश किया था तथा इन दोनो को बदलने वाली परिस्थितियो के अनुरूप इन्हें बनाया था।

सन् १९३७ में भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने ९ प्रदेशो में शासनसूत्र सभाला अत वह शिक्षा के लिए भी जिम्मेवार बनी। वह अनिवार्य शिक्षा तथा दारूबदीको लागू करने के लिए वचन बद्ध थी। गाधीजी ने इसे असगत पाया कि शिक्षा मद्यपान की कमाई की कमाई पर आधारित हो। ऐसे समय पर मारवाडी शिक्षा मडल वर्धा अपनी रजत जयन्ती मना रहा था। इस उत्सव के एक अश के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की समस्याओ पर विचार करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किए जाने की योजना पर विचार किया गया। यह सम्मेलन दिनाक २२ २३ अक्टूबर १९३७को वर्धा में हुआ तथा इसमें भारत सरकार तथा अन्य प्रादेशिक सरकारो के शिक्षा मत्रियो तथा प्रमुख शिक्षा शास्त्रियो ने भाग लिया। गाधीजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में हस्त उद्योगो द्वारा शिक्षा को आत्म निर्भर बनाने की अपनी योजना को समझाया। उचित विचार विमर्श के पश्चात गाधीजी की कल्पना सम्मेलन द्वारा स्वीकृत की गई। तत्पश्चात मार्च १९३८ में भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के हरिपुरा (गुजरात) के ५१ व अधिवेशन में इस सम्मेलन की सिफारिशें स्वीकृत की गई और उसी के तत्वावधान में एक स्वायत्त सस्था 'हिन्दुस्तानी तालीमी सघ' का गठन हुआ। इस सस्था को राष्ट्रीय शिक्षा की योजना को आगे बढाने का काम सौंपा गया। इस सस्था के सविधान के अतर्गत इसे निम्नलिखित कामो का अधिकार था —

(अ) बुनियादी तालीम के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम तैयार करना

(ब) बुनियादी तालीम की सस्थाओ का सचालन एव निरीक्षण

(क) अध्यापकों के प्रशिक्षण केन्द्रों का संचालन, सहायता एवं निरीक्षण

(ङ) उपयुक्त साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन

(ख) आवश्यक शोध कार्य का किया जाना

(ग) आन्दोलन का आयोजन

(घ) प्रादेशिक तथा निजी संस्थाओं द्वारा संचालित बुनियादी तालीम के कार्यक्रम के स्वीकार हेतु आवश्यक कदम उठाना।

संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अनुसार हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने सेवाग्राम में तथा अन्य कई प्रदेशों में सन १९५९ तक नई तालीम का काम प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् वह सर्व-सेवा संघ में विलीन हो गया।

नई तालीम के सेवाग्राम के कार्य को तीन अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है --

(१) बुनियादी शिक्षावस्था : १९३९ – १९४४

(२) समग्र नई तालीमवस्था : १९४४ – १९५२

(३) ग्राम स्वराज्य— नई तालीमावस्था : १९५२ ,१९६२

(१) बुनियादी शिक्षावस्थाः (१९३९–१९४४) ·

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने अपना प्रमुख कार्यालय सेवाग्राम में इस हेतु स्थापित किया था कि जिससे कार्यक्रम संचालन हेतु गांधीजी का मार्गदर्शन प्राप्त हो सके। संघ की २३, २४ अप्रैल १९३८ को हुई इसकी पहली बैठक में संघ ने सेवाग्राम में प्रायोगिक बुनियादी पाठशाला प्रारम्भ करने का निश्चय किया, किन्तु यह निर्णय सिर्फ नवम्बर १९३९ में ही एक डिस्ट्रिक्ट कौंसिल शिक्षक तथा चार छात्रों के साथ क्रियान्वित हो सका। संघ की बैठक से पूर्व या पाठशाला के प्रारम्भ होने से पहले योजना को कार्यान्वित किए जाने के लिए प्रदेशों द्वारा प्रशिक्षित अध्यापकों की माँग की गई। इसके लिए वर्धा में २१ अप्रैल १९३९ को शिक्षकों तथा निरीक्षकों के लिए एक अल्प कालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शुरू किया गया था। सन् १९४१ तक जब दूसरा बुनियादी सम्मेलन दिल्ली के पास जामिया नगर में हुआ तब तक सेवाग्राम की यह पाठशाला चौथी

कक्षा के स्तर तक की पाठशाला हो गई थी। उक्त सम्मेलन के लिए दिए गए अपने संदेश में गांधीजी ने इस बात पर बल दिया था कि "पूरा प्रयोग बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप और सघि के कहीं न कहीं किया जाना है।" अपने सीमित साधनों के भीतर इस प्रयोग को सेवाग्राम के कार्यकर्ताओं द्वारा उसके सही रूप में करने का प्रयत्न किया गया।

देशपर जब तूफान के बादल उमडे तब १ अगस्त १९४२ को जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है आवासीय बुनियादी पाठशाला तथा प्रशिक्षण शाला नई तालीम भवन— केवल प्रशिक्षण महाविद्यालय ही नहीं था, किन्तु एक ऐसा घर था जिसमें शिक्षक और छात्र आत्मीय भाव से एक साथ रहते, काम करते एवं अध्ययन करते थे। क्योंकि जैसा कि डॉ जाकिर हुसेन ने निर्दिष्ट किया है "सच्ची शिक्षा वह है जो प्रेमपूर्वक दी जाती है।" आप देखेंगे कि शिक्षा की पुस्तक के पहले पृष्ठ पर ही 'प्रेम' शब्द लिखा हुआ होगा।

इस भवन का दूसरा उद्देश्य यह था कि उस का आधार 'सत्य' होना चाहिए। इसी उद्देश्य से वहाँ की दैनिक प्रार्थना, उपनिषद से ली गई थी जिस का अनुवाद इस प्रकार है— 'मैं केवल सत्य ही बोलूंगा, सत्य मेरी रक्षा करेगा, सत्य मेरे शिक्षक की रक्षा करेगा।'

इस प्रार्थना को सुनकर इस भवन का उद्घाटन करते हुए बापू ने आशीर्वाद दिया था— "यह प्रार्थना आपकी रक्षा करे।" कुछ दिनों बाद ही वे जेल में थे।

(२) समग्र नई तालीम अवस्था (१९४४–१९५२)

१९४२–४५ तक का समय इस लघु समाज और राष्ट्र के लिए अंधकार और नैराश्य या उदासी का था। किन्तु यह समय वैसे ही अण्डे-सेवन का था जैसे अंधकार में धरती से अंकुर फूट निकलता है। इस समय में नई तालीम की विचार धारा धीरे-धीरे बाह्य और सेवाग्राम के मस्तिष्क में रूप ग्रहण कर रही थी। नई तालीम योजना के जनक गांधीजी भी उस योजना के आशय या गूढार्थ के विषय में चिन्तन कर रहे थे। सन् १९४४ में जब वे जेल से बाहर आए तो 'नई तालीम' के तथा उसके उद्देश्य या क्षेत्र के विषय में उनकी नई दृष्टि थी।

शुरू में जैसा कि सोचा गया था यह योजना केवल अनिवार्य शिक्षा अर्थात् ७ से १४ वर्ष तक की उम्र के लिए ही थी। गांधीजी 'नई

(क) अध्यापकों के प्रशिक्षण केन्द्रों का संचालन, सहायता एवं निरीक्षण

(ङ) उपयुक्त साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन

(ख) आवश्यक शोध कार्य का किया जाना

(ग) आन्दोलन का आयोजन

(घ) प्रादेशिक तथा निजी-संस्थाओं द्वारा संचालित बुनियादी तालीम के कार्यक्रम के स्वीकार हेतु आवश्यक कदम उठाना।

संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अनुसार हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने सेवाग्राम में तथा अन्य कई प्रदेशों में सन १९५९ तक नई तालीम का काम प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् वह सर्व-सेवा संघ में विलीन हो गया।

नई तालीम के सेवाग्राम के कार्य को तीन अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है —

(१) बुनियादी शिक्षावस्था : १९३९ – १९४४

(२) समग्र नई तालीमवस्था : १९४४ – १९५२

(३) ग्राम स्वराज्य— नई तालीमावस्था : १९५२, १९६२

(१) बुनियादी शिक्षावस्था: (१९३९–१९४४) :

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने अपना प्रमुख कार्यालय सेवाग्राम में इस हेतु स्थापित किया था कि जिससे कार्यक्रम संचालन हेतु गांधीजी का मार्गदर्शन प्राप्त हो सके। संघ की २३, २४ अप्रैल १९३८ को हुई इसकी पहली बैठक में संघ ने सेवाग्राम में प्रायोगिक बुनियादी पाठशाला प्रारम्भ करने का निश्चय किया, किन्तु यह निर्णय सिर्फ नवम्बर १९३९ में ही एक डिस्ट्रिक्ट कौंसिल शिक्षक तथा चार छात्रों के साथ क्रियान्वित हो सका। संघ की बैठक से पहले या पाठशाला के प्रारम्भ होने से पहले योजना को कार्यान्वित किए जाने के लिए प्रदेशों द्वारा प्रशिक्षित अध्यापकों की माँग की गई। इसके लिए वर्धा में २१ अप्रैल १९३९ को शिक्षकों तथा निरीक्षकों के लिए एक अल्प कालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शुरू किया गया था। सन् १९४१ तक जब दूसरा बुनियादी सम्मेलन दिल्ली के पास जामिया नगरमें हुआ तब तक सेवाग्राम की यह पाठशाला चौथी

सेवाग्राम आश्रम-वृत्त

(जनवरी, फरवरी, १९७८ का)

आश्रम प्रतिष्ठान परिक्षेत्र में इस अवधि में पूर्णतया शोक की छाया ही फैली रही। उधर आंध्र प्रदेश के अवनिगुड्डा क्षेत्रमें तूफान तथा जलप्रलय द्वारा जो आतंक हुआ और जो मानव संहार हुआ वह भी अति भयानक था। इस तरह १९७८ का प्रारम्भ ही शोकग्रस्ता से हुआ। फिर भी आश्रम का काम पूर्ववत् ही चला। आश्रम प्रतिष्ठान के मंत्री श्री० प्रभाकरजी ने पूरे तीन माह तक अहोरात्र अव्याहत परिश्रम कर अवनिगुड्डा क्षेत्र के पुनर्रचना के कार्य में सहयोग दिया। आश्रम प्रतिष्ठान की ओरसे श्री सूर्यनारायण मूर्तिजी तथा श्री चरणदास भी इस क्षेत्र में सहायता कार्य के लिए गए थे।

स्वर्गीय आचार्य श्रीमन्नारायणजी की आत्माकी चिरशांति के लिए आश्रममें तथा १३ जनवरी को विशेष प्रार्थनाओं का आयोजन किया गया और दिवंगत आत्मा की स्मृति में आश्रम प्रांगण में वृक्षारोपण भी किया गया।

इस अवधि में ७६१० दर्शनार्थी आश्रम देखने आए जिनमें २३३ टोलियाँ भी शामिल हैं। विद्यार्थी वर्ग की उपस्थिति विशेष प्रशंसनीय रही। इस अवधि मे हॉलंड फ्रान्स, जापान, कॅनेडा, जर्मनी, अमेरिका से कुल मिलकर २१ विदेशी अतिथि आश्रम में दर्शन तथा अध्ययन हेतु रहे।

जनवरी २२ से लेकर २५ तक "ग्रामाभिमुख विज्ञान" इस विषयपर एक अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवाद आश्रम प्रतिष्ठान परिक्षेत्र में मगन संग्रहालय की ओरसे आयोजित किया गया। इस परिसंवाद में कुल ३२ विदेशी वैज्ञानिक तथा ५० भारतीय वैज्ञानिकोंने भाग लिया

और दारिद्रय रेखा के निचले स्तर वालों के लिए विज्ञान का उपयोग किस तरह हो सकता है इस संबंध में चर्चाएँ की। श्री देवेंद्रभाई गुप्त ने अपने साथियोंकी मदद से इसका सुन्दर आयोजन किया था।

आश्रम के नित्य कार्यक्रम नियमित रूपसे चले। प्रातः प्रार्थनाओं में कुल औसत उपस्थिति ६.५ रही, तथा सायं प्रार्थना में औसतन १४.५ लोग ही रहे। दोपहर के सूत्रयज्ञमें ८.५ उपस्थिति रही।

स्मारक कुटियों की रक्षाकी दृष्टि से इस अवधि में बापू के बैठने की गद्दी और पास के सामान की सुरक्षा को ध्यानमें रखते हुए एक बारीक रस्सी से वह स्थान घेर दिया गया। इस व्यवस्था को आश्रम प्रतिष्ठान के उपाध्यक्ष पू० चिमनलाल भाईजी तथा मंत्री श्री प्रभाकरजी ने मंजूरी दी। अब बापूके गद्दीकी पूरी सुरक्षा तो हुई है किन्तु दर्शनार्थियोंके लिए भी कोई असुविधा नहीं हो पाई। बापू द्वारा उपयोग में लाई गई स्मारक वस्तुओंमें से दिल्ली के गांधी संग्रहालय के पास दीर्घकालीन सुरक्षा उपचार करने के लिए बापू के कपडे दिये थे वे सारे उपचार के बाद वापिस लाए गए हैं। अब लकडी की चीजें तथा धातुकी बनी चीजोंको थोडी थोड़ी करके दिल्ली भेजी जाएँगी जिसकी प्रतिकृतियाँ बनवाकर तथा उनपर दीर्घकालीन सुरक्षा उपचार कराकर वापिस सेवाग्राम आश्रम में रखी जाएगी।

शां. प्र. पांडे

*

नई तालीम फरवरी–मार्च '७८

रजि० न० WDA/1 लायसेंस नं० ५

मुद्रक, नारायण रॉटे राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा

संयुक्तांक

प्रौढ़-शिक्षा अंक

प्रौढ़ शिक्षा पर गांधी जी के विचार

प्रौढ़ शिक्षा पर विनोबा जी के विचार

डिग्री का विकल्प क्या हो ?

—जयप्रकाश नारायण

अखिल भारत नयी तालीम समिति

वर्ष २६
अप्रैल-
नवंबर

अंक
५

नयी तालीम

शिक्षकों प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

सम्पादकीय

प्रौढ़ शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम इतिहास की पुनरावृत्ति

दिसम्बर १९७७ में प्रौढ़ शिक्षा का राष्ट्रीय नीति घोषित की गयी और प्रौढ़ शिक्षा को सर्वाधिक महत्व देने पर बल दिया। इसके पूर्व जो योजनाएं चलीं उनमें सामाजिक शिक्षा और विकास पर बल दिया गया था किन्तु इस बार का प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम मुख्यतः साक्षरता केन्द्रित है। नीति वक्तव्य के अनुच्छेद ३ में कहा गया है कि प्रौढ़ शिक्षा में समाज के आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से वंचित लोगों को साक्षरता कौशल प्रदान करने पर बल देना चाहिए। यह बात भी संकेत रूप में कही गयी है कि यह कार्यक्रम सीखने वालों के जीवन से सम्बद्ध होना चाहिए।

पाँच वर्ष के भीतर १० करोड़ लोगों को साक्षर बनाने का बड़ा भारी लक्ष्य निर्धारित किया गया है यद्यपि २ अक्तूबर १९७८ को यह कार्यक्रम औपचारिक रूप से अभियान के रूप में चलाया गया तो प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने ठीक ही कहा कि इस प्रकार का सीमा निर्धारण ठीक नहीं है और उन्होंने यह सुझाव दिया कि ३५ वर्ष से ऊपर के लोगों को भी इस कार्यक्रम में लिया जाय। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री जो उस समय सभा में उपस्थित थे यह सुझाव स्वीकार कर लिया। इस से कार्यक्रम की गुरुता और भी बढ़ जाती है।

राष्ट्रीय नीति के घोषणापत्र में यह भी कहा गया है कि कार्यक्रम को जन आन्दोलन के रूप में चलाने की आवश्यकता है। घोषणा का अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि कार्यक्रम विकेन्द्रित रूप में संचालित किया जाय और उसके लिये भलीभांति पूर्व-तैयारी कर ली जाय। इसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि निरक्षरता देश के लिए एक अभिशाप है किन्तु जिस जन आन्दोलन की बात घोषणापत्र में कही गयी है उसका कोई स्वरूप कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। यह स्पष्ट है कि जन आन्दोलन सरकारी तंत्र और नौकरशाही द्वारा नहीं चलाया जा सकता। यदि इसे जन आन्दोलन का रूप देना था तो इस योजना का कम से कम सरकारी तंत्र के नेतृत्व में नहीं रखना था। आज यह काम ऐसे सरकारी अधिकारियों कर्मचारियों से लिया जा रहा है जिनकी क्षमता उपयुक्तता और सेवाभावना में ही लोगों को सन्देह है। यह कहा जा सकता है कि गैरसरकारी लोगों की क्षमता योग्यता तथा सेवाभावना पर भी लोगों को सन्देह है किन्तु इस सन्देह में खतरा कम है और यदि है भी तो फिर विकेन्द्रीकरण की बात घोषणापत्र में देने के पहले ही सोचनी चाहिए थी। आवश्यकता इस बात की थी कि राज्य मंडल जनपद, ब्लाक सभी स्तरों पर गैरसरकारी संस्थाओं का सहयोग लेकर कार्यक्रम को जन-आन्दोलन के रूप में चलाया जाता।

जनवरी १९७८ में राष्ट्रीय कार्यक्रम की विस्तृत योजना सामने आई। जिन अनुमानों पर योजना का ढाँचा प्रस्तुत किया गया है जब वे ही आधारहीन हों तो योजना की सफलता सन्देहास्पद हो जाती है। योजना में यह स्पष्टरूप से कहा गया है कि 'कार्यक्रम जन आन्दोलन का रूप लेता है यह इस बात पर निर्भर रहेगा कि नवयुवक और विद्यार्थी कहाँ तक इस कार्यक्रम से प्रतिबद्ध किये जा सकते हैं। आज शिक्षण संस्थाओं का जो वातावरण विभिन्न प्रदेशों में है और जिनके समाचार प्रति दिन अखबारों में आते हैं, उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि आज का युवक उचित या अनुचितरूप से अत्यत क्षुब्ध है, उसकी समस्याओं का समाधान होने का कोई गम्भीर प्रयास किसी दिशा में नहीं हो रहा है। अत युवकों का सहयोग एक काल्पनिक आधार मात्र रह गया है।

योजना की आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत ५०) पर प्रौढ़ शिक्षक से कार्य चलाने की योजना है। ग्रामीणों को विकास कार्यों के प्रति उन्मुख एव प्रेरित करना, इन विकास-कार्यों को माध्यम बनाकर साक्षरता के लक्ष्य पूरे करना कोई सरल कार्य नहीं है। यह निश्चित है कि ५० रु० पर कार्य करने वालों से लक्ष्य की पूर्ति नहीं होगी और केवल फर्जी आँकड़े शासन को भेजे जाते रहेंगे जैसा अब तक का इतिहास रहा है।

प्रौढ़ शिक्षा के शिक्षकों, अधिकारियों आदि को प्रशिक्षण की भी व्यवस्था योजना में है। किन्तु जिस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा रहा है वह न केवल अपर्याप्त है बल्कि एक खानापूरी मात्र है। उ० प्र० में नार्मल स्कूलों में प्रशिक्षण दिया गया है। यह सर्वविदित है कि नार्मल स्कूलों के पास प्रौढ़ शिक्षा का कोई जानकारी नहीं है। यों उन्हें अपने ही विषय की जानकारी नहीं है। उच्च स्तरीय प्रशिक्षण की व्यवस्था उ० प्र० में साक्षरता निकेतन लखनऊ में की गयी है। वहाँ जो कुछ प्रशिक्षण मिलता है, उसकी भी जानकारी लोगों को है। उनके स्वयं के ही साक्षरता केन्द्र कैसे चल रहे हैं यह भी लोग जानते हैं। जब प्रशिक्षण की यह स्थिति है तो योजना की प्रगति के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है।

साहित्य की तैयारी का काम कुछ केन्द्रीय सरकार के निदेशालय में हो रहा है, कुछ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद दिल्ली तथा कुछ प्रदेशों के राज्य संसाधन केन्द्रों पर। यह खेद का विषय है कि जो कुछ भी सामग्री सामने आ रही है वह परम्परागत विधियों पर आधारित है। उपलब्ध साहित्य की सही समीक्षा की जाय तो हास्यास्पद तथ्य सामने आएँगे। इसका एक कारण यह भी है कि साहित्य की तैयारी के पीछे वैज्ञानिक दृष्टि एव वैज्ञानिक शोध नहीं है। भारतीय 'निरक्षर' को कदाचित् मूर्ख समझ कर साहित्य तैयार किया जा रहा है। विशेषज्ञों को यह नहीं मालूम कि भारतीय 'निरक्षर' उनसे अधिक अच्छी भाषा बोल सकता है उनसे अधिक ढंग से अपने भावों को अभिव्यक्त कर सकता है और उसे लोक जीवन और लोक संस्कृति का उनसे कहीं अच्छा ज्ञान है। कुछ वे तथाकथित विशेषज्ञ यह समझते हैं कि यहाँ भी प्रौढ़ शिक्षा की समस्या मुख्यत 'शिक्षित' को साक्षर बनाने की है न कि अशिक्षित को साक्षर बनाने की। इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है यदि कार्यक्रम पर नये सिरे से विचार न किया गया तो प्रौढ़ शिक्षा के इतिहास की केवल पुनरावृत्ति होगी।

स्व० धीरेन्द्र मजूमदारजी अब नहीं रहे

स्व० धीरेन्द्र मजूमदार के मिलना क्या था गीता मे भगवान कृष्ण द्वारा निरूपित स्थितप्रज्ञ की परिभाषा को समझना था । एक उन्मुक्त निर्भीक चिंतक और विचारक मनसा, वाचा, कर्मणा एकरूप, अदम्य क्रांतिकारी कलम और कुदाल दानों के एक साथ धनी, यह है संक्षेप में वह महान् व्यक्तित्व जो २१ नवम्बर, १९७८ को ७७ वर्ष की अवस्था में हमसे सदैव के लिये भौतिक रूप से अलग हो गया । किन्तु उनके विचार उनके असंख्य प्रवचनों के द्वारा अवश्य लोगों को प्रेरणा दे चुके हैं । उनकी पुस्तकें 'समग्र ग्राम सेवा की ओर' 'नयी तालीम' और उनके अनेक लेख आज भी प्रेरणा के स्रोत हैं ।

१९२० मे असहयोग आन्दोलन मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के इंजिनियरिंग के द्वितीय वर्ष के छात्र के रूप में उन्होंने अपना क्रांतिकारी जीवन प्रारम्भ किया और आचार्य जे० बी० कृपालानी के साथ रचनात्मक कार्यों में लग गए । १९३४ म उनके द्वारा स्थापित रणीवा आश्रम, १९४६ मे स्थापित सेवापुरी, १९५२ मे स्थापित खादीग्राम (मुंगेर) उनकी साधना एवं तपस्या के कीर्ति स्तम्भ हैं । १९४८ मे अखिल भारत चर्खा संघ के अध्यक्ष तथा १९५२ में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने देश का रचनात्मक कार्यों में नेतृत्व किया ।

६० वर्ष की अवस्था मे उन्होंने संस्थागत कार्यों से संन्यास ले लिया और सत्य की खोज मे गाँव-गाँव भटके और क्रांति की दीप-शिखा प्रज्वलित रखी ।

नयी तालीम तथा सर्वोदय परिवार उनके निधन से अत्यन्त दुःखी और निर्धन है । पूज्य विनोबाजी के शब्दों में 'धी० धीरेन्द्र भाई कहा करते थे' क्रांति की नहीं जाती हो जाती है, क्रांति की इसी अनिवार्यता के वश में वे अपनी अंतिम साँसों से भी आहुति देते रहे । हम ऐसे महान व्यक्ति के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं ।

****

पत्रिका के प्रकाशन के सम्बन्ध में

अखिल भारत नयी तालीम समिति ने 'नयी तालीम' पत्रिका अप्रैल मे वाराणसी से प्रकाशित का निश्चय किया । प्रारम्भिक कठिनाइयों के कारण पत्रिका के प्रकाशन मे विलम्ब हुआ है । अभी भी प्रकाशन सम्बन्धी औपचारिकताएँ पूरी नहीं हो पाई हैं । तदपि यह अंक हम पाठकों की सेवा मे प्रस्तुत कर रहे हैं । आशा है पत्रिका भविष्य में नियमित रूप से प्रकाशित होती रहेगी । पत्रिका की व्यवस्था का दायित्व अब उत्तर प्रदेश नयी तालीम समिति ने लिया है । अतएव इसका कार्यालय सेवापुरी (वाराणसी) में आ गया है । हमे खेद है कि यह अंक दीर्घ अन्तराल से सुधी ग्राहकों की सेवा मे प्रस्तुत हो रहा है । भविष्य मे इसका प्रकाशन नियमित हो, इसका हम पूरा ध्यान रखेंगे ।

****

क्षुद्र विषयेषु ज्ञानशक्तिं न क्षपयेत्

विनोबा

कार्यकर्ताओं की कई चर्चाएं ऐसी होती हैं जो नवीन विचार के अनुकूल नहीं होतीं। वे मांग करते हैं कि कई विषय ऐसे हैं जिनका विरोध हम करना चाहिए। मेरे विषय में उनकी शिकायत है कि मैं आलोचना करता हूँ तो सौम्य भाषा में नहीं या करता ही नहीं। मेरे विषय में यह शिकायत सही है। जब बहुत जरूरत होती है तभी मैं किसी की आलोचना करता हूं और वह भी तटस्थ शब्दों में। योजना आयोग के बारे में मैंने ऐसी ही आलोचना की थी। बस। और भी प्रश्न आये, जिन पर मैंने या तो सौम्य आलोचना की या नहीं ही की। यह मेरी कमजोरी भी हो सकती है या फिर ताकत।

मेरी व्यक्तिगत बात छोड़ दीजिए। अहिंसा और नैतिक आन्दोलन का जब बहुत बड़ा मुद्दा लेकर मैं अभावात्मक चिन्तन नहीं करता। दोषों का उच्चारण और उनकी चर्चा नहीं करनी चाहिए ऐसा नैतिक आंदोलन चलानेवाले मानते हैं। जहां जो गुण है उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। जहां गुणों का ग्रहण आपने किया दोष खतम हो जाते हैं। जब दोष देखते हैं और उन्हें कह देते हैं तो वे बढ़ जाते हैं। विपरीत इसके, जब दोष नहीं देखते, तो फिर गुणों के जरिये मनुष्य के अन्दर प्रवेश कर हम उसका हाथ पकड़ कर उसके दोष दूर कर पाते हैं। दोषों के जरिये किसी के अंदर प्रवेश करना कठिन है। मैं दीवार के मार्ग से मकान में क्यों प्रवेश करूं, जब कि दरवाजे और खिड़कियों से प्रवेश मेरे लिए खुला हुआ है!

कार्यकर्ता नहीं समझते कि यह एक बहुत बड़ा नैतिक आंदोलन हमने खड़ा किया है। वह छोटी-छोटी बातों से संभव नहीं। हम छोटे छोटे आंदोलनों में पड़ कर अपनी शक्ति क्षीण नहीं करनी है। अगर शिकायतें और तकलीफें होती रहें और उन्हें सरकार दूर करती जाय तो सरकार की पकड़ मजबूत होती जायेगी। और जितनी अच्छी सरकार होगी, हमारा काम उतना ही कठिन होगा! कारण, तब शासन मुक्त समाज कैसे बनेगा? आप सरकार के पंजे में हैं और सभी संतुष्ट हैं। अकबर के राज्य की मिसाल हमारे सामने है। वह बहुत अच्छी सरकार थी। फिर भी संकट आया और अब भी संकट आनेवाला है ऐसा मानना पड़ता।

तो हमें छोटे छोटे मसलों पर अपना बहुत अधिक दिमाग और शक्ति नहीं लगानी चाहिए। वह काम करनेवाले तो बहुत से लोग हैं। तुलसीदासजी ने भी कहा है रामायण में कि बांधने वाले तो बहुत हैं पर छुड़ानेवाला सिर्फ राम ही है। इसका मतलब यह नहीं कि हमें सेवा नहीं करनी चाहिए। सेवा अवश्य करनी चाहिए, ऐसी सेवा जिसमें पाजिटिव फोर्स (रचनात्मक ताकत) जाग्रत होती जाये। ऐसा हो कि आपकी पास से ही हम आपको खतम करना चाहते हैं।

महाभारत की घटना है। महाराज युधिष्ठिर भीष्म के पास पहुंचे प्रणाम वंदन किया। भीष्म खुश हुए। फिर भीष्म से पूछा गया कि पितामहजी आपकी मृत्यु किस प्रकार होगी कृपा कर बताइए। इस प्रकार किसी भी महाकाव्य में नहीं आया। भीष्म पितामह ने बता दिया कि किस तरह उनकी मृत्यु होगी। इस तरह हिंसक लड़ाई में भी उन्होंने वही अहिंसक रवैया अपनाया। फिर हम तो अहिंसक आंदोलन ही छेड़े हुए हैं। तब हिंसक रवैये की ओर क्यों जायें? हमें अपने विरोधियों और सहयोगियों के अंदर प्रवेश कर उनसे पूछना चाहिए कि तरीका क्या हो सकता है। इस प्रकार हम सफल होंगे इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं। मैं इसी बात को दृष्टि में रख कर नेताओं और बड़े बड़े लोगों से बातें करता हूं जो मुझसे मिलते हैं। यह मेरी दृष्टि है, जो मैंने आपके सामने रख दी। मैं नहीं जानता कि इससे आप लोगों का कहां तक समाधान होगा। फिर भी वस्तुस्थिति यही है यही मेरा दृष्टिकोण है। हमें छोटी छोटी बातों में पड़ कर अपनी शक्ति नहीं गंवानी है। बस मैं इस बारे में इतना ही कह सकता हूं। वह भी तब, जब कि कार्यकर्ता बार बार मुझसे पूछते हैं।

प्रौढ़-शिक्षा पर गांधीजी के विचार

[१९४५ में पूना में प्रौढ़ शिक्षा समिति की बैठक हुई थी, उसमें प्रौढ़ शिक्षा के संबंध में बापूजी से कुछ प्रश्नोत्तर हुआ था। वह नीचे दिया जा रहा है, जिससे प्रौढ़ शिक्षा पर बापू के विचार पाठकों को मालूम हो सकें। चर्चा को शुरू करते हुए बापूजी बोले]

"आपके प्रश्नों का जवाब देने से पहले मैं प्रौढ़-शिक्षण के बारे में अपने विचार आपके सामने रख दूं। मैं प्रौढ़ शिक्षा के बारे में विचार करता ही रहता हूँ। मुझे करना ही चाहिए। आज सी॰ पी॰ में हैजा चल रहा है। मेरे लिये वह दिलचस्प चीज है। मैंने उसे रोकने का प्रयत्न करने के लिए सुशीला को सेवाग्राम भेजा है। मैंने यह भी इच्छा प्रकट की थी कि सेवाग्राम में जो भिन्न भिन्न संस्थाएं हैं, उनके विद्यार्थी और कार्यकर्ता अगर इस हैजे के प्रकोप को रोकने के काम में हिस्सा लें तो मुझे वह प्रिय लगेगा। मैं जब इस काम को इस दृष्टि से देखता हूँ, तो पाता हूँ कि इसके साथ प्रौढ़-शिक्षण का सीधा सम्बन्ध है। यही तो प्रौढ़ शिक्षण है। मैंने अंग्रेजी में प्रौढ़ शिक्षण की व्याख्या बनाई है—एडल्ट एज्युकेशन इज एज्युकेशन फार लाइफ, यानी प्रौढ़ शिक्षा जीवन भर के लिए नहीं, जीवन के लिए है, और दूसरे यह कि वह अक्षरज्ञान देने के लिए नहीं है। जब हम इस दृष्टि से प्रौढ़-शिक्षा पर विचार करते हैं, तो वह सब चीजों को घेर लेती है। अगर आज मैं खाली होता, तो इसीको लेकर बैठ जाता। मैं हाथ का उद्योग भूल जाऊंगा, अक्षर-ज्ञान भूल जाऊंगा, बस इसी पर सारा ध्यान दूंगा कि कालरे को कैसे निकाला जाए। मैं तारीख तो अभी भूल गया हूँ लेकिन एक बार लंदन में प्लेग की महामारी ऐसी आई थी कि सारा लंदन खतम हो गया था। फिर लंदन में आग लगी थी। (वह आग नहीं थी, ईश्वर की मेहरबानी थी, नहीं तो आज लंदन का नामोनिशान भी नहीं रहता।) जिस तरह यह रोग लंदन से निकाला गया, वैसे ही ग्लासगो से भी। जब जोहानिसबर्ग में निकाला गया, तब मैंने खुद भी उसमें हाथ बटाया था। लेकिन कितनी तजवीज से, कितनी बुद्धि से, कितने खर्च से, कितने जोरों से वह निकाला गया कि फिर कभी नहीं आया। हमारे गांव में जब हैजा आता है तो लोग कहते हैं कि देवी का कोप है। इस वहम को भगाना प्रौढ़ शिक्षा का काम है।

प्रश्न क्या गांव में प्रौढ़ शिक्षा के लिए कोई अलग कार्यकर्ता होना चाहिए या समग्र ग्रामसेवक ही प्रौढ़ शिक्षा का काम भी करेगा? प्रौढ़ शिक्षा का कार्यकर्ता पूरा समय देनेवाला होगा या थोड़ा?

उत्तर इस प्रश्न के दो प्रकार के उत्तर हो सकते हैं। जो कार्यकर्ता समग्र ग्रामसेवा की दृष्टि से गांव में जाता है और प्रौढ़ शिक्षा नहीं जानता, वह ग्रामसेवक नहीं है। प्रौढ़ शिक्षा को अगर सब संस्थाएं मान लें कि प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ व्यापक है, वह सारे जीवन को घेर लेती है तो कोई खामी नहीं रह जाती। वह किसी खास आदमी का काम नहीं है। अगर एक आदमी जाता है, तो वहां दूसरे का काम नहीं रह जाता। मैं तो आदर्श बना देना चाहता हूँ। आदर्श को पहुंचने का प्रयत्न करें। दरअसल देखा जाये तो जहां शिक्षण के लिये एक लायक आदमी है, वहां दूसरे आदमी का स्थान नहीं है। जब तक लायक आदमी नहीं मिलता, तब तक जो मिले उसी को भेजेंगे। सच्चा प्रौढ़ शिक्षक जब हमारे हाथों में आ जायगा, तो वह ग्रामसेवक भी होगा। अपनी सामग्री वह कार्यकर्ता खुद तैयार करेगा। वह अशक्त आदमी नहीं होगा, जो कहेगा मुझे स्वयंसेवक चाहिए। उसे तो प्रौढ़ शिक्षक नहीं

कहूँगा। प्रौढ़-शिक्षण देनेवाला तो जादूगर होगा। वह तो अपनी जादू की लाठी से सब कुछ पैदा करेगा। वह कहेगा मुझे आपसे एक कौड़ी नही चाहिए। उसे कितना समय देना है यह वह जान लेगा। प्रौढ़-शिक्षक जो भी कुछ करता है प्रौढ़-शिक्षा का ही काम है। उसके लिए दूसरा काम रह ही नही जाता।

. प्रौढ़-शिक्षा के कार्यकर्ता को तैयार करने के लिए कितना समय लगाया जाय और उसकी शिक्षा का क्या रूप हो ?

: अगर मैं आप से कहूँ कि हाथ के मारफत होने वाले थोड़े उद्योग सिखाने हैं, थोड़ी सी खेती, थोड़ा सामान्य ज्ञान देना है, तो आपको संतोष नही होना चाहिए। बल्कि मुझसे आपको यह पूछना चाहिए कि ट्रेनिंग का दायरा क्या है। सबसे पहले तो जो ट्रेनिंग लेने आया है, उसकी योग्यता आपको जाननी चाहिए। मैं उससे पहले तो यह जान लूंगा कि जिज्ञासा से आया है या मजाक उड़ाने आया है। और अब उसे आना ही रहा, तो जो ज्ञान उसे आज तक मिला है वह उसको भूलकर ही मेरे पास आयगा। और उसके प्रति मेरा यह ख्याल होगा कि उसे बुद्धि का व्यायाम मिल चुका है अब शरीर का व्यायाम चाहिए। उस बुद्धि का उपयोग भी करूंगा, लेकिन विरुद्ध दिशा मे। मैं उसके हाथ मे चरखा रखूंगा और कहूँगा कि इसमे से जितना निकाल सको निकालो। और उस चरखे के मारफत ही उसे देहाती बनाऊँगा। दूसरी ओर मेरे पास एक निरक्षर देहाती आता है। वह उस्ताद है, चरखा चलाता है, उसे मैं दूसरी तरह का काम दूंगा। जो भी मेरे पास आएँगे, और जिस किसी प्रकार के होंगे, उन्हे ले लूंगा। लेकिन पढ़े लिखे को देखकर देहाती के मन मे यह भाव नहीं होना चाहिए कि वह कितना ऊँचा है और मैं कितना नीचा हूँ। क्योंकि देहाती के दिल मे तो एक प्रकार की काल्पनिक भावना आ गई है कि मैं छोटा हूँ, यह बड़ा है। इसलिए मेरी पहली शिक्षा यही होगी कि तुम दोनो एक हो। एक के पास एक ज्ञान है और दूसरे के पास दूसरा ज्ञान है, इसलिए दोनो को मिलाकर चलाना है। और जिस दिन पी-एच० डी० सोच लेगा कि अगर वह देहाती न रहा तो शहर मिट जायगा, उसी दिन शहरों का अन्त समझो। मैंने आपके व्यावहारिक प्रश्न का उत्तर नही दिया। मैं तो दृष्टि देना चाहता हूँ।

प्रश्न किन्तु कार्यकर्ता की शिक्षा की अवधि क्या हो ?

उत्तर कोई भी अवधि नही है, निरवधि है। न आपको मालूम है न मुझे कि उसे कहाँ तक सिखाएंगे। जब तक वह स्वावलम्बी नही बनता, उसे सिखाना है और समझाना है कि शिक्षा पूरी नही हुई। वह हमारे पास पड़ा रहेगा। उसके दिल को अगर हमने नही जीता है तो हमारी भूल होगी। मेरा धंधा ही यह है। मैं अनुभव से आपको यह बताता हूँ। मेरे पास जो आदमी नित्य तैयार होता है। कोई जीवन भर भी रहता है, कोई दो दिन मे चला जाता है। अनुभव से, विचार से मैं इस नीति पर आया हूँ कि हम अवधि न मानें। कोई आये तो भले, नही आये तो भले। जिसको लें, हम साफ साफ कह दें कि अवधि मे हम नहीं मानते। जो सच्चा है, स्वच्छता से, शुद्धता से, सचाई से काम करता है, पूरा समय देता है, उसका अज्ञान दिन प्रति दिन घटता रहता है। जो जब तैयार हो जाए तब वह अपने आप रह सकता है। मेरी संस्था मैं बनाने वाला होऊँ, तो कहूँगा कि कार्यकर्ता जब तक स्वावलम्बी नही होता, तब तक रहे, फिर उसे भले ही पच्चीस वर्ष रहना पड़े। जगत को तो हमें आखिर मार्ग बताना है। हम इन्सालवेंट (दिवालिया) तो हमेशा ही हैं। लेकिन एक बार बीज अच्छा जम गया, तो आखिर पेड़ जरूर निकलेगा। यह हमारा आदर्श रहे। और जैसे

उसमें आशा रखेंगे कि वह सचाई से चले, वैसी सचाई हमें भी रखनी है।

प्रश्न : स्वावलंबन का सार अर्थ क्या है? जो प्रौढ़ अपने को और अपने परिवार को आठ या उससे अधिक घंटे श्रम करके पालता है, उसके लिए स्वावलम्बन का रूप क्या होगा?

उत्तर : वह आठ घंटे काम तो करता है, लेकिन परिवार का प्रतिपालन करता है, यह कहना बिलकुल गलत है। हम ज्ञान की दृष्टि से देखें, तो जानेंगे कि वह स्वावलंबी नहीं है, भिखारी है। मजदूरी में जो खुदी है, जो ज्ञान है, जो संतोष है, उसे वह नहीं जानता। मजदूरी उसकी गुलामी की निशानी है। मजदूर भूमिधर हो, उसमें ज्ञान हो, उसमें संतोष हो, तभी वह आजादी का निशान बनता है।

प्रश्न : क्या जिनका मुख्य पेशा कृषि है, उनकी शिक्षा का माध्यम भी कताई-बुनाई होगा? और वह खेती के दिनों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे समय कहां पावेंगे?

उत्तर : तुम्हारा मतलब यह है, न कि जो आदमी आठ घंटे खेती की मजदूरी करता है वह थका रहेगा, कताई-बुनाई के लिए समय कैसे निकालेगा? लेकिन ध्यान में यह रखना है कि जो आठ घंटे मजदूरी करता है, वह बौद्धिक शिक्षा लेने के लिये ताजा रहता है। यह मेरा अनुभव है। मैं टाल्सटॉय फार्म में काम करता था। पहले पहले नींद आती थी। लेकिन नींद के बाद कुछ करने के लिये ताजा हो जाता था। सच्चा आदमी तो जबतक जागता है तब तक काम करता है। और जिसके लिये खेती का धंधा मुख्य कहते हो, वह उसका मुख्य धंधा नहीं, मुख्य गुलामी है। वह बैलोंके साथ बैल बन जाता है। बैलोंके साथ एक टुकड़ा सूखी रोटी खाकर खेतों में चल देता है। मधुसूदन दास की बात जानते हो न? जब उसने देखा कि देहाती लोग बैल के पीछे बैल हो रहे हैं, यहीं जानवर भी रहते हैं, वहीं आदमी भी रहते हैं, उनमें कोई अभिमान नहीं है, तब उसने समझा कि सिर्फ खेती उद्योग से हमारा मुल्क बड़ा नहीं हो सकता। मुख्य धंधा खेती होने से अगर मुल्क बड़ा होता, तो हिन्दुस्तान को बहुत ऊंचा होना चाहिए। लेकिन वैसा नहीं है। ज्ञानी जैसे हरेक काम में ईश्वर को देखता है, प्रौढ़-शिक्षा का कार्यकर्ता भी वैसे ही देखता है। किसान को वह सिखाएगा बैल कैसे रखना है आदि। उसे उसके हाथों की शक्ति का विकास करना है, उसके मस्तिष्क की शक्ति का विकास करना है। जो सिर्फ मस्तिष्क का विकास करता है वह शैतान है। आज जो प्रौढ़-शिक्षण है, वह तो शिक्षा है ही नहीं। मैं पहले दस्तकारी सिखाऊंगा। उसे सीख लेने के बाद अक्षरज्ञान दूंगा।

प्रौढ़-शिक्षण की उत्पत्ति मैं बताता हूँ। मैं एक दिन श्री आर्यनायकम् से बात कर रहा था। उधर से एक बूढ़ा चला जा रहा था, साथ में बैल भी था। मैंने श्री आर्यनायकम् से कहा, ७ से १४ की उम्र तक आप सिखाने वाले हैं, लेकिन उस बूढ़े को भी सिखाना है। बूढ़े ने तो खो करके वहीं थूका। यहीं प्रौढ़-शिक्षा शुरू हुई। मैंने उससे पूछा, बूढ़े, तू यहाँ थूकता है, उसका नतीजा क्या मालूम है? अगर उस बूढ़े को मैं दूध देता, तो वह प्रौढ़-शिक्षा न होती। उसे तो समझाना है कि इसका क्या असर होता है। यह कोई बड़ा कार्यक्रम नहीं, लेकिन यही प्रौढ़-शिक्षा है।

* * *

कमेटी ने जो प्रौढ़-शिक्षण की व्याख्या तैयार की थी, उसमें दोपहर की बैठक में गांधीजी ने थोड़ा सा सुधार किया . . . यह शिक्षा जीवन के लिए और जीवन भरके लिए है। आज का मैट्रिकुलेट जितने विषय सीखता है उतने भी काम में नहीं लाता। लेकिन हमारे यहाँ जो कुछ सिखाएंगे, वह शिक्षा यहां से जाते समय यहीं नहीं रहेगी। प्रौढ़-शिक्षक एक भी चीज ऐसी नहीं देता है जो काम की नहीं है। उसे जो सिखाना है वह परम्पर

जाकर सिखाएगा। ७ से १४ वर्ष की बुनियादी तालीम के लिए भी यही है। बच्चा घर पर जो काम करता है, वह करना उसके लिए स्वराज्य की कुंजी है, बुद्धि के विकास का साधन है। बच्चा रोज घर जायगा तो मा बाप पूछेंगे कि आज हमारे लिए क्या लाए? प्रौढ़ शिक्षण में तो हमें ऐसा शिक्षण मिलने वाला है, जो जीवन भर के लिए है। प्रौढ़ शिक्षण में आलस्य का स्थान नहीं।

इसके बाद जब गांधीजी के सामने कमेटी का यह निर्णय आया कि सभी रचनात्मक संस्थाएं किसी न किसी में प्रौढ़ शिक्षण का काम करती हैं और उसमें मदद करती है तो उन्होंने कहा सब संस्थाएं मदद तो करती हैं, लेकिन धंधा सिखाती हैं। वह शिक्षा है ऐसा मेरे जैसा आदमी तो नहीं कहेगा। मैं तो कहूंगा कि इन संस्थाओं की विविध प्रवृत्तियां जो धंधे सिखाती हैं, वे धंधे ही शिक्षा के वाहन हैं। प्रौढ़ शिक्षा का काम है इन धंधों में प्राण डालना। आज यदि हम समझ लें कि हम अपने इन कामों से प्रौढ़ शिक्षा में मदद देते हैं, तो प्रौढ़ शिक्षा को मार दिया समझिए। खादी का काम तालीमी संघ और चरखा संघ दोनों जगह चलता है। लेकिन तालीमी संघ के काम को ऐसा आकर्षक बनाना है कि चर्खा संघ भी कहने लगे कि हमारे काम को तालीमी संघ द्वारा पोषण मिलता है। इसी तरह तेल घानी भी शिक्षा का वाहन है। वह शिक्षा का वाहन बनकर ही तालीमी संघ के सामने आती है। लेकिन अगर आज हम कहें कि दूसरी संस्थाएं भी प्रौढ़ शिक्षण का काम करती हैं, तो तालीमी संघ का काम बंद कर देना पड़ेगा। यह प्रौढ़ शिक्षा की विचित्रता है। उसका क्षेत्र मर्यादित नहीं बल्कि व्यापक है। कालरा, प्लेग आदि नाशक शक्तियां भी शिक्षा के क्षेत्र में पोषक (क्रिएटिव) बन जाती हैं। आज हम जो काम कर रहे हैं, करते तो हैं, सिखाते तो हैं लेकिन धंधे के तौर पर। उसका चिंतन यहाँ नई तालीम से करना है। प्रौढ़ शिक्षण तो जीवन कला सिखाने की बात है जीवन कला सीख गये तो संपूर्ण बन गये। उससे चिंतन कर सकते हैं। इसे कल्पना का ही चित्र समझो। कल्पना को कोई नहीं पहुँचा है, तब मैं पहुँचूंगा यह कैसे कह सकता हूँ, और तुमसे भी कैसे आशा रख सकता हूँ।

मदद कर सकते हैं। यानी हमको चाहिए कि जो कमियां हैं उनको हम दूर करें।

प्रौढ़ शिक्षा में आज लोग क, ख, ग पढ़ाना शुरू करते हैं। सयाने लोगों को दिन में समय नहीं है, इसलिए हम रात में उन्हें पढ़ाते हैं। यह हुआ योग। और हमारी उस साक्षरता को जारी रखने का प्रयत्न हुआ क्षेम। इस प्रक्रिया के लिये पुस्तकें दी जाती हैं। और फिर बरबादी होती है।

चाहिए यह कि हम सयानों के जीवन की पूर्ति करें। यह तभी होगा जब हम स्वयं उनके जीवन में हिस्सा लेंगे। हिस्सा लेने का मतलब यह नहीं है कि सयाना यदि आठ घंटा श्रम करता है, तो हम भी उसके साथ आठ घंटा श्रम करें, सारा समय उसके साथ लगायें। हम चाहिए कि उसके व्यवसायों में भाग लेते हुए उसके जीवन में जो कमियां हों उनकी शिक्षा दें।

देहात के लोग अपने हाथों से काफी परिश्रम करते हैं। और फिर इसके बाद उनकी आंखें भी दिन भर प्रकृति की हरियाली देखती हैं। अतएव आंखों का भी काफी अभ्यास अनायास होता रहता है। उनकी श्रवणेन्द्रिय को अपेक्षाकृत उतना अभ्यास करने का मौका नहीं मिलता। तो हमको चाहिए कि उनकी जो इन्द्रियां काफी परिश्रम करती हैं उन्हें फिर न श्रम दें, बल्कि उन इन्द्रियों से हम उनकी शिक्षण में काम लें जो अपेक्षाकृत काम में नहीं आतीं। मेरे कहने का मतलब यह हुआ कि पढ़ाने लिखाने की अपेक्षा सयानों को श्रवणेन्द्रिय द्वारा ही काम कराने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। शहर के लोग ज्यादा पढ़ते हैं, इसलिये आंखें खराब हो जाती हैं। शहर में आंख खराब और देहात में कान खराब।

क्या पढ़ाया जाय यह भी एक सवाल है। हम उसे बहुत कुछ समझा देने की बात सोचते हैं। यह सब नामुमकिन है। जैसे कि उसे विज्ञान सिखाना है तो यह सब नहीं हो सकता। उसे साक्षर करना है तो सरलता

और सुगमता पर भी ध्यान देना चाहिए। मैंने लिपि सिखाने का एक तरीका बनाया है, जिससे दो महीनों में कोई पढ़ना लिखना जान सकता है। यह प्रयोग मैंने जेल में किया था। वहां सब लोग तो छः बजे से संध्या तक अपना काम समाप्त कर लेते थे, किन्तु रसोइया लोग ३ बजे प्रातः से ८ बजे रात तक काम करते थे। दोपहर को भोजन के बाद उन्हें कुछ ऐसा समय मिलता था, जब हम उन्हें कुछ सिखा सकते थे। मैंने यह प्रयोग उनके ऊपर किया। क्योंकि वे इच्छुक थे। महीने डेढ़ महीने में उन्हें पढ़ना आ गया।

तो मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि लिपि में भी सुगमता के दृष्टिकोण से सुधार चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा में साक्षरता तो होनी चाहिए, किन्तु पढ़ने-लिखने पर उतना जोर न दीजिए। प्रौढ़ को केवल अक्षर ज्ञान देने से ज्यादा लाभ न होगा। अतएव श्रवण के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने का भी खयाल रखना चाहिए। प्रौढ़-शिक्षण के लिए तात्कालिक आवश्यकताओं पर तथा उनकी व्यावहारिक बुद्धि के प्रयोग से भी काम लेना चाहिए। जेल में एक बार बहुत मक्खियां बढ़ गई थीं। मैंने ऐसे समय में मच्छरदानी को मक्खीदानी बना लिया और उसके भीतर बैठकर काम करना शुरू किया। इससे एक दृष्टि भी लोगों को मिली।

एक विशेष बात पर अवश्य ध्यान रखिए। वह यह कि आज का ज्ञान आज ही दीजिए, जिस ज्ञान प्रदान को आज जरूरी समझते हैं वही आज दीजिए।

हमने आप लोगों का ध्यान मुख्यतः चार बातों पर आकृष्ट किया है। एक तो यह कि हमारी प्रौढ़-शिक्षा का उद्देश्य यह रहे कि यह शिक्षा पूरक शिक्षा हो। दूसरा यह कि शिक्षा प्रदान करनेवाले लोग लोगों के दैनिक कामों में हिस्सा लेते हुए अपना काम करें। तीसरा यह कि थोड़ी ही पढ़ाई पर ध्यान दें और उस पर ज्यादा जोर न दें। और चौथी बात यह कि जो बात आज बतायें आज की ही समस्या हो।

थियों के लिए डिग्री नौकरी के लिए केवल एक पासपोर्ट है। अभिभावकों तथा माता पिता की भी शिक्षा तथा डिग्री के प्रति यही प्रवृत्ति है। विद्यार्थियों और अभिभावकों में इसके कुछ अपवाद भी होंगे किन्तु उससे स्थिति की सामान्य तस्वीर में कोई फर्क नहीं पड़ता।

ऐसी सही तस्वीर के सदर्भ म बुनियादी ढग का कोई शैक्षिक सुधार सम्भव नहीं है जब तक कि (१) या तो डिग्रियाँ समाप्त कर दी जायें या (२) डिग्रियाँ नौकरी से असम्बद्ध कर दी जाएँ अर्थात डिग्री और नौकरी में कोई सम्बन्ध न रहे। रोजगार देने वाले सरकारी अथवा गैर सरकारी, अपने काम धन्धा की जरूरत को देखते हुए अपनी परीक्षाएँ स्वय सचालित करें। सेवा में लेने के पश्चात् वे अपने यहाँ काम करने वालों को आगे आवश्यकतानुसार सेवारत शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करें। डिग्रियों के प्रति दृष्टिकोण म ऐसा बुनियादी परिवर्तन एकदम नहीं किया जा सकता। यह एक लम्बी प्रक्रिया होगी जिसे विश्वविद्यालय और रोजगार देने वालों को पारस्परिक लाभ के लिए, पारस्परिक सहयोग से अवश्य क्रियान्वित करना चाहिए।

डिग्रियों को समाप्त करने का विचार ऐसा नया या क्रांतिकारी नहीं है। वर्तमान स्थिति में यह असम्भव है। डिग्री का विकल्प क्या होगा ? केवल एक प्रमाण-पत्र जिसमें यह लिखा होगा कि कोई विद्यार्थी कितने वर्ष कालेज में रहा है, कितने घटे वह कक्षाओं में उपस्थित रहा है और कितने घटे उसने दूकानों, कारखाना, कार्यालयों और खेतों आदि में काम किया है तथा किन विषयों में उसकी रुचि रही है। यह उसके भावी रोजगार देने वाले का काम होगा कि वह विद्यार्थी की क्षमता और योग्यता का मूल्याकन करे। यदि किसी विद्यार्थी ने निजी काम-धन्धे में लगने की योजना बनाई है, तो विश्वविद्यालय और अन्य सम्भव ज्ञानार्जन के साधन जैसे पुस्तकालय, कार्यालय, फार्म आदि उसकी सहायता इस ढग से करें कि उसे अपने रोजगार के लिए आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध हो जाए।

मुझे पूरी आशा है कि इस नये शैक्षिक कार्यक्रम से उन विद्यार्थियों को जो आन्दोलन में असहयोग कर रहे हैं सहायता मिलेगी, और जो अपने को इस समय परीक्षा में बैठने के योग्य बनाने के लिए अपनी कमियों को पूरा करने तैयारी करना चाहेंगे जब बिहार प्रदेश छात्र संघर्ष समिति के निर्णय के अनुसार वे कालेज में वापस जायेंगे। इसका अर्थ यह है कि उन विद्यार्थियों के लिए न्यूनतम कक्षा-उपस्थिति के प्रतिशत के प्रतिबन्ध से छूट दी जायेगी जिनकी सख्या बिहार के कालेज और विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की ८० प्रतिशत है। न केवल उपस्थिति की शर्त एक अनावश्यक औपचारिकता होगी, प्रत्युत ऐसे विद्यार्थियों का अपमान होगा जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पहली बार राष्ट्रीय महत्व की ज्वलत समस्याओं को लेकर लड रहे हैं और इतना गौरोचित त्याग कर रहे है। वास्तव म अधिकारियों के लिए उपस्थिति के नियम को लागू करना असम्भव होगा क्योंकि उनके सामने पूरे विद्यार्थी समाज का उग्र विरोध होगा।

विश्वविद्यालय के अधिकारियों को इसे भी दृष्टि में रखना होगा कि वर्तमान आन्दोलन स्वय में एक सघन शिक्षा है और जो इसमें सम्मिलित हैं वे बहुमूल्य शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सामूहिक विचार-विमर्श तथा प्रशिक्षण-शिविर इस शिक्षा के एक अंग मात्र हैं। इसके अतिरिक्त, इस कार्यक्रम से उन्हें आज की महत्वपूर्ण समस्याओं को गहराई से अध्ययन करने में सहायता मिलेगी। भ्रष्टाचार, मुद्रा स्फीति, बेरोजगारी —वे बुराइयाँ जिनसे लड़ने के लिए यह आन्दोलन है—की समस्याओं पर विचार-पत्र सामूहिक विचार-विमर्श के लिए प्रसारित किए जाएँगे।

भावी विद्यार्थियों एव शिक्षकों के लिये प्रश्नावलियाँ तैयार कर ली गयी है जिसमें आवश्यकताओं और सभावना की सूची बनाई जा रही है। जैसे ही प्रश्नावलियों के उत्तर प्राप्त हो जायेंगे, आगे का कार्यक्रम तैयार कर लिया जायेगा और यह कार्यक्रम लागू कर दिया जायेगा।

हमें स्कूल को क्यों समाप्त करना है

अनुवादक—देवेन्द्रदत्त तिवारी

[इवान इलिच की प्रसिद्धपुस्तक 'डी स्कूलिंग सोसाइटी' का अनुवाद हम 'नयी तालीम' में इस लिए प्रकाशित कर रहे हैं कि इवान इलिच के विचार गांधीवादी विचारधारा से मिलते जुलते हैं। यह अनुवाद सर्वाधिकार सुरक्षित है।]

अधिकांश विद्यार्थी विशेषरूप से वे जो गरीब हैं सहज ही यह जान लेते हैं कि स्कूल उनके लिए क्या करते हैं। ये स्कूल सार (substance) और प्रक्रिया (process) में भ्रम उत्पन्न करते हैं। एक बार जब इनके विषय में भ्रान्ति हो जाती है तो एक नया तर्क प्रस्तुत किया जाता है—जितना अधिक इलाज (treatment) होगा उतना ही अच्छा परिणाम निकलेगा, अथवा दूसरे शब्दों में, इलाज को बढ़ाने से सफलता मिलती है। इस प्रकार से विद्यार्थी को यह शिक्षा दी जाती है कि वह शिक्षण को ज्ञानार्जन समझ ले, ग्रेड में आगे बढ़ने को ही शिक्षा समझ ले, डिप्लोमा को योग्यता समझ ले और प्रवाह-युक्त कथन को मौलिक अभिव्यक्ति की क्षमता समझने की भूल करे। उसकी कल्पना इस प्रकार शिक्षित की जाती है कि वह सेवा को मूल्यों के स्थान पर ग्रहण करे। इसी प्रकार चिकित्सीय उपचार को भ्रमपूर्वक स्वास्थ्य की देख भाल, समाज सेवा को सामाजिक जीवन का उन्नयन, पुलिस की रक्षा को सुरक्षा, सैनिक तैयारी को राष्ट्रीय सुरक्षा और निरन्तर अनुचित प्रतियोगिता को उत्पादक कार्य माना जाता है। स्वास्थ्य, ज्ञानार्जन, आत्म सम्मान स्वतन्त्रता और सर्जनात्मक प्रयास की परिभाषा यह मानी जाती है कि ये उन संस्थाओं की उपलब्धियां हैं, जो इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अपने को अधिकृत मानती है और इन संस्थाओं का उन्नयन इस बात पर निर्भर कराया जाता है कि अस्पतालों स्कूलों और अन्य प्रश्नगत अभिकरणों (agencies) के प्रबन्ध के लिए अधिकाधिक धन लगाया दिया जायें।

इन निबन्धों में मैं यह बताऊंगा कि मूल्यों का संस्थाकरण अनिवार्यरूप से शारीरिक दूषण, सामाजिक ध्रुवण, तथा मनोवैज्ञानिक निष्क्रियता की ओर ले जाता है—ये विश्वव्यापी अधःपतन तथा आधुनिकताकृत दुर्दशा के तीन पहलू हैं। मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि किस प्रकार अधःपतन की यह प्रक्रिया उस समय तेज हो जाती है जब अभौतिक आवश्यकताएं या मान्यताएं भौतिक वस्तुओं की मांगों में परिवर्तित की जाती हैं, जब स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यक्तिगत गतिशीलता, व्यक्तिगत हित अथवा मनोवैज्ञानिक उपचार को सेवाओं या 'इलाज' के परिणाम के रूप में परिभाषित किया जाता है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मेरा विश्वास है कि भविष्य के विषय में जो अधिकांश अनुसंधान है उसकी प्रवृत्ति मूल्यों के और अधिक संस्थाकरण का समर्थन करने की ओर है। किन्तु हमें उन स्थितियों को परिभाषित करना चाहिए जिससे बिल्कुल उल्टी स्थिति उत्पन्न हो सके। हमें ऐसी तकनीक के सम्भाव्य प्रयोग पर अनुसंधान करना चाहिए जिससे ऐसी संस्थाएं बन सकें जो व्यक्तिगत, सर्जनात्मक एवं स्वतन्त्र अन्योन्यक्रिया में और ऐसे मूल्यों के विकास में सहायक हों जिन पर तकनीकज्ञों का वस्तुतः कोई नियन्त्रण न हो। प्रचलित भविष्य-शास्त्र प्रतिपक्ष के रूप में हमें अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

मैं मनुष्य के स्वभाव और आधुनिक संस्थाओं की पारस्परिक परिभाषा का व्यापक प्रश्न उठाना चाहता हूँ जो हमारी विश्वदृष्टि और हमारी भाषा से सम्बद्ध है।

इस हेतु मैंने स्कूल को अपना उदाहरण चुना है। इसलिए मैं राज्य की (जो एक कम्पनी की तरह है) अन्य नौकरशाही की एजेन्सियों के सम्बन्ध में अप्रत्यक्ष चर्चा ही करूँगा—उपभोक्ता परिवार, दल सेना चर्च तक नीकी माध्यम आदि। स्कूल की छिपी हुई पाठ्यचर्या के मेरे विश्लेषण से यह स्पष्ट होगा कि समाज को स्कूल विहीन बनाने में सार्वजनिक शिक्षा का लाभ होगा। जैसे पारिवारिक जीवन राजनीति, सुरक्षा धर्म और संचारतन्त्र को ऐसी समवृत्तिक प्रक्रिया से लाभ होगा जैसा स्कूल के सम्बन्ध में मैंने बताया है।

मैं इस प्रथम निबन्ध में अपना विश्लेषण इस बात को समझाने के प्रयास से प्रारम्भ करता हूँ कि किसी स्कूलयुक्त समाज को स्कूलविहीन करने का अर्थ क्या होगा। इस सन्दर्भ में यह समझना सरल है कि इस प्रक्रिया से सम्बद्ध उन पांच विशिष्ट पक्षों को क्यों चुन रहा हूँ जिन पर मैं आगामी अध्यायों में चर्चा करूँगा।

न केवल शिक्षा प्रत्युत स्वयं सामाजिक सत्य भी स्कूल के रंग में रंग चुके हैं। एक ही सेवित क्षेत्र में अमीर और गरीब दोनों को शिक्षित करने का खर्च मोटे तौर से बराबर है। अमरीका के किन्हीं २० नगरों के सम्पन्न उपनगरों और गरीब बस्तियों में प्रति विद्यार्थी वार्षिक खर्च एक ही सीमा में आता है। कभी-कभी गरीबों के पक्ष में ज्यादा बैठता है।* गरीब और अमीर एक समान उन स्कूलों और अस्पतालों पर निर्भर करते हैं जो उनके जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं उनकी विश्व-दृष्टि का निर्माण करते हैं और उनके लिए यह परिभाषित करते हैं कि क्या उचित है और क्या नहीं। इसी का परिणाम है कि गरीब और अमीर दोनों ही स्वयं अपना इलाज करना अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य समझते हैं और स्वयं सीखने पर भी उनका विश्वास नहीं है। यहाँ तक कि सामाजिक संगठनों को जब सम्बन्धित अधिकारियों से पैसा नहीं मिलता तो वे उसे अपघर्षण (aggression) या विध्वंस (subversion) मानते हैं। दोनों ही वर्गों को संस्थागत इलाज पर निर्भरता का अभ्यास इतना हो जाता है कि स्वतन्त्र रूप से से प्राप्त उपलब्धियों को वे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। आत्म निर्भरता और सामाजिक निर्भरता का बढ़ता हुआ प्रभाव ब्राजील के उत्तरपूर्व की अपेक्षा वेस्टचेस्टर में अधिक प्रकारात्मक (typical) है। हर जगह न केवल शिक्षा प्रत्युत पूरे समाज को स्कूलविहीन करने की आवश्यकता है।

कल्याणकारी नौकरशाहियाँ समाज की चेतना पर प्रोफेशनल, राजनीतिक, आर्थिक एकाधिकार का दावा रखती हैं और इस प्रकार वे इस बात का मानदण्ड निर्धारित करती हैं कि क्या मूल्यवान है और क्या संभव है। यह यह एकाधिकार ही गरीबी के आधुनीकरण के मूल में है। हर छोटी से छोटी आवश्यकता जिसकी पूर्ति के लिए संस्था की स्थापना के रूप में उत्तर मिलता है, इस बात की अनुभूति देती है कि गरीबों के एक नये वर्ग का सृजन हो और गरीबों की एक नयी परिभाषा बने। दस वर्ष पूर्व मेक्सिको में अपने घर में जन्म लेना और वहीं मरना तथा अपने मित्रों द्वारा दफनाया जाना एक सामान्य बात थी। केवल आत्मा की आवश्यकताएं चर्च नामक संस्था के जिम्मे रहती थी। अब घर पर जीवन प्रारम्भ करना और समाप्त करना या तो गरीबी का या समाज में विशेषाधिकार का (privilege) प्रतीक है। मरना और मृत्यु डाक्टरों तथा अन्य देखभाल करने वालों के संस्थागत प्रबन्ध के अन्तर्गत आ गए हैं।

एक बार जहाँ बुनियादी आवश्यकताएं समाज द्वारा वैज्ञानिक रूप से उत्पादित वस्तुओं के रूप में बदल जाती हैं गरीबी उन मानदण्डों से परिभाषित होती है जिन्हें तकनीशियन अपनी इच्छानुसार बदल सकते हैं। गरीबी से तब उन लोगों का अर्थबोध होता है जो उपभोग के किसी महत्वपूर्ण सन्दर्भ में विज्ञापित आदर्श से पीछे रह जाते हैं। मेक्सिको में गरीब वे हैं जिन्हें तीन साल की स्कूल

*एनरोग वी जेंसन, ट्रेंडस इन एलीमेंट्री एण्ड सेकेण्ड्री एजूकेशन एक्सपेंडिचर्स, सेंट्रल सिटी एण्ड सबर्बन कम्पेरिजन्स १६६५ टु १६६८, यू० एस० आफिस आफ एजूकेशन आफिस आफ प्रोग्राम एण्ड प्लानिंग इवेलुएशन जून, १६७६,

शिक्षा नहीं मिली और स्पष्टतः मे गरीब वे हैं जिन्हे बारह वर्ष की स्कूली शिक्षा नहीं मिली।

गरीब समाज मे सदैव शक्तिहीन रहे हैं। संस्थागत देखभाल पर बढ़ती हुई निर्भरता उनकी असहाय स्थिति मे एक नया पहलू जोड़ देती है—मनोवैज्ञानिक निष्क्रियता और अपनी देखभाल स्वयं करने की अक्षमता। एण्डीज के ऊँचे पठारो पर जमीदारों और व्यापारियो द्वारा किसानो का शोषण किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक बार जब वे सीमा मे बस जाते हैं तो वे राजनीतिक नेताओ पर आश्रित हो जाते हैं और स्कूली शिक्षा के प्रभाव म पगु बन जाते हैं। नयी (modernised) गरीबी परिस्थितियो के प्रति उनकी असमर्थता के साथ उनके व्यक्तिगत पुरुषार्थ के अभाव को जोड़ देती है। गरीबी का यह नया रूप विश्वव्यापी घटना है और वर्तमान अल्पविकास के मूल मे है। यह अवश्य है कि यह विभिन्न रूपो मे अमीर और गरीब देशो मे अभिव्यक्त होती है।

इस बात की तीव्रतम अनुभूति अमरीका के नगरो में होती है। अन्य कहीं भी गरीबी का उपचार इससे अधिक खर्च पर नहीं किया जाता। अन्य कहीं भी गरीबी का इलाज इतनी आश्रयवृत्ति, क्रोध, निराशा और अधिकाधिक मांगें नहीं उत्पन्न करता और अन्य कहीं भी यह बात इतनी स्पष्ट नहीं होती कि गरीबी एक एक बार जब नवीन रूप धारण कर लेती है, तो केवल डॉलर के बल पर किये जाने वाले उपचार की प्रतिरोधिनी बन जाती है तथा संस्थागत क्रांति की अपेक्षा करती है। आज अमरीका मे काले हब्शी और प्रवासी प्रोफेशनल इलाज के ऐसे स्तर की आकांक्षा कर सकते हैं, जो पीढ़ियां पूर्व जिसे सोचा भी नहीं जा सकता था और जो तीसरी दुनिया के अधिकांश लोगों को बिल्कुल बेहूदा लगता होगा। उदाहरण के लिए, अमरीका के गरीब एक गैरजिम्मेदार अधिकारी पर यह भरोसा कर सकते हैं कि वह उनके बच्चो को १७ वर्ष के वय तक स्कूल पहुँचाएगा, या एक डाक्टर पर भरोसा कर सकते है कि वह उन्हें अस्पताल मे एक बिस्तर देगा जिसकी कीमत साठ डालर प्रतिदिन (लगभग ५०० रु०) होगी संसार मे बहुत से लोगो के तीन मास के वेतन के बराबर! किन्तु ऐसी देखभाल उन्हें और अधिक आश्रित बना देती है, और उन्हें उत्तरोत्तर इस बात के लिए अयोग्य बना देती है कि वे अपनी जिन्दगी अपनी अनुभूतियो के इर्दगिर्द और अपने संसाधनो के अनुसार अपने समाज मे संगठित कर सकें।

अमरीका के गरीब उस दुर्दशा को बताने की अद्वितीय स्थिति मे हैं जो आधुनिक युग मे सभी गरीबों के लिए भयकारी है कि जब एकबार इन संस्थाओ की प्रोफेशनल सीढ़िया समाज को यह विश्वास दिला देती हैं कि उनके उपचार नैतिक दृष्टि से आवश्यक हैं तो डॉलर की कोई राशि कल्याणकारी संस्थाओ की स्वाभावगत विनाशकता दूर नहीं कर सकती। अमरीका के अंतनगर के गरीब अपने अनुभवो से उस झूठ को स्पष्ट कर सकते हैं जिसपर एक स्कूल केन्द्रित समाज का सामाजिक विधान आधारित है।

सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश विलियम ओ० डगलस ने कहा था कि 'किसी संस्था को स्थापित करने का एक ही तरीका है, और वह है, उसके लिए धन की व्यवस्था करना।' इसका उपसिद्धांत भी सत्य है। उन संस्थाओ को जो इस समय शिक्षा और कल्याण की व्यवस्था करती हैं, डॉलर से वंचित करने से ही, आगे की यह गरीब बनाने की प्रक्रिया रोकी जा सकती है, जो वास्तव मे संस्थाओ के पंगु करने वाले पार्श्व-प्रभावो का परिणाम है।

यह बात उस समय मन मे रखनी चाहिए कि जब हम संघीय सहायता के कार्यक्रमो का मूल्यांकन करें। उदाहरण स्वरूप १९६५ और १९६८ के बीच ३०,००० लाख डालर ६० लाख बच्चो के अभावो की प्रतिपूर्ति करने के लिए अमरीका के स्कूलो मे खर्च किये किये गये थे। कार्यक्रम 'टाइटिल वन' के नाम से ज्ञात है। ऐसा सर्वाधिक खर्चीला क्षतिपूरक कार्यक्रम शिक्षा के क्षेत्र मे अन्य कहीं भी नहीं चलाया गया फिर भी कोई सार्थक सुधार इन वंचित बच्चो के सीखने मे नहीं दिखाई पड़ा।

मध्यम आय के घरो से आने वाले उनके सहपाठियो से तुलना किये जाने पर यह पता चला कि वे और पिछड गये हैं। इसके प्रतिदिन इस कार्यक्रम के दौरान प्रोफेशनल विशेषज्ञो ने यह पाया कि एक करोड ऐसे बच्चे और बढ गये हैं जो आर्थिक एव शैक्षिक दृष्टि से वंचित हैं। सघीय धन की और अधिक माग करने के समर्थन म अब और अधिक कारण सुलभ हैं।

बावजूद इसके कि अधिक खर्चीला इलाज किया गया, गरीबो की शिक्षा के सुधार की पूर्ण असफलता को तीन तरीको से स्पष्ट किया जा सकता है

१—१०,००० लाख डालर ६ लाख बच्चो की उपलब्धियो (performance) को सुधारने के लिए एक मापनीय मात्रा मे अपर्याप्त हैं, या

२ धन अयोग्यता से खर्च किया गया विभिन्न पाठ्यचर्याए, बेहतर प्रशासन, गरीब बच्चे पर धन को और केंद्रित करने तथा और अधिक अनुसधान की आवश्यकता है और इससे सफलता मिल जाएगी।

३—शैक्षिक क्षति का इलाज उस शिक्षा से नही हो सकता जो स्कूल म दी जाती है।

पहली बात तो तब तक अवश्य ही सत्य है जबतक पैसा स्कूल के बजट से खर्च हुआ है। पैसा सचमुच उन स्कूलो को गया जिनमे अधिकाश असुविधाग्रस्त बच्चे थे, किन्तु वह गरीब बच्चो पर ही नही खर्च हुआ। वे बच्चे जिनके लिए धन दिया गया था उन बच्चो ने लग भग आधे थे जो इन स्कूलो मे जा रहे थे। इस प्रकार धन का उपयोग सरक्षणपूर्ण देखभाल, प्रचार और सामाजिक भूमिका के चुनाव और साथ ही साथ शिक्षा पर खर्च हुआ। ये सभी कार्य अविच्छिन्न रूप मे भौतिक उपादानो, पाठ्यचर्याओ, शिक्षको, प्रशासको तथा इन स्कूलो के अन्य प्रमुख अगो से और अत उनके बजट से जुडे हुए हैं।

अतिरिक्त धन से स्कूलो को यह अवसर मिला कि बिना अनुपात के अपेक्षाकृत उन अमीर बच्चो न सतोष के लिए प्रबध करें जो इस दृष्टि से असुविधाग्रस्त थे कि उन्हें स्कूल म गरीब बच्चो के साथ पढना पडता था।

यह भी हर हालत मे सत्य हो सकता है कि धन अयोग्यतापूर्वक व्यय किया गया। किन्तु स्कूल व्यवस्था की अयोग्यता अ य किसी असाधारण अयोग्यता को भी हार मना देती है। स्कूल अपनी सरचना (ढाँचे) के साथ ही उनपर सुविधाएँ केंद्रित करन का विरोध करते हैं जो अन्यथा सुविधाग्रस्त हैं। विशष पाठ्यचर्याए, अलग कक्षाएँ, लम्बी अवधि और अधिक भेदभाव उत्पन्न करती हैं और अधिक खर्च पर।

टैक्स देने वाले प्राणी इस बात के आदी नहीं हैं कि वे स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण से ३०,००० लाख डालर विलुप्त करने की अनुमति दें जैसा कि वे पेंटागान के लिए कर सकत हैं। वर्तमान प्रशासन यह विश्वास कर सकता है कि वह शिक्षको का क्रोध सहन कर सकता है। मध्यवर्गीय अमरीका के लोगो का कोई नुकसान नही होगा यदि यह प्रोग्राम काट दिया जाय। गरीब माँ बाप सोचत हैं कि उनका नुकसान होगा, किन्तु उससे भी अधिक वे इस बात की माग कर रहे हैं हैं कि जो धन उनके बच्चो के लिए है उस पर नियत्रण रखा जाय। बजट काटने का एक हर सगत तरीका, और आया है, लाभ बढाने का भी यह है कि पढाई अनुदान की व्यवस्था की जाए जैसा मिल्टन फाइडमैन और दूसरो ने प्रस्तावित किया है। इससे पैसा उस तक पहुँचेगा जिसको मिलना है, जिससे वह अपनी इच्छानुसार शिक्षा का अपना भाग खरीद सकता है। यदि इस प्रकार की क्रेडिट (credit) ऐसी खरीद तक सीमित कर दी जाय जो स्कूल की पाठ्यक्रमों मे फिट बैठती है, तो उपचार की समानता की व्यवस्था अधिक हो सकेगी, किन्तु इसस सामाजिक अधिकारो की समानता मे वृद्धि नही होगी।

यह स्पष्ट है कि समान गुणा के स्कूलो म भी एक गरीब बच्चा शायद ही कभी अमीर बच्चों के स्तर पर पहुँच सके, यद्यपि व समान स्कूलो म भी जाते हैं, और एक ही उम्र म शिक्षा प्रारम्भ करत हैं। फिर भी गरीब बच्चा को वे अवसर अधिकाशत नही [illegible] मध्यवर्गीय बच्चा को आकस्मिक रूप

से मिल जाते हैं। ये लाभ घर पर बातचीत और पुस्तकों से लेकर छुट्टियों में यात्रा और अपने विषय में एक अलग अनुभूति तक मिलते रहते हैं और बच्चों के लिए सुगम होते हैं जो उनका स्कूल और स्कूल के बाहर दोनों ही जगह आनन्द उठाते हैं। अतः गरीब विद्यार्थी सामान्यतः तब तक पीछे रहेगा जब तक वह स्कूल पर अपनी प्रगति अथवा पालन पोषण के लिए निर्भर करता है। गरीबों को इसलिए पैसा चाहिए कि वे कुछ सीख सकें न कि अपनी बिना अनुपात की तथाकथित कमियों के उपचार का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए।

क्रमशः

उत्तर प्रदेश और प्रौढ़ शिक्षा

द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी

उत्तर प्रदेश और निरक्षता का आकार

विगत चार दशकों से अपने देश तथा प्रदेश में निरक्षरता उन्मूलन के बराबर प्रयास किये गये किन्तु उन सारे प्रयासों के बावजूद भारत में साक्षरता का प्रतिशत जो कि वर्ष १९४७ में १४ था वर्ष १९७१ तक लगभग ३४ तक ही हो पाया। वर्ष १९७१ के आकड़ों के आधार पर उत्तर प्रदेश का साक्षरता प्रतिशत लगभग २२ था जो अब करीब २४ होगा। इस प्रतिशत में पुरुषों की साक्षरता का प्रतिशत लगभग ३२ तथा महिलाओं का १० है। अगर भारत के अन्य प्रदेशों से अपने प्रदेश के साक्षरता प्रतिशत की तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि उत्तर प्रदेश का १८ वां स्थान है अर्थात् २२ प्रदेशों में से केवल ४ प्रदेश ऐसे हैं जो अपने प्रदेश से साक्षरता में कुछ कम हैं। इससे यह स्पष्ट है कि साक्षरता की दृष्टि से उत्तर प्रदेश बहुत नीचे स्तर पर है। हमें इस दिशा में गम्भीरता पूर्वक विचार करना है।

उत्तर प्रदेश की जनसंख्या इस समय लगभग १० करोड़ होगी। इस संख्या में १५ से ४५ तक की उम्र की अवधि में निरक्षर पुरुषों तथा स्त्रियों की जनसंख्या लगभग साढ़े चार करोड़ से अधिक आती है जिसमें करीब ४ करोड़ निरक्षर की संख्या तो गावों की ही है। अगर निरक्षरों की इस पूरी संख्या में नीचे की आयु के निरक्षर बालक बालिकाओं को और जोड़ दिया जाय तो यह समस्या करीब ६ करोड़ निरक्षरों को साक्षर बनाने के रूप में उभर कर सामने आती है।

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा नीति के अनुसार अगर हम १५ से ३५ वयवर्ग के स्त्री पुरुषों का लक्ष्य समूह सामने रखें तो यह ज्ञात होता है कि इस वय वर्ग में कुल निरक्षरों की संख्या लगभग १ करोड़ ८० लाख आती है जिसमें से करीब ७२ लाख पुरुषों की संख्या होगी और शेष लगभग १ करोड़ ८ लाख स्त्रियों की।

यह है उत्तर प्रदेश की निरक्षता का आकार और स्वरूप जिसको ध्यान में रखते हुए हमें निरक्षरता उन्मूलन की योजना पर विचार करना है।

उद्देश्य

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा नीति के अनुसार साक्षरता एवं प्रौढ़ शिक्षा दोनों के कार्यक्रम चलाने हैं तथा साक्षरता इन कार्यक्रमों का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इस नीति निर्देशक सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए प्रदेश की प्रौढ़ शिक्षा योजना के तीन उद्देश्य होंगे —

१—निर्धारित लक्ष्य समूह को साक्षर बनाना।

२—निर्धारित लक्ष्य समूह को ऐसी जानकारियाँ, कौशल और ज्ञान प्रदान कराना, जिससे कि वे अपने जिस व्यवसाय में लगे हुए हैं उसको बेहतर बनाते हुए अपने स्तर को और अच्छा बना सकें तथा सामाजिक स्तर को और उन्नत कर सकें।

३—उनकी रुचियों, व्यवहारों और अभिवृत्तियों में ऐसे वांछनीय और स्वस्थ परिवर्तन लाना जिससे वे जागरूक और विवेकशील नागरिक के रूप में अपने कर्तव्यों और दायित्वों को समझ सकें, उनका निर्वाह कर सकें, समाज के उत्पादक और उपयोगी अंग बन सकें तथा वर्तमान विज्ञान तथा तकनीक-प्रधान परिवर्तनशील विश्व के नागरिक के रूप में समझदारी के साथ अपनी भूमिका अदा कर सकें।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रौढ़ शिक्षा के समस्त कार्यक्रम अनौपचारिक शिक्षा की उस संकल्पना के अन्तर्गत आयोजित होंगे, जो मुख्यतः पढ़ने-सीखनेवालों की सुविधाओं, आवश्यकताओं, समस्याओं आदि पर आधारित होते हैं तथा जिनके अन्तर्गत इन पढ़ने सीखनेवाले प्रौढ़ों अथवा वंचितों की सुविधानुसार स्थान, समय व पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये आयोजन सप्रयास, सुसंगठित तथा व्यवस्थित तो होंगे ही, औपचारिक शिक्षा-पद्धति की तरह उन पर संगठनात्मक तथा व्यवस्थात्मक प्रतिबन्ध हावी नहीं होंगे। संक्षेप में, पाठक अथवा प्रतिभागी, अधिकांश अपनी राय से, 'जहाँ' पढ़ना चाहेंगे, 'जब' पढ़ना चाहेंगे और 'जो' पढ़ना चाहेंगे, इस सिद्धान्त के अनुसार उनकी शिक्षा का आयोजन किया जायगा।

हमने अभी आपके सामने १५ से ३५ वय वर्ग के प्रौढ़ों के लक्ष्य-समूह की जो चर्चा की है, उसके सम्बन्ध में यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि उनके पढ़ाने लिखाने में वरीयता निरक्षर महिलाओं, निर्बल वर्गों, ग्रामीण तथा शहरी गरीबों, श्रमिकों, बेजमीन मजदूरों, छोटे किसानों तथा गिरिजनों को दी जायगी।

प्रौढ़-शिक्षा एवं साक्षरता-केन्द्र

१५ से ३५ वय-वर्ग के निरक्षरों की हमने जो लगभग १ करोड़ ८० लाख संख्या आपके सामने रखी है, उसको ध्यान में रखते हुए, और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि हमें ५ वर्ष में इन्हें साक्षर बना देना है, ३० प्रतिभागी प्रति केन्द्र के हिसाब से यों तो ६ लाख केन्द्रों की आवश्यकता दिखाई देती है, किन्तु उत्तर प्रदेश के पर्वतीय तथा अन्य कई क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए लगभग ७ लाख साक्षरता-केन्द्र आवश्यक होंगे, यानी १.४० लाख केन्द्र प्रति वर्ष। और अगर ५ वर्ष के स्थान पर हम निरक्षरता-उन्मूलन की अवधि १० वर्ष मान कर चलें, तो १ करोड़ ८० लाख की संख्या के लिए ७० हजार प्रतिवर्ष केन्द्रों की आवश्यकता होगी।

पाठ्यक्रम तथा पठन-पाठन सामग्री

जहाँ तक पाठ्यक्रम का सम्बन्ध है, प्रौढ़ प्रतिभागियों के लिए यह उनकी अनुभूत आवश्यकताओं, रुचियों तथा समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित करना होगा। उस पाठ्यक्रम में पर्याप्त लचीलापन रहेगा। यह आवश्यक होगा कि जिला स्तर पर जो अधिकारी, पर्यवेक्षक तथा केन्द्रों के शिक्षक हों, वे अपनी-अपनी स्थानीय समस्याओं को एकत्र कर पाठ्यक्रम में समाविष्ट करते कराते रहें। लेकिन एक सामान्य पाठ्यक्रम भी विशेषज्ञों की समिति द्वारा तैयार कराकर जिलों में मार्गदर्शन हेतु भेजना आवश्यक होगा।

इस पाठ्यक्रम का प्रमुख विषय साक्षरता और प्रौढ़-शिक्षा होगा। साक्षरता के अन्तर्गत भाषा और गणित की शिक्षा प्रदान की जायगी तथा प्रौढ़-शिक्षा के अन्तर्गत प्रतिभागियों की स्वस्थ रुचियों, अनुभूत आवश्यकताओं, दैनिक समस्याओं, व्यावसायिक दक्षताओं, सामाजिक कुरीतियों, जीर्णशीर्ण परम्पराओं, अंधविश्वासों स्वास्थ्य एवं सफाई, पौष्टिक आहार, सन्तुलित भोजन, शिशु-पालन गर्भवती माताओं की देखभाल, पारिवारिक जीवन की सुख समृद्धि, परिवार कल्याण, पेय-जल, संक्रामक रोग, नागरिक कर्तव्य एवं अधिकार, राष्ट्रीय विकास की योजनाओं तथा आत्म-उन्नयन एवं व्यक्तित्व के सर्वांगीण और सन्तुलित विकास आदि से सम्बन्धित ज्ञान और जानकारियाँ प्रदान की जायेंगी। इस प्रकार उद्देश्य प्रमुखतः यह होगा कि प्रतिभागी एक ओर तो भाषा और

कौशल तथा दैनिक गणित की जानकारी प्राप्त कर सकें तथा दूसरी ओर वे सुखी, समृद्ध, सतुलित और सतुष्ट जीवन व्यतीत करने के लिए अपने को समर्थ और सक्षम बना सकें। इसके अतिरिक्त, सर्वोपरि यह कि वे अपने अपने परिवार, अपने परिवेश, समाज, देश और अपनी दुनिया के सदस्य के रूप में एक अच्छे व्यक्ति, अच्छे भाई या बहन अच्छे पति या पत्नी, अच्छे सहयोगी और पड़ोसी तथा एक जागरूक, चैतन्य और विवेकशील नागरिक बन सकें और इस प्रकार अपनी समस्याओं के समाधान स्वयं ढूढते हुए न केवल अपनी जीविका के स्तर को उन्नत बना सकें, बल्कि जीवन के स्तर को भी उन्नत कर सकें, जिससे उनके माध्यम से समूचे समाज और राष्ट्र का समुचित विकास हो सके।

प्रौढ़ों के लिए जिस पठन-पाठन सामग्री की आवश्यकता होगी, वह भी उनकी रुचियों, आवश्यकताओं तथा समस्याओं और उनके विषयों पर आधारित होगी जो उनकी तात्कालिक उपयोगिता से सम्बन्धित होंगे और उनमें पढ़ने तथा ज्ञानार्जन की रुचि भी निरंतर विकसित करते रहेंगे।

प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों के अन्तर्गत रोचक ढंग से ज्ञान प्रदान करने के लिए यह भी आवश्यक होगा कि पोस्टर, चार्ट, फ्लैश कार्ड, चित्र-पट्टियां, कठपुतलियां, नाटक, वार्तालाप, वादविवाद प्रतियोगिताएँ, भ्रमण, शैक्षिक चलचित्र, माडल, प्रदर्शन आदि का प्रयोग किया जाय, जिससे जो कुछ जानकारी देय हो वह दृश्य रूप में प्रतिभागियों के मानस के सामने रहे और वह ठोस रूप में उनके ज्ञान का अंग बन सके।

शिक्षक अथवा अनुदेशक

आइये हम इस पर विचार करें कि हम इस कार्य के लिए कितने शिक्षकों की आवश्यकता होगी। यदि हम १५ से ३५ वय-वर्ग के लिए १,४०,००० केन्द्र प्रति वर्ष खोलते हैं तो हर साल १,४०,००० शिक्षकों अथवा अनुदेशकों की आवश्यकता होगी और यदि ५ वर्ष के स्थान पर निरक्षरता उन्मूलन की अवधि १० वर्ष मान ली जाय तो हर साल ७०,००० शिक्षक आवश्यक होंगे।

ये शिक्षक अथवा अनुदेशक यथासम्भव स्थानीय होंगे, हाई स्कूल किन्तु बेरोजगार होंगे, अवकाश-प्राप्त अध्यापक, सेवारत अध्यापक तथा अन्य उपयुक्त स्थानीय व्यक्ति होंगे, किन्तु वरीयता प्रशिक्षित हाई स्कूल बेरोजगारों को दी जायगी।

प्रशिक्षण

चूँकि प्रौढ़ शिक्षा का यह कार्य बालकों को दी जाने वाली शिक्षा से अनेक दिशाओं में भिन्न होगा, इसलिए इस कार्य के लिए नियुक्त शिक्षकों का वांछित प्रशिक्षण भी अत्यन्त आवश्यक होगा। इस प्रशिक्षण में सर्वेक्षण, जन-सम्पर्क, केन्द्रों का चयन, पठन-पाठन-सामग्री का उपयोग, प्रौढ़ मनोविज्ञान, विभिन्न स्थानीय उपलब्ध सुविधाओं और साधनों के जुटाने, आवश्यकतानुसार स्थानीय समस्याओं से सम्बन्धित साहित्य की रचना, उपस्थिति तथा आख्या-पंजिका भरना, आवश्यक दृश्य उपादानों का उपयोग, प्रयोगात्मक प्रौढ़-कक्षाओं में प्रशिक्षण-अभ्यास, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन तथा युवक-मंगल दलों, चेतना-संघों के गठन आदि की जानकारियां तो सम्मिलित होंगी ही, प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिए चर्चा, पारस्परिक विचार विमर्श जैसी उन शिक्षण-पद्धतियों में भी प्रमुख रूप से प्रशिक्षण दिया जायगा जिनमें प्रतिभागी सीखने की प्रक्रिया में स्वयं साझीदार हों, शिक्षण सिखाने की प्रक्रिया उतनी न हो, जितनी कि स्वयं सीखने की अर्थात् वह प्रतिभागी-केन्द्रित हो शिक्षक-केन्द्रित नहीं, जिससे उनमें आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न हो, स्वावलम्बिता का भाव जागृत हो तथा शिक्षण उनके लिए बोझ न होकर रुचिकर सिद्ध हो। प्रशिक्षण में इन प्रसंगों के अलावा प्रौढ़ों को पढ़ाने की विधियां, मल्य-मूल्यांकन तथा परीक्षण की तकनीक आदि भी सम्मिलित होंगी।

शिक्षण

प्रौढ़-शिक्षा के इस कार्यक्रम में शिक्षक स्वतः जितना पढ़ा-लिखा सकेगा तथा अन्य जानकारियां प्रदान कर सकेगा, उतना ही पर्याप्त नहीं होगा। प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत प्रतिभागियों के व्यावसायिक ज्ञान की बढ़ोत्तरी,

स्वास्थ्य सुधार, सहकारिता, खेती, सिंचाई आदि से सम्बन्धित तकनीकी जानकारियों के लिए उसे जिले के अथवा स्तर के सम्बन्धित विभागों के अधिकारियों और विशेषज्ञों से भी सम्पर्क करना आवश्यक होगा, जिससे कि उन्हें आमंत्रित कर वह उनकी साक्षरता-केन्द्र पर वार्ताएं करा सके, प्रदर्शन आदि करा सके तथा मौकों पर ले जाकर कार्य होते हुए भी दिखा सके। इस दृष्टि से उसे एक समन्वयक (कोआर्डिनेटर) की भूमिका अदा करनी होगी।

पर्यवेक्षण, परीक्षण और मूल्य फल

साक्षरता कक्षों के प्रभावी संचालन के लिए उनका समय-समय पर पर्यवेक्षण भी अत्यावश्यक होगा। जो केन्द्र राज्य सरकार द्वारा चलाये जायेंगे उनका पर्यवेक्षण सरकारी पर्यवेक्षक करेंगे तथा जो केन्द्र स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा चलाये जायेंगे उनके पर्यवेक्षण का दायित्व उन्हीं संस्थाओं पर होगा। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं होना चाहिए कि सरकारी तथा गैर सरकारी प्रयासों में कोई सहयोग न हो।

साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी बड़ा आवश्यक है। मूल्यांकन की यह प्रक्रिया योजना के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चलनी होगी। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत एक ओर तो शिक्षक स्वयं प्रत्येक प्रतिभागी की प्रगति का लेखा-जोखा समय समय पर लेता रहेगा दूसरे पर्यवेक्षक समस्त प्रतिभागियों की प्रगति का सामूहिक अंकन भी करता रहेगा और अन्त में उन उद्देश्यों और स्तरों के सम्बन्ध में साक्षरता केन्द्र पर किये गये कार्यों का समग्र रूप से मूल्यांकन भी किया जायगा, जिससे यह ज्ञात हो सके कि निर्धारित उद्देश्य और स्तर तक हम किस सीमा तक पहुँच सके हैं और जहाँ तक नहीं पहुँच सके हैं उनके लिए हमारे क्या रचनात्मक सुझाव हैं।

प्रमाण-पत्र

प्रौढ़-साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के विभिन्न परीक्षण और मूल्यांकन के पश्चात सफल घोषित प्रतिभागियों को प्रमाण-पत्र भी दिया जाना वांछनीय होगा जिससे वे स्वयं उत्साहित तथा औरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकें। जिन वय वर्गों के बालक-बालिकाएं, जो किसी प्रकार से औपचारिक शिक्षा से वंचित रह गये थे और जो शिक्षा की मुख्य धारा में प्रवेश पाना चाहेंगे, उनके लिए तो ऐसे प्रमाण-पत्र और भी अधिक उपादेय सिद्ध होंगे।

अनुगमन

साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रतिभागियों को जो कौशल और ज्ञान प्रदान किया जायगा उसको बनाये रखने तथा उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि और विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए अनुगमन कार्य जरूरी होगा। इस कार्य के निमित्त सरल भाषा में लिखी हुई पुस्तकें, पत्र पत्रिकाएं, पुस्तकालय, पुस्तक मेले, भ्रमण, रेडियो-टेलीविजन, चर्चा मण्डल, अध्ययन गोष्ठी आदि के आयोजन आवश्यक होंगे।

गैर-सरकारी संस्थाओं का योगदान

प्रौढ़ शिक्षा का वर्तमान कार्यक्रम एक बृहत् कार्यक्रम है और इसे ५ वर्ष या अधिक से अधिक १० वर्ष की अवधि में पूरा किया जाना है। स्पष्ट है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति केवल सरकारी संस्थाओं द्वारा ही नहीं हो सकती। अतएव इस कार्य में प्रदेश की गैरसरकारी संस्थाओं तथा अन्य उत्तरदायी व्यक्तिगत सस्थाओं एवं प्रयासों की भी सहायता अपेक्षित होगी। यों भी साक्षरता एवं प्रौढ़शिक्षा का काम एक ऐसा विशिष्ट कार्य है, जिसमें सेवा की भावना तो अपेक्षित है ही सरकारी तन्त्र के नियम और बन्धन कार्यकर्ताओं की इच्छा होते हुए भी, प्रायः बाधक बन जाते हैं। इन कार्यक्रमों के संचालन की व्यवस्था में आवश्यकतानुसार लचीलापन होना आवश्यक होता है किन्तु सरकारी नियमों के कारण वह लचीलापन प्रायः सम्भव नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त इतनी विशाल योजना के क्रियान्वयन का भार मात्र सरकार पर ही छोड़ा भी नहीं जा सकता, स्वैच्छिक संस्थाओं तथा अन्य समाज सेवारत संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा भी इस दिशा में देशप्रेम और समाज सेवा की भावना से प्रेरित होकर अपना पूरा योगदान दिया जाना होगा और सभी

निरक्षता-उन्मूलन के इस अभियान में कुछ उल्लेखनीय उपलब्धि हो सकती है।

बोर्ड तथा समितियों का गठन

प्रौढ़-शिक्षा-कार्यक्रम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए यह भी आवश्यक होगा कि एक राज्य-स्तरीय प्रौढ़-शिक्षा बोर्ड का गठन किया जाय और साथ ही जिला-स्तरीय प्रौढ़-शिक्षा-समितियों का ब्लाक तथा नगर समितियों का, गाँव और वार्ड समितियों का, तथा बड़े बड़े व्यावसायिक संस्थानों की प्रौढ़ शिक्षा समितियों का भी गठन किया जाय।

लक्ष्य-प्राप्ति

इस प्रकार, यदि प्रदेश में प्रौढ़-साक्षरता एवं प्रौढ़-शिक्षा के कार्यक्रमों का समस्त स्तरों पर पूरे मनोयोग के साथ विधिवत् रूप से कार्यान्वयन किया जाये तो, आशा है कि १५-३५ वय-वर्ग की प्रौढ़ महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत ३०-३२ तक पहुँच सकता है, और प्रौढ़ पुरुषों की साक्षरता का प्रतिशत तो ५ वर्ष में लगभग शत-प्रतिशत सम्भव हो सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह उपलब्धि सर्वथा उल्लेखनीय होगी।

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के द्वारा शिक्षण

बैजू भाई, मंत्री, अखिल भारत नयी तालीम समिति

दसवर्षीय स्कूल पाठ्यक्रम पर गठित श्री ईश्वर भाई पटेल समिति तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में राष्ट्रीय पुनरीक्षण समिति (जिसके अध्यक्ष डा० माल्कम एस० आदिसेशिया हैं) ने स्पष्ट रूप से समाजोपयोगी उत्पादक कार्य को स्कूल की शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षा का आवश्यक तत्व स्वीकार किया है। उन्होंने तर्क-सहित कहा है कि सीखने की प्रक्रिया समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के माध्यम से विकसित की जानी चाहिए।

ईश्वर भाई पटेल समिति ने इस विचार की व्याख्या करने का प्रयास किया है तथा डा० आदिसेशिया समिति ने अपनी पूर्ण सहमति व्यक्त की है। व्याख्या इस प्रकार है :— समाजोपयोगी उत्पादक कार्य से अभिप्रेत है कि वह समाज के लिए सोद्देश्य, सार्थक, ऐसा हाथ का कार्य हो जिसमें किसी वस्तु का समाजोपयोगी उत्पादन अथवा सेवा-कार्य पूरा हो सके। सोद्देश्य उत्पादक कार्य तथा सेवाएँ बालक तथा समाज की आवश्यकता के अनुरूप होंगी तथा विद्यार्थी के लिए सार्थक होंगी। ऐसा कार्य यंत्रवत् नहीं किया जाना चाहिए। नियोजन, विश्लेषण तथा प्रत्येक स्तर पर विस्तृत पूर्वतैयारी आवश्यक है जिससे वह मूलतः शैक्षिक हो। जहाँ भी सम्भव हो, उपलब्ध विकसित औजारों तथा साधनों का तथा आधुनिक तकनीकों का उपयोग, तकनीक पर आधारित विकासशील समाज की आवश्यकताओं का बोध कराने में सहायक सिद्ध होगा।

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने आगामी वर्ष से अपने से संबंधित स्कूलों में समाजोपयोगी, उत्पादक कार्य को अनिवार्य कर दिया है। परिषद ने १ से ६ जुलाई १९७८ को स्कूलों के लिए समाजोपयोगी, उत्पादक कार्य पर आधारित पाठ्यक्रम हेतु निर्देशिका तैयार करने के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया है। राष्ट्रीय शैक्षिक शोध तथा प्रशिक्षण परिषद ने भी १७ से २२ जुलाई तक समाजोपयोगी, उत्पादक कार्य का पाठ्यक्रम तैयार करने हेतु एक कार्यशाला आयोजित की है। प्रस्तावित कार्यशालाओं से इस कार्य के प्रति शासन के उद्देश्य की

गम्भीरता परिलक्षित होती है। मैं इस कदम का हृदय से स्वागत करता हूँ।

ऐसे सभी लोगों को जिन्हें हमारे देश की सही स्कूल की शिक्षा को संगठित करने और विकसित करने में अभिरुचि है, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य पर आधारित उपयुक्त पाठ्यक्रम विकसित करने पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। दुर्भाग्य से देश के किसी भी विश्वविद्यालय में, स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रम विकास को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में गम्भीरतापूर्वक स्थापित करने का प्रयास नहीं हुआ है। ईश्वर भाई समिति तथा आदिसेशिया समिति द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम के मार्गदर्शक प्रारूप भी इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन नहीं कर पाते है। अखिल भारत नयी तालीम समिति सेवाग्राम ने हाल में ही "कार्योन्मुख विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की संकल्पना' नाम की एक पुस्तिका प्रकाशित की है। इस पुस्तिका में कार्य के द्वारा शिक्षा के दिशा निर्देश के साथ ही इस विचार पर आधारित पाठ्यक्रम का नमूना भी प्रस्तुत किया गया है। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद तथा राष्ट्रीय शैक्षिक शोध तथा प्रशिक्षण परिषद द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में उपर्युक्त राष्ट्रीय रिव्यू समितियों द्वारा प्रस्तुत दिशा निर्देशों का भरपूर उपयोग किया जायगा और ये संस्थाएं अपना पाठ्यक्रम भी तैयार करेंगी।

इस समय जब कि राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यक्रम की योजना बनाने तथा ईश्वर भाई समिति द्वारा तैयार निर्देशों के आधार पर समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की सूची तैयार करने का काम प्रारम्भ किया जा रहा है, इस संकल्पना में अन्तर्निहित शैक्षिक पहलुओं पर विचार करना उपयोगी होगा। उदाहरणार्थ, क्या हम वर्तमान औपचारिक शैक्षिक ढांचे के अन्तर्गत समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की परिकल्पना करते हैं? वर्तमान में औपचारिक शिक्षा का स्वरूप क्या है—अ इसमें ज्ञान और सूचनाओं पर आधारित पाठ्यपुस्तकों से विषय-वस्तु ली जाती है।

आ – सीखने की प्रक्रिया के समय सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता है।

इ—ज्ञानार्जन का मूल्यांकन मुख्यतः अंत में परीक्षा के रूप में होता है।

क्या हम मानते हैं कि समाजोपयोगी उत्पादक कार्य भी एक अलग विषय है, जैसा कि कार्य-अनुभव के सम्बन्ध में किया गया था। या हम समाजोपयोगी उत्पादक कार्य को शिक्षा का माध्यम स्वीकार करें तो पाठ्यक्रम का स्वरूप कार्यपरक शिक्षा का होगा। कार्यपरक शिक्षा क्या है? कार्य से शिक्षा कैसे प्राप्त होगी? सामुदायिक कार्य शिक्षा का माध्यम कैसे बनेगा? कैसे ज्ञान, कुशलता तथा अभिरुचि का समन्वय किया जायगा? किस भांति यह कोर्स तीन वर्षों में (मिडिल और हाई स्कूल) क्रमबद्ध पाठ्यक्रम का अंग बनाया जा सकता है?

एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रकरण भी है। क्या हम सामाजिक कार्यों को समाजोपयोगी उत्पादक कार्य से भिन्न मानेंगे। अथवा नहीं? उदाहरण के लिए क्या बचत योजना कार्यक्रम को समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की सूची में जोड़ेंगे। ईश्वर भाई पटेल समिति ने इसकी परिभाषा देते समय शरीर-श्रम पर बल दिया है। क्या हम इसे स्वीकार करते हैं? ये और अन्य अनेक मुद्दे, यथा संगठन, शिक्षक-प्रशिक्षण, शिक्षक-पुनर्नवीकरण के सम्बन्ध में विचार करना होगा और उसके अनुरूप ही स्कूल का क्रम बनाना होगा।

राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-कार्यक्रम – एक रूपरेखा

शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, १९७८

इस लेख का उद्देश्य प्रौढ़ शिक्षा पर भारत सरकार द्वारा किए गये नीति वक्तव्य को कार्यरूप में परिणत करने की दृष्टि से क्रियात्मक विवरण की रूपरेखा प्रस्तुत करना है। किन्तु प्रयास यह नहीं है कि कार्यक्रम के लिए अनम्य और अपरिवर्तनीय मार्ग-दर्शक रेखाएं निर्धारित की जाएं। प्रत्युत उद्देश्य यह है कि विभिन्न विकल्पों की खोज की जाए। इसको दोहराना आवश्यक है कि उद्देश्य यह है कि १५-३५ आयु वर्ग के लगभग १००० लाख निरक्षरों के लिए ऐसे प्रौढ़-शिक्षा के कार्यक्रम जिनमें साक्षरता एक अनिवार्य अंग हो, इस दृष्टि से संगठित किए जाएं जिससे उन्हें स्वप्रेरित ज्ञानार्जन के कौशल प्राप्त हो सकें और वे अपने और अपने वातावरण के विकास में आत्म-निर्भर और सक्रिय भूमिका अदा कर सकें। संकल्पनात्मक और कार्य नीति का विवरण प्रौढ़-शिक्षा के नीति वक्तव्य में दिया गया है और उसे इस लेख के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

कार्यक्रम के सोपान

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा-कार्यक्रम का शुभारम्भ २ अक्तूबर, १९७८ को होगा। सभी व्यावहारिक दृष्टियों से अब से लेकर मार्च, १९७९ तक की अवधि सघन तैयारी की अवधि होगी। तैयारी का काम निम्नलिखित क्षेत्रों में होगा।

(१) वर्तमान लगभग ५ लाख के स्तर से १९७८-७९ में कम से कम १५ लाख तक ले जाने के लिए कार्यक्रम में ठोस कदम उठाना।

(२) रा० प्रौ० शिक्षा का अभियान चलाने के लिए उचित वातावरण बनाना।

(३) पिछले महत्वपूर्ण अनुभवों के आधार पर कुछ विशेष अध्ययन तैयार करना, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जिनकी असफलताओं अथवा असफलताओं का कुछ प्रभाव रा० प्रौ० शिक्षा-कार्यक्रम के नियोजन और क्रियान्वयन पर पड़ेगा।

(४) कार्यक्रम के विभिन्न अंगों के विस्तृत नियोजन हेतु विशेषज्ञ टोलियों की नियुक्ति। इसमें प्रत्येक राज्य और यूनियन टेरीटरी के लिए विस्तृत योजनाओं को तैयार करना भी सम्मिलित होगा।

(५) प्रशासन एवं समन्वय के लिए तथा कार्य-प्रणालियों तथा उनके रूपों में आवश्यक संशोधन करने के लिए आवश्यक ढांचे की स्थापना करना।

(६) सरकारी और गैरसरकारी विभिन्न अभिकरणों को, जो कार्यक्रम में सम्मिलत होंगे, चुनना और उनका वांछित स्तर का सहयोग सरलता से प्राप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाना।

(७) वांछित योग्यताओं को, विशेषकर साक्षरता एवं गणित में, स्पष्ट करने के लिए आवश्यक प्रयोग करना। ये योग्यताएं सभी क्षेत्रीय कार्यक्रमों का अंग होंगी।

(८) राज्यों में विविधतायुक्त एवं आवश्यकता पर आधारित शिक्षाएं। अधिगम सामग्री तैयार करने की क्षमता का विकास करना, साथ ही कार्यक्रम प्रारम्भ करने के लिए उन्हें उक्त सामग्री उपलब्ध कराना।

(९) प्रशिक्षण-विधियों का विकास करना, प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ करने के लिए मैनुअल तैयार करना तथा विभिन्न स्तरों पर कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देना।

(१०) मूल्यांकन तथा मानिटरिंग एवं आवश्यक प्रायोगिक शोध आधार के लिए संतोषजनक व्यवस्था करना।

तैयारी का काम १९७८-७९ के अंत तक पूरा नहीं हो पाएगा। रा० प्रौ० शि० का के प्रारम्भ करने के बाद कम से कम एक वर्ष तक लगभग उन सब बिन्दुओं पर कार्य करना होगा जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। वास्तव में एक अर्थ में तैयारी का काम जो सहवर्ती मूल्यांकन पर

आधारित होगा, परवर्ती वर्षों में भी राष्ट्रीय कार्यक्रम के अंत तक चलेगा।

पूर्ववर्ती वर्ष की उपलब्धियों के स्तर के आधार पर वार्षिक लक्ष्य निर्धारित किए जाएँगे। तैयारी के कामों में लक्ष्य की अनुमानित उपलब्धियाँ भी सम्मिलित होंगी। कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि प्रथम दो वर्षों में किस प्रकार कार्य प्रारम्भ किया जाता है और हर प्रयास इस बात के लिए किया जाएगा कि १९८३-८४ के अंत तक १५-३५ आयु वर्ग की पूरी जन संख्या साक्षर हो जाय। लक्ष्यों का वर्तमान प्रक्षेपण इस प्रकार है —

वर्ष	वार्षिक लक्ष्य लाख में	पूर्वापर लक्ष्य लाख में
१९७८-७९ (तैयारी का वर्ष)	१ ५	१ ५
१९७९ ८०	४.५	६ ०
१९८०-८१	६.०	१५ ०
१९८१-८२	१८ ०	३३ ०
१९८२-८३	३२ ०	६५ ०
१९८३-८४	३५-०	१०० ०

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ये प्रभावी लक्ष्य हैं, और अत्यन्त दक्षता से कार्यक्रम गठित करने पर भी कुछ की क्षति हो सकती है और इस बात को ध्यान में रखकर कार्यक्रम को गठित करना होगा।

उद्देश्य यह है कि १९८३-८४ तक ३५० लाख लोगों के लिए प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रमों को गठित करने की क्षमता का निर्माण हो जाए। तब यह आवश्यक होगा कि कार्यक्रमों में विविधता लाई जाय—उद्देश्य यह भी होगा कि एक ऐसे ज्ञानार्जन के लिए उत्सुक समाज की स्थापना की जाए जिसमें आजीवन शिक्षा जीवन का एक मनोवांछित आदर्श होगी।

अनुकूल वातावरण बनाना

एक्सपेरिमेंटल वर्ल्ड लिटरेसी प्रोग्राम के परिणाम तथा उन देशों के अनुभव, जहाँ निरक्षरता दूर करने के कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया गया है यह बताते हैं कि इतने बड़े कार्यक्रम को चलाने के लिए एक अनुकूल वातावरण बनाने के लिए व्यवस्थित प्रयास अवश्य किया जाना चाहिए। कदाचित् चीन को छोड़कर किसी अन्य देश के सामने साक्षरता की समस्या इस पैमाने की नहीं रही जैसी हमारे सामने है। साथ ही शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ ज्ञानार्जन और ज्ञान के प्रति इतना आदर हो अथवा इतने वृहत् साधन हों जितने हम लोगों के पास हैं। वास्तव में रा प्रौ शि का में लगे हुए सभी लोगों को प्रेरित करने की पूर्वावश्यकता यह है कि उनमें आशा और विश्वास की भावना उत्पन्न की जाए। प्रधानमंत्री तथा शिक्षामंत्री ने यह घोषणा की है कि प्रौढ़-शिक्षा को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जायगी। संसद में लगभग सभी राजनीतिक दलों के नेताओं ने कार्यक्रम का पूरे हृदय से स्वागत किया है और समर्थन का आश्वासन दिया है। यह आशा की जाती है कि जीवन के अन्य क्षेत्रों में काम करने वाले नेता भी जैसे ट्रेड यूनियन, व्यापार और उद्योग विद्यार्थी तथा नवयुवक—इस समर्थन का अनुसरण करेंगे। इस संदर्भ में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका फिल्मों, टी वी, रेडियो, समाचार-पत्र, प्रचार-पोस्टरों इत्यादि के द्वारा अदा की जा सकती है। इसके लिए कुशल एवं समन्वित प्रयास की आवश्यकता होगी जिसमें सरकारी और गैरसरकारी माध्यम एकजुट होकर कार्यक्रम के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए काम करेंगे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विधियों—विचार सम्मेलनों एवं विचार-गोष्ठियों का आयोजन, स्कूलों और कालेजों में विश्व साक्षरता-दिवस मनाना आदि का भी आश्रय लिया जा सकता है। उन विभिन्न विधियों का, जिनके द्वारा एक वातावरण बनाया जा सकता है, विस्तारपूर्वक अध्ययन करना होगा और यथाशीघ्र उसके अनुरूप आवश्यक कदम उठाने होंगे।

दृष्टिकोण

अपने देश के सामने गरीबी और निरक्षरता दो बुनियादी समस्याएँ हैं। इनमें से एक बहुत बड़ी आबादी को अभाव और अधोगति की स्थिति में जीने के लिए विवश करती है और दूसरी विकास के दरवाज़ों को खोलने में बाधा पहुँचाती है और गरीबों में अपनी स्थिति पर काब

पाने की योग्यता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। वस्तुत गरीबी और निरक्षरता एक ही विषम समस्या के दो पहलू हैं और बिना एक के समाधान के लिए तत्काल संघर्ष चलाए दूसरे का समाधान निकालने के लिए संघर्ष करना निश्चय ही हम पथच्युत करेगा और निराशा का कारण होगा। इस कारण रा० प्रौ० शि० का० को सामाजिक आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उस बुनियादी परिवर्तन लाने के साधन के रूप में सोचा चाहिए—बुनियादी परिवर्तन उस स्थिति में जिसमें गरीब विकास कार्यों के किनारे निष्क्रिय दर्शक के रूप में खड़े रहते हैं। इन्हें किनारे से खींचकर विकास कार्यों के केन्द्र में सक्रिय भागीदारों के रूप में लाना है। सीखने की प्रक्रिया में साक्षरता पर बल है किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है इसमें इस बात के महत्व पर भी बल है जिससे गरीबों और निरक्षरों की काम क्षमता का उन्नयन हो और वे अपनी दुर्दशा की अधिकाधिक चेतना हो।

परम्परा के अनुसार सीमित तथा व्यापक दृष्टिकोण में भेद माना जाता है। कार्यक्रम की गुणात्मकता तथा व्यापकता पर यह भेद आधारित है। रा० प्रौ० शि० का० एक ऐसा व्यापक कार्यक्रम है जिसमें एक सीमित कार्यक्रम के नियोजन और क्रियान्वयन के गुण भी सन्निहित हैं। वास्तव में सीखने वालों की आवश्यकताओं से कार्यक्रम को सम्बद्ध करते हुए रा० प्रौ० शि० का० परम्परागत सीमित दृष्टिकोण से अधिक आगे बढ़ जाता है। साथ ही यह मानकर चलना होगा कि इतने बड़े पैमाने का काम तभी हो सकता है जब रा० प्रौ० शि० का० को जन आन्दोलन के रूप में देखा जाए।

प्रौढ़ शिक्षा नियोजन में आवश्यक प्रश्नों में से एक सीखने वालों के सम्प्रेरण से सम्बन्धित है। यद्यपि प्रारम्भ में वे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए उत्प्रेरित किए जा सकते हैं तदपि उनकी कार्यक्रम में रुचि बहुत दिनों तक नहीं रह पाती और वे कार्यक्रम से अलग हो जाते हैं। महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों एवं जन जातियों के सम्बन्ध में यह समस्या विशेष रूप से गम्भीर है। यह सत्य है कि यदि कार्यक्रम में संगठनात्मक नम्यता एवं विषय वस्तु तथा विधियों की सीखने वालों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं से सम्बद्धता है तो सीखने वालों के निरंतर सहयोग के हेतु पूर्वानुयायी की पूर्ति हो जाएगी। इसके अतिरिक्त जनगत कार्यक्रम के संगठन के लिए अनुकूल वातावरण की रचना भी प्रभावी प्रेरणा का स्रोत हो सकती है। यह सब फिर भी कदाचित् पर्याप्त न हो। अतः इस विषय पर और विस्तार से सोचने की आवश्यकता है।

एक समय में बंधे हुए प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम से संगठित शिक्षा की व्यवस्था से वंचित एक बड़ी प्रौढ़ आबादी की समस्या हल नहीं हो जाएगी। अतः आजीवन शिक्षा के परिप्रेक्ष्य और उसके अनुरूप प्रबन्धात्मक प्राविधान को राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का नियोजन एवं उसकी तैयारी करते समय दृष्टि में रखना होगा। इस दृष्टि से रा० प्रौ० शि० का० पांच वर्षों के बाद समाप्त नहीं हो जायगा। अतः रा० प्रौ० शि० का० के प्रारम्भ से ही व्यवस्थित अनुसरणात्मक कार्यक्रम चलाने होंगे। इसके अन्तर्गत पुस्तकों के व्यापक उत्पादन तथा प्रसार और संवाद की प्रक्रिया में नवसाक्षरों को सम्मिलित किया जाएगा। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को विकासात्मक कार्यों के साथ साथ चलाना वांछनीय होगा।

यह महत्वपूर्ण है कि प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन को ऐसी नियोजन कार्यनीति से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध किया जाए जो सघन क्षेत्रीय नियोजन और रोजगारोन्मुख विकास कार्यों द्वारा गरीबी को दूर करने पर बल दे।

प्रत्येक राज्य विभिन्न अभिकरणों को दी जाने वाली तुलनात्मक प्राथमिकता को निश्चित करेगा। मोटे तौर से यह संकेत किया जा सकता है कि स्थानीय स्तर के सावधान नियोजन की आवश्यकताओं के कारण स्वैच्छिक अभिकरणों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। स्वैच्छिक अभिकरणों के अतिरिक्त कार्यक्रम को कार्यरूप में परिणत करने के लिए अन्य अभिकरणों को भी निश्चित करना होगा। इनमें नेहरू युवक केन्द्र विश्वविद्यालय विभिन्न प्रकार की रोजगार देने वाली संस्थाएं आदि सम्मिलित हैं। सरकार का काम इन विभिन्न अभिकरणों में समन्वय स्थापित करना और व्यवधानों को दूर करना होगा। देश के बहुत से भागों में सरकार को लगभग पूरी जिम्मेदारी लेनी पड़ेगी। जहाँ भी ऐसा करना आवश्यक हो वहाँ प्रारम्भ में

कुछ चुने हुए जनपद और चुने हुए जनपद के कुछ कम्पेक्ट विकास खंड लिये जाएंगे। उद्देश्य यह होगा कि प्रयास को एक सुपरिभाषित क्षेत्र में केंद्रित किया जाए और तब कार्यक्रम का प्रसार किया जाए।

व्यवहार में विभिन्न अभिकरण अपने ऐसे कार्यक्रम चलाएंगे जो उन्हें अत्यन्त आवश्यकता सम्बद्ध और व्यावहारिक प्रतीत होंगे। सभी दशाओं में, यह समझ लेना आवश्यक है कि कार्यक्रम नीति वक्तव्य की रूपरेखा के अन्तर्गत तैयार किये जाएंगे। आयोजित होने वाले विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की दिशाएं निम्नलिखित होंगी —

—निश्चित अनुसरण के साथ साक्षरता।

—परम्परागत कार्यपरक साक्षरता।

—किसी प्रमुख विकास कार्य क्रम में सहायक कार्यपरक साक्षरता।

—सामाजिक एवं क्रियाशील टोलियों की साक्षरता।

—गरीबों को संगठित करने और उन्हें चेतनायुक्त एवं जागरूक करने के लिए साक्षरता।

संसाधनों का विकास

नीति-वक्तव्य में जो सकल्पनात्मक स्थिति स्पष्ट की गई है उसका अर्थ रा० प्रौ० शि० का० के लिए एक संसाधन आधार को बनाना और उसका विकास करना है। संसाधन-आधार में बहुविध और आवश्यकता पर आधारित सामग्री की तैयारी सम्मिलित होनी चाहिए जिससे विभिन्न स्तर के कार्यकर्त्ता सामग्री की सहायता से अपनी भूमिका अदा कर सकें और कार्यक्रम को गतिशीलता प्रदान करने के लिए मूल्यांकन एवं शोध की व्यवस्था का समावेश किया जा सके। राष्ट्रीय स्तर पर प्रौढ़-शिक्षा-निदेशालय तथा केन्द्रीय सरकार के विभिन्न अभिकरण एवं स्वैच्छिक अभिकरण राष्ट्रीय संसाधन ग्रुप के रूप में कार्य करेंगे। संसाधन विकास में महत्वपूर्ण स्थान राज्य संसाधन केन्द्र (रासके) का है जो, राष्ट्रीय संसाधन-ग्रुप के सहयोग में और कार्य क्षेत्र से निरंतर सम्पर्क रखते हुए संसाधन-विकास का केन्द्र स्थल बन सकता है। रासके का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वे संसाधन-आधार का जनपद या प्रोजेक्ट स्तर पर विकेन्द्रित करा सकें। वे अन्य संस्थाओं से अलग रहकर कार्य नहीं करेंगे, प्रत्युत ऐसी विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों को जो संसाधन-विकास में योगदान कर सकते हैं, सहयुक्त करने में उद्देश्य से समन्वयात्मक भूमिका अदा करेंगे। रासके की उपयोगिता उनके द्वारा विकसित प्रोफेशनल तथा प्राविधिक क्षमताओं पर निर्भर करेगी तथा इस बात पर भी निर्भर करेगी कि उसमें अपने सेवित क्षेत्रों में संस्थाओं तथा व्यक्तियों के संसाधनों में समन्वय स्थापित करने की कितनी क्षमता है और कितना समर्थन उन्हें सबंधित राज्य सरकारों से मिला है। जो कुछ भी हो, कार्यक्रम के लिए संसाधनों का सम्बल मुख्यतः जनपद/प्रोजेक्ट स्तर का दायित्व है। संसाधन विकास का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण होने के कारण केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों तथा अन्य अभिकरणों द्वारा सहज ही सभी आवश्यक आर्थिक तथा प्रशासकीय समर्थन उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

संसाधन विकास के कार्य में जनता का सक्रिय सहयोग तथा निरक्षर लोगों का सहयोग जिनके लिए यह कार्यक्रम मुख्यतः चलाया जाएगा, संसाधन प्रचार की विश्वसनीयता के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यही बात नीति-वक्तव्य की सकल्पना में निहित है और उसमें स्पष्ट भी की गई है। इस प्रकार के सहयोग के लिए विविध उपाय करने होंगे। इनमें कुछ निम्नलिखित हैं :—

—सीखने वालों की आवश्यकताओं को समझने के लिए सुनियोजित सर्वेक्षण।

—पोटेंशल सीखने वालों की सहज प्रतिक्रियाएं प्राप्तकर विधियों तथा सामग्री की वास्तविक जांच एवं परीक्षण।

—ऐसे स्थानों पर जहाँ राज्य जनपद संसाधन केन्द्र पर काम करने वाले कार्यकर्त्ता ग्रामीणों के साथ सोचते हैं और काम करते हैं, बहुधा सम्मेलनों और शिविरों का आयोजन करना।

—सक्रिय ग्रामीण नवयुवकों का पता लगाना और उन्हें कार्यक्रम की ओर उन्मुख करना जिससे उनके माध्यम से पोटेंशल सीखने वालों की व्यक्त और अव्यक्त समस्याएं सामने आती रहें।

—ऐसे व्यक्तियों का व्यवस्थित सहयोग जो ग्रामीणों के साथ रहते हैं और काम करते हैं।

पोर्टेबल सीखने वालों के सहयोग के अतिरिक्त यह आवश्यक है कि संसाधन केन्द्र चाहे राज्य स्तर स्तर का हो या जनपद स्तर का, अपने काम में सहयोग और उसकी समीक्षा निरीक्षकों तथा प्रौढ़ शिक्षा के शिक्षकों से भी प्राप्त करें। इसको व्यवस्थित ढंग से क्रियान्वित करने के लिए बिना जल्दी में फँसे, समुचित प्रबन्ध करना होगा। आवश्यक बात स्मरण रखने की यह है कि रा० प्रौ० शि० का० सीखने वालों के जीवन की आवश्यकताओं से गतिशील रूप से सम्बद्ध हो, और इसके लिए यह आवश्यक है कि विशेषज्ञों तथा प्रशासकों और सीखने वालों में उभयपक्षीय सम्पर्क स्थापित किया जाए।

संसाधन के विभिन्न अंग निम्नलिखित हो सकते हैं —

शिक्षण ज्ञानार्जन सामग्री

इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक कार्य सीखने वालों की आवश्यकताओं का पता लगाना होगा। विस्तृत पाठ्यक्रम जिसमें अन्य बातों के साथ साथ प्रत्याशित अधिगम परिणामों का भी उल्लेख होगा, सुनिश्चित सीखन की आवश्यकताओं के आधार पर निरूपित करना होगा। आवश्यक परीक्षण के पश्चात, पाठ्यक्रम के आधार पर, शिक्षण सहायक सामग्री तथा सीखने की सामग्री बड़ी सावधानता से तैयार करनी होगी। नीति वक्तव्य में बोलचाल की भाषा में साक्षरता कौशल प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। इस बात को बिना अनुचित सीमा तक ले जाते हुए, यह सम्भव होगा कि सीखने की प्रक्रिया को बोलचाल की भाषा में संगठित किया जाए और जहाँ आवश्यक हो सीखने वालों के लिए ऐसे सेतु बनाए जायें जिससे वे क्षेत्रीय भाषा में क्षमता प्राप्त कर सकें। अंतरिम रूप से राज्य संसाधन केन्द्र क्षेत्रीय या उपक्षेत्रीय मानक भाषाओं, बोलियों में सामग्री तैयार करेंगे क्योंकि आगामी एक वर्ष के भीतर शिक्षण ज्ञानार्जन सामग्री विकसित कर सकना सम्भव न होगा। दूसरे या तीसरे वर्ष तक यह सम्भव हो सकेगा कि जनपद प्रोजेक्ट स्तर पर भी सामग्री तैयार की जा सके।

प्रशिक्षण

जिन वर्गों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी, वे निम्नलिखित हैं

—राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के मुख्य कार्यकर्ता।

—विशेष क्षेत्रों जैसे पाठ्यक्रम रचना, शिक्षण ज्ञानार्जन-सामग्री को तैयार करना, प्रशिक्षण, मूल्यांकन इत्यादि के लिए प्रोफेशनल एवं विशेषज्ञ।

—जिला प्रोजेक्ट तथा विकास खंड स्तर के कार्यकर्ता।

—क्षेत्रीय निरीक्षक।

—प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र के शिक्षक।

प्रौढ़ शिक्षा का निदेशालय, यूनेस्को तथा अन्य राष्ट्रीय अभिकरणों की सहायता से विधियों तथा प्रशिक्षण का मैनुअल तैयार कर रहा है। राष्ट्रीय, राज्य तथा जनपद स्तर के मुख्य कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है। राज्य संसाधन-केन्द्रों को प्रोजेक्ट तथा ब्लाक स्तर के कार्यकर्ताओं एवं निरीक्षकों के प्रशिक्षण का समन्वय करना चाहिए तथा प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्रों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के कार्यक्रम की जिम्मेदारी क्षेत्रीय स्तर पर कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जिम्मेदार अभिकरणों की होनी चाहिए। प्रशिक्षण की अवधि, एकालिक तथा आवर्तक प्रशिक्षण पर तुलनात्मक बल, प्रशिक्षण विधियों इत्यादि के सम्बन्ध में विभिन्न विकल्प खोजने होंगे। जब तक अनिवार्य न हो, तब तक नयी प्रशिक्षण संस्थाएँ न खोली जाएँ। वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं को रा० प्रौ० शि० का० में लगे हुए विभिन्न वर्ग के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने की क्षमता का विकास करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इस संदर्भ में विश्वविद्यालय तथा अन्य उच्चशिक्षा की संस्थाएँ महत्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं। सामान्यतः जो अभिकरण प्रशिक्षण के लिए जिम्मेदार हैं उन्हें ऐसी विभिन्न संस्थाओं तथा व्यक्तियों से, जो संतोषजनक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के संगठन में सहयोग दे सकते हैं सहायता प्राप्त करने की दृष्टि से समन्वयकर्ता के रूप में काम करना चाहिए।

मानिटरिंग, मूल्यांकन तथा अप्लाइड रिसर्च

जन शिक्षा के कार्यक्रम में अनिवार्य रूप से बहुधा क्षति एवं गलत सूचनाओं की आशंका रहती है। इस संदर्भ में व्यवस्थित मानिटरिंग तथा मूल्यांकन के महत्व को कम नहीं किया जा सकता। इन्हें पूरे कार्यक्रम में व्याप्त करना चाहिए और समय समय पर आवश्यक कार्यक्रम में संशोधन करने की दृष्टि से ये पुष्टपोषक हो सकते हैं। अन्तर्गठित, अप्लाइड तथा समन्वित शोधकार्य की व्यवस्था भी महत्वपूर्ण है जिससे रा० प्रौ० शि० का० के अनुभवों का व्यवस्थित रूप से विश्लेषण हो सके और भविष्य के लिए मार्ग निर्देशन मिल सके। केन्द्र को तथा राज्य की सरकारें व्यवस्थित मानिटरिंग में स्वभावतः रुचि रखती हैं। विश्वविद्यालय तथा उच्चशिक्षा की संस्थाएँ और संस्थाएँ को मूल्यांकन तथा अप्लाइड शोधकार्य में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी। मानिटरिंग तथा मूल्यांकन-तंत्र जनपद तथा प्रोजेक्ट स्तर पर भी गठित होने चाहिए क्योंकि मुख्यतः वहीं पर कार्यक्रम में संशोधन के हेतु पुष्ट-पोषण का प्रयोग किया जाएगा।

'शिक्षण'-अभिकरण

नीति वक्तव्य में उन विभिन्न अभिकरणों का उल्लेख है जिनका प्रयोग शिक्षण व्यवस्था में किया जाएगा और जो रा०प्रौ०शि०का० में सरकार के साथ जिम्मेदारी बटाएँगे। शिक्षण की जिम्मेदारी देने में प्रभावी बात उन सम्बन्धित व्यक्तियों की उपयुक्तता होनी चाहिए जिनमें कार्यक्रम गठित करने में सकल्पनात्मक परख हो और कार्यक्रम के प्रति आस्था एवं प्रतिबद्धता का भाव हो। विभिन्न प्रकार के लोग जिन्हें शिक्षण की जिम्मेदारी दी जा सकती है निम्नलिखित होंगे

(अ) अध्यापक

अध्यापकों के कार्य सम्बन्धी अनुभवों को ध्यान में रखते हुए और उनकी बहुत सी स्पष्ट सीमाओं के बावजूद, विशेष रूप से औपचारिक व्यवस्था के अन्तर्गत एकाधिकार-संग्र एवं बढ़ताए, अध्यापक ही रा० प्रौ० शि० का० के शिक्षण-प्रबन्ध की व्यवस्था करने वाले मुख्य अभिकरण होंगे। यद्यपि अन्ततोगत्वा प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्र-कार्य शिक्षक के अनिवार्य दायित्वों में रखना होगा, इस समय यह पूर्णतया स्वैच्छिक ही रहेगा। उन लोगों में भी, जो इस जिम्मेदारी को स्वेच्छा से लेना चाहते हैं, ऐसे लोगों का चुनाव करना पड़ेगा जिनसे वास्तव में इस कार्यक्रम के प्रति निष्ठावान् होने की आशा की जा सकती है। यह उचित होगा कि इस कार्य के लिए ५० रु० प्रति मास दिया जाए। स्कूल के अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करने में सुविधा हो सकती है, यदि उनके प्रोफेशनल संगठनों का समर्थन प्राप्त किया जाए।

(ब) विद्यार्थी

चाहे राष्ट्रीय सेवा योजना के अंग के रूप में जिसे उचित रूप से संशोधित कर लिया जाय, और चाहे अन्य किसी उपयुक्त विधि से, उच्चशिक्षा के विद्यार्थी प्रौढ़-शिक्षा केन्द्रों के गठन में बहुमूल्य अभिकरण बन सकते हैं। इसके लिए इस स्तर की संस्थाओं के अध्यापकों को भी लगाना होगा। शैक्षिक सत्र की वर्तमान कार्य विधियों क्रेडिट व्यवस्था, प्रमाण-पत्र आदि के बारे में पुनः सोचना आवश्यक होगा। इस कार्यक्रम में विद्यार्थियों का सहयोग स्वैच्छिक होना चाहिए किन्तु विश्वविद्यालय के मार्ग दर्शकों को एक वातावरण बनाना होगा जिसमें विद्यार्थियों को इस कार्य से संतोष मिल सके और वे इसे उपादेय समझें।

(स) ग्रामीण नवयुवक

बहुत से बेरोजगार या अल्प रोजगार में लगे ग्रामीण नवयुवक हैं जिन्हें थोड़ी बहुत शिक्षा भी मिली है। उन्हें अपने शैक्षिक स्तर के आवश्यक उन्नयन हेतु सावधानता से नियोजित प्रशिक्षण देकर तथा ओरियंटेशन देकर इस जिम्मेदारी में लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गाँव के नवयुवकों को भी जो किसी प्रकार के रोजगार में नहीं लगे हैं और जिन्होंने कुछ शिक्षा प्राप्त की है, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के संगठन कर्ता के रूप में कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। स्त्रियों और जन जातियों में कार्य की बड़ी सुविधा हो सकती है यदि उन्हीं में से लोगों को लेकर उन्हीं को प्रौढ़ शिक्षा-

केन्द्र चलाने का नेतृत्व दिया जाय। ऐसे लोग अपने काम-धंधे में लगे रह सकते हैं और उन्हें मासिक वजीफा दिया जा सकता है। बेरोजगार या अल्परोजगार वाले व नवयुवक भी, जो इस काम को पूर्णकालिक आधार पर लेते हैं ६ से १४ आयुवर्ग के बच्चों का स्कूल बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के चलाने की जिम्मेदारी ले सकते हैं। इससे न केवल प्रौढ़ शिक्षा व शिक्षकों का एक अत्यंत उपयुक्त वर्ग मिल जाएगा, प्रत्युत इससे ग्रामीण क्षेत्र में एक नये प्रकार के नेतृत्व का सृजन होगा और साथ ही ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने में भी सहायता मिलेगी।

(द) भूतपूर्व अथवा सेवा निवृत्त सैनिक

इस वर्ग के लोग ग्रामीण तथा नगर-क्षेत्रों दोनों ही में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। सेवानिवृत्त कर्मचारियों को अपनी आमदनी बढ़ाने की आवश्यकता होती है, समान रूप से यह भी महत्वपूर्ण है कि उन्हें अपने को व्यस्त रखने के लिए काम की भी आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि नीति वक्तव्य में वर्णित सकल्पनाओं के अनुरूप कार्यक्रम चलाने की उनकी क्षमता के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट सीमाएं हैं तथापि उन्हें अपने अनुभवों की सुविधा है। साथ ही इस बात का भी लाभ मिल सकता है कि समाज में वे सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं।

(ई) क्षेत्रीय स्तर के सरकारी तथा अन्य कार्य क्रम

यह सम्भव है कि ऐसे कार्यकर्ता जैसे ग्राम स्वास्थ्य कार्यकर्ता, ग्राम-सेविका बाल सेविका, ग्रामसेवक, सहकारी समितियों ग्राम पचायतों के कार्यकर्ता आदि।

(फ) स्वैच्छिक सामाजिक कार्यकर्ता

विशेषरूप से नगर क्षेत्रों में काफी संख्या ऐसे लोगों की है जो सामाजिक विकास में अपना योगदान करने की इच्छा रखते हैं। ऐसे लोगों की शक्ति का उपयोग किया जाए और उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए विशेष व्यवस्था की जाए।

क्रियान्वयन के अभिकरण (एजेंसीज)

रा प्रौ. शि का. की जिम्मेदारी निभाने के लिए सरकार को स्वभावतः पहल होना पड़ेगा। समीक्षा के आधार पर ऐसे कार्यक्रमों को जो सरकारी अभिकरणों द्वारा चलाए जा रहे हैं नये सिरे से बनाना पड़ेगा। यह उपयोगी प्रतीत होता है कि बजाय देश में सभी ब्लाकों में सभी भागों में कार्यक्रम को इसके रूप में फैलाने के प्रारम्भ में कम्पैक्ट क्षेत्रों में प्रयास को केन्द्रित रखा जाय। शिक्षा मन्त्रालय के कार्यक्रमों और उसके विभाग को पर्याप्त रूप से बढ़ाना होगा जिससे विभिन्न अभिकरणों का सहयोग व्यापक रूप से मिल सके। जो कुछ भी हो, ऐसा जन-आन्दोलन जो इतनी बड़ी आबादी को प्रभावित करेगा, एक मन्त्रालय तथा विभाग द्वारा चलाया नहीं जा सकता दूसरे मन्त्रालयों एवं विभागों को सम्मिलित करने का हर प्रयास होना चाहिए जिससे वे सब प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के चलाने की जिम्मेदारी में भाग ले सकें। दूसरे मन्त्रालयों, विभागों को इस प्रकार के कार्यक्रमों के जिनमें कार्यपरक साक्षरता एक अंग हो, चलाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। साथ ही वे सब शिक्षा-अधिकारियों द्वारा चलाए गए ज्ञानार्जन कार्यक्रम में भी योगदान करें। इन मन्त्रालयों विभागों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे अपने बजट प्राविधान की सीमाओं में कुछ धनराशि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए अलग से निर्धारित करें। चाहे यह कार्यक्रम केन्द्रीय योजना का अंग हो और चाहे किसी अन्य अभिकरण द्वारा सचालित हो, राज्य-सरकार की सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। सभी व्यावहारिक दृष्टियों से यह कहा जा सकता है कि कार्यक्रम का क्रियान्वयन पूरे तौर से राज्य-सरकारों की जिम्मेदारी होगी। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों को उन प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का जो वे विगत वर्षों में चला रही थी, पुनर्मूल्यांकन करना होगा और उन्हें समुचित और सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाने होंगे। यद्यपि समन्वय तथा क्रियान्वयन की मुख्य जिम्मेदारी राज्य-सरकारों की होगी, केन्द्रीय सरकार न केवल नीति-निर्धारण और सामान्य मार्ग-दर्शन-सूत्रों के निगत करने से सम्बन्धित होगी, बल्कि यह भी देखेगी कि राज्य सरकारों द्वारा नीति वक्तव्य के अनुसार कार्यक्रम क्रियान्वित किया जा रहा है।

प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम जो संचालन एवं विषय वस्तु में नम्यता एवं विविधता को महत्व देता है, स्वैच्छिक उपकरणों की सहायता से सर्वोत्तम रीति से क्रियान्वित हो सकता है। इस समय स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग कुछ सीमित-सा है और सर्वप्रथम इस समय प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में काम करनेवाले स्वैच्छिक अभिकरणों अथवा ऐसे अभिकरणों का, जिनमें काम करने की क्षमता है सहयोग प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित प्रयास करना होगा। दूसरे, इस बात का भी प्रयास करना होगा कि नये अभिकरणों के उद्भव के लिए परिस्थितियां सरल न हों, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ ऐसे अभिकरण कम हैं। स्वैच्छिक अभिकरणों की सहयोगी भूमिका को मान्यता देना आवश्यक है और यह वांछनीय होगा कि निर्णय लेने के हर स्तर पर उनसे परामर्श किया जाए, विशेष रूप से उन मामलों में जो इन अभिकरणों के कार्य को प्रभावित कर सकते हों। साथ ही अनुदान देने की विधियों का पुनरावलोकन करना होगा।

रा० प्रौढ़ शिक्षा का० एक जन-आन्दोलन का रूप लेता है या नहीं यह इस बात पर निर्भर करेगा कि किस सीमा तक नवयुवकों तथा विद्यार्थियों को इस कार्यक्रम के प्रति निष्ठावान् बनने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। तुलनात्मक दृष्टि से यह कदाचित् सरल होगा कि नेहरू युवककेन्द्रों की कार्य-पद्धति का पुनरावलोकन किया जाय और उनके प्रयास को प्रौढ़ शिक्षा पर केन्द्रित किया जाय। इसी प्रकार ऐसे नवयुवक और नवयुवतियां जिन्होंने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है और जिनके मन में इस कार्यक्रम में भाग लेने की भावना है इस प्रयास में स्वाभाविक सहयोगी होंगे। विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा की संस्थाओं के विद्यार्थियों का वर्ग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बहुत लम्बे समय से सैद्धान्तिक रूप में विश्वविद्यालयों ने समाज से सम्पर्क रखने की वांछनीयता पर बल दिया है राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-कार्यक्रम विश्वविद्यालयों तथा कालेजों के सामने एक चुनौती की स्थिति प्रस्तुत कर रहा है जिसे स्वीकार कर वे अपना अलगाव समाप्त कर सकते हैं और जन शिक्षा की मुख्य धारा में प्रवेश कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रौढ़-शिक्षा को केवल एक विभाग का विषय न समझा जाय, प्रत्युत इसमें पूरे संकाय के सदस्य, जिसमें शिक्षक भी भी निश्चय ही सम्मिलित हैं, नये ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि विश्वविद्यालय इस प्रकार के बड़े योगदान की तैयारी कर रहे हैं और तदनुसार अपनी प्राथमिकताओं में भी आवश्यक पुनर्गठन कर रहे हैं।

रोजगार देने वालों को चाहे प्राइवेट सेक्टर के हों या पब्लिक, अपने कार्यकर्त्ताओं में प्रौढ़शिक्षा प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी चाहिए। कालान्तर में यह उचित होगा कि रोजगार देने वालों के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को चलाना अनिवार्य कर दिया जाय। इस बीच व्यापार तथा उद्योग एवं अन्य रोजगार देने वाले अभिकरणों के माध्यम से प्रभावी प्रारम्भ किया जा सकता है। पब्लिक सेक्टर तथा निर्माण के कार्यों में सरकार को इसके लिए अलग धनराशि का प्राविधान कर नेतृत्व प्रदान करना चाहिए। परिणामस्वरूप काम के घण्टों में कमी और कुछ अधिक व्यय का पर्याप्त पुरस्कार कार्यकर्त्ताओं के काम में गुणात्मक सुधार के रूप में तथा विकास-कार्यों में उनके सक्रिय सहभाग के रूप में मिलेगा। सगठित सेक्टर में काम करने वालों की शिक्षा सुविधापूर्वक दी जा सकती है यदि कार्यक्रमों में ट्रेड यूनियनें सक्रिय रूप से सम्मिलित की जा सकें।

स्थानीय विकास जैसे नगरपालिकाएँ तथा पंचायती-राज संस्थाएँ औपचारिक शिक्षा तथा सामाजिक शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान करती रही हैं। इन अभिकरणों को जो नागरिक और विकास कार्यों से सम्बन्धित हैं, यह सुविधा है कि उनका जनता से सम्पर्क है—उनकी दैनिक समस्याओं से तथा उनकी आवश्यकताओं से। अतः उनसे यह आशा करनी चाहिए कि वे रा० प्रौ० शि० का० के क्रियान्वयन में सहयोग दें।

नियोजन प्रशासन एवं निरीक्षण

यह पहला अवसर है जब सरकार ने निरक्षर आबादी के इतने बड़े भाग के लिए एक नियोजित प्रौढ़-शिक्षा-कार्यक्रम चलाने का निश्चय किया है। इतने बड़े कार्यक्रम के नियोजन तथा उसके क्रियान्वयन के लिए बहुविध लोगों का समर्थन प्राप्त करना होगा जैसे सामाजिक कार्यकर्त्ता, परिप्रेक्ष्य नियोजन विशेषज्ञ, प्रबन्ध विशेषज्ञ, सिस्टम्स विश्लेषक, शिक्षा विशेषज्ञों की अन्तर्विषयक टोलियाँ

तथा प्रौढ़ शिक्षा में शिक्षक। नियोजन का व्यायाम न केवल केन्द्र और राज्य की सरकारों द्वारा होना है, बल्कि स्थानीय निकायों स्वैच्छिक अभिकरणों, विश्वविद्यालयों, शिक्षकों के संगठनों द्वारा आदि भी। सरकार को विभिन्न व्यक्तियों संस्थाओं और संगठनों के सहयोग के लिए नेतृत्व प्रदान करने वाली भूमिका अदा करनी है। यह भी आवश्यक है कि राज्य तथा जनपद स्तर पर समुचित अभिकरण समन्वय और उत्प्रेरण की दृष्टि से स्थापित किये जाएं। राज्य की सरकारें राज्य प्रौढ़ शिक्षा परिषदों की स्थापना की सम्भावना पर विचार कर सकती हैं और इसी प्रकार की परिषदें जनपद स्तर पर स्थापित की जा सकती हैं।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए केन्द्र, राज्य तथा क्षेत्रीय स्तर के प्रशासकीय ढांचे नितांत अपर्याप्त हैं। ऐसे प्रशासकीय ढांचों का जो इस कार्यक्रम के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होंगे संकेत देने के लिए गम्भीरतापूर्वक अध्ययन आरम्भ कर दिया गया है इस समय केवल मोटी बातें यहाँ दी जा रही हैं।

केन्द्र सरकार

प्रौढ़ शिक्षा विभाग को दी गई जिम्मेदारियों को देखते हुए मंत्रालय की व्यवस्था उचित रूप से सुदृढ़ की जाएगी। प्रौढ़ शिक्षा के निदेशालय को अपने कार्य कलाप का पर्याप्त विस्तार करना होगा और इस दृष्टि से कि वह प्रत्याशित भूमिका अदा कर सके उसे आवश्यक सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए।

राज्य-स्तर

ऐसे राज्य स्तरीय प्रशासकीय तथा नियोजन मशीनरी को स्थापित करने के लिए तुरंत कदम उठाने की आवश्यकता है जिसमें एक स्वतन्त्र निदेशक या अतिरिक्त निदेशक हो जो शिक्षा निदेशक के अधीन कार्य करे। राज्य-स्तरीय संगठन के लिए आवश्यक सहायक स्टाफ भी देना होगा। प्रत्येक राज्य सरकार राज्य सचिवालय के शिक्षा विभाग में प्रौढ़ शिक्षा के कार्य को करने के लिए एक पृथक डिविजन की स्थापना पर विचार करे तो अच्छा होगा।

जनपद तथा ब्लाक स्तर

कार्यक्रम के लिए चुने गए जनपदों में सहायक स्टाफ के साथ एक अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी की आवश्यकता होगी। प्रशासन और निरीक्षण की दृष्टि से तथा आवश्यक टेकनिकल सहायता की दृष्टि से भी आवश्यकता होगी। प्रत्येक प्रोजेक्ट के लिए स्टाफ की पर्याप्तता पर बल देना होगा।

स्वैच्छिक अभिकरण

राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय स्वैच्छिक अभिकरणों, राज्य संसाधन केन्द्र आदि को आवश्यक समर्थन देना होगा जिससे वे राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में योगदान करने में सक्षम होने के लिए आवश्यक मशीनरी स्थापित कर सकें।

इतने बड़े कार्यक्रम में सुपरविजन तथा मार्ग-दर्शन हेतु, पर्याप्त प्रबन्ध होना चाहिए। सुपरवाइजर परम्परागत अर्थ में निरीक्षक नहीं होना चाहिए बल्कि वह विशेष रूप से चुना हुआ प्रोफेशनल होना चाहिए जिसे काम में अभिरुचि हो और जो प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र के इन्चार्ज को काम में सुविधा प्रदान कर सके। स्वैच्छिक संस्थाएं स्वभावतः अपनी सुपरविजन व्यवस्था स्वयं करना चाहेंगी। उन क्षेत्रों में जहाँ कार्यक्रम सरकारी अभिकरण द्वारा चलाया जा रहा हो, यह देखना होगा कि प्रौढ़ शिक्षा के लिए पृथक सुपरविजन व्यवस्था रखना वांछनीय होगा या उसे प्राइमरी स्कूल सुपरवाइजर से सम्बद्ध रखना। इस विषय पर केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारों द्वारा विस्तार से विचार होना चाहिए।

सरकारी तथा स्वैच्छिक अभिकरणों के सामने एक बहुत बड़ी कमी प्रौढ़ शिक्षा के शिक्षकों के प्रोफेशनल संवर्ग के अभाव की है। विश्वविद्यालयों में इस प्रकार के स्टाफ को तैयार करने की वर्तमान सुविधाएं अत्यन्त सीमित हैं और उनके विस्तार की आवश्यकता है। सरकार, विश्वविद्यालयों तथा स्वैच्छिक अभिकरणों द्वारा प्रोफेशनल विकास हेतु विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, कार्यक्रम चलाने होंगे। प्रशिक्षण के अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में लगे प्रोफेशनल कार्यकर्ताओं के वेतन ढांचे के

सम्बन्ध में भी विचार करना होगा। जहां तक सम्भव हो, यह सुनिश्चित करना वांछनीय होगा कि प्रौढ़ शिक्षा-व्यवस्था में जो लोग प्रवेश करें वे उसी व्यवस्था में बढ़ें और उन्नति करें न कि वे बाहर चले जाने के लिए विवश हों।

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की अर्थव्यवस्था

विगत वर्षों का अनुभव यह बताता है कि विभिन्न प्रकार के दबावों के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि राज्य सरकारें प्रौढ़ शिक्षा के लिए निर्धारित धनराशि को या तो शिक्षा के दूसरे कार्यक्रमों में लगाती हैं या विकास के अन्य सेक्टरों में। अतः यह आवश्यक है कि ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे प्रौढ़ शिक्षा के लिए निर्धारित धनराशि इधर उधर न की जा सके। साथ ही यह भी ध्यान में रखना है कि राज्य में कार्यक्रम के नियोजन एवं क्रियान्वयन की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर ही रहनी चाहिए। केंद्रीय सरकार की जिम्मेदारी स्वैच्छिक अभिकरणों से व्यापक सहयोग प्राप्त करना, नये कार्यक्रमों का प्रारम्भिक परीक्षण आदि होगी।

धनराशि की व्यवस्था के अतिरिक्त, उसकी पर्याप्तता पर बल देना आवश्यक है। योजना आयोग तथा मंत्रालय के विशेषज्ञों का एक ग्रुप इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रति सीखने वाले पर, केन्द्रीय तथा राज्य स्तरीय प्रशासकीय ढांचे, मूल्यांकन, मानिटरिंग, शोध तथा नये प्रयोगों के खर्च को निकाल कर, ५५ रु० व्यय आएगा। ग्रुप ने इस व्यय की गणना छात्र-संख्या के आधार पर की है, न कि उस संख्या पर जो कार्यक्रम को अन्त तक सफलता पूर्वक पूरा करेगी। ऐसे सफल सीखने वालों की संख्या पूरी संख्या की लगभग ३/४ होगी। अतः यह मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि प्रति सीखने वाले पर व्यय ७० रु० से कम नहीं होगा। केंद्रीय तथा राज्य-प्रशासनों, मूल्यांकन शोध आदि पर व्यय लगभग उस कुल व्यय का १० प्रतिशत होगा जो प्रति सीखने वाले की दर से निकाला गया है। इन गणनाओं के आधार पर पर्याप्त धन व्यवस्था करनी होगी।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के संगठन के व्यय के अतिरिक्त प्रारम्भ से ही नवसाक्षरों तथा उन लोगों के, जिन्होंने औपचारिक व्यवस्था में शिक्षा प्राप्त की है, अनुसरण और निरंतर शिक्षा क्रम को चलाने के लिए व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार के कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विस्तृत गणना नहीं की गई है किन्तु यह तर्क संगत होगा कि कुल व्यय का लगभग २० प्रतिशत इस कार्य के लिए रखा जाए।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

गरीबी और निरक्षरता की सीमाएं राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर दूर तक चली जाती हैं। एक देश के अनुभव और सूझबूझ से परस्पर आदान प्रदान एवं निरंतर संवाद द्वारा दूसरे देश को लाभ उठाना चाहिए। स्वभावतः हम अपने आर्थिक तथा मानवीय साधनों को पूरे तौर से ध्यान में रखते हैं जो वास्तव में बहुत सीमित नहीं हैं जब राष्ट्र के भाग्य का इतना महत्वपूर्ण प्रश्न सामने है। रा० प्रौ० शि० का के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में यूनेस्को तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के अभिकरणों को परस्पर सम्मान तथा समानता के आधार पर सहयोग देने के लिए प्रतिबद्ध होना आवश्यक है। रा० प्रौ० शि० का० के उद्देश्य कितने भी अग्रगामी क्यों न हों, हमें अपना कार्य उन देशों से, जो इस क्षेत्र में अग्रगामी रहे हैं और जिन्होंने इस क्षेत्र में विशेष योग्यताएं विकसित की हैं विनय पूर्वक सीखने की भावना से प्रारम्भ करना चाहिए।

प्रौढ़-शिक्षा

नीति वक्तव्य (दिसम्बर, १९७८)

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

शिक्षा की प्रक्रिया से लोगों की अत्यधिक संख्या को अलग रखना शैक्षिक तथा सामाजिक नियोजन का एक अत्यन्त चिंताजनक पहलू है। वर्तमान सरकार जब मार्च, १९७७ में सत्तारूढ़ हुई तभी से उसकी दृष्टि में यह बात सर्वोपरि रही है। एक ओर जहाँ १४ वर्ष तक प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौम बनाने का पूरा प्रयास होना चाहिए, वहीं दूसरी ओर शैक्षिक सुविधा प्रौढ़ों तक भी अवश्य पहुँचाई जानी चाहिए जिससे वे अपनी शैक्षिक कमियों को सुधार सकें और अपनी क्षमताओं को पूर्ण रूप से विकसित कर सकें।

२. सरकार ने निरक्षरता के विरुद्ध सुचिंतित, सुनियोजित तथा अदम्य संघर्ष करने का निश्चय किया है जिससे जनता सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों में अपनी सभी भूमिका अदा कर सके। साक्षरता प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व के अभिन्न अनिवार्य अंग के रूप में मान्य होनी चाहिए।

प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में वर्तमान चिंतन निम्नलिखित अनुमानों पर आधारित है :

(क)—निरक्षरता व्यक्ति के विकास और देश की सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति के लिए अत्यन्त गम्भीर बाधा है।

(ख)—स्कूली शिक्षा और शिक्षा समानार्थक नहीं हैं, प्रत्युत शिक्षा की प्रक्रिया बहुधा काम और जीवन की परिस्थितियों में ही चलती है।

(ग)—सीखना, काम करना, और जीना। ये तीनों अविभाज्य हैं और इनमें से प्रत्येक तभी सार्थक होता है जब यह एक दूसरे से सम्बन्धित रहता है।

(घ)—विकास की प्रक्रिया में, जिसमें लोग लगे हुए हैं, साधन कम से कम उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कि लक्ष्य।

(ङ)—निरक्षर तथा निर्धन नीचे से ऊपर उठकर साक्षरता, परस्पर विचार-विमर्श और क्रिया द्वारा अपनी स्थिति से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

३ प्रौढ़-शिक्षा में समाज के आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से वंचित वर्ग के लोगों को साक्षरता-कौशल प्रदान करने पर बल देना चाहिए। किन्तु ऐसे लोगों में बहुधा साक्षरता और उसके अनुसरण-कार्यक्रमों में निरन्तर सम्मिलित होने के लिए सम्प्रेरण का अभाव रहता है। इस सन्दर्भ में सिखाने की अपेक्षा सीखने पर बल देना चाहिए। साथ ही साक्षरता-कार्यक्रमों में बोलने की भाषा के प्रयोग और ज्ञानार्जन के सामूहिक साधनों पर भी बल देना चाहिए। सम्प्रेरण कार्यक्रम में भाग लेने वालों की इस चेतना पर भी निर्भर करता है कि वे अपने भाग्य को बदल सकते हैं और इस पर कि प्रौढ़-शिक्षा के कार्यक्रम, उद्देश्यों की प्राप्ति में उनकी कार्य-क्षमता बढ़ाने में सहायता करेंगे। इसके अतिरिक्त ऐसा साक्षरता का कार्यक्रम, जो सीखने वालों की काम करने और जीवन-यापन करने की दशा से असम्बद्ध हो अथवा वातावरण की चुनौतियों और देश की विकास-सम्बन्धी आवश्यकताओं से असम्बद्ध हो, उन्हें सक्रिय प्रतिभागी बनाने में समर्थ नहीं हो सकता और न ऐसा कार्यक्रम विकास तथा उन्नति का साधन बन सकता है। अतः प्रौढ़-शिक्षा जहाँ साक्षरता-कौशल पर बल देती है वहाँ उसे

—सीखने वालों की आवश्यकताओं तथा वातावरण से सम्बद्ध होना चाहिए,

—कार्य की अवधि, समय, स्थान, शिक्षण-प्रबन्ध आदि के सम्बन्ध में नम्य होना चाहिए,

—पाठ्यक्रम, शिक्षण तथा सीखने की सामग्री और विधियों के सम्बन्ध में बहुविध होना चाहिए,

—और संगठन के सभी पक्षों में सुव्यवस्थित होना चाहिए,

४ प्रौढ़ शिक्षा में सर्वोच्च प्राथमिकता निरक्षर लोगों को दी जानी चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् की अवधि में साक्षरता के क्षेत्र की उपलब्धियाँ किसी प्रकार सन्तोषजनक नहीं रही हैं। १९४७ में साक्षरता की दर १४% थी जो १९७१ में ३३.८५% (०-४ के आयु वर्ग को छोड़कर) हो गई। फिर भी आबादी के बढ़ने और पुराने प्रयासों की अर्द्धमनस्कता के कारण निरक्षर लोगों की संख्या १९५१ में २४७० लाख से बढ़कर १९७१ में ३०९० लाख हो गई। १९७१ की जन-गणना के अनुसार १४ वर्ष से ऊपर निरक्षर लोगों की कुल संख्या २११७ लाख है जिसमें ९८२ लाख १५-३५ आयुवर्ग में हैं और यह संख्या इस समय लगभग १००० लाख है। आबादी के १५-३५ आयुवर्ग के इस बड़े भाग को शिक्षित करने के लिए एक बहुत बड़ा कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए और यह कार्यक्रम ५ वर्ष के भीतर यथासम्भव पूरा हो जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि स्त्रियों, अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लिए विशेष कार्यक्रम संगठित करने होंगे। उन क्षेत्रों पर, जहाँ निरक्षरता अधिक है, विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होगी।

५ जहाँ अनुच्छेद २ और ३ में उल्लिखित संकल्पना पर बल देने की आवश्यकता है, वहीं इस बात को भी रेखांकित करने की आवश्यकता है कि कार्यक्रम को एक जन-आन्दोलन के रूप में देखा जाए। संगठनात्मक दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि बड़े पैमाने पर कार्यक्रम चलाने के पूर्व सर्वांगीण तैयारियाँ कर ली जाएँ। शिक्षकों का चयन और उन्हें सम्प्रेरित करना, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण, ज्ञानार्जन सामग्री तैयार करना और प्रशिक्षण—ये अतीत में प्रौढ़-शिक्षा-कार्यक्रमों की दुर्बलता के मुख्य क्षेत्र रहे हैं। कार्यक्रम चलाने के पहले इन क्षेत्रों में सतोषजनक तैयारी अवश्य हो जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त यह न समझना चाहिए कि प्रौढ़ शिक्षा केवल शैक्षिक अधिकारियों का कार्य है। प्रौढ़ शिक्षा विकास के सभी क्षेत्रों में अनिवार्य लागत के रूप में समझी जानी चाहिए, विशेषरूप से जहाँ विकास के उद्देश्यों की प्राप्ति में लाभान्वित होने वाले लोगों का भाग लेना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो। प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन की पूर्वावश्यकता यह भी है कि सभी अभिकरण सरकारी, स्वैच्छिक, निजी, तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग, औपचारिक शिक्षा की संस्थाएँ आदि इस आंदोलन को बल प्रदान करें। स्वैच्छिक अभिकरणों को विशेष भूमिका अदा करनी है और उनका पूरा सहयोग प्राप्त करने के लिए आवश्यक क़दम उठाने होंगे। शिक्षण-कार्य शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा बेरोजगार स्त्री पुरुषों द्वारा किया जाना चाहिए। यह अच्छा होगा यदि बेरोज़गार या कमरोजगार वाले नवयुवकों को जिनमें प्रौढ़-शिक्षा-कार्यक्रमों को संगठित करने की क्षमता है, आवश्यक शिक्षण दिया जाए और तब उन्हें ऐसे कार्यक्रमों को संगठित करने का उत्तरदायित्व दिया जाए। समस्याओं के प्रभावी और व्यवस्थित विश्लेषण के लिए कार्यक्रमों में निर्देशन, मूल्यांकन तथा प्रयोगात्मक शोध के लिए अन्तर्निहित व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे अनुसरण कार्यक्रमों को, जैसे पठन-सामग्री का उत्पादन एवं वितरण, संगठित ज्ञानार्जन और सामूहिक क्रिया, विशेष महत्व देना चाहिए।

६. इतने बड़े कार्यक्रम के संगठन के लिए पर्याप्त आर्थिक और प्रशासनिक समर्थन की आवश्यकता होगी। इस कार्यक्रम के लिए जिसमें साक्षरता और वातावरण-सम्बन्धी तथा सामाजिक शिक्षा सम्मिलित होगी और जो लगभग ३००-३५० घंटे या लगभग ९ महीने चलेगा, आर्थिक प्राविधान करना होगा और अन्य व्ययों को भी ध्यान में रखना होगा। आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था सरकार, स्थानीय निकायों, स्वैच्छिक अभिकरणों, व्यवसाय

तथा उद्योग आदि को करनी होगी। इस बात का एक यथार्थ अनुमान लगाना होगा कि उस प्रोफेशनल और प्रशासकीय यन्त्र का विस्तार और क्षमता क्या होगी जो इस कार्यक्रम के लिए आवश्यक होंगे और तब इस यन्त्र को स्थापित करने के लिए आवश्यक कदम उठाने होंगे।

निरक्षर प्रौढ़ों के लिए इतना बड़ा कार्यक्रम संगठित करने के अतिरिक्त यह आवश्यक है कि विशेष वर्गों के लिए उनकी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार विशेष कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाए। उदाहरणार्थ, निम्न-लिखित वर्गों के लिए विशेष कार्यक्रमों की आवश्यकता है।

—नगर में काम करने वालों के लिए जिससे वे अपने कौशल को उन्नत कर सकें और प्रजातन्त्र में अपने उचित अधिकारों की प्राप्ति के लिए अपने को सक्षम बना सकें तथा प्रजातन्त्र में भाग ले सकें,

राजकीय कर्मचारियों के लिए जैसे कार्यालय के लिपिक, क्षेत्र के सेवा-विस्तार कार्यकर्ता तथा नीति एवं सेवा के कर्मचारी, जिससे वे अपनी योग्यता बढ़ा सकें;

—व्यावसायिक संस्थानों के कर्मचारियों के लिए जैसे बैंक तथा बीमा कम्पनियों के कर्मचारी, जिससे वे अपने काम में और दक्ष हो सकें;

गृहिणी-वर्ग के लिए जिससे वे पारिवारिक जीवन की समस्याओं तथा समाज में स्त्रियों के स्थान को अच्छी तरह समझ सकें।

इन लोगों के लिए और इसी प्रकार के अन्य वर्गों के लिए कक्षा-शिक्षण के द्वारा, पत्राचार कोर्सों अथवा सामूहिक साधनों द्वारा अथवा इन सभी को मिलाकर कार्यक्रमों को चलाया जा सकता है।

यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि प्रौढ़-शिक्षा के कार्यक्रम का क्रियान्वयन विकेन्द्रित हो। यह भी आवश्यक होगा कि समन्वय एवं उत्प्रेरण के लिए अभिकरणों की स्थापना की जाए।

केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद की स्थापना इसी उद्देश्य से की है। इसी प्रकार की परिषदों की स्थापना राज्य-स्तर पर भी होनी चाहिए। विभिन्न अभिकरणों के कार्यों के समन्वय तथा उनका सहयोग प्राप्त करने की दृष्टि से उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता-दिवस

जॉन ई० फोर्स

उपमहानिदेशक, यूनेस्को

यह बड़े आनन्द का विषय है कि यूनेस्को में हम लोग अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस के रूप मे परम्परा के अनुसार पर्व मनाते हैं और उन नर-नारियों की सद्भावना से अपने को सहयुक्त करते हैं जो साक्षरता के विरुद्ध लम्बे संघर्ष मे लगे हुए हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस जो अन्तर्राष्ट्रीय जगत मना रहा है, उस निर्णय का परिणाम है जो निरक्षरता समाप्त करने हेतु गठित शिक्षा-मन्त्रियों के उस विश्व-सम्मेलन में लिया गया था जो १९६५ मे तेहरान मे हुआ था। यह दिवस इस बात का अवसर प्रदान करता है कि हम अब तक के किये गए कार्यों को समझें, भविष्य की ओर देखें और अपने संकल्प को और मजबूत बनाएं।

अगर हमें अब तक की यात्रा के फासले को नापना हो, तो मैं निश्चय रूप से यह कहूंगा कि यह परिणाम असंतोषजनक है यह स्पष्ट है कि काम बहुत बड़ा है और अब भी बहुत कुछ करना शेष है, फिर भी हम जानते हैं कि निरक्षरता कैसे दूर की जाय और यह कि संसाधन कैसे उपलब्ध किये जा सकते हैं।

वास्तव में बावजूद बहुत से देशों की प्रगति के निरक्षरों की संख्या मे निरंतर वृद्धि हो रही है। आज उन की संख्या अनुमानतः ८० करोड़ होगी। प्रत्येक ३ प्रौढ़ो मे से एक न तो पढ़ सकता है, न लिख सकता है और न लिखित रूप से सरल हिसाब लगा सकता है। निरक्षर स्त्रियों की संख्या, जो निरक्षर आबादी का ७०% होगी, निरक्षर पुरुषों की संख्या से अधिक तेजी से बढ़ रही है। यह समस्या नगरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक कठिन है। विकासशील देशों मे निरक्षरता अत्यधिक व्याप्त है। बहुत से स्थानों में ८० प्रतिशत निरक्षर हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि निरक्षरता के क्षेत्र वही हैं जहां शिशु-मृत्यु, कुपोषण, बेरोजगारी और गरीबी के दूसरे तत्वों की दरें बहुत ऊँची हैं। उद्योग प्रधान देश भी निश्चय ही इससे बचे नही हैं। इन देशो में निरक्षरता, स्थान परिवर्तनशील काम करने वालों तथा उनके परिवारों अथवा स्थानीय आबादी के कुछ टुकड़ों को जो यद्यपि बाहरी तौर से साक्षर हैं किन्तु अपनी दैनन्दिन समस्याओं के समाधान के लिए न तो पढ़ने का प्रयोग करते हैं और न लिखने का, प्रभावित करती है।

इससे भी गम्भीर बात यह है कि अनेक समाजों मे निरक्षरों की एक बहुत बड़ी संख्या आबादी के युवा-वर्ग की है। अब इस तथ्य की उपेक्षा करना असम्भव है कि बहुत से देशो मे बावजूद बड़े शिक्षा प्रसार के बड़े प्रयास के यदि पिछले वर्षों के संकेत पुष्ट मान भी लिये जायें, तथाकथित तीसरी दुनिया के देशो में ६-११ आयु वर्ग के स्कूल न जाने वाले बच्चो की संख्या १९८५ मे १३ करोड़ ४० लाख हो जाएगी जिसमे ३ करोड़ ५० लाख अफ्रीका में, ९ करोड़ एशिया में, और १० लाख लैटिन अमरीका में होंगे। यह भी मानना होगा कि प्राइमरी शिक्षा के अंत तक बहुत कम बच्चे स्कूल मे टिक पाते हैं और बहुत बड़ी संख्या ऐसे अल्पज्ञान के साथ स्कूल छोड़ देती है जो जीवन की दैनिक वास्तविकताओं मे उलझकर समाप्त हो जाता है। विकासशील देशो मे केवल बात इतनी नहीं है कि बढ़ती हुई आबादी की संख्या एक लंबे समय तक छात्र-संख्या से आगे बढ़ती रहेगी, बात यह भी है कि शिक्षा के बजटों में विस्तार के विरुद्ध सैनिक तैयारी के बढ़ते हुए व्यय का वजन अत्यधिक बढ़ता जा रहा है और इस प्रकार उभयपक्षीय और बहुपक्षीय सहायता का आयतन घटता जा रहा है।

फिर, बुनियादी एवं निरंतर चलने वाली शिक्षा एक ऐसा बुनियादी मानव अधिकार है जिस पर और अधिकार निर्भर करते हैं। ऐसी दुनिया, जिसमें इस अधिकार की उपेक्षा की जाती है और इस प्रकार वहाँ व्यक्तियों और उनसे सम्बद्ध समाजों का विकास अवरुद्ध होता है, एक निराशा, नासमझी और तनाव की दुनिया ही हो सकती है।

इन परिस्थितियों में हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि निरक्षरता के निवारण में कुछ प्रगति, चाहे कितनी भी कम क्यों न हो हुई है। एक बड़े पैमाने पर साक्षरता का प्रसार सम्भव है। हम लोगों की एक समस्या यह है कि इसमें से बहुत से इस पर विश्वास नहीं करते और न इसके अनुसार कार्य ही करते हैं।

किन्तु हम लोगों का साहस इस बात से बढ़ना चाहिए कि बहुत सी सरकारें और राष्ट्रीय संगठन निरक्षरता के विरुद्ध संघर्ष में लगे हैं। नए ढांचे, राष्ट्रीय तथा स्थानीय कार्य समितियां, निरंतर दिखाई पड़ने लगी हैं। शोध, नये प्रयोग तथा सुधार-योजनाएं आजीवन शिक्षा के संदर्भ में और शिक्षा के समग्र पुनरुत्थान के संदर्भ में, इस बात को सुनिश्चित करने के प्रयास हैं कि औपचारिक शिक्षा-व्यवस्थाएं अनौपचारिक ज्ञानार्जन से अधिक प्रभावी रूप से सम्बद्ध हो जाएं।

अतः यूनेस्को तथा अन्य विशेषज्ञ अभिकरणों को राष्ट्रीय कार्यक्रमों की सहायता करने और उनसे नये विचार लेने का पर्याप्त अवसर है। मैं यहाँ पर एफ० ए० ओ०, आई० एल० ओ०, डब्ल्यू० एच० ओ०, यू० एन० डी० पी०, यूनिसेफ तथा द्विपक्षीय संगठनों के प्रति अपना सम्मान ज्ञापित करना चाहता हूँ।

एक्सपेरिमेंटल वर्ल्ड लिटरेसी प्रोग्राम जिसे यूनेस्को की सहायता मिली थी और जो १९६६ और १९७४ के बीच १६ सदस्य राष्ट्रों में चलाया गया था, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का एक प्रशंसनीय उदाहरण है।

यद्यपि कार्यक्रम में उससे कहीं अधिक बाधाओं पर काबू पाना पड़ा था जितना प्रारम्भ में सोचा गया था, और बावजूद इस अपरिहार्य तथ्य के कि कुछ जगहों में संख्यात्मक परिणाम दृष्टिगत लक्ष्य के अनुरूप नहीं निकले, तदपि पर्याप्त आंकड़े और अनुभव अवश्य प्राप्त हुए।

उनसे जो शिक्षा प्राप्त हुई वह उन लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत है जो साक्षरता शिक्षण कार्य में लगे हैं। वर्ल्ड प्रोग्राम के क्रियान्वयन में जो अनुभव मिले उनके आधार पर नये आन्दोलन चलाए गए हैं जिनसे संख्यात्मक तथा गुणात्मक दृष्टि से अप्रत्याशित परिणाम निकले हैं।

इस प्रकार पिछले कुछ वर्षों में, बहुत से देशों ने अपनी शिक्षा-व्यवस्था अधिक दक्ष बनाकर तथा प्रौढ़ साक्षरता-शिक्षण के प्रयास में वृद्धि करके, निरक्षरों के प्रतिशत में काफी कमी करने में सफलता प्राप्त की है। मैं इस सूची में अलजीरिया, भारत, ईरान, माली, तंजानिया, बर्मा, चीन, क्यूबा तथा सोमालिया को रखता हूँ।

इसलिए यह स्वाभाविक है कि गत वर्ष नैरोबी की जनरल कान्फ्रेंस ने निरक्षरता के विरुद्ध संघर्ष तीव्र करने पर विशेष बल दिया और एक प्रस्ताव पास किया जिसमें सदस्य-राज्यों से कहा गया कि 'वे अपने साक्षरता के कार्यक्रमों का अधिक शक्ति के साथ अनुसरण करें और डाइरेक्टर जनरल से आग्रह किया गया कि यूनेस्को के भावी कार्यक्रम में 'निरक्षरता के विरुद्ध अभियान में काफी तेजी लाई जाए।' सचिवालय आने वाले दो वर्षों (biennium) की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। वह सदस्य राज्यों द्वारा सीधे चलाये गये साक्षरता के कार्यक्रमों को उत्प्रेरित एवं सुदृढ़ करने के लिए कई कार्य कर रहा है। जहाँ तक अपनी भविष्य की योजनाओं का सम्बन्ध है मैं यह कह सकता हूँ कि हम लोग ऐसे कार्यक्रमों के बारे में सोच रहे हैं जो मुख्यतः उन राज्यों के लिए हैं जिनकी साक्षरता की आवश्यकताएँ विशेष रूप से आत्यंतिक हैं और जहाँ साक्षरता-अभियान एक राष्ट्रीय राजनीतिक संकल्प की परिणति है।

हमें आशा है कि हमारे सहायतापरक कार्य राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर से विकेन्द्रित किया कलापों द्वारा अधिकाधिक चलाए जाएंगे। हम यह भी आशा करते हैं कि हमें साक्षरता तथा साक्षरता के बाद के शिक्षण के क्षेत्र में

काम करने वाली राष्ट्रीय संस्थाओं का जाल बिछा दें जिससे सूचनाओं तथा अनुभवों के आदान-प्रदान में सुविधा हो और एक क्षेत्र के विभिन्न देशों के बीच जिनके विकास-स्तर तुलनीय हैं या समस्याएं एक प्रकार की हैं, पारस्परिक सहायता के कार्यकलापों की उन्नति में भी सुविधा हो। शिक्षण तथा प्रशिक्षण-कार्यों के लिए मल्टी-मीडिया सामग्री की और राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय बैंकों की स्थापना की बात भी सोची जा रही है। हमलोग साक्षरता-शिक्षण सम्बन्धी सहायक सामग्री के निर्माण-परिस्थितियों में उत्पादन की उन समस्याओं से अवगत हैं जो अर्थाभाव अथवा भौतिक सुविधाओं के अभाव के कारण और भी कठिन हो जाती हैं।

साक्षरता-कार्यक्रम का दूरगामी प्रभाव वस्तुतः तभी हो सकता है जब विश्व के सभी राष्ट्र अपनी आवश्यकता एवं साधनों के अनुरूप इसमें सम्मिलित हों। इसी बात को ध्यान में रखकर जनरल कान्फ्रेंस ने उसी प्रस्ताव में डाइरेक्टर जनरलको यह निर्देश दिया था कि वे साक्षरता-दशक के मनाने और एक अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता कोष स्थापित करने की सम्भावना का अध्ययन करें। 'अध्ययन' का अर्थ है—एक नये आन्दोलन के लिए जनमत के वातावरण का परीक्षण करना। हम लोग ऐसा कर रहे हैं और इस सम्बन्ध में जनरल कान्फ्रेंस के दूसरे अधिवेशन में निष्कर्ष प्रस्तुत करेंगे। क्या ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द विद्यमान है जिससे उभयपक्षीय या बहुपक्षीय सहायता में अत्यधिक वृद्धि की जा सकती है? क्या इस सौहार्द का उदय प्रत्येक समाज की बुनियादी आकांक्षाओं और व्यक्तित्व के आदर पर और साथ ही विभिन्न राष्ट्रों की गहरी सामाजिक भावना और सदस्यों के पारस्परिक हितों पर आधारित है?

मैंने पहले कहा था कि १२ वर्षों के अनुभव ने हमें कुछ सिखाया है और ऐसे सिद्धान्तों की ओर संकेत किया है जिनसे साक्षरता-कार्यक्रम के समर्थन में एक नये अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास की प्रेरणा मिलनी चाहिए।

सर्वप्रथम यह बात पुष्ट हो गयी है कि सर्वाधिक विवेकयुक्त घोषणाएं, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सर्वाधिक बुद्धियुक्त प्रस्ताव तथा प्रेरसरकारी संगठनों का सर्वाधिक साधनायुक्त सहयोग अन्ततोगत्वा व्यर्थ हैं जब तक प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय राजनीतिक संकल्प स्पष्टतः अभिव्यक्त न हो। और यह संकल्प प्रत्येक समाज की अपनी कार्यशैली में परिलक्षित होना चाहिए। यह संकल्प पूरे सभी आवश्यक मानवीय, भौतिक तथा आर्थिक समाधनों को एकत्र करेगा और लोगों को गहराई से इस बात की अनुभूति कराने सहायक होगा कि साक्षरता-शिक्षण समाज को बदलने में एक प्रगतिशील साधन बन सकता है।'

दूसरे यह पूरे तौर से स्पष्ट हो गया है कि साक्षरता-कार्यक्रमों में सम्पूर्ण मानव को विकास के केन्द्र में रखना चाहिए। साक्षरता के कार्यक्रम जो फैक्टरी में एक मजदूर को, कृषि क्षेत्र के एक खेतिहर को केवल उत्पादन बढ़ाने एवं भौतिक सामग्री को संग्रह करने और आर्थिक विकासके उद्देश्य से पढ़ना लिखना और गिनती सिखाते हैं, स्थायी नहीं होंगे और गम्भीर सांस्कृतिक समस्याएं प्रस्तुत करेंगे।

साक्षरता कार्य स्वभावतः कार्यपरक तथा बहुविध होना चाहिए। अर्थात् यह ऐसा हो जिससे समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष एक पूर्णता के सूत्र में बंध सकें। इसमें सम्पूर्ण मानव केन्द्र-बिन्दु होना चाहिए क्योंकि इसका उद्देश्य उसके वातावरण की यथार्थ वास्तविकता के आधार पर उसे अपनी दैनिक समस्याओं के हल करने में सहायता देना है। हम लोगों के विचार में कार्यपरक साक्षरता की मौलिकता मनुष्य की गहरी से गहरी प्रेरणाओं और चरित्र की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सहायता पहुंचाने के इसी प्रयास में है। सम्बन्धित समाजों के जीवन तथा साक्षरता में सम्बन्ध, कार्यक्रमों के सहयोग में, सहयोगी संस्थाओं के चयन में तथा उन लोगों के जो शिक्षण ले रहे हैं और जो दे रहे हैं, परस्पर सम्बन्धों के स्वभाव में, परिलक्षित होना चाहिए।

एक तीसरा बिन्दु भावी साक्षरता कार्यक्रम के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और वह है जनता का भागीदार बनना।

निरक्षरता से लड़ने के लिए जोरदार आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। तभी से हम लोगों ने यह अनुभव

किया कि साक्षरता-अभियान की सफलता निःसन्देह इस बात पर निर्भर करती है कि किस सीमा तक समाज इसमें भागीदार बनता है। यह सहभाग सूचना के उभय-पक्षीय प्रवाह पर बल देता है जिससे निरक्षर व्यक्ति अपने अनुभवों और विचारों को अभिव्यक्त करते हुए, विचार-शक्ति तथा सर्जनात्मक कल्पना को विकसित करते हुए तथा अपने सांस्कृतिक अस्तित्व पर ज़ोर देते हुए, प्रारम्भ से ही अपने शिक्षण की जिम्मेदारी महसूस करने लगता है। इस सन्दर्भ में यूनेस्को को इस बात की प्रसन्नता है कि साक्षरता कार्यक्रमों में राष्ट्रीय भाषाओं एवं संस्कृतियों के प्रयोग में इधर अभिवृद्धि हुई है।

साक्षरता कार्यक्रमों में जनता के सहभाग का अर्थ स्पष्ट है। और इससे निकलने वाला यह कम महत्व का निष्कर्ष नहीं है कि स्थानीय स्तर पर निर्णय विकेन्द्रित हों। उस पैतृक भावना का प्रतिकार करने के लिए जो पहले के अधिकांश साक्षरता-कार्यक्रमों की विशेषता हुआ करती थी, संयुक्त राष्ट्र संघ ने, एक्सपेरिमेंटल वर्ल्ड लिट्रेसी प्रोग्राम की समाप्ति के बाद इस बात का आश्वासन देने की कोशिश की है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग राष्ट्रीय एवं स्थानीय सक्रियता एवं ज़िम्मेदारी को कभी हतोत्साह नहीं करता।

चौथा पाठ जो सीखा गया वह तेहरान में आयोजित शिक्षामन्त्रियों के सम्मेलन की, जिसकी हम बारहवीं बरस गाँठ मना रहे हैं रिपोर्ट में विद्यमान है। वह यह है कि साक्षरता का कार्यक्रम सब से अलग नहीं किया जा सकता। इसे आजीवन शिक्षा की प्रक्रिया और विकास की योजनाओं से जोड़ना और समन्वित करना पड़ेगा।

जब साक्षरता का कार्यक्रम पर्याप्त रूप से विकास कार्यक्रमों तथा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सुधारों से जुड़ जाता है तो मुझे पूरा विश्वास है कि यह स्थिति के सुधार में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। ऐसा समन्वय ज्ञानार्जन में एक नये दृष्टिकोण की माँग करता है, ऐसा दृष्टिकोण जो समन्वित होने वाले लोगों को उन तकनीकों पर जिनका वे प्रयोग करना चाहते हैं, एक प्रभावी नियन्त्रण दे सकें। इस का अर्थ यह भी है कि सर्वविदित विभिन्न बुनियादी तकनीकी सेवाओं में परस्पर परामर्श करने और स्थायी रूप से मिलजुल कर कार्य करने की प्रवृत्ति बनाई जाय जिससे औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्थाओं में निरंतरता और स्वस्थता बनी रहे।

इन चार बुनियादी बिन्दुओं में मैं बहुत से पाठ को अनुभव और जोड़ना चाहूँगा, किन्तु समयानुसार कुछ बिन्दु ही प्रस्तुत करूँगा। मैं सोचता हूँ कि साक्षरता-कार्यक्रम साक्षर सांस्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत या सुसम्बन्ध रूप में रखे जाएँ। थियेटर, चल-पुस्तकालय, लोक-संगीत, समाचार-पत्र तथा स्थानीय भाषाओं में पाठ्य सामग्री जिसमें विषय-वस्तु नवसाक्षरों की आवश्यकताओं और रुचियों के अनुकूल हो—ये सब साक्षरता-कार्यक्रम के अनुसरण की विधियाँ हैं जिससे नवसाक्षरों को नये अर्जित ज्ञान का प्रयोग करने, अधिकार प्राप्त करने और बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

हम लोग मास मीडिया के योगदान के बारे में भी सीख रहे हैं, विशेष रूप से जब बहुत से मीडिया का एक साथ प्रयोग किया जाता है। उन्नत तकनीकों पर आधारित नये संप्रेषण साधनों से बहुत से अवसर सामने आ रहे हैं और बड़े-बड़े क्षेत्रों में कार्य हो रहा है।

जैसे मैंने प्रारम्भ में कहा था, हम जानते हैं कि हमें क्या करना चाहिए और उससे भी अधिक हम यह जानते हैं कि जो आवश्यक है उसे कैसे करना है।

तो फिर प्रयास इतने अपर्याप्त क्यों हैं और परिणाम इतने निराशाजनक क्यों हैं? मैं सोचता हूँ ऐसा इस लिए है क्योंकि, जैसा निरक्षरों करण के साथ है—अधिकांश लोग यह आशा नहीं करते कि कोई अर्थपूर्ण प्रगति की जा सकती है। आशा और विश्वास की कमी है।

इसके अतिरिक्त उच्च वर्ग तथा नेता इस समय उपस्थित लोगों को छोड़कर, यह अनुभव नहीं करते कि साक्षरता का प्रयास वास्तव में उन्हें अपनी सुविधापूर्ण स्थिति में सुरक्षित रखने के लिए वास्तव में आवश्यक है। यह भी सत्य है कि कुछ नेता यह भी सोचते हैं कि आमविष साक्षरता खतरनाक हो सकती है। या बहुत

की समस्याएं उत्पन्न कर सकती है।

अब इन परिस्थितियों में, चिनगारी कहाँ से शुरु होगी और रोशनी कौन जलाएगा? महामहिम शाहंशाह द्वारा प्रस्तुत साहसिक उदाहरण को नयी प्रेरणा कहाँ से मिलेगी?

तीन वर्ष के भीतर ही हम लोग तृतीय विकास दशक प्रारम्भ करेंगे और जैसा यूनस्को के डाइरेक्टर जनरल श्री अमादू महतार एम' बो ने (Amadou Mahtar M' Bow) इकनामिक और सोशल काउंसिल के 63वें अधिवेशन में कहा था, द्वितीय यूनाइटेड नेशन्स डिकेड के दौरान प्राप्त हुए अनुभवों के आधार पर, हमें तुरन्त वह कार्यशैली परिभाषित करनी होगी जो अन्तर्राष्ट्रीय समाज की नयी आकांक्षाओं को पूरा ध्यान में रखेगी।'

क्या हम ऐसे अन्तःकरण के जागरण की आशा कर सकते हैं—ऐसी नैतिक अनुभूति की, एक ऊर्ध्वोन्मुख सौहार्द भावना की जो बहुपक्षीय व्यवस्था को और बल प्रदान कर सकती है (क्योंकि उभयपक्षीय सहायता की अपेक्षा वह अधिक अच्छी है), जो तीसरे विकास दशक में साक्षरता बड़े रूप में खिल सके? कदाचित् ऐसा हो। हम जानते हैं कि श्री एम बो' और उनके समान अन्य नेता हर वह प्रयास करेंगे जिससे ऐसा हो। मेरा सुझाव है कि एक ओर साक्षरता को मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले वर्तमान केन्द्र बिन्दु से जोड़ना चाहिए और दूसरी ओर मनुष्य के बुनियादी अधिकारों की बढ़ती हुई व्यग्रता से।

इसके अतिरिक्त मैं समझता हूं कि दो बातें निकट भविष्य में निरक्षरता को कम करने में एक वास्तविक नया मोड़ दे सकती हैं। दोनों ही समाज की जड़ों से एक प्रभावी मांग के उद्‌भव की ओर संकेत करती हैं—ये जड़ें हैं परिवार तथा स्थानीय समाज।

पहली मांग का उद्‌भव रोजगार की आवश्यकता से होगा। लगभग सभी देशों में जैसे जैसे बेरोजगार नवयुवकों की संख्या बढ़ती है और जैसे-जैसे बहुत सी आर्थिक व्यवस्थाओं की परम्परागत क्षमता में रोजगार देने की क्षमता कम होती है, वैसे वैसे ऐसी स्थिति में लोग मामले को अपने हाथों में ले लेंगे। स्थानीय समाज अपने सदस्यों के लिए लाभप्रद कार्य कलाप आयोजित करेंगे। स्थानीय सक्रियता और प्रयास बढ़ेंगे और आत्मनिर्भरता के लिए संगठन से साक्षरता की मांग स्वयं उत्पन्न होगी और उसकी पूर्ति के साधन भी निकलेंगे।

दूसरी मांग सम्भवतः अधिक शक्तिशाली होगी—सभी दृष्टियों से अधिक गति देने वाली। यह ऐसे लोगों से आएगी जो सभी प्रकार से वंचित हैं, केवल साक्षरता से ही नहीं। मैं स्त्रियों की बात करता हूं। आवाज ऊपर उठेगी 'हम लोग विकास में भाग लेना चाहते हैं और उसमें योगदान करना चाहते हैं। बहुत से लोगों के लिए यह जीवन मरण का प्रश्न है। और तुम, विश्व के पुरुषो, मानवीय स्तर पर समाज को आगे बढ़ाने और उसके विकास के लिए ठीक से काम नहीं कर रहे हो। हम विश्व की नारियां साक्षरता के साधन की मांग करती हैं जिससे हम अपनी पूरी भूमिका अदा कर सकें।'

मैं जो कह रहा हूँ वह यह है कि निरक्षरता के विरुद्ध अभियान तब आयेगा जब स्त्रियां इसकी मांग करेंगी।

यूनेस्को को इन नयी मांगों को सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए और जहां भी रोशनी दिखाई दे उसका पोषण करना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस हम लोगों को अपने कार्य का मूल्यांकन करने का और भविष्य पर विचार करने का अवसर देता है। इसमें हम अपनी उपलब्धियों को मनाते भी हैं और प्रयासों को पुरस्कृत करते हैं तथा नयी सक्रियता को प्रोत्साहन देते हैं।

सदस्य राज्यों की ओर से मैं मोहम्मदरजा पहलवी नादेजदा क्रुप्सकाया पुरस्कारों के लिए आभार व्यक्त करना चाहता हूं। पुरस्कारों के लिए व्यवस्था ईरान के शाहंशाह और यू एस एस आर की सरकारों के कारण सम्भव हो सकी है। हम लोग एक बार पुनः इन सरकारों के प्रति, संयुक्त राष्ट्र संघ को सदैव मुक्त समर्थन देने के

लिए तथा मानवीय सौहार्द के इस सुन्दर उदाहरण के लिए, हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ तथा डाइरेक्टर जनरल की ओर से हर इम्पोरियल हाईनेस प्रिंसेस अशरफ पहलवी और इण्टर नेशनल जूरी के सदस्यों को, जिन्होंने बावजूद अपने अन्य कार्यों की व्यस्तता में नमाकन की समीक्षा करने और पुरस्कार-विजेताओं और सम्मान प्राप्त करने वालों का चयन करने में सदैव अपने कौशल और निष्ठा का परिचय दिया है, धन्यवाद देना चाहता हूँ।

मैं ऐसे अनेक प्रतिनिधियों का स्वागत करता हूं जिनकी उपस्थिति इस कक्ष म एक नवीनता है। जब से साक्षरता-पुरस्कार की स्थापना हुई है, पहली बार समारोह मे ऐसे लोग उपस्थित हैं जिनकी कुछ मास पूर्व ऐसे लाखों स्त्री-पुरुषों म गणना की जाती थी जिन्हें कुछ भी अक्षर-ज्ञान नहीं था। मैं उनसे यह कहना चाहूंगा कि पूरा अन्तर्राष्ट्रीय समाज उनके प्रयास म अत्यन्त तीव्र रुचि रखता है। मुझे आशा है कि उनकी इस समारोह में उपस्थिति से उन्हें भविष्य म भी पढ़ने-लिखने की कला पर अधिकार प्राप्त करने में परिश्रम करते रहने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

अपने उत्साहवर्धक परिणामों के लिए जो उन्होंने प्राप्त किये हैं, पुरस्कार - विजेताओं को मेरी हार्दिक बधाई है। सिखाने और सीखने वालों की दृढ़ता तथा कृतसंकल्पता जो उन्होंने दिखाई है और जो त्याग उन्होंने किया है, व्यर्थ नहीं गए। वे लोग एक ऐसी दुनिया के अग्रदूत हैं जिसने अभी अज्ञान की शृंखलाएँ नहीं तोड़ी हैं और जो ज्ञान की प्यासी है जिससे वह अपनी अभिव्यक्ति कर सके और विकसित हो सके। अपने प्रयासों में लगे रहने के लिए हम लोगों को, जो यूनेस्को में हैं, इनसे बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। इससे हमें यह आशा होती है कि करोड़ों स्त्री-पुरुष अब इतिहास के कोने में नहीं पड़े रहेंगे।

अंत में यूनेस्को की ओर से विश्व के सभी राष्ट्रों के अंतःकरण से अपील करना चाहूंगा। हर एक को अपने उद्देश्यों और कार्य शैली को परिभाषित करना है और मानवीय, आर्थिक तथा भौतिक संसाधनों को, जिनकी साक्षरता-कार्यक्रमों में इतनी कमी है, जुटाना है। उन्हें वह राजनीतिक इच्छा प्रदर्शित करनी है जो इरादों की घोषणाओं को व्यावहारिक कार्य - कलाप में बदलती है। साक्षरता - कार्यक्रमों के लिए निर्धारित बजट के साथ सार्वजनिक व्यय के संदर्भ में गरीब रिश्तेदारों-सा व्यवहार न किया जाय। जो राष्ट्र इस प्रकार का कदम उठाएगा, उसके नागरिकों की प्रतिक्रिया प्रेरणा-प्रद होगी और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उस राष्ट्र का स्थान बहुत ऊँचा हो जाएगा।

प्रौढ़-शिक्षक की तलाश है

(बाबूराम अग्रवाल, सहायक शिक्षा निदेशक, पीरपुर हाउस, लखनऊ)

प्रौढ़ शिक्षक की तलाश है। प्रौढ़ों को पढ़ाना है। प्रौढ़ों की उम्र १५ से ३५ के बीच मे है। इनमे पुरुष भी हैं। महिलाएं भी हैं। अधिकांश गांव मे रहते हैं। कुछ शहर मे रहते हैं।

ये प्रौढ़ वे लोग हैं कि जब इनकी पढने की उम्र थी, तब इन्होंने नहीं पढ़ा। गांव में प्राइमरी स्कूल था। तीन-तीन, चार-चार मास्टर थे। पढने के लिए समय था। पर इन्होंने नहीं पढ़ा और न इनके मा बाप (स्वय निरक्षर) ने इनके पढने पर कोई ध्यान दिया। कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनके परिवार मे पीढ़ियों से निरक्षरता चली आ रही है, घर मे कभी कोई किताब नहीं आई।

ये निरक्षर प्रौढ बचपन में खेलते रहे या गरीबी के कारण घर अथवा खेत पर मां-बाप के साथ काम करते रहे। छोटे भाई-बहिन को खेलाते रहे। जानवर चराते रहे। खेत पर रोटी पहुंचाते रहे। घास छीलते रहे। बीड़ी बनाते रहे। शहर में दुकान अथवा घरों में नौकरी करते रहे। आदि।

कुछ लोग स्कूल गये, तो इनकी गरीबी के कारण मास्टर ने इन पर ध्यान नहीं दिया। ये कक्षा १ या २ से आगे न चल सके। इन्हें स्कूल का नीरस वातावरण पसद नही आया। स्कूल के सख्त अनुशासन में तो इनका दम घुटता था। ये मास्टर की डांट और मार के डर से स्कूल से भागते रहे और बाहर गुल्ली डण्डा खेलते रहे या बाग में अमरूद चुराते रहे। कुछ के तो स्कूली अनुभव इतने दुखद रहे कि इन्हें पढने ही से चिढ़ हो गई।

यह है इनके बचपन का इतिहास। अब ये जवानी में रोजी रोटी कमाने में जुटे हैं। पेट भरना मुश्किल पड़ रहा है। अब इन्हें पढ़ने की फुरसत कहां है। ये निरक्षरता के आदी हो गये हैं। इन्हें साक्षरता का औचित्य और आनन्द समझ मे नहीं आता है। ये अब यह भी सोचने लगे हैं कि इनके पढ़ने की उम्र निकल गई है। बूढ़े तोते भी कहीं पढ़ते हैं।

ये प्रौढ़ व्यवसाय, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के आधार पर विभिन्न वर्गों में बटे हैं जिनमे आपसी प्रतिद्वन्द्विता, द्वेष, झगड़ा और तनाव चलता रहता है। पर एक बात इन सब मे एक जैसी है। वह यह कि ये गरीब और निरक्षर हैं और इसलिए इनकी सामाजिक स्थिति बहुत नीची है। ये उपेक्षित और लांछित हैं, दलित और पीड़ित हैं। न तो किसी बात मे कभी इनकी राय मांगी जाती है और न किसी निर्णय मे इनको शामिल किया जाता है। इनमे कुली, खेतिहर मजदूर, छोटे किसान और छोटे-छोटे धन्धों में लगे लोग हैं। ये जीवन भर हर बात के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं। निरक्षरता और गरीबी के कारण पग-पग पर इनके काम रुकते हैं और जगह जगह ये ठगे जाते हैं। ये आत्म-निर्भरता खो चुके हैं। इनमे आत्म विश्वास नहीं रह गया है। ये अपनी दुर्दशा को अपनी नियति मानकर चुपचाप स्वीकार कर चुके हैं। औरतों की हालत और भी बदतर है।

प्रौढ़-शिक्षक की तलाश है जो इन दीन-हीन प्रौढ़ों को इस प्रकार पढ़ाये कि इनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति सुधर सके। इन प्रौढ़ों में इनकी स्थिति, इनके संकटों, इनके अधिकारों, इनकी समस्याओं और इनकी सम्भावनाओं के प्रति चेतना उत्पन्न करनी होगी। इनमे आत्म-विश्वास और स्वाभिमान जगाना होगा। इन्हें व्यावहारिक ज्ञान दिया जायेगा जिससे इनकी व्यावसायिक दक्षता बढ़े और ये अपने दैनिक कार्य कुशलतापूर्वक सम्पादित कर सकें। इन्हें कृषि एवं उद्योग की उन्नत विधियों, कानूनी अधिकारों, न्यूनतम वेतनों ऋण-सुविधाओं, विकास कार्यक्रमों, स्वास्थ्य एवं विस्तार-सेवाओं आदि की जानकारी कराई जायेगी। इन्हें साक्षर बनाकर

इन्हें पढ़ने की आदत डाली जायगी। इनमे पढने का शौक पैदा करना होगा। ज्ञान और जानकारी जीवन मे हर काम के लिए जरूरी होती है। साक्षरता ज्ञान का एक प्रमुख और स्थायी साधन है। गरीबो की प्रबुद्धता और सतर्कता ही यह सुनिश्चित कर सकेगी कि जो विभिन्न नीतियां, कानून और योजनाएं इनके लाभ के लिए चलाई जा रही हैं, उनका लाभ इन्हें मिले। इसके लिए इन्हें साक्षर और शिक्षित बनाना जरूरी है।

प्रौढ़ शिक्षक की तलाश है जो उक्त प्रकार से अबोध अभावग्रस्त लोगों को प्रबुद्ध एव सशक्त बना सके और जो उसी गांव अथवा मुहल्ले में रहता हो जहां के लोगो के बीच उसे काम करना है। वहां (गांव/मुहल्ले मे) उसका अपनी कुछ स्थिति हो, अपना कुछ असर हो। कुछ लोग उसकी बात मानते हों। उसने गांव मे जनसेवा के कुछ काम किये हों। गांव गांव, मुहल्ले मुहल्ले प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खुलेंगे। एक केंद्र पर ३० प्रौढ़ पढ़ेंगे और एक शिक्षक पढ़ायेगा। रोज दो घण्टे पढ़ाई होगी। केन्द्र का समय और स्थान पढ़ने वालों की सुविधा पर होगा। एक केंद्र १० महीने चलेगा। महिलाओं के केन्द्र अधिक खुलेंगे। महिला प्रशिक्षक अधिक चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षक की तलाश है जिसमे निम्नांकित योग्यताएं हों।—

—वह पैसे अथवा पद के लोभ से नहीं, बल्कि जनसेवा की भावना से इस कार्यक्रम मे आना चाहता हो और इस कार्यक्रम की कठिनाइयों को समझता हो। उसे वेतन नहीं, बतौर सम्मान ५० रु० मासिक मानदेय मिलेगा।

—वह सच्चा और ईमानदार हो। झूठ का सहारा न ले। बड़े को छोटा और छोटे को बड़ा न बताये।

—उसमे निष्ठा, लगन, अध्यवसाय और समर्पण की भावना हो।

—उसे समानता और सामाजिक न्याय म विश्वास हो।

—वह दृढ़-संकल्पी एव साहसी हो और आदर्श, मूल्यों और मान्यताओं की स्थापना एव रक्षा के लिए संघर्ष कर सकता हो।

—वह खुले दिमाग का हो। धैर्यवान हो। दूसरों की बात ध्यान से सुनता हो। विचारों में परिवर्तन के लिए तैयार रहता हो। कल्पनाशील हो। व्यावहारिक हो। पहल कर सकता हो।

—वह प्रौढ़ों की रुचियों, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं एव समस्याओं को समझता हो। वह जानता हो कि प्रौढ़ कैसे सीखते हैं। उसे प्रौढ़ शिक्षा के सिद्धान्तों, विधियों और शिक्षण सामग्री का ज्ञान हो।

—उसे इन निरक्षर प्रौढ़ो की क्षमताओ मे विश्वास हो कि ये सीख सकते हैं।

—उसे इस कार्यक्रम की सफलता की आशा हो।

—उसके हृदय मे गरीबो के लिए प्यार हो। वह गरीबो की दुर्बलताओ के कारण उन पर दया नहीं, उनसे प्यार करे।

—वह विनम्र हो। प्रौढ़ो को छोटा न समझे। उन्हें आदर दे। मुस्करा कर बात करे। गुरु शिष्य की भावना न न हो। मित्र मित्र का सम्बन्ध हो। प्रौढ़ निरक्षर और गरीब जरूर हैं, पर कई बातो मे वे शिक्षक से अधिक जानकार और अनुभवी हो सकते हैं। शिक्षक भी उनसे सीखेगा। शिक्षक और प्रौढ़ दोनों एक साथ मिलकर सीखेंगे।

—वह कम से कम कक्षा ८ पास हो। उसे पढ़ने का शौक हो। उसने खूब पढ़ा हो। वह रोज अखबार पढ़ता हो। वह वाक्पटु हो। कथा-वार्ता मे कुशल हो। प्रसंगानुकूल अच्छी कथाएं और कविताएं सुना सकता हो। बौद्धिक खेल खेला सकता हो। हास्य विनोद से प्रौढ़ो को हंसा सकता हो। शिक्षक उपदेश नही देगा। भाषण नहीं करेगा। संवाद और परिचर्चाओं से केन्द्र को क्लब बना देगा जहां प्रौढ़ हंसेंगे खेलेंगे, गायेंगे बजायेंगे, गप्प मारेंगे और सीखेंगे। सीखना एक जीवनोपयोगी, अर्थपूर्ण एव रोचक अनुभव होगा। प्रौढ़ो मे एक तर्क-संगत एव विवेचनात्मक दृष्टिकोण का विकास होगा।

—उसे विभिन्न विकास-कार्यक्रमो की जानकारी हो। वह अधिकारी और नेताओ से खुलकर बात कर सके। विभिन्न विकास-कार्यकर्ताओ को केंद्र पर लाकर उनकी वार्ताएं करा सके और विभिन्न विभागो से मिलने वाली सुविधाओं को प्राप्त करने मे प्रौढ़ो की सहायता कर सके।

—वह प्रौढ़ों को रास्ता ही न बताये, उन्हें रास्ते पर चलना भी सिखाए।

—आवश्यकता पड़ने पर वह प्रौढ़ के साथ बाजार, अस्पताल, थाने अथवा दफ्तर जाकर उसका काम करा सके।

—वह प्रौढ़ो की शैक्षिक प्रगति का मूल्यांकन कर सके और उसका रिकार्ड रख सके।

—वह पर्यवेक्षक एव अन्य अधिकारियो से बराबर सम्पर्क बनाये रखे। वह केंद्र की प्रगति और कठिनाइयों से उन्हें अवगत कराता रहे और उनसे मार्गदर्शन लेता रहे।

—अन्त में, वह ऐसा हो कि प्रौढ़ को उसके पास जाना अच्छा लगे, उसकी बात सुनना अच्छा लगे और उससे बात करना अच्छा लगे। ★

रजि० सं० WDA/1

लाइसेंस सं० ५

समाज की चमरौटियां

स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय
समाज की वे चमरौटियां हैं,
जहां अस्पृश्य नौजवानों को
सबसे अलग
एक बस्ती बसाई जाती है।
वहां ऐसे कारीगर रहते हैं
जिनके हाथ-पैर नहीं चलते
और जिनकी सिर्फ जबान चलती है।
उन्हें काम-काज की धूल पसन्द नहीं,
उन्हें बहार के फूल पसन्द नहीं,
वे सफेदपोश हैं जैसे कफन डाला हो,
वैसे भी जिन्दगी के उन पर कोई निशान नहीं।

श्री प्रभात कुमार करण द्वारा अ० भा० नयी तालीम समिति के लिए प्रकाशित और विद्या मुद्रण [illegible], वाराणसी से मुद्रित।

नयी तालीम

अखिल भारत नयी तालीम समिति

दिसम्बर—जनवरी, ७८-७९
नयी तालीम का वार्षिक शुल्क—बारह रुपये तथा एक अंक का मूल्य दो रुपये है।
पत्र व्यवहार के लिए सुधी पाठक कृपया अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
पत्र व्यवहार के लिए पता :—सम्पादक नयी तालीम, सेवापुरी, (वाराणसी)
नयी तालीम में व्यक्त विचारों का दायित्व पूर्णतया लेखक का है।

सम्पादकीय

अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष

१९५९ मे संयुक्त राष्ट्र संघ ने बच्चो के कुछ अधिकारो की घोषणा की थी जिनकी परिणति इस निर्णय में हुई कि १९७९ को अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष घोषित किया जाय। इस प्रकार के वर्ष मनाने का उद्देश्य यह होता है कि प्रसगागत विशेष विषय पर सभी राष्ट्र समुचित ध्यान दें।

स्थिति यह है कि गरीबी के अनेक अभिशापो म एक अभिशाप यह भी है कि वह ऐसी सन्तान को जन्म देती है जिससे गरीबी देश मे निरन्तर बढ़ती जाय। जब बच्चों को पौष्टिक भोजन नही मिलेगा तो उनका शारीरिक तथा मानसिक विकास नहीं हो सकेगा और सबसे दुखद बात यह है कि मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो जाता है जिसके दुष्परिणामों से जीवन भर मुक्ति नही मिल सकती, भले ही बाद मे कितना भी पौष्टिक भोजन क्यों न दिया जाय। आज देश मे प्रतिवर्ष १२००० अन्धे हो जाते हैं और १४ करोड़ बच्चे (१-५ आयु वर्ग के) रोग के लक्षणों से युक्त दिखाई पड़ते हैं। इनमे ५० प्रतिशत अर्थात ७ करोड़ बच्चे रक्ताभाव के दोष से ग्रस्त रहते हैं।

यद्यपि गरीबी के कारण बच्चो का समुचित विकास असम्भव है, फिर भी गरीब माता पिता को स्वास्थ्य और सफाई की कुछ जानकारी हो जाय तो बच्चो के विकास मे सुधार सम्भव है। शिक्षको का इस सत्र में विशेष योगदान हो सकता है। गांधी जी ने कहा था कि सफाई बुनियादी शिक्षा का प्राण है। यदि शिक्षा से सम्बद्ध लोग इस समस्या की ओर ध्यान नही देते तो शिक्षा का भविष्य स्वयं अन्धकारपूर्ण हो जायगा, क्योंकि जब ऐसे बच्चे विद्यालयों मे आयेंगे जिनमें मस्तिष्क और शरीर के विकास मे अवरोध के कारण कोई सुधार सम्भव न हो सकेगा तो शिक्षको के लिए बहुत कुछ करना शेष न रह जायगा। इसलिए आवश्यक यह है कि शिक्षक वर्ग इस दिशा मे भली भांति विचार करके कोई योजना क्रियान्वित करें जिससे नगर और ग्राम के अगणित बच्चों का जीवन सुखमय हो सके और तभी देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकेगा।

प्रौढ़ शिक्षा की प्रगति

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा योजना की घोषणा के अनुरूप वर्ष १९७८-७९ मुख्यत तैयारी का वर्ष है और वह समाप्तप्राय है। तैयारी कई दिशाओ मे होनी थी—प्रशासनिक व्यवस्था, शिक्षण सामग्री, प्रशिक्षण की व्यवस्था, वातावरण तैयार करना आदि। जहाँ तक प्रशासनिक व्यवस्था का प्रश्न है प्रौढ़-शिक्षा-अधिकारियों की विभिन्न स्तरो पर नियुक्तियां हुई है। राज्य स्तर पर प्रौढ़ शिक्षा-समितियो का गठन भी हुआ है। किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण तैयारी विकेन्द्रित व्यवस्था की थी जिसमे क्षेत्रीय, जनपद, तहसील तथा ब्लाक स्तर पर समितियां गठित करके और विभिन्न अभिकरणों के कार्यक्रमों मे समन्वय की व्यवस्था करना अनिवार्य था। प्रौढ़ शिक्षा-कार्यक्रम की तैयारी मे यह बड़ी कमजोर कड़ी है। इसलिए आगे क्या होगा कहा नहीं जा सकता।

जहाँ तक पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री तैयार करने का प्रश्न है, इस दिशा में कुछ पाठ्यक्रम निर्धारित हुआ है और शिक्षा सामग्री भी तैयार की गई है। किन्तु यह प्रौढ़-शिक्षा की समस्याओं को देखते हुए न केवल अपर्याप्त है प्रत्युत अनुपयुक्त भी है। कारण जैसा कोठारी कमीशन ने कहा है कि प्रौढ़-ज्ञानार्जन व्यक्तिगत प्रक्रिया है। कोई एकरूप पाठ्क्रम या शिक्षण सामग्री निर्धारित नहीं की जा सकती। एक ही प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र पर विभिन्न योग्यताओं क्षमताओं के प्रौढ़ आयेंगे। एक जैसी सामग्री सबके लिए उपयुक्त नहीं हो सकती। स्थानीय स्तर पर पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-सामग्री तैयार करने की क्षमता उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक था।

प्रशिक्षण की जो व्यवस्था की गई है, वह तो अत्यन्त असन्तोषजनक है। जो विषय के जानकार नहीं हैं, वे प्रशिक्षण दे रहे हैं, जिनकी कार्य में रुचि नहीं है वे प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। प्रौढ़-शिक्षकों के उचित चुनाव पर बल दिया गया था, वह प्रयत्न नहीं हो रहा है।

जहाँ तक वातावरण तैयार करने का प्रश्न है, इसका भी कई कारणों से निर्माण नहीं हो सका। जन-आन्दोलन के लिए व्यापक चेतना तथा गतिशील नेतृत्व आवश्यक था, किन्तु दुर्भाग्यवश राजनीतिक परिस्थितियां अनुकूल न होने के कारण वातावरण नहीं बन सका।

तैयारी के सम्बन्ध में अन्तिम बात यह है कि यद्यपि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उच्च शिक्षा की संस्थाओं को इस कार्य में लगने के निर्देश दिए हैं किन्तु विश्वविद्यालयों पर कोई प्रभाव नहीं के बराबर है। इन परिस्थितियों को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि तैयारी के वर्ष की स्थिति आशाजनक नहीं है।

अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष

यदुनाथ थत्ते

पहली जनवरी से ३१ दिसम्बर, १६७६ तक अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष मनाने की दुनिया भर के देशों में तैयारियाँ हो रही हैं। आमतौर पर सरकारें ही इसमें अगुआई करेंगी, ऐसा दिखाई दे रहा है। लेकिन सरकारी काम करने का अपना एक ढंग होता है, वे अपनी नौकरशाही पर जितना भरोसा करती हैं उतना जनता के ऊपर नहीं करतीं, फिर चाहे वह सरकार लोकतान्त्रिक हो या एकाधिकारवादी। इस दृष्टि से सम्भव है कि अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष भी कहीं एक सरकारी प्रदर्शन मात्र न बन जाय। सरकारी तन्त्र की एक विशेषता यह है कि वहाँ हर बात विलम्ब से हुआ करती है। केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को सूचना देगी, फिर राज्य सरकारें जिला परिषद्, नगर परिषद्, तालुका पंचायत और अन्त में ग्राम पंचायतों तक सूचनाएँ पहुँचायेंगी और सम्भव है, अंतिम कड़ी तक सूचनाएँ पहुँचते-पहुँचते दिसम्बर १६७६ या तो आ जायेगा अथवा बीत जायेगा। क्या इस अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष से आम जनता का कोई सम्बन्ध नहीं है? जनता इस वर्ष क्या कुछ नहीं कर सकती?

जनता अवश्य ही कुछ कर सकती है और जनता में काम करनेवालों को इस दिशा में अपना सक्रिय दिखाना चाहिए। गांधी तथा सर्वोदय विचार में श्रद्धा रखने वालों का दावा जनाधारित संगठन होने का है। वे मानते हैं कि वे लोक शक्ति को जाग्रत, उद्बुद्ध तथा संगठित रूप देने में जुटे हुए हैं। अतः उनका दायित्व अधिक बढ़ जाता है। अभी हाल में एक सज्जन ने कहा कि 'द बिगेस्ट इंडस्ट्री इन द वर्ल्ड इज डेथ इण्डस्ट्री'—दुनिया में सबसे बड़ा उद्योग अगर है तो मारकाट का है। सुरक्षा और व्यवस्था के नाम पर बहुत खर्च आज हो रहा है और दिनों-दिन उसमें वृद्धि हो रही है। इधर ये सरकारें बालवर्ष मनायेंगी और उधर शस्त्रास्त्र बनाने में पैसा भी खर्च करती रहेंगी। संरक्षण के नाम पर चलने वाले उद्योगों में जो खर्च आज होता है उसका औसतन प्रत्येक व्यक्ति के पीछे लगभग ५००) रु० है। लेकिन दूसरी तरफ दुनिया की आधी आबादी की वार्षिक आय इससे आधी है। मानव विचारशील प्राणी माना जाता है। जीवन की इस विसंगति को देखकर, उसे दूर करने की दिशा में कुछ कदम उठेंगे?

एक कदम यह हो सकता है कि यू० एन० ओ० के महासचिव तथा अपने राष्ट्र प्रमुखों के पास इस आशय के निवेदन बच्चे अपने हस्ताक्षर करके भेजें। वे माँग करें कि सेना तथा पुलिस पर होने वाले खर्च को पाँच प्रतिशत घटाया जाय। रूस और अमरीका शस्त्रास्त्र निर्माण में जो खर्च कर रहे हैं उसको अगर इस तरह घटाया जाय तो दुनिया-भर के कल्याण कार्यक्रम उसमें सुचारु रूप से चल सकते हैं। लेकिन छोटे देश भी अपने शस्त्रास्त्र खर्च को घटाने के लिये तैयार न हों तो उनका नैतिक दबाव बड़े देशों पर नहीं पड़ेगा। ऐसा हस्ताक्षर अभियान अगर इस वर्ष में चले तो सम्भव है कि नया मानस बनेगा।

दूसरी बात है जनसंख्या वृद्धि की। जनसंख्या वृद्धि को अगर न रोका जाय तो बाल कल्याण की कोई योजना नहीं बन पायेगी, इतना ही नहीं मानवीय मूल्य भी ध्वस्त हो सकते हैं। इस सम्भावना को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। अगर पैदा होने वाला प्रत्येक नया मानव मेरी रोटी छीनेगा, मेरा कपड़ा छीन लेगा, मेरे घर में ऊँट की तरह घुसकर मुझे ही एक दिन बाहर निकाल देगा, ऐसी स्थिति हो जाय तो मानव मानव को सखा नहीं, बैरी मानने लगेगा। यह तो जंगली अवस्था हो जायेगी। संयम से अगर संख्या मर्यादित की जा सके तो बड़ी खुशी की बात है, अगर नहीं सधता है तो रोगी जिस तरह इलाज करवाता है वैसे इलाज करवाने की तैयारी रखने में

अक्लमन्दी है। दुनिया की आज की जनसंख्या ४०० करोड़ के करीब है और जनसंख्या-वृद्धि अगर आज की तरह बेरोकटोक होती रही तो सम्भव है कि शताब्दी के अन्त तक वह ८०० करोड़ न हो जाय। ऐसा हुआ तो प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ जायेगा और पृथ्वी वीरान हो जायेगी। वैज्ञानिक, व्यासजी की आर्तता से हमको आगाह कर रहे हैं। कह रहे हैं कि संख्या वृद्धि रोक लो, नहीं तो यह अणुशस्त्रों से भी एक भयानक डरावना संकट होगा। तब नये बच्चे का स्वागत नहीं होगा और आदमी मर जाय तो लोग कहेंगे, अच्छा हो गया एक बला हमारे सिर से हटी। यह तो अमानवीय स्थिति होगी। हजारों वर्षों में जिन मानवीय मूल्यों का विकास हमने किया वे सब मूल्य बर्बाद हो जायेंगे। न्याय-स्वतन्त्रता-समता तथा बंधुता के लिये कोई अवकाश नहीं रहेगा।

महिलाओं की दृष्टि से ये दो बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, विश्व स्त्री शक्ति-सम्मेलन की तैयारी मे बढ़ने लगा है। ब्रह्मवादिनी स्त्रियों के अपवाद को हम जरा छोड़ दें, लेकिन सर्वसामान्य स्त्री आज अपने को बड़ा असमर्थ पा रही है। ऐसी कौन माता होगी जो अपने बालकों के सर पर तलवार टंगी देखना चाहेगी? जिसने अपनी सन्तान के जन्म की व्यथा वेदनाओं को सहा और खुशियों का अनुभव किया वे अपनी सन्तान पर मृत्यु का साया जाना कभी बर्दाश्त नहीं कर सकेंगी। उनको अपनी आवाज बुलन्द करके दुनिया की सभी सरकारों से कहना चाहिए कि अगर सचमुच आप बाल-कल्याण चाहते हैं तो उसके लिये पाँच फीसदी सरकारों के सर्व पदाओं और इतनी राशि बाल-कल्याण के लिए उपलब्ध करो। यह सही दिशा में पहला कदम होगा।

लदा हुआ मातृत्व प्रतिष्ठित अत्याचार ही मानना चाहिए। ऐसी कोई माता शायद ही होगी जो अपने बालक को दारिद्र, विषमता, अन्याय, गुलामी तथा वैर की धरोहर देना चाहेगी। संतानों की संख्या मर्यादा से अधिक हो तो उनकी ठीक से देखभाल नहीं हो सकती। अत जैसा कि गांधीजी ने मार्गरेट सैंगर से कहा था—"अपने पति को न कहने की शक्ति उसमें आनी चाहिए" गांधीजी की स्त्री-शक्ति की कल्पना ऐसी थी। ना कहने की सत्याग्रही शक्ति उनमें आ जाय तो संतान संख्या मर्यादित करना संभव होगा। लेकिन सत्याग्रही शक्ति की कसौटी के नाम पर जनसंख्या-वृद्धि के लिए कारण नहीं बनना चाहिए। इस थोड़े से कथ पर भी यह कसौटी कर सकती है। विश्व स्त्री-शक्ति-सम्मेलन का काम करते हुए इन बातों के बारे में समाज को सावधान करने का काम भी करना चाहिये। ऐसा लगता है बाल-कल्याण के बारे में स्त्री-शक्ति कभी भी असावधानी नहीं कर सकती। ●

++++

अखिल भारत नयी तालीम समिति

दिनांक १९ अगस्त १९७८ को सेवाग्राम में हुई अखिल भारत नयी तालीम समिति की बैठक में पारित प्रस्ताव—

'दिसम्बर १९७७ में दिल्ली में हुए राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के बाद से भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा माध्यमिक शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा इन दोनों के परिष्करण की दिशा में किये गए प्रयत्नों के निरूपण के पश्चात् समिति उनका स्वागत करती है। मन्त्रालय ने प्राथमिक शिक्षा के सर्व सामान्यीकरण तथा राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम की योजना को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि १५ (विकसित) से ३५ वर्ष की आयु के बीच के लगभग १० करोड अशिक्षित उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। सभी प्रदेश तथा देश की बहुत बड़ी संख्या में स्वैच्छिक संस्थाएं भी इस दिशा में प्रादेशिक तथा जिला स्तर पर योजनाओं को विकसित करने के लिए प्रेरित की गई हैं।

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उच्च शिक्षा की प्रगति के लिए की गई सिफारिशों पर भी यह समिति अपना सन्तोष व्यक्त करती है।

'शिक्षा की प्रगति सम्बन्धी प्रत्येक स्तर पर उपलब्ध सारी सामग्री के सम्यक अध्ययन के पश्चात् समिति अनुभव करती है कि सरकार द्वारा किये गये उपर्युक्त प्रयत्न यद्यपि स्वागताई हैं फिर भी वे वांछित सामाजिक परिवर्तन नहीं ला सकेंगे क्योंकि सरकार शिक्षा की प्रणाली में ही परिवर्तन लाने के कार्य को उच्च वरीयता नहीं देती। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम इस तरह नहीं बनाया गया है कि वह सब साधारण मनुष्य के जीवन की दैनंदिन समस्याओं को सुलझा सके। न ही शहरी और ग्रामीण उन्नति के साथ उसका मेल है। इसी प्रकार, सामाजिक उपयोगी उत्पादक कार्य यद्यपि बुनियादी तालीम-दर्शन से लिया गया है फिर भी सम्पूर्ण शाला प्रणाली के विषयाभिमुखी होने के कारण उनमें बहुत कम अन्तर हो पाएगा।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उच्च शिक्षा के नीति निर्धारण सम्बन्धी सुझाव भी कागज पर ही रह जाने सम्भव हैं क्योंकि देश में विश्वविद्यालय भी कक्षाभिमुखी रहे हैं। जब तक उच्च शिक्षा, कमजोर वर्ग के लिए छात्रवृत्ति की सुविधा के साथ साथ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं बनाई जाती, तथा जब तक नौकरी पाने की शर्तों से उपाधियों का सम्बन्ध विच्छेद नहीं होता तब तक उच्च शिक्षा अनुत्पादक और पराश्रयी या परोपजीवी ही बनी रहेगी।

'इसलिए यह समिति भारत सरकार से पुरजोर अपील करती है कि वह शिक्षा को आज की जीवन की वास्तविकता तथा शहरी और ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक उन्नति और प्रगति के साथ जोड़े। संसद के शीत कालीन अधिवेशन में भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति विषयक प्रस्ताव शिक्षा की नीति में परिवर्तन करने वाला हो न कि केवल शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उसके ढांचे या सामग्री में परिवर्तन सुझाने वाला या दोनों में कुछ परिवर्तन सुझाने वाला मात्र हो। समिति आशा करती है कि भारत सरकार उस जनता की आवश्यकताओं और भावनाओं की ओर पूरा ध्यान देगी जो सीखना चाहती है, काम करना चाहती है। जनता शोषणहीन प्रजातन्त्रीय समाज चाहती है, तथा ऐसी शिक्षा प्रणाली चाहती है जो उसके आविर्भाव और भरण-पोषण में निकटतम सहायक हो। अतः शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति के प्रस्ताव का शिक्षा के आदर्शों के अनुरूप होना

आवश्यक है। समिति परिवर्तन अमल में लाने सम्बन्धी निम्नलिखित सिद्धांत एवं युक्तियां सुझाती है—

(अ) प्रत्येक शिक्षा संस्था को पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन सम्बन्धी स्वायत्तता।

(आ) तीन मूलभूत मूल्यों पर जोर देने वाले अध्ययन पाठ्यक्रम।

(i) आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास तथा शैक्षणिक कार्यक्रम के अन्तर्गत काम द्वारा अपनी प्रतिष्ठा।

(ii) समाज सेवा के अर्थपूर्ण कार्यों में शामिल किये जाने के माध्यम से छात्रों में राष्ट्रीयता और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना का निर्माण।

(iii) नैतिक और पारिमिक मूल्यों को मन में बैठाना तथा धर्मों की एकता तथा सब धर्मों का समान रूप से आदर करने की आवश्यकता को उचित रूप से समझना।

(इ) विकेन्द्रीकृत शासन, जिसमें सरकार का कम से कम हस्तक्षेप हो।

(ई) उच्च शिक्षा में गांधी विचारों का अध्ययन, अहिंसा और शान्ति शोध।

(उ) नौकरी की शर्तों से उपाधियों का सम्बन्ध विच्छेद। साथ ही जो उद्योग, व्यवसाय तथा सरकार में जाना चाहते हैं उनके लिए उपाधि रहित पाठ्यक्रम प्रणाली।

'शिक्षा की प्रगति का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन करने तथा समय-समय पर उसकी प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने और मार्गदर्शन करने के लिए

(ऊ) वैधानिक स्वायत्त राष्ट्रीय शिक्षा परिषद का गठन जिसके अधिकांश सदस्य स्वैच्छिक संस्थाओं के हों।

'इसी प्रकार की परिषदें प्रादेशिक स्तर पर भी गठित की जाएं।'

△
❋❋

बुनियादी शिक्षा : शंकायें और समाधान

गांधी जी

[सेवाग्राम में गांधी जी की पचहत्तरवीं वर्षगांठ मनाई गई। इस अवसर पर तालीमी संघ के प्रतिनिधि गांधी जी से मिलने आये। उन्होंने गांधी जी से बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में जो बातें की, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण संकलित बातें यहां दी गई हैं। – सम्पा०]

शंका : यदि बालक और बालिकाओं, दोनों के लिए पर्याप्त स्थान न हो तो क्या मात्र बालिकाओं के लिए ही वैसिक पाठशालाएं खोलना उचित है ?

समाधान : (गांधीजी ने कोई आपत्ति नहीं उठाई। उन्होंने कहा) मान लीजिए शिक्षा के लिए करोड़ों बालक आते हैं। क्या हमें स्थानाभाव के कारण उनको शिक्षा देने से इन्कार कर देना चाहिए ? मैं तुमसे कहता हूँ कि मैं इन्कार नहीं करूँगा। यदि आवश्यक हुआ तो मैं उन्हें एक वृक्ष की छाया में बिठा दूँगा और उनके हाथों में बांस की तकलियां थमाकर सीधे-सीधे उनके द्वारा उनको शिक्षा देना आरम्भ कर दूँगा।

(प्रौढ़ शिक्षा की चर्चा चलने पर गांधीजी ने यह महसूस किया कि स्पष्टतः बुनियादी तालीम के क्षेत्र में वृद्धि होनी चाहिए। उसमे प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के प्रत्येक चरण पर शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा का समावेश होना चाहिए। उन्होने कहा-) बेसिक स्कूल के अध्यापक को अपने आपको जीवन की प्रत्येक स्थिति का अध्यापक समझना चाहिए। जैसे ही हमारे व्यक्ति—स्त्री अथवा पुरुष—उसके सम्पर्क मे आयें वैसे ही उसे अपने मन से पूछना चाहिए—मैं इसे क्या शिक्षा दे सकता हूं ?

शंका : क्या उसका इस प्रकार शिक्षा देना मिथ्या भिमान का सूचक न होगा ?

समाधान : नहीं। मान लीजिए, एक ऐसे वृद्ध से मेरी भेंट होती है जो गन्दा और अज्ञानी है। अपने गांव को ही वह अपनी दुनियाँ समझता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति मेरा यह कर्तव्य होगा कि मैं उसे स्वच्छ रहने की शिक्षा दूं, उसकी अज्ञानता दूर करूं और उसके मानसिक क्षितिज का विकास करूं। मुझे उससे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मैं उसका अध्यापक हूं। मैं तो उसके मस्तिष्क के साथ जीवित सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा करूंगा और इस प्रकार उसका विश्वास प्राप्त करूंगा। वह हमारी अनियन्त्रित बातों को भले ही उपेक्षा करे, लेकिन मैं हार स्वीकार नहीं करूंगा। मैं अपना प्रयत्न तबतक जारी रखूंगा जबतक मैं उसे अपना मित्र नहीं बना लूंगा। एक बार सफलता मिलने पर शेष की पूर्ति होती रहेगी।

मुझे बच्चों पर सीधे उसके जन्म से ही दृष्टि रखनी होगी। मैं तो एक कदम और आगे बढ़ूंगा और यह कहूँगा कि शिक्षक का काम तो इसके पहिले से ही आरम्भ हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि स्त्री गर्भवती हो जाती है तो आशा देवी उसके पास जायेंगी और कहेंगी मैं वैसी ही माता हूं जैसी तुम बननेवाली हो। मैं अपने अनुभवों के आधार पर तुम्हे यह बता सकती हूं कि तुमको अपने अजन्मे शिशु तथा स्वयं अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा कैसे करनी चाहिए। वह उसके पति को यह भी बतायेगी कि उसका अपनी पत्नी के प्रति क्या कर्तव्य है और उन्हें गर्भस्थ शिशु की देख भाल मे क्या भाग लेना चाहिए। इस प्रकार बेसिक शिक्षा का अध्यापक जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेगा। प्रौढ़ शिक्षा भी स्वभावतः उसके कार्य-क्षेत्र का अंग बन जायगी।

प्रौढ शिक्षा का कुछ कार्य अनेक स्थानों मे हो रहा है। वह अधिकांशतः मिलवालों और उसी स्थिति के बड़े बड़े नगरों के लोगों के हाथों मे केन्द्रित है। वास्तव में गांव को किसी ने स्पर्श नहीं किया है। केवल 'तीन आर' की शिक्षा और राजनीति पर भाषण से मुझे संतोष नहीं हो सकता। मेरी कल्पना की प्रौढ़ शिक्षा से पुरुषों और स्त्रियों को कुशल नागरिक बनाना होगा, बच्चों के लिए सात वर्ष की शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाने की अपेक्षा प्रौढ शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाना और उसके कार्य को सुव्यवस्थित करना अत्यन्त कठिन है। दोनो (प्रारम्भिक शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा) का सामान्य केन्द्रीय उद्देश्य ग्रामीण उद्योग के माध्यम से शिक्षा देना होगा। बुनियादी तालीम के अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा मे कृषि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा। अक्षर ज्ञान की शिक्षा को भी स्थान मिलेगा पर बहुत सी बातें मौखिक ही सिखाई जायेंगी। विद्यार्थियों की अपेक्षा अध्यापकों के उपयोग के लिए अधिक पुस्तकें होंगी। हमे बहुमतवालों को यह शिक्षा देनी होगी कि वे अल्पमतवालों के साथ और इसी प्रकार अल्पमत-वाले बहुमतवालों के साथ कैसा व्यवहार करें। प्रौढ़ शिक्षा का उचित और सच्चा रूप वही है जो अपने पड़ोसियों के साथ मिलजुल कर रहने की शिक्षा देता है और अस्पृश्यता तथा साम्प्रदायिकता की जड़ काटता है।

—

प्रौढ़ शिक्षा का विकास

जीवन नायक

अंग्रेजी के भारत में आने के पूर्व यहां प्राचीन आचार्यों के मार्गदर्शन में एक उत्तम और सुगम शिक्षा-प्रणाली प्रचलित थी। १६०० से १८३३ के बीच इस प्रणाली में आवश्यकतानुसार परिवर्तन हुए पर व्यवस्था बनी रही। १८३३ से १८५७ और १८५७ से १८६७ के बीच सार्वजनिक शिक्षा की स्थिति सोचनीय रही। जब बालकों की शिक्षा की ऐसी दशा थी तो प्रौढ़ों की शिक्षा पर कौन ध्यान देता? १८६७ से १६०२ तक शिक्षा की स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार हुआ और १६३७ में शिक्षा की दिशा और कार्यक्रम निश्चित किये जा सके। १६३७ में प्रथम बार सत्तारूढ होने पर कांग्रेस-सरकार ने इस ओर विशेष ध्यान दिया।

शिक्षा-सम्बन्धी पतन की दृष्टि से मद्रास प्रान्त सबसे अधिक अभागा सिद्ध हुआ। इस कारण यह स्वाभाविक था कि शिक्षा-प्रसार का जोरदार आन्दोलन वहीं शुरू हो। प्रौढ़ों की शिक्षा का प्रारम्भ सबसे पहले मद्रास में ही हुआ। वहां हरिजनों के लिये प्रौढ़ - शालाएं खोली गयीं। किसान और मजदूर भी इन शालाओं में आते थे। मद्रास के बाद बंगाल और संयुक्त प्रांत में भी प्रौढ़-शालाएं खोली गयी थीं पर अनेक कारणों से असफल रहीं।

सबसे पहला कारण यह था कि प्रौढ़ों की शिक्षा का काम प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों से ही लिया जाता था। वे बच्चों के स्कूल में दिन-भर चिल्लाते-चिल्लाते तंग आ जाते थे और प्रौढ़-शालाओं में आकर नींद लेते थे। कहीं-कहीं इन्हीं शिक्षकों को डाकघरों में भी काम करना पड़ता था।

इन शालाओं में प्रौढ़ों की पढ़ाई-लिखाई के लिये वही साहित्य काम में लाया जाता था जिसे प्राथमिक शालाओं के बच्चे पढ़ते थे। प्रौढ़ों के लिये विशेष प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है, यह विचार केवल ईसाई धर्म-प्रचारकों के मन में आता था। ईसाई धर्म-प्रचारकों का ध्येय प्रौढ़ों में ईसाई-मत के प्रति आस्था जगाना ही था, परन्तु यह काम तब तक सरलता से नहीं चल सकता था जब तक उनमें लिखने-पढ़ने की सामान्य योग्यता न होती। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने भारत की प्रमुख भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद प्रकाशित किये। पाठकों के विचार से इनकी छपाई में भी सावधानी बरती। सरल भाषा और मोटे टाइप में छोटी-छोटी पुस्तकें तैयार कीं। प्रमुख भाषाओं के अतिरिक्त 'बोलियों' में भी ये अनुवाद किये गये और देश के प्रमुख नगरों में स्थापित 'मिशन' प्रेसों में छापे गये।

१६वीं शती के आरम्भ में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के साथ प्रौढ़ शिक्षा का आयोजन बड़ौदा में हुआ। इस आयोजन में उपयुक्त पाठन-सामग्री पर बल दिया गया और पुस्तकालयों की स्थापना भी की गयी। १६१२ में मैसूर में प्रौढ़ों की रात्रि पाठशालाएं खोली गयीं। परिचालित पुस्तकालय भी स्थापित किये गये। 'विज्ञान' नामक एक पत्रिका प्रकाशित की गयी। इस सारे कार्य का श्रेय मैसूर के तत्कालीन दीवान सर एम० विश्वेश्वरैया को दिया जाता है।

नव साक्षरों के लिये साहित्य - सृजन का विधिवत कार्य बिहार में १६३६ में शुरू हुआ। वहां के तत्कालीन शिक्षा मंत्री डा० सैयद महमूद ने ऐतिहासिक नारे 'ईच वन् टीच वन्' के साथ काम शुरू किया। 'महमूद-सिरीज' के अन्तर्गत प्रौढ़ों के लिये सौ पुस्तकें तैयार करायी गयीं। इस माला की प्रथम दो पुस्तकें थीं—'राजेन्द्र हिन्दी प्राइमर' और 'राजेन्द्र रीडर'। इनके द्वारा प्रौढ़ों को अक्षर-ज्ञान कराने और मात्रा - रहित सरल शब्दों के द्वारा सामान्य-वृत्तान्त पढ़ाने का भरसक प्रयत्न किया गया। माला की शेष पुस्तकों में खेती, पशुपालन, स्वास्थ्य, महा-

पुरुषों की जीवनियाँ, आविष्कारों की कथा, गृह-उद्योग, खनिज सम्पत्ति, चरित्र-निर्माण की कहानियाँ तथा नागरिकता आदि विविध विषयों पर प्रौढ़ नर-नारियों को ध्यान में रखकर सामग्री दी गयी थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में विकासोन्मुख परिवर्तन की गति तीव्र हुई। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा सर्वांगीण प्रगति का मार्ग अपनाया गया। वैज्ञानिक, औद्योगिक, शैक्षणिक तथा स्वास्थ्य आदि विविध विकास कार्यक्रम बनाये गये।

यह विचारधारा बलवती हुई कि पंचवर्षीय योजनायें सर्व साधारण के हित सुख के उद्देश्य से निर्धारित विकास-कार्यों की रूपरेखाएं हैं, जिनके रंग जनता के हाथों के स्पर्श से ही उभरेंगे और समय पाकर देश को सामर्थ्य का बहुरंगा चित्र स्पष्ट हो जायेगा। यदि चित्र में रंग भरने वाले हाथों को कार्यकुशल न बनाया गया तो सफलता कोसों दूर रहेगी।

हाथों की कार्यकुशलता उन्हें सचालित करने वाले मस्तिष्क के संस्कार पर निर्भर है। मस्तिष्क का यही संस्कार मनुष्य को मनुष्य बनाता है, दैनन्दिन जीवन की पीस डालने वाली नीरसता से उसे मुक्त करता है, प्रज्ञा क्षमता, साधुता और सौन्दर्य के साम्राज्य में उसका प्रवेश कराता है, श्रेयस्कर समाज-व्यवस्था के निर्माण में उसे प्रेरित करता है और भावी आयोजन के शिलान्यास की सामर्थ्य प्रदान करता है। लोक-रीति नीति लोकोत्सव और लोकसाध्य तथा ऐसे ही अन्य उपादान युगानुयुग से ये संस्कार जाग्रत करते रहे हैं।

सामाजिक महत्त्व के तथ्यों का निष्पक्ष और सामयिक आकलन शिक्षा के व्यापक आन्दोलन के बिना असंभव है—इस मान्यता से प्रेरित होकर विभिन्न देशों में शिक्षा के आन्दोलन तब तक आरम्भ किये जा चुके थे।

इनसे लाभ उठाकर अपने देश में वैसी ही योजनाओं का सूत्रपात किया जाये, इस विचार से देश के जाने माने शिक्षा-शास्त्री चीन, मलाया, इंडोनेशिया, वियतनाम, बर्मा और अमरीका आदि देशों की यात्रा करने गये। विदेशों में प्राप्त अनुभव के आधार पर उन्होंने यह मत प्रकट किया कि प्रौढ़ शिक्षा समाज शिक्षा का ही अंग है, वयस्क नर नारियों को पूर्ण विकास-प्राप्त नागरिक के रूप में प्रभावकारी व्यवहार-प्रणाली में दीक्षित करने के लिए समाज-शिक्षा का आयोजन बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिये, प्रौढ़ शिक्षा केवल अपढ़ प्रौढ़ों के लिए ही आवश्यक नहीं है, प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य साक्षरता का प्रसार मात्र नहीं है नये विचारों को आत्मसात् करने की क्षमता उत्पन्न करना ही समाज-शिक्षा का उद्देश्य है और समाज शिक्षा का वही महत्त्व है जो अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का है। जिस तरह प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के लिये वैज्ञानिक ढंग से लिखे गये उपयुक्त साहित्य का सृजन परम आवश्यक है उसी तरह समाज शिक्षा के लिये भी साहित्य-सृजन का विधिवत् अनुष्ठान जरूरी है।

इन शिक्षाविदों ने उन देशों का चित्र भी उपस्थित किया जहाँ क्रमबद्ध आर्थिक नियोजन की नीति अपनायी गयी है, जहाँ समाज-व्यवस्था को निश्चित क्रमसे बदलने के यत्न चल रहे हैं जहाँ नागरिकों को नये साँचेमें ढालने की जरूरत आ पड़ी है और सर्व-साधारणको शिक्षा या 'ट्रेनिंग' जरूरी हो गयी है, जहाँ बेकारी बढ़ रही है और प्रौढ़ शिक्षा ने प्राथमिक शिक्षा का रूप लेलिया है। उस समुदाय की शिक्षा भी आवश्यक हो गयी है जो काम-काज में लगा है, जिसकी कामकाज की परिस्थितियाँ उन्हें ऐसे बाली है, जो कामकाज के सिलसिले में एक दूसरे से पृथक होता जा रहा है। लोगों को फुरसत के समय का पूरा पूरा लाभ उठाने की शिक्षा देनी जरूरी हो गयी है; व्यवसायिक क्षमता बढ़ाने और जीवनमान ऊंचा करने के उद्देश्य से भी लोगों को शिक्षा दी जा रही है। लूले, लंगड़े, अन्धे और सुधारालयों में सजा काटने वाले प्रौढ़ों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा आवश्यक हो गयी है। स्कूल और कालेज से शिक्षा पाकर निकलने वाले विद्यार्थियों को अपनी रुचि और योग्यता का काम ढूंढने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उनके लिए विभिन्न देशों में ऐसे केन्द्रों की स्थापना की गयी है जहाँ उन्हें उचित मार्गदर्शन मिलता है और उनका फुर्सत का समय किसी उपयोगी काम को सीखने में बीतता है।

सरकारी नौकरी मे प्रवेश पा जाने वाले अपने काम की योग्यता अनायास ही प्राप्त नही कर लेते। सरकारी काक-काज की जटिलता परिवर्तन को गति और महत्व-पूर्ण पद पर आसीन व्यक्ति से अपेक्षित कार्यकी मर्यादा—इन बातो का ध्यान रखते हुए समय समय पर 'इन सर्विस ट्रेनिंग' दी जाने लगी है।

प्रौढो की शिक्षा के इन विशेष क्षेत्रों के अतिरिक्त, इमारतो की जाँच, राजपथ की सुरक्षा, सड़कोकी मरम्मत गन्दगी का निकास, अग्निकाड मे रक्षा, पीने के पानी की व्यवस्था, सरकारी कर्मचारियो की सहायता और विभिन्न विकास कार्यक्रमो मे जन सहयोग आदि के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध अनिवार्य हो गया है। ऐसा प्रबन्ध होने पर ही उस वातावरण का निर्माण हो सकेगा जो राष्ट्रीय प्रगति के लिए अनिवार्य है।

इस विश्लेषण को सामने रखकर 1938 से 1947 तक प्रौढ शिक्षा अथवा समाज शिक्षा के विभिन्न पहलुओ की जाँच विभिन्न राज्यो मे हुई और सत्ता हस्तातरित होने के बाद उन पर मनोयोगपूर्वक अमल किया गया। वयस्क नर नारियो के लिए समाचार पत्र, फिल्मे और पुस्तकें तैयार करने की दिशा मे जोरो से काम शुरू हुआ प्रौढ़ों के लिए पुस्तकें तैयार करने के लिए लेखकों को आमन्त्रित किया गया। स्वायत्त सस्थाओ को अनुदान देकर इस क्षेत्र मे काम करने के लिए प्रोत्साहित किया गया अल्पकालीन शिविरो मे काम करने के लिए अति-रिक्त पारिश्रमिक देकर शिक्षकोकी सेवायें प्राप्त की गयी। 'लिटरैसी हाउस' लखनऊ से उजाला, बिहार एजुकेशन सोसायटी की ओर से हिन्दी और मराठीमे पाक्षिक प्रकाश और रोशनी मध्यप्रदेश सरकार की ओर से हिन्दी और मराठी त्रैमासिक दीपक आदि पत्र पत्रिकायें प्रौढ़ो के लिए छापी गयीं। मोटे टाइप मे 16 पृष्ठो तक की सैंकड़ो रगीन पुस्तकें एक निर्धारित क्रम के आधार पर की गयीं। प्रौढ़ों को शिक्षा देने वाले शिक्षकों के मार्गदर्शन के लिए पुस्तिकाए तैयार की गयीं। सेवाभाव से इस क्षेत्र मे आने वाले व्यक्तियो और सस्थाओं के लिए मार्गदर्शक साहित्य विशेषतः बम्बई और मध्यप्रदेश राज्योंने प्रकाशित किया।

प्रौढ़ शिक्षा की योजनाएं विभिन्न राज्यो मे चलाई गयी इनमे मध्यप्रदेश सरकार द्वारा आयोजित समाज शिक्षा योजना को विशेष मान्यता प्राप्त हुई। मध्यप्रदेश के तत्कालीन गृह-मत्री द्वारकाप्रसाद मिश्र उक्त योजना के 'जनक' कहे जाते हैं। उनका नारा था—'सोशल रिक-न्स्ट्रक्शन थ्रु सोशल एजुकेशन'। प्रौढ शिक्षा अथवा समाज शिक्षा के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश, बिहार, बम्बई और मध्यप्रदेश मे सरकारी अथवा गैर-सरकारी प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रकाशित साहित्य पर यूनेस्को ने एक विचार गोष्ठी आयोजित की और यह मत प्रकट किया कि मध्य-प्रदेश राज्य के समाज-शिक्षा विभाग के अन्तर्गत काम करने वाले साहित्य केन्द्र ने प्रौढ़ों के विचार से विविध विषयों पर हिन्दी और मराठी मे जो साहित्य प्रकाशित किया है वह उत्कृष्ट और उपयुक्त है।

इस साहित्य की विशेषता यह थी कि इसके लेखन, मुद्रण, चित्राकन और विषय-चयन में बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया गया था। भूतपूर्व मध्यप्रदेश द्विभाषी-राज्य था, अतः सारा साहित्य हिन्दी और मराठी मे एक साथ छापा गया था। यह साहित्य इस निर्देश के साथ बिना-मूल्य बाँटा जाता था 'पढ़ो और दूसरे को पढ़ने दो'। प्रौढ़ो का हिन्दी-मराठी त्रैमासिक दो रगो मे मोटे टाइप के खीचो पर छापा जाता था और प्रति अक की एक लाख प्रतियाँ छपती थीं। शेष साहित्य भी पाठकों की सख्या मे उपयुक्त मुद्रण पद्धति से छपता था।

भारत सरकार ने नव साक्षरो के साहित्य-सृजन को प्रोत्साहित करने के विचार से नीचे लिखी योजनाएं शुरू की थीं :

(१) १९५० मे शिक्षा मन्त्रालय ने इदारा तालीम-ओ तरक्की नई दिल्ली को आर्थिक सहायता देकर पुस्तकें तैयार करायी। सस्था ने १७० पुस्तकें तैयार कीं, जिनमें से प्रत्येक की दस हजार प्रतियाँ छापी गयी। इन पुस्तकों की प्रतियाँ राज्य सरकारो को बाँटी गयीं ताकि वे अपनी भाषाओ मे वैसी पुस्तकें तैयार करा सकें।

(२) १९५३ में शिक्षा मन्त्रालय ने साहित्य शिविर

(किशोरी बंगाल) स्थापित किए ताकि नव साक्षरों के लिए साहित्य तैयार करने वाले लेखकों को प्रशिक्षण दिया जा सके। इन शिविरों पर होने वाला पूरा व्यय भारत सरकार ने ही उठाया। इनमें विभिन्न स्थानों पर १९५८ तक १३ शिविर आयोजित किए गए थे। प्रत्येक शिविर में २० लेखकों को ट्रेनिंग दी जाती थी।

(३) १९५४ में शिक्षा मंत्रालय ने नव साक्षरों के लिए प्रमुख भारतीय भाषाओं में रचित सर्वोत्तम साहित्य को पुरस्कृत करने के विचार से एक योजना शुरू की थी। यह योजना अब भी चल रही है। इसके अन्तर्गत प्रति वर्ष पाँच-पाँच सौ रुपये के ४० पुरस्कार दिए जाते हैं। योजना को चलते हुए १९ वर्ष हो चुके हैं। लेखकों को पुरस्कार देने के अतिरिक्त प्रत्येक पुरस्कृत पुस्तक की १५०० प्रतियाँ सरकार निःशुल्क वितरण के लिए खरीद लेती है।

(४) नव साक्षर जनता के लिए पुस्तकें तैयार करने के सम्बन्ध में यूनेस्को के सहयोग से तीन प्रतियोगिताएँ आयोजित की जा चुकी हैं। इसके अन्तर्गत बंगला, हिन्दी, तमिल और उर्दू में रचित पुस्तकों को पुरस्कार मिला है। चुने हुए [illegible] की सामान्य शब्दावली को एकत्र करने के लिए भारत सरकार ने कुछ अनुसंधान योजनाएँ स्थापित की थीं। अभिप्राय यह था कि वयस्क सामान्य शब्दावली की जाँच कर लेने के बाद नव साक्षरों के लिए उसी शब्दावली के आधार पर साहित्य तैयार किया जाए।

(५) भारत सरकार की आर्थिक सहायता से निजी संस्थाओं ने हिन्दी में अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनमें मुख्य हैं ज्ञान सरोवर (पाँच खंडों में) और हिन्दी विश्वभारती (दस खंडों में)। ये दोनों विश्वकोष हैं।

(६) १९५७ में भारत सरकार ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की स्थापना इस अभिप्राय से की थी कि इसके द्वारा देश में सार्वजनिक संस्थाओं, पुस्तकालयों और जनसाधारण को अच्छी पुस्तकें सुलभ हो सकें।

१९५१ में भारत में ऐसे लोगों का प्रतिशत १६.६ था जो केवल पढ़ लिख सकते थे। १९६१ में यह प्रतिशत २४.० हुआ और १९७१ में २९.४५। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा की धीमी प्रगति हुई है। १९६१-७१ के बीच १५-२४ आयु वर्ग के साक्षर स्त्री पुरुषों की संख्या १.७६ करोड़ बढ़ी है। पाँचवीं योजना के अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा के लिये ३३ करोड़ रुपये का प्रावधान है जब कि चौथी योजना में यह प्रावधान ८ करोड़ रुपये ही था।

प्रौढ़ शिक्षा का दायित्व राज्य सरकारों का है तो भी केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय प्रारम्भिक योजनाएँ शुरू करके उनके लिए आर्थिक सहयोग देता है। देश की लगभग २०० स्वैच्छिक संस्थाएँ प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रम चलाती हैं।

पिछले कुछ वर्षों से प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों में साक्षरता प्रसार पर उतना बल नहीं दिया जा रहा है जितना [illegible] ऐसी शिक्षा पर जो शिक्षार्थियों के व्यवसाय, रहन सहन और उनके समाज की विकासमूलक आवश्यकताओं से सम्बद्ध हो।

फार्मर्स फंक्शनल लिटरेसी प्रोग्राम १९६७-६८ में पायलट योजना के रूप में शुरू किया गया था। इसके अन्तर्गत निरक्षर किसानों को साक्षर बनाने के साथ ही साथ उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है ताकि उनके माध्यम से कृषि उत्पादन बढ़ाया जा सके। यह योजना कृषि मंत्रालय, सूचना और प्रसार मंत्रालय तथा शिक्षा मंत्रालय द्वारा १०७ जिलों में संयुक्त रूप से चलायी जा रही है। १९७४-७५ में इसके माध्यम से १.५ लाख किसानों को लाभ पहुँचाया गया था।

सर्वप्रथम बम्बई में स्थापित 'पोलिवेलेंट एडल्ट सेंटर' में विभिन्न व्यवसायों और सामान्य प्रशिक्षण के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। प्रौढ़ों के विभिन्न वर्गों की विशिष्ट आवश्यकताओं के साथ साथ समय और स्थान विषयक उनकी सुविधाओं का विचार रखते हुए यह कार्यक्रम तय किए जाते हैं।

उपर्युक्त विभिन्न अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम चलाने के लिए उपयुक्त साहित्य की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। ऐसे साहित्य के निर्माण और प्रकाशन के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के साथ साथ निजी क्षेत्र में भी अभियान चलाये जाने चाहिए। एक बार साक्षर हो जाने के बाद ऐसे स्त्री पुरुष पुनः निरक्षरता के अँधेरे में न दब जायें इसके लिए उन्हें उपयुक्त पठन सामग्री लगातार मिलनी चाहिए। प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त साहित्य की आवश्यकता बढ़ती जायगी और यह आवश्यक होगा कि ऐसे साहित्य के वितरण की सुचारु व्यवस्था की जाय और आवश्यकतानुसार चल और अचल पुस्तकालय स्थापित किये जाय।

हमें स्कूल क्यों समाप्त करना है

अनुवादक—देवेन्द्रदत्त तिवारी

[इवान इलिच की प्रसिद्ध पुस्तक 'डी-स्कूलिंग सोसाइटी' का अनुवाद हम क्रमश नयी तालीम मे इसलिए प्रकाशित कर रहे हैं कि इवान इलिच के विचार गांधीवादी विचार-धारा से मिलते-जुलते हैं। यह अनुवाद सर्वाधिकार सुरक्षित है।] [गतांक से आगे]

यह सब निर्धन तथा समृद्ध राष्ट्रों दोनों ही के लिए है, किन्तु दोनों में यह विभिन्न रूपों में व्यक्त होता है। आज की नये प्रकार की गरीबी निर्धन राष्ट्रों मे अधिकतर लोगों को अधिक प्रत्यक्ष रूप मे किन्तु अधिक हल्के रूप में प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए लैटिन अमरीका में दो तिहाई बच्चे पाँचवी कक्षा पास किये बिना ही स्कूल छोड़ देते हैं, किन्तु स्कूल छोड़ने वाले इन बच्चों की वह दुर्दशा नहीं होती जो सम्पन्न राष्ट्र अमरीका मे होती है।

आज दुनिया में बहुत कम राष्ट्र ऐसे हैं जो पुराने प्रकार की गरीबी के शिकार हैं वह गरीबी अधिक टिकाऊ किन्तु कम मजबूरियों से भरी हुई होती थी। लैटिन अमरीका के बहुत से देश आर्थिक विकास तथा प्रतियोगी उपभोग की दिशा में अग्रसर हो चुके हैं अथवा आज की नयी गरीबी की ओर बढ़ चुके हैं। वहाँ के नागरिकों ने अमीरों की तरह सोचना और गरीबों की तरह जिंदा रहना सीख लिया है। वहाँ के कानूनों के अनुसार ६ से १० वर्ष तक की स्कूली शिक्षा अनिवार्य है। न केवल अर्जेंटिना बल्कि मेक्सिको या ब्राजील मे भी साधारण नागरिक उत्तरी अमेरिका के पैमाने से पर्याप्त शिक्षा की परिभाषा करता है, यद्यपि अमरीका जैसी लम्बी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर बहुत कम संख्या मे कुछ लोगों को मिलेगा। इन देशो में अधिक संख्या मे लोग स्कूल-ग्रस्त हो चुके हैं, अर्थात उनमें उन लोगों के संदर्भ में हीन भावना आ चुकी है जिन्हें अच्छी स्कूली शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा है। स्कूली शिक्षा के लिए उनका पागलपन उनके दोहरे शोषण की भूमिका तैयार करता है: एक तो इससे कुछ चुने हुए लोगों की शिक्षा के लिए निरन्तर अधिकाधिक सार्वजनिक धनराशि की व्यवस्था की जाती है और दूसरे अधिकांश लोग इस प्रकार के सामाजिक नियंत्रण के प्रति अपनी अधिकाधिक स्वीकृति प्रदान करते हैं।

यह एक विचित्र स्थिति है कि यह विश्वास कि सार्वभौम शिक्षा सर्वथा आवश्यक या अनिवार्य है, उन देशों में अधिक दृढ़ है जिनमें बहुत कम लोग स्कूली शिक्षा प्राप्त कर सके हैं या कर सकेंगे। फिर भी लैटिन अमरीका में अधिकांश अभिभावक और बच्चे स्कूली शिक्षा के विभिन्न रास्तों पर चलने का प्रयास करते हैं। अनुपाततः राष्ट्रीय बचत की वह धनराशि जो इन देशों के स्कूलों और शिक्षकों पर खर्च की जाती है, समृद्ध देशों की तुलना मे अधिक होगी किन्तु यह धनराशि अधिकांश लोगों के लिए चार वर्ष की भी स्कूली शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए नितांत अपर्याप्त है। फीडेल कैस्ट्रो (fidel castro) ऐसा लगता है कि वे स्कूल-विहीनता की ओर जाना चाहते हैं जब वे यह आश्वासन देते हैं कि १९८० तक क्यूबा में विश्वविद्यालय समाप्त हो जाएगा क्योंकि क्यूबा मे पूरा जीवन ही एक शैक्षिक अनुभव होगा। किन्तु क्यूबा अन्य लैटिन अमरीका के देशों की तरह, ग्रामर और हाई स्कूल स्तर पर, ऐसे काम कर रहा है जैसे एक परिभाषित 'स्कूली उम्र' की अवधि से गुजरना सभी के लिए निर्विवाद लक्ष्य निश्चित किया गया हो और यह लक्ष्य केवल साधनों के अभाव के कारण विलम्बित हो रहा हो।

बढ़ते हुए इलाज के दो धोखे—एक धोखा वास्तव में अमरीका मे है और दूसरा धोखा लैटिन अमरीका मे आकां-

क्षित अथवा आश्वसित हैं—एक दूसरे के पूरक हैं। उत्तरी अमरीका के गरीब बारह वर्ष के इलाज से उसी तरह मजबूर हैं जिसकी कमी के कारण लैटिन अमरीका के गरीब बेहद पिछड़े हुए समझे जाते हैं। न तो उत्तरी अमरिका मे और न लैटिन अमरीका मे गरीबों को अनिवार्य स्कूलों मे समता मिल पाती है। लेकिन दोनों स्थानों मे स्कूल के अस्तित्व के कारण ही गरीब अपनी शिक्षा पर नियन्त्रण नहीं रख पाता और हतोत्साह तथा मजबूर हो जाता है, सार्वजनिक शिक्षा का इलाज प्राप्त करने के लिए विश्व मे सभी जगह समाज पर स्कूल का प्रभाव शिक्षा विरोधी है। स्कूल को यह माना जाता है कि वह शिक्षा में विशेषज्ञता रखता है। स्कूल की असफलता को लोग इस बात का प्रमाण समझते हैं कि शिक्षा बहुत कीमती है, बहुत पेचीदी है, सदैव रहस्यमय है और बहुधा दुःसाध्य कार्य है।

स्कूल पैसा लेता है, उसमे आदमी लगते हैं और शिक्षा के प्रति जो सद्भावना है उसको भी लेता है। साथ ही अन्य संस्थाओं को शैक्षिक कार्य करने के प्रति हतोत्साहित करता है। काम, अवकाश, राजनीति, शहरी जीवन यहाँ तक कि पारिवारिक जीवन पूर्व निर्धारित आदतों और ज्ञान के लिए स्कूलों पर निर्भर करता है, बजाय इसके कि ये सब स्वयं शिक्षा के साधन बन जायें। एक साथ ही स्कूलों तथा उन संस्थाओं का मूल्य जो स्कूलों पर निर्भर करती हैं बाजार से बाहर लगाया जाता है अर्थात वास्तविक आवश्यकताओं से उनका सम्बन्ध नहीं रहता।

अमरीका मे प्रति व्यक्ति स्कूली शिक्षा का खर्च उसी तेजी से बढ़ा है जिस तेजी से चिकित्सा का। लेकिन डाक्टरों तथा शिक्षकों द्वारा जो बढ़ता हुआ इलाज है उसके परिणाम भी वैसे ही प्रतिकूल हैं। पिछले वर्षों मे ४५ वर्ष से ऊपर की उम्र वालों पर चिकित्सा के व्यय कई गुना बढ़ गये हैं जबकि प्रत्याशा मे आयु केवल ३ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। शैक्षिक खर्च मे वृद्धि के विचित्र परिणाम हुए हैं। अन्यथा प्रसीडेंट निक्सन को १९७० को यह आश्वासन देने के लिए बाध्य न होना पड़ता कि प्रत्येक बच्चे को शीघ्र ही पढ़ने का अधिकार (Right to Read) स्कूल छोड़ने क पूर्व मिलेगा।

अमरिका मे उस शिक्षा के लिए जिसमें शिक्षकों के अनुसार प्राइमर तथा हाई स्कूल मे सबको समान शिक्षा मिलेगी, प्रतिवर्ष ८०० अरब डॉलर (१डॉलर = लगभग ८ रु०) की आवश्यकता पड़ेगी। यह ३६० अरब डॉलर की उस धनराशि का दुगना है जो इस पर खर्च किया जा रहा है। स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कल्याण विभाग और फ्लोरिडा विश्वविद्यालय के द्वारा तैयार किये गए स्वतन्त्र अनुमानों के अनुसार वर्तमान ४५० अरब डालर के अनुमानों के स्थान पर १९७४ तक यह धनराशि १०७० अरब डालर हो जाएगी। इन आंकड़ों मे वह बड़ा भारी व्यय नहीं सम्मिलित है जिसे 'उच्च शिक्षा' कहा जाता है और जिसके लिए मांग बड़ी तीव्रगति से बढ़ रही है। अमरीका, जिसने १९६९ मे लगभग ८०० अरब डॉलर 'प्रतिरक्षा' पर खर्च किये थे, जिसमे वियतनाम की लड़ाई का व्यय भी सम्मिलित है, समान स्कूली शिक्षा देने के लिए वास्तव में गरीब है। स्कूली अर्थ-व्यवस्था के लिए नियुक्त राष्ट्रपति की समिति को यह पूछने के बजाय कि कैसे बढ़ते हुए खर्च का प्रबन्ध किया जा सकता है या कैसे उसे कम किया जा सकता है, यह पूछना चाहिए कैसे इस खर्च से बचा जा सकता है।

कम से कम यह तो मानना ही पड़ेगा कि अनिवार्य समान स्कूली शिक्षा आर्थिक दृष्टि से समान नहीं है। लेकिन अमरीका मे प्रत्येक ग्रेजुएट विद्यार्थी पर उस धनराशि का ३५० से १५०० गुना सार्वजनिक धन व्यय किया जाता है जो उस साधारण नागरिक पर व्यय होता है जो निर्धनतम तथा सम्पन्नतम के बीच मे स्थित है। अमरीका मे अन्तर कम है किन्तु भेद अधिक है। सम्पन्नतम लगभग १० प्रतिशत अभिभावक अपने बच्चों क लिए प्राइवेट शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं और फाउन्डेशन अनुदानों से उनकी सहायता करते है। इसके अतिरिक्त वे सार्वजनिक धनराशि से प्रति बालक १० गुना अधिक प्राप्त करते हैं' यदि निधनतम १० प्रतिशत बच्चों पर किए गए प्रति बालक खर्च से उसकी तुलना की जाए। इसके मुख्य कारण ये हैं कि अमीर बच्चे लम्बी अवधि तक स्कूल में रहते हैं' विश्वविद्यालय की शिक्षा का एक वर्ष स्कूली शिक्षा के एक वर्ष से बेहिसाब अधिक खर्चीला होता है, और अधिकांश

विश्वविद्यालय कम से कम अप्रत्यक्ष रूप से, करों (Tax) से प्राप्त धनराशी पर निर्भर करते हैं।

अनिवार्य शिक्षा से समाज में ध्रुवीकरण होता है। इससे एक अन्तर्राष्ट्रीय जाति व्यवस्था में विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में ऊँच नीच का भेदभाव बढ़ता है। जाति व्यवस्था की भाँति देशों का मूल्यांकन किया जाता है। उनकी शैक्षिक प्रतिष्ठा इस आधार पर निर्धारित की जाती है कि उनके नागरिकों ने कितने औसत वर्ष स्कूली शिक्षा में व्यतीत किये हैं। इस मूल्यांकन का सम्बन्ध प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पादन (GNP) से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित है जो और भी अधिक कष्टप्रद है।

स्कूलों की विसंगति स्पष्ट है बढ़ता हुआ व्यय उनकी घर में और बाहर बरबाद करने की क्षमता को बढ़ाता है। इस विसंगति को सार्वजनिक प्रश्न बनाना चाहिए। सामान्यतः अब यह स्वीकार किया जाता है कि यदि हम भौतिक सामानों के उत्पादन की वर्तमान धारा को प्रतिकूल दिशा में नहीं मोड़ते हैं। भौतिक वातावरण नैतिक रासायनिक प्रदूषण से शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा साथ ही यह भी स्वीकार करना चाहिए कि सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को उसी प्रकार का खतरा स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कल्याण विभाग द्वारा प्रजनित प्रदूषण से है। यह स्थिति स्वास्थ्य शिक्षा और कल्याण के प्रतिरोध और प्रतियोगी उपभोग का उप-परिणाम है।

स्कूलों की वृद्धि उतनी ही विनाशकारी है जितनी शस्त्रास्त्रोंकी किन्तु उतने प्रत्यक्ष रूपमें नहीं। विश्व में हर जगह स्कूलोंपर व्यय छात्र संख्या और कुल राष्ट्रीय उत्पादन (GNP) की अपेक्षा तीव्रतर गति से बढ़ा है। हर जगह स्कूलों पर व्यय अभिभावकों, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की प्रत्याशाओं को पूरा नहीं करता। हर जगह इस स्थिति से वह प्रेरणा तथा अर्थ व्यवस्था हतोत्साहित हो जाती है जो बड़े पैमाने पर बिना स्कूल के शिक्षा नियोजित करने से सम्बद्ध होती है। अमरीका विश्व के सामने यह प्रमाणित कर रहा है कि किसी भी देश के पास इतना पैसा नहीं हो सकता कि वह एक ऐसी स्कूल व्यवस्था का खर्च वहन कर सकें जो इस व्यवस्था के केवल अस्तित्व से ही स्वयं सृजित मांगों के रूप में हमारे सामने आता है क्योंकि एक सफल स्कूल व्यवस्था माता पिता तथा विद्यार्थियों को इस बात के लिए तैयार करती है कि वे एक और बड़ी खर्चीली स्कूली व्यवस्था के सर्वोच्च महत्व को समझ सकें, जिसका खर्च वैसे वैसे बेहिसाब बढ़ता है जैसे-जैसे उच्च कक्षाओं की शिक्षा की मांग बढ़ती है और सुलभता कम होती जाती है।

बजाय इसके कि यह कहा जाय कि समान स्कूली शिक्षा अस्थायी रूप से अव्यवहार्य है, हमें यह मानना चाहिए कि सिद्धान्ततः यह नितांत असंगत है और यह कि इसका प्रयास करना बौद्धिक दृष्टि से घातक क्यों है सामाजिक दृष्टि से ध्रुवीकरण की जननी है और उस राजनीतिक व्यवस्था के प्रति आस्था नष्ट करने वाली है जो इसे बढ़ावा देती है। अनिवार्य स्कूली शिक्षा के सिद्धांतों की कोई तार्किक सीमाएँ नहीं हैं। ह्वाइट हाउस ने अभी हालमें एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया। डा हतशनेकर 'मनश्चिकित्सक' जिन्होने राष्ट्रपति के पद के अभ्यर्थी की अर्हता अर्जित करने के पूर्व श्री निक्सन का इलाज किया था, राष्ट्रपति को यह संस्तुति की थी कि ६-८ वर्ष के सभी बच्चों की परीक्षा इस दृष्टि से की जाय जिससे ऐसे बच्चे छाँटे जा सकें जिनकी प्रवृत्तियां विध्वंसक हैं और उनके अनिवार्य इलाज की व्यवस्था की जाए। यदि आवश्यक हो तो उनकी पुनर्शिक्षा की व्यवस्था विशेष संस्थाओं में की जाय। अपने डाक्टर से प्राप्त इस स्मृत पत्र को श्री निक्सन ने समीक्षा के लिए स्वास्थ्य शिक्षा और कल्याण विभाग को भेजा। वास्तव में पथ से विचलित होने के पूर्व ही बच्चों को रोग से बचाने के लिए बन्दी-शिविर बनाना स्कूली व्यवस्था का तर्क संगत सुधार होगा।

समान शिक्षा का अवसर सचमुच एक वाञ्छनीय और सम्भव लक्ष्य है किन्तु इसे स्कूल शिक्षा के अनुरूप कर देना वैसा ही भ्रम है जैसा मोक्ष को गिरजाघर के समरूप कर देना। स्कूल आजके सर्वहारा का विश्व धर्म है जो तकनीकी युग के गरीबों के सामने मोक्ष के निरर्थक आश्वासन प्रस्तुत करता है। राष्ट्र राज्यों ने इसे स्वीकार कर लिया है और सभी नागरिकों को एक श्रेणी बद्ध पाठ्यचर्या से बांध दिया गया है जिसके द्वारा उन्हें उसी तरह क्रमबद्ध डिप्लोमा

प्राप्त होते हैं जैसे पुराने समय में दीक्षा के कर्मकाण्ड और तत्पगत पदोन्नतियां हुआ करती थी। आधुनिक राज्य ने यह दायित्व अपने ऊपर ले लिया है कि वह अच्छे इरादे वाले आवारा अधिकारियों और काम की आवश्यकताओं के माध्यम से अपने शिक्षार्थियों के निर्णय को लोगों के ऊपर उसी तरह से लादे जैसे स्पेन के राजा अपने धर्म-शास्त्रियों को विजेताओं तथा धार्मिक न्यायालयों के माध्यम से जबर्दस्ती लादा करते थे।

दो शताब्दी पूर्व अमरीका ने एक चर्च के एकाधिकार को समाप्त करने के आन्दोलन में विश्व का नेतृत्व किया था। अब हमें स्कूल के एकाधिकार को संवैधानिक रूप से समाप्त करने की आवश्यकता है जिससे एक ऐसी व्यवस्था समाप्त हो सके जो पक्षपात को भेदभाव से विधानत सम्बद्ध करती है। आधुनिक राजकीय समाजके अधिकारों के बानन की पहली धारा कुछ वैसी ही होगी जैसी अमरीका के संविधान के प्रथम संशोधन में है 'शिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई कानून नहीं बनाएगा सबके लिए कोई अनिवार्य प्रणाली नहीं होगी।

स्कूल की इस प्रकार समाप्ति को प्रभावी बनानेके लिए हमें कानूनकी आवश्यकता है जो ऐसे ज्ञानार्जन के केन्द्रों में, जो किसी पाठ्यक्रमकी पूर्व उपस्थिति पर आधारित होते हैं किराये के भेदभाव मतदान या प्रवेश को वर्जित करे। इस आरक्षण का अर्थ यह न होगा कि किसी विशेष कार्य या भूमिका के लिए योग्यता सम्बन्धी क्रियात्मक परीक्षा न ली जाए। लेकिन इससे यह अवश्य होगा कि इस समय ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसने सर्वाधिक सार्वजनिक धन खर्च करके कोई कौशल प्राप्त कर लिया है या जैसा सर्वथा सम्भव है, जिसने एक डिप्लोमा प्राप्त कर लिया है जिसका सम्बन्धित कौशल या काम से कोई सम्बन्ध नहीं है, जो असंगत पक्षपात है कि वह समाप्त हो जाए। जब नागरिकों को यह आश्वासन मिलेगा स्कूल के जीवन की किसी बात से वह काम के अयोग्य न माना जाएगा, तभी स्कूल की वैधानिक समाप्ति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रभावी होगी।

स्कूली शिक्षा से न तो ज्ञान बढ़ता है और न न्याय की प्रतिष्ठा होती है क्योंकि शिक्षक शिक्षण को प्रमाणपत्रों में लपेटते हैं। ज्ञानार्जन तथा सामाजिक भूमिका की जिम्मेदारी स्कूली शिक्षा में विलीन हो जाती है। सीखने का अर्थ यह है कि कोई नया कौशल या नयी दृष्टि प्राप्त की जाय, जब कि कक्षोन्नति उस अभिमत पर निर्भर करती है जो दूसरों का है। बारबार सीखना शिक्षण का परिणाम है किन्तु काम के बाजार में किसी वर्ग या भूमिका के लिए चुनाव अधिकाधिक उपस्थिति की लम्बाई पर निर्भर करता है।

शिक्षण उन परिस्थितियों का चुनाव है जो ज्ञानार्जन में सहायक होती है। परिस्थितियों का पाठ्यक्रम बनाकर भूमिका निश्चित की जाती है। इन परिस्थितियों को विद्यार्थी को भुगतना है यदि उसे कक्षोन्नति चाहिए। स्कूल इन भूमिकाओं, सीखने को नहीं, शिक्षण को जोड़ता है। न तो यह तर्क संगत है और न मुक्तिप्रद। यह तर्कसंगत नहीं है क्योंकि यह सम्बन्धित गुणों या योग्यता को भूमिका से नहीं जोड़ता, बल्कि उस प्रक्रियासे जोड़ता है जिससे यह समझा जाता है कि वे गुण अर्जित किये जाते हैं। यह मुक्तिप्रद या शैक्षिक नहीं है क्योंकि स्कूल उनलोगों के लिए शिक्षण सुरक्षित रखता है जिनका सीखने का हर एक कदम सामाजिक नियंत्रण की पूर्वानुमोदित प्रणाली के अनुकूल होता है।

पाठ्य क्रम का प्रयोग सर्वदा सामाजिक श्रेणी-निर्धारण के लिए हुआ है। कभी-कभी ऐसा जन्म के पूर्व भी होता है। काम हमें किसी जाति या सम्पन्न वंश-परम्परा से जोड़ता है। पाठ्यक्रम एक कर्मकाण्ड का रूप ले सकता है, या क्रमबद्ध पवित्र दीक्षाओं का, अथवा युद्ध या शिकार में निरन्तर बहादुरी के कार्यों का अथवा प्रत्येक पूर्व की राजकृपाओं पर निर्भर प्रगति भी हो सकती है। सार्वभौम स्कूली शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत जीवन के इतिहास से भूमिका निर्धारण को अलग करना था। इसका उद्देश्य यह था कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक पद के लिए समान अवसर मिले। अब भी बहुत से लोग इस भ्रम में रहते हैं कि स्कूल इस बात को सुनिश्चित करता है कि सम्बद्ध अर्जित उपलब्धियों पर जनता का विश्वास रहे। किन्तु अव-

सदों को समान करने के बजाय स्कूली व्यवस्था ने उन पर एकाधिकार कर लिया है।

पाठ्यक्रम से योग्यता को अलग करने के लिए, मनुष्य के सीखने की इतिहास की जांच को निषिद्ध कर देना चाहिये जैसे उसके राजनीतिक झुकाव, गिरिजाघर में उपस्थिति, वंश परम्परा, दान स्वभाव या जातिगत पृष्ठभूमि के बारे में पूछताछ नहीं की जाती। ऐसे कानून बनने चाहिए जिनमें पूर्वार्जित स्कूली शिक्षा पर आधारित भेद-भाव वर्जित हो। यह ठीक है कि कानून उसके प्रति पूर्वाग्रह को नहीं समाप्त कर सकते जिसने स्कूली शिक्षा नहीं प्राप्त की है और न उनका उद्देश्य यह है कि वे किसी कातिल से विवाह करने के लिए किसी को बाध्य करें। किन्तु वे अनुचित भेदभाव को निरुत्साहित कर सकते हैं।

एक दूसरा प्रमुख भ्रम जिसपर स्कूली व्यवस्था निर्भर करती है, यह है कि बहुत सा सीखना शिक्षण का परिणाम है। यह ठीक है कि शिक्षण विशेष प्रकार के ज्ञानार्जन में सहायक हो लेकिन अधिकतर लोग अपना अधिकतर ज्ञान स्कूल के बाहर प्राप्त करते हैं जहाँ जैसा कुछ समृद्ध देशों में है स्कूल उनके अधिकांश जीवन के लिए बन्दीकरण के स्थान हो गए हैं।

अधिकतर सीखना आकस्मिक होता है और अत्यन्त सोद्देश्य ज्ञानार्जन भी शिक्षण कार्यक्रमित का परिणाम नहीं है। सामान्य बच्चे अपनी प्रथम भाषा आकस्मिक ढंग से सीखते हैं, और यदि माँ-बाप उनके ऊपर ध्यान देते हैं तो और शीघ्रता से सीखते हैं। बहुत से लोग जो दूसरी भाषा अच्छी तरह सीखते हैं वे विचित्र परिस्थितियों के परिणामस्वरूप सीख पाते हैं, न कि क्रमबद्ध शिक्षण के कारण। ऐसे लोग अपने पितामह के पास रहने चले जाते हैं, या वे यात्रा करते हैं अथवा किसी विदेशी से प्रेम करने लगते हैं। पढ़ने में प्रवाह भी बहुधा ऐसी पाठ्येतर क्रियाओं का परिणाम होता है। बहुत से लोग जो व्यापक रूप से पढ़ते हैं और आनन्द के लिए पढ़ते हैं, यह सोचते हैं कि ऐसा पढ़ना उन्होंने स्कूल में सीखा। किन्तु जब उनसे प्रश्न किया जाता है, तो उनका यह भ्रम दूर हो जाता है।

क्रमशः

आदरणीय धीरेनदा की स्मृति में

विनोबा

आप लोगों ने शायद पेपर में पढ़ा होगा, धीरेन दा की मृत्यु हुई। धीरेन दा को कौन नहीं जानता? वे विनोद में कहते थे कि बाबा से मैं एक दिन बड़ा हूं और २ साल छोटा हूं। एक दिन का मतलब है कि बाबा का जन्मदिन ११ सितम्बर का है और उनका १० सितम्बर का है। बाबा ८३ वर्ष पूर्ण करके ८४ में प्रवेश कर रहा है। धीरेन दा करीब-करीब ७८ के थे गए। कृष्णराज उनसे मिलने १८ तारीख को गया था। शाम को एक घण्टा भर उनसे बात की और उसी वक्त उन्होंने कह दिया कि 'बाबा को मेरे प्रणाम कह देना।' उसके बाद १९ तारीख को वे बेहोश हो गए और २१ तारीख को गए। करीब-करीब ७८ की उम्र थी। क्रम तोड़ करके वे चले गए। इस प्रकार क्रम तोड़कर श्रीमन् जी भी गए। क्रम तोड़ने वालों का क्रम तोड़ना जारी है। मैं उम्मीद करता हूं कि यहां कोई क्रम नहीं तोड़ेगा। धीरेन दा तो बाबा के साथ बरसों रहे। एक के बाद एक साथी छोड़े जा रहे हैं। हमको सबको जाना है ही, यह पक्की बात है। लेकिन जाने के पहले आत्मसाक्षात्कार करके जाना चाहिए। बाबा तो रोज मृत्यु का पूर्व प्रयोग सोने से पहले करता है और भगवान से कहता है, मैं खुशी से तेरे पास आऊंगा। अगर तू मुझे दूसरा जन्म देगा तो मैं सेवा करूंगा, ऐसी प्रार्थना मैं रोज करता हूं। इसलिए हरएक को जाना तो है ही।

धीरेन दा ने बहुत बड़ी बात कही है—'क्रांति की नहीं जाती, होती है।' और रचनात्मक काम, सेवा-कार्य करते रहना चाहिए। एक-एक जिला लेकर उसमें सब तरह का रचनात्मक कार्य करना चाहिए। इसको उन्होंने मार्गखोजन नाम दिया है। गांव के लोगों के पास हमको जाना चाहिए। उनके पास जो ज्ञान है वह उनको परम्परा से प्राप्त हुआ है। वे निरक्षर तो हैं लेकिन निरक्षर होने पर भी निरर्थक नहीं, सार्थक हैं। उनके पास जाकर हम-को काम करना चाहिए। इस तरह एक-एक जिला लेकर काम करेंगे तो हमको मार्ग मिलेगा।

धीरेनदा मार्ग खोजते-खोजते गए। १८ तारीख को 'बाबा से प्रणाम कह दो' कहना और १९ तारीख को बेहोश हो जाना, २१ तारीख को चले जाना। यह छोटी बात नहीं है कि अन्त में प्रणाम कहकर चले जाना। [बाबा का गला भर आता है और आंसू बहते हैं]।

भगवान उनको सद्‌गति दे, ऐसा कहने की जरूरत ही नहीं है, क्योंकि उन्होंने निरन्तर सत्कार्य किया है।

उनकी मृत्यु से बाबा को दुःख जरूर हुआ इसलिए कि वे बाबा के पहले चले गए। (अश्रु) वास्तव में बाबा को पहले जाना था, उनको बाद में जाना था। इसलिए दुःख हुआ। लेकिन जिसका प्रारब्ध क्षय होता है उसको जाना ही पड़ता है। धीरेन दा को सद्‌गति मिलेगी और वे भगवान के पास निरन्तर रहेंगे, इसमें मुझे कोई शक नहीं।

दो शब्द हैं—फनाफिल्लाह, बकाबिल्लाह। फना फिल्लाह यानी भगवान में फना हो जाना। बकाबिल्लाह यानी बाकी रहना, भगवान के साथ बातचीत करना। ऐसे धीरेनदा भगवान के साथ बातचीत करते होंगे। हम जितने साथी हैं वे सब मिलकर के भगवान के पास बैठकर के बातचीत करेंगे। जैसी अभी यहां बैठक हो रही है वैसी ही बैठक वहां होगी। बाबा ने जाहिर ही किया है 'जैसी कारंजाची कण्ठा'—हिन्दी में उसे फव्वारा कहते हैं। भगवान के पास पहुंचकर फिर दुनिया की सेवा के लिए ऊपर से नीचे आना। प्रसिद्ध वाक्य है—'हरिजन तो मुक्ति न मागे।' (अश्रु) हरि के सेवक मुक्ति नहीं मांगते। तुकाराम महाराज ने यही कहा है—'न लगे मुक्ति धन

सम्पदा, तुका ह्मणे धर्मवासी सुखें घालावे आह्मांही।' हम मुक्ति मांगते नहीं, सत्सग की इच्छा करते हैं और केवल भक्ति की कामना करते हैं। यही लिखा है अवमिषा में, 'मुक्ति निस्पृह जिते'। (अयु) नामघोषा का पहला श्लोक है—'जो मुक्ति की कामना करते नहीं, रसमय मांगो हो भगति।' हम भक्ति चाहते हैं, मुक्ति चाहते नहीं। भक्ति रसमय है। तो बाबा ने भी तय किया है—बाबा मरेगा, मालूम नहीं कब मरेगा, जब प्रारब्ध क्षय होगा तब मर जाएगा। मरेगा तो ऊपर जाएगा। 'नक्षत्रैर्मिनक्षत्री' में मिल जाएगा।

धीरेन भाई का मुख्य विचार था, मार्गखोजन करना। तो सब लोग एक-एक जिला लेकर गांव-गांव में जाकर लोगों के पास पहुँचें और उनको एक परिवार बनाने की बात कहें। इसी कार्य का चिन्तन मनन करें तो यह मार्ग खोजन की प्रक्रिया हम सबको, जो जीवित हैं उन सबको करनी चाहिए।

अब इसके बाद दो मिनट मौन होगा और फिर विष्णु-सहस्रनाम का पाठ होगा।

प्रौढ़ शिक्षा का क्षेत्र

(कोठारी आयोग की रिपोर्ट से)

17.1 स्कूल की पढ़ाई के साथ ही शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि वह एक जीवन-व्यापी प्रक्रिया है। आज के वयस्क को तेजी से बदलते हुए संसार और समाज की बढ़ती हुई जटिलताओं को समझने की आवश्यकता है। जो लोग परिष्कृततम शिक्षा पा चुके हैं, उन्हें भी लगातार सीखते रहने की जरूरत है, अन्यथा वे पिछड़ जाएंगे।

17.2 उस समाज को, जो आर्थिक विकास, सामाजिक रूपान्तरण और प्रभावकारी सामाजिक सुरक्षा को प्राप्त करने का निश्चय कर चुका हो, कार्यनीति का मुख्य आधार यह होता है कि वह अपने नागरिकों को विकास-कार्यक्रमों में स्वयं अपनी इच्छा से विवेकपूर्वक और कुशलता से भाग लेने की शिक्षा दे। उस समाज में तो ऐसा करना विशेष रूप से आवश्यक हो जाता है जहां बहुसंख्यक लोग स्कूल में न पढ़ सके हों और जो शिक्षा दी जा रही हो उसकी संगति विकास की जरूरतों से न बैठती हो। जमीन जोतने वाले किसान को अपनी जमीन या मशीन चलाने वाले कामगार को अपनी मशीन की विशेषता समझ लेनी होगी और उत्पादन सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रक्रियाओं की कुछ जानकारी प्राप्त कर लेनी होगी ताकि वह नए नए तरीके अपना सके और उनमें सुधार कर सके। अनुनय-विनय या जोर-जबरदस्ती मात्र से बढ़ती हुई जनसंख्या को नहीं रोका जा सकता। लोगों को लगातार बढ़ती हुई जन संख्या के परिणाम समझने होंगे, जीवन के नियमों की जानकारी प्राप्त करनी होगी और परिवार-नियोजन के कार्यक्रमों के प्रति अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी समझनी होगी। कोई भी राष्ट्र केवल पुलिस और सेना पर अपनी सुरक्षा का भार नहीं छोड़ सकता, राष्ट्र की सुरक्षा बड़ी सीमा तक उसकी जनता की शिक्षा, गतिविधियों के बारे में उसकी जानकारी, चरित्र और अनुशासन की भावना तथा सुरक्षात्मक उपायों में प्रभावकारी रूप से भाग लेने की उसकी योग्यता पर निर्भर होती है।

17.3. इस दृष्टि से, प्रजातन्त्र में प्रौढ़ शिक्षा का कार्य यह है कि वह प्रत्येक वयस्क को उस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दे जिस प्रकार की शिक्षा वह चाहता है और जो उसकी व्यक्तिगत समृद्धि, व्यावसायिक प्रगति तथा सामाजिक और राजनीतिक जीवन में प्रभावकारी रूप से भाग लेने के लिए आवश्यक हो।

17.4 सामान्य स्थितियों में प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम यह मानकर बनाए जाते है कि सभी लोग साक्षर हैं। पर भारत में, जहा 70 प्रतिशत लोग पढ लिख भी नही सकते, निरक्षरता को समाप्त करना स्वभावत राष्ट्रीय चिन्ता का तात्कालिक विषय बन गया है।

17 5 प्रौढ़ शिक्षा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है—इतना विस्तृत जितना कि स्वय जीवन है। इसकी आवश्यकताए सामान्य स्कूली पढाई से भिन्न हैं। यह इस पर निर्भर है कि अनेक एजेंसियो मे, विशेषकर विश्वविद्यालयों, सार्वजनिक सस्थाओं और पुस्तकालयो से उसे कितनी सहायता मिलती है। प्रौढ शिक्षा के कार्यक्रमो की प्रभावकारिता सक्षम प्रशासन तन्त्र पर निर्भर होती है।

17 6 भारत मे प्रौढ शिक्षा के कार्यक्रम के अन्तगत निम्नलिखित बातें होनी चाहिए

— निरक्षरता का निर्मूलन,
— निरंतर शिक्षा,
— पत्राचार पाठ्यक्रम,
— पुस्तकालय,
— प्रौढ शिक्षा म विश्वविद्यालयो का योगदान, और
— प्रौढ शिक्षा का सगठन और प्रशासन।

इस अध्याय मे हम इन्हीं की चर्चा करेंगे।

निरक्षरता का निर्मूलन

17 7 **कार्यवाई की आवश्यकता**—360 करोड निरक्षर और बढ जाने से सन् 1951 की अपेक्षा सन् 1961 म भारत अधिक निरक्षर हो गया था। सन् 1966 में सन् 1961 की अपेक्षा 2 करोड निरक्षर और बढ गए। प्राथमिक शिक्षा के अभूतपूर्व विस्तार और अनेक साक्षरता अभियानो और कार्यक्रमो के बावजूद ऐसा हुआ है। यद्यपि साक्षरता का प्रतिशत सन् 1951 मे 16 6 से बढ़कर सन् 1961 मे 24 और सन् 1966 मे 28 6 हो गया है तो भी तेजी से बढती हुई जनसख्या ने सार्वभौम साक्षरता के लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्नो मे देश को और पीछे धकेल दिया है इससे जो शिक्षा मिलती है वह स्पष्ट है, कि साक्षरता को द्रुतगति से बढ़ाने के परम्परागत तरीके लगभग व्यर्थ हैं। यदि इस प्रवृत्ति को बदलना है तो अभिनव सामूहिक राष्ट्रीय प्रयास की जरूरत है।

17 8 निरक्षरता के लिए व्यक्ति को, और राष्ट्र को बडी कीमत चुकानी पडती है। यद्यपि वह इस निरन्तर व्याधि का अभ्यस्त हो जाता है और उससे होने वाली हानि के प्रति जड हो जाता है। आधुनिक जीवन की परिस्थितिया अनपढ व्यक्ति को निकम्मा ठहरा कर उसे हीन जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य कर देती हैं। उसके लिए उचित आमदनी की कोई सभावना नही रहती। प्रजातान्त्रिक सरकार और वाणिज्य बाजार जैसी परिष्कृत सामाजिक प्रक्रियाओ से वह अलग थलग पड जाता है। अनपढ व्यक्ति, वास्तव मे, स्वतन्त्र नागरिक नही है। सामूहिक प्रक्रिया के रूप मे निरक्षरता आर्थिक और सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध कर देती है तथा आर्थिक उत्पादिता, जनसख्या, नियन्त्रण, राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा तथा स्वास्थ्य और सफाई के सुधार को दुष्प्रभावित करती है। योजना आयोग के सदस्य, प्रो० वी० के० आर० वी० राव के शब्दो मे, "प्रौढ शिक्षा और प्रौढ साक्षरता के बिना न तो उस विस्तार और गति में आर्थिक और सामाजिक विकास सभव है जिसकी हम आवश्यकता है, और न ही हमारे आर्थिक और सामाजिक विकास को वह तत्व, गुणात्मकता अथवा शक्ति मिल सकती है जो मूल्य और हितकारिता की दृष्टि से उसे सार्थक बनाए। इसीलिए, आर्थिक और सामाजिक विकास के किसी भी कार्यक्रम मे प्रौढ शिक्षा और साक्षरता को प्रथम स्थान मिलना चाहिए।"

17 9 उपर्युक्त साक्ष्य वक्तव्यों से मतभेद हो ही नहीं सकता। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भी किसी न किसी रूप में, इन्हें स्वीकार किया जाता था। पर इस विषय मे अब तक जो मुख्य कार्यनीति अपनाई गई है वह यह है कि 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चो को नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के कार्यक्रम के विस्तार पर ही बल दिया जाए। यदि इसे प्रभावकारी ढग से सन् 1960 तक कार्यान्वित किया जा सकता, जैसा कि एक बार समझा गया था तो यह समस्या बहुत सरल हो जाती। पर

अनेक कारणों से, जिनकी व्याख्या अन्यत्र की गई है, अभी तक यह कार्यक्रम कार्यान्वित नहीं हो सका है और हम अधिकाधिक सन् 1976 तक प्रत्येक बच्चे को पांच वर्ष की ओर सन् 1986 तक सात वर्ष की प्रभावकारी शिक्षा दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा की पद्धति अभी तक अधिकांशतः प्रभाव शून्य और निष्फल ही रही है। बहुत से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त बच्चे या तो काम चलाने योग्य साक्षरता प्राप्त नहीं कर पाते या बाद में शीघ्र ही फिर निरक्षर हो जाते हैं। निरक्षरता को समाप्त करने के लिए यदि हम केवल इसी कार्यक्रम पर निर्भर रहें तो सन् 2000 तक भी इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इसलिए यह स्पष्ट है कि अब हमें निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रम के विकास के लिए दूने उत्साह से जुट जाना चाहिए और सामूहिक निरक्षरता के निवारण के लिए व्यापक और सीधा अभियान करना चाहिए।

17.10 अभिप्राय यह नहीं है कि सामूहिक निरक्षरता के निवारण के लिए अब तक सीधा आक्रमण किया ही नहीं गया। वास्तव में, प्रौढ़ शिक्षा के पिछले तीस वर्ष के इतिहास से पता चलता है कि राज्यों के या स्थानीय आधार पर अनेक साक्षरता अभियान बड़े उत्साह से संगठित किए गए थे पर कुछ वर्ष बाद उदासीनता और प्रयत्न-मन्दता के कारण बिखर गए। इसके अनेक कारण हैं। ये अभियान इतने छोटे पैमाने पर चलाए गए थे कि इनके आधार पर निश्चित प्रगति नहीं हो सकती थी और न ही ये आगे प्रयास के लिए प्रेरणास्पद थे। ये छुटपुट अभियान थे जिनमें समन्वय का अभाव था—सरकारी विभाग, स्वैच्छिक एजेंसियां, शिक्षा संस्थाएं और व्यक्ति एक-दूसरे से मिलकर काम करने के बदले अधिकतर अपना ही राग अलापते थे। ये अभियान प्रायः जल्दबाजी में शुरू किए जाते थे—प्रौढ़ों की आवश्यकताओं और रुचियों को ध्यानपूर्वक समझे बिना, जनता में शिक्षा के प्रति रुचि या पढ़ने लिखने की लालसा जगाए बिना, और अनुवर्ती कार्य की पर्याप्त व्यवस्था किए बिना, अभाव में कोई स्थायी परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते। इसीलिए ये निरर्थक रहे और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।

17.11 साक्षरता-कार्यक्रमों का दीर्घकालीन समर्थन और उन्हें सोद्देश्य बनाना इस बात पर निर्भर करता है कि कुछ बुनियादी तथ्यों को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया जाए। उदाहरणार्थ, यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि निरक्षर लोगों की भारी संख्या, जिसमें से कार्यकारी दल तैयार होता है, औद्योगीकरण और कृषि के आधुनिकीकरण की गति और सामान्यतः देश की आर्थिक प्रगति को अवरुद्ध कर देती है। यदि यह मान लें कि 15—44 वर्ष का आयु-वर्ग कार्यकारी दल है, तो इसमें 14.4 करोड़ लोग, या इस आयु-वर्ग का 67.4 प्रतिशत, ऐसे हैं जो अनपढ़ हैं। इसके अतिरिक्त, अनपढ़ लोग परिवर्तन का विरोध करते हैं और जीवन की पारम्परिक पद्धतियों से चिपके रहते हैं, जबकि सामाजिक जीवन के आधुनिकीकरण की मांग है कि स्वीकृत ढांचे में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जाए। युग-भावना के साथ सामूहिक निरक्षरता की संगति नहीं बैठती, क्योंकि आज वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ही जीवन की पद्धति और रहन-सहन के स्तर को निर्धारित करती है। नए विचार और नए तरीके उन लोगों के मन में प्रभावकारी रूप से पैठाए नहीं जा सकते जो उन्हें ग्रहण करने और उनसे लाभ उठाने के अभ्यस्त न हों। परिवार-नियोजन हो या स्वच्छता के स्तर को उन्नत करने की बात, सामाजिक सुरक्षा का कोई कार्यक्रम हो या कोई ऐसा आन्दोलन जो जीवन के प्रति दृष्टिकोण में या जीवन-पद्धति में परिवर्तन की मांग करता है, लोगों की समझ में आना चाहिए। इसी प्रकार, यह भी समझ लेना चाहिए कि अनपढ़ लोग वास्तविक प्रजातन्त्र नहीं बना सकते। सुगठित नागरिक जीवन में और महत्वपूर्ण निर्णय करने में लोगों का योगदान मिले यही प्रजातन्त्र का सार है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 26 में कहा गया है कि शिक्षा का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है, और यह बात जितनी आज के वयस्क पर लागू है उतनी ही भविष्य के। हमारे देश में जिसे शिक्षा की अपनी महान परम्परा पर गर्व है, निरक्षर लोगों की भारी संख्या उपहास की बात है। ये सीधे सादे और स्वतः स्पष्ट तथ्य हैं जिन पर मतभेद नहीं है। फिर भी, यह समझ लेना जरूरी है कि

निरक्षरता-उन्मूलन की विशालता के अनुरूप वृहत् अभियान तब तक अचिन्त्य रहेगा जब तक राष्ट्रीय नेताओं को इस बात का पूरा विश्वास न हो जाए कि अनपढ़ों के समूह की शिक्षा का आर्थिक और सामाजिक प्रगति तथा राष्ट्रीय जीवन की गुणात्मकता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इस विश्वास के अभाव का प्रमाण यह है कि प्रौढ़ शिक्षा के किसी कार्यक्रम के प्रति अब तक कोई राजनीतिक प्रतिबद्धता नहीं है। कुछ हद तक समस्या की विशालता इसका कारण हो सकती है। निरक्षरों की संख्या इतनी अधिक है, इसके लिए वित्तीय साधन और प्रशिक्षित लोग स्पष्टतः इतने अधिक अपेक्षित हैं कि परस्पर प्रतियोगी अपेक्षाओं के सम्मुख इस लक्ष्य को अप्राप्य मान कर छोड़ देने अथवा समय के और प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिक विकास के भरोसे इसको हल छोड़ देने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है। इस रवैये से कोई सहायता नहीं मिलती। हमारा विचार है कि दृढ़ निश्चय के साथ और यथार्थता से इस समस्या का सामना करना चाहिए। हमारा विश्वास है कि इसके प्रति उदासीनता का दण्ड तो मिलेगा ही।

17.12 इस असह्य स्थिति का अन्त करने के लिए हम सिफारिश करते हैं कि निरक्षरता को समाप्त करने के लिए एक राष्ट्रव्यापी सबल और दीर्घकालीन अभियान चलाया जाए। अभियान इसलिए आवश्यक है कि हमारे पास साधनों का अभाव है और इस समस्या को तुरन्त हल करना जरूरी है। यह अभियान राष्ट्रीय जीवन में इसके अनिवार्य महत्व के प्रति आस्था से प्रेरित होना चाहिए और देश के सामाजिक तथा राजनीतिक नेतृत्व को इसका समर्थन और ज़ोरदार समर्थन करना चाहिए। केन्द्र, राज्य और स्थानीय सरकारों, सभी सरकारी एजेंसियों, सभी स्वैच्छिक एजेंसियों और गैर-सरकारी समस्याओं एवं उद्योगों, विश्वविद्यालय से लेकर प्राथमिक स्कूल तक की सभी शिक्षा संस्थाओं, और इन सबसे बढ़कर, शिक्षित नर-नारियों को इसमें भाग लेना चाहिए। इससे हल्के स्तर का प्रयास इसे अपेक्षित प्रेरणा और गति प्रदान करने में असमर्थ रहेगा। यह अत्यन्त कठिन कार्य है। इसके लिए समर्पण की भावना, कल्पनापूर्ण संगठन, सभी सम्बन्धित एजेंसियों का विवेकपूर्ण सहयोग और कार्यकर्ताओं के अनेक प्रयत्न और त्याग अपेक्षित हैं। यह कार्य पूरा हो सकता है, रूस ने क्रान्ति के तत्काल बाद इसे पूरा कर लिया था। कुछ निश्चय कृतियों के प्रयास ने अपने देश के लिए सार्वभौम साक्षरता-मात्र से कहीं अधिक प्राप्त किया। लोगों में उपलब्धि और राष्ट्रीय गौरव का भाव जाग्रत हुआ और वे सामाजिक रूपान्तरण में भाग लेने के लिए तैयार हो गए। भारत में परिस्थिति थोड़ी भिन्न जरूर है, पर रूस की तरह का एक ज़ोरदार प्रयास किया जाए तो यह राष्ट्रीय महत्व का शैक्षिक अनुभव सिद्ध होगा।

17.13 लक्ष्य—साक्षरता-कार्यक्रम में सफलता-प्राप्ति की अनिवार्य शर्त यह है कि इसकी योजना ध्यान-पूर्वक बनाई जाए और इसके लिए अपेक्षित तैयारी बहुत पहले ही कर ली जाए। सामूहिक कार्यक्रमों के संगठन, सामग्री की तैयारी, कार्मिकों के प्रशिक्षण और कुछ अन्य अपेक्षाओं में समय लगता है। हम देश के सभी भागों में एक-साथ राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम शुरू करने की बात नहीं सोचते। पर यह संभव है कि उपलब्ध सुविधाओं का ध्यान रखते हुए प्रत्येक राज्य का एक के बाद दूसरा क्षेत्र लेकर धीरे-धीरे सारे राज्य और फिर सारे देश में कार्यक्रम का विस्तार किया जा सकता है। क्षेत्र-विशेष के शैक्षिक विकास की अवस्था, जन-सहयोग और संगठन की कार्य-कुशलता के आधार पर विभिन्न समय में विभिन्न क्षेत्रों में पूर्ण साक्षरता प्राप्त करना संभव होगा। निरक्षरता के उन्मूलन में समय एक अनिवार्य तत्व है। समस्या को हल करने में 10 या 15 वर्ष से अधिक समय लगा तो इसका उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। हमारा विचार है कि योजनाबद्ध प्रयत्नों से राष्ट्रीय साक्षरता के प्रतिशत को बढ़ाकर सन् 1971 तक 60 और सन् 1976 तक 80 तक लाया जा सकता है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निस्सन्देह बहुत बड़ा प्रयास और संगठन अपेक्षित है, पर ये अव्यावहारिक नहीं हैं। हम सिफारिश करते हैं कि देश भर से निरक्षरता को यथाशीघ्र समाप्त करने के लिए हर सम्भव कोशिश की जाए और देश के किसी भी भाग में, चाहे वह कितना ही पिछड़ा हुआ हो, इसके लिए 20 वर्ष से अधिक न लगें।

17.14 साक्षरता की अवधारणा—केवल पढ़-लिख लेने की योग्यता प्राप्त कर लेने को हम साक्षरता नहीं मानते। साक्षरता तभी सार्थक होती है जब कार्यक्षम हो। साक्षर को साक्षरता के साधनों में पर्याप्त कुशल बनाना ही इष्ट नहीं है, बल्कि उपयुक्त जानकारी प्राप्त करने के योग्य भी उसे होना चाहिए ताकि वह अपनी रुचि के काम और ध्येय को पूरा करने में सक्षम हो सके। निरक्षरता उन्मूलन के सम्बन्ध में यूनेस्को द्वारा तेहरान में (1965) आयोजित शिक्षा मन्त्रियों के विश्वसम्मेलन का यह निर्णय था कि साक्षरता को साध्य मानने के बदले मनुष्य को सामाजिक, नागरिक और आर्थिक योगदान के लिए तैयार करने की ऐसी प्रणाली समझना चाहिए जो साक्षरता प्रशिक्षण की उन प्रारम्भिक सीमाओं को लांघ जाती है जिसमें पढ़ने लिखने मात्र की शिक्षा शामिल है। रहन सहन के स्तर को उन्नत करने में तत्काल काम आने वाली जानकारी को प्राप्त करने के अवसर के रूप में पढ़ना लिखना सीखने की प्रक्रिया का उपयोग किया जाना चाहिए। पढ़ना लिखना केवल प्रारम्भिक सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि कुशलता से काम करने, उत्पादिता बढ़ाने, नागरिक जीवन में अधिक उपयोगी बनने और अपने आस पास की दुनिया को ज्यादा अच्छी तरह समझने के लिए होना चाहिए। अन्ततः उसे मूलभूत मानव संस्कृति का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। हम इस सम्मेलन के विचारों से सहमत हैं। साक्षरता कार्यक्रम वयस्कों को उत्साहित करने और इस योग्य बनाने के लिए होने चाहिए कि वे अपने अक्षर ज्ञान का उपयोग आगे की शिक्षा के लिए कर सकें। उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करें कि निरन्तर शिक्षा की उस योजना का लाभ उठा सकें जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। इस दृष्टि से, साक्षरता कार्यक्रम में ये तीन अनिवार्य तत्व होने चाहिए

(1) यह पूरा कार्यक्रम "कार्याधारित होना चाहिए। ऐसी प्रवृत्ति और रुचि जाग्रत करना तथा ऐसी कुशलता और जानकारी प्रदान करना उसका ध्येय होना चाहिए जो व्यक्ति को उस काम में निपुणता प्राप्त कराने में सहायक हो जिसमें वह संलग्न है।

(2) अनपढ़ व्यक्ति को उससे ऐसी मदद मिलनी चाहिए कि वह महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओं में रुचि ले सके और देश के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में प्रभावकारी ढंग से भाग ले।

(3) उसके फलस्वरूप अनपढ़ व्यक्ति को पढ़ाई लिखाई और गणित में इतनी कुशलता प्राप्त हो जानी चाहिए कि उसके आधार पर यदि वह चाहे तो अपने-आप या अनौपचारिक शिक्षा के अन्य उपलब्ध साधनोंमें अपनी शिक्षा जारी रख सके।

इस प्रकार साक्षरता कार्यक्रम की तीन अवस्थाएं होंगी। प्रारम्भिक अवस्था में पढ़ाई लिखाई और गणित का सामान्य ज्ञान तथा समूचे समाज से सम्बन्ध रखने वाली नागरिक और राष्ट्रीय समस्याओं की तथा शिक्षार्थी के अपने व्यवसाय की थोड़ी बहुत जानकारी, शामिल होगी। दूसरी अवस्था शिक्षार्थी के प्रारम्भिक ज्ञान और कुशलता को गहनता प्रदान करेगी। प्राप्त साक्षरता के सहारे वह व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने और जीवन को समृद्ध बनाने में सक्षम हो सकेगा। वयस्क को निरन्तर शिक्षा के किसी-न किसी कार्यक्रम में जुटा देने का काम तीसरी अवस्था में होना चाहिए।

17.15 निरक्षरता की वृद्धि को रोकने के कार्यक्रम—निरक्षरता को समाप्त करने की दिशा में पहला कदम यह होना चाहिए कि निरक्षरों की बढ़ती हुई संख्या को इस प्रकार रोका जाए—

— सार्वभौमिक स्कूल शिक्षण का विस्तार कम से कम 5 वर्ष के लिए 6-11 वर्ष के आयु वर्ग के लिए किया जाए,

— 11-14 वर्ष के आयु वर्ग के उन बच्चों को अंशकालिक शिक्षा दी जाए जो या तो स्कूल में पढ़ नहीं सके या पढ़ाई पूरी करने से पहले ही स्कूल छोड़ बैठे,

— 15-30 वर्ष के आयु वर्ग के उन युवा प्रौढ़ों को अंशकालिक सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा

दी जाए जिन्होंने स्कूल में कुछ वर्ष शिक्षा प्राप्त की है, पर यह इतनी पर्याप्त नहीं है कि उन्हें स्थायी साक्षरता की अवस्था तक पहुंचा सके अथवा आस पास की परिस्थितियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन्हें सुयोग्य बना सके।

17.16 अध्याय सात में हमने 6-11 वर्ष के आयु-वर्ग के लिए सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति के कार्यक्रमों पर विचार किया है। हमने यह सिफारिश भी की है कि प्रारम्भ से 11-14 वर्ष के आयु-वर्ग के लिए एक वर्ष की अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था स्वैच्छिक आधार पर इस आशा से की जाए कि उपयुक्त परिस्थितियां उत्पन्न हो जाने पर उसे अनिवार्य कर दिया जाएगा। हम यह भी जरूरी समझते हैं कि ये सुविधाएं 15+वर्ष के उस आयु वर्ग को भी दी जाएं जिनकी स्कूली शिक्षा अपर्याप्त है। स्कूली पढाई की सुविधाओं के विस्तार और स्कूलों की धारण क्षमता के विचार के साथ-साथ उठाए गये ये कदम, निरक्षरता को मिटाने के सुदृढ आधार होंगे।

17.17 कार्यनीति—साक्षरता की योजना देश में व्याप्त स्थिति की विशालता और जटिलता के अनुरूप ही बनाई जानी चाहिए। इस अध्याय में इस स्थिति का विश्लेषण करने का विचार नहीं है तथापि इस दायित्व के भार का अनुमान इस तथ्य से ही लगाया जा सकता है कि सन् 1961 की गणना के अनुसार, देश में 15+आयु वर्ग के 18.9 करोड़ वयस्क हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा (19 प्रतिशत) शहरी क्षेत्रों की साक्षरता (47 प्रतिशत) अधिक है। साक्षरता के मानचित्र में देश के एक क्षेत्र की साक्षरता दूसरे क्षेत्र की साक्षरता से बहुत भिन्न है—दिल्ली में 42.7 प्रतिशत से लेकर नेफा में 1.0 प्रतिशत तक। देश के विभिन्न भागों में स्त्रियों और पुरुषों की तथा विभिन्न सामाजिक वर्गों की साक्षरता में भी अन्तर है। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में शिक्षा की प्रेरणा भी भिन्न है और शिक्षा के विकास और उद्योगीकरण जैसी अनेक बातों पर निर्भर है। स्पष्ट है कि इस समस्या को सुलझाने के लिए कोई एक या सरल तरीका नहीं हो सकता, प्रत्येक स्थिति की अति विशिष्ट जांच करनी होगी तथा सुधार के उपाय ऐसी स्थानीय सुविधाओं पर निर्भर होंगे जो या तो उपलब्ध हों या उपलब्ध हो सकें। हम समझते हैं कि हम कुछ सामान्य सिद्धान्तों की ओर ही संकेत कर सकते हैं।

17.18 देश में निरक्षरता को मिटाने के लिए हम एक द्विविध कार्य-नीति की सिफारिश करते हैं, जिसे सुविधा के लिए हम

(क) चयनात्मक पद्धति, और

(ख) सामूहिक पद्धति कह सकते हैं।

इन दोनों पर आधारित कार्यक्रम साथ-साथ चलें, इन्हें एक दूसरे का पर्याय न माना जाए।

17.19 चयनात्मक पद्धति—चयनात्मक पद्धति विशेष रूप से उन वर्गों के लिए उपयुक्त है जिन्हें आसानी से जाना जा सकता है, जिन पर नियन्त्रण रखा जा सकता है और जिन्हें साक्षरता के गहन कार्य के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इन वर्गों की विशिष्ट आवश्यकताओं का पता लगाया जा सकता है और उन्हें पूरा करने के लिए सोद्देश्य साक्षरता कार्यक्रम बनाया जा सकता है। इन वर्गों को सम्भालना अपेक्षाकृत आसान है और इनकी साक्षरता के लिए लगाई गई पूंजी के परिणाम शीघ्र निकलेंगे और लाभप्रद होंगे। चयनात्मक पद्धति का एक और लाभ यह है कि इसके साक्षरता कार्यक्रमों के अन्तर्गत ऐसा प्रशिक्षण भी शामिल किया जा सकता है जो व्यावसायिक और वृत्तिक रुचि को बढ़ावा दे।

17.20 उदाहरण के लिए, हम निम्नलिखित क्षेत्र सुझाते हैं जहां चयनात्मक कार्यक्रम तत्काल चलाए जा सकते हैं और उससे लाभ उठाया जा सकता है :

(1) औद्योगिक और वाणिज्य संस्थाएं एक बहुत बड़े कार्यकारी दल को नियुक्त करती हैं जिसमें लगभग 40 प्रतिशत निरक्षर होते हैं। यह समस्या इतनी बड़ी है कि इस पर ध्यान देना जरूरी है। हम सिफारिश करते हैं कि बड़े-बड़े फार्मों में तथा वाणिज्य, उद्योग, ठेकेदारी और

अन्य संस्थाओं में काम देने वालों को यदि आवश्यक हो तो कानून द्वारा इस बात के लिए जिम्मेदार ठहराया जाए कि वे अपने सभी निरक्षर कामगारों को उनकी नौकरी लगाने के तीन वर्ष के भीतर इतना साक्षर बना दें कि वे अपना काम चला सकें। कामगारों को शिक्षित करने की पूरी जवाबदारी उनके नियोक्ताओं की ही होनी चाहिए जो उन्हें किसी स्वीकृत कार्यक्रम के अनुसार शिक्षा पाने की छूट दिया करें। निरक्षरों को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था भी उन्हें करनी चाहिए और शिक्षा प्राप्ति के लिए गंभीर यत्न के लिए प्रेरित करना चाहिए। उनकी शिक्षा पर होने वाला सारा व्यय सरकार को उठाना चाहिए और अध्यापकों पुस्तकों तथा पढ़ने की अन्य सामग्री की व्यवस्था करनी चाहिए। इस बात में हमें तनिक भी संदेह नहीं कि समझदार नियोक्ता अपने कामगारों को शिक्षित कर अंततः स्वयं लाभान्वित होंगे।

(2) हम सिफारिश करते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र के विशाल औद्योगिक उद्यमों को पहला कदम तत्काल उठाना चाहिए और इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम को गति देनी चाहिए।

(3) आर्थिक और सामाजिक विकास की सभी योजनाओं का एक मानवीय पक्ष है। उनसे ऐसे लोग भारी संख्या में संबंधित हैं जिन्हें स्कूली शिक्षा नहीं मिली। इसीलिए यह शक्य है कि उद्योग कृषि वाणिज्य स्वास्थ्य, शिक्षा आदि किसी भी क्षेत्र के विकास की परियोजना में कामगारों की विशेषकर निरक्षर कामगारों की शिक्षा उसका अभिन्न अंग होना चाहिए।

(4) सामाजिक कल्याण के विचार से लोगों की आर्थिक उन्नति के लिए सरकार ने अनेक योजनाएं चलाई हैं। उदाहरण के लिए खादी और ग्रामोद्योग कमीशन की खादी उत्पादन योजना अथवा सामुदायिक विकास विभाग की अनुपयुक्त पोषण और बाल कल्याण कार्यक्रमों की योजना। जिनसे कई लाख स्त्रियों का संबंध है। हमारा सुझाव है कि साक्षरता कार्यक्रम को इस प्रकार की सभी योजनाओं का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।

ये उदाहरण किसी तरह अन्तिम नहीं हैं। साक्षरता कार्यक्रमों की योजना बनाने वालों को अन्य उदाहरण खोजने चाहिए और उन्हें विकसित करना चाहिए।

17 21 सामूहिक पद्धति-सामूहिक पद्धति का सार यह है कि निरक्षरता को मिटाने के लिये देश भर में उपलब्ध सभी शिक्षित स्त्री-पुरुषों का एक दल संगठित किया जाए और साक्षरता अभियानमें उसका प्रभावकारी नियोजन किया जाये। यह परंपरा पद्धति तो नहीं है परंतु परीक्षित है। चयनात्मक पद्धति अपनी आंतरिक सीमाओं में सिमटी हुई है। समग्र हल के रूप में इसमावश्यता अप्रम बकारी है। सामूहिक पद्धति निश्चय ही कारगर हो सकती है। सामूहिक पद्धति को रूस में उल्लेखनीय सफलता मिली थी। अलग ढंग से और छोटे पैमाने पर ग्राम शिक्षण मुहिम के रूप में यह पद्धति महाराष्ट्र में कार्यान्वित की जा चुकी है। निरक्षरता को मिटाने के लिये इस मुहिम ने गांव की स्थानीय देश भक्ति का लाभ उठाया और अध्यापकों तथा स्थानीय शिक्षित नर नारियों का सहयोग लिया। इस योजना पर बहुत ही कम खर्च हुआ और जो लाभ हुए वे साक्षरता के मान से कहीं अधिक थे। इस मुहिम के आलोचकों ने इसकी तैयारी में रह गई कुछ कमियों और अनुवर्ती काम की कमजोरियों की ओर संकेत किया है। इन दोषों का उपचार किया जा सकता है।

17 22 निरक्षरता को मिटाने के लिये सामूहिक आंदोलन प्रशासनिक और शैक्षिक तंत्रों की सामर्थ्य से बाहर है। ऐसा आन्दोलन निश्चय ही देश के राजनीतिक और सामाजिक नेतृत्व का दायित्व है। निरक्षरता राष्ट्रीय विकास में रुकावट डालती है—यह विश्वास राष्ट्रीय मामलों से संबंधित सभी प्रमुख व्यक्तियों के मन में जितना दृढ़ होगा उतनी ही सफलता इस पद्धति को मिलेगी। सफलता इस बात पर भी निर्भर है कि ऐसे व्यक्ति इस

विश्वास को लोगों के दिल में कहां तक उतार सकते हैं और उनमें कितना प्रबल उत्साह और प्रेरणा जगा सकते हैं। हमारा विश्वास है कि यदि राष्ट्र देशवासियों को साक्षर बनाने के लिए कृतनिश्चय है और इस कार्य के अनुरूप प्रयास और त्याग करने को उद्यत है तो भारत निकट भविष्य में ही साक्षर राष्ट्र बन सकता है।

17.23 प्रौढ़ शिक्षा स्वभावतः एक स्वैच्छिक प्रक्रिया है जिसकी मूल प्रेरक शक्ति वयस्क की अपनी अन्तः प्रेरणा है। आयोजकों, शिक्षाविदों और प्रशासकों को यह स्पष्टतः जान लेना चाहिए कि राष्ट्रीय सुरक्षा और एकता उत्पादिता और जनसंख्या नियन्त्रण, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सामान्य कल्याण व्यापक प्रौढ़ शिक्षा तथा प्रशिक्षण द्वारा ही उन्नत होगा। प्रत्येक किसान या गृह स्त्री पर यह बात शायद एकाएक इतनी स्पष्ट होगी कि ऐसी शिक्षा पाने के लिए वह स्वेच्छा से कर्ट घंटे दे डाले —इसलिए, यह जरूरी है कि साक्षरता कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए कि वे वयस्कों को व्यापक ज्ञान पढ़े और उसकी परिचित परिस्थितियों तथा वातावरण से स्पष्टतया सम्बंधित हों।

17.24 सामूहिक साक्षरता का अभियान अधिकांशतः सभी शिक्षितों की स्वैच्छिक सेवाओं पर निर्भर होता है जिनमें सरकारी कर्मचारी सार्वजनिक संगठनों के कर्मचारी, वकील, डाक्टर इंजीनियर और अन्य लोग शामिल हैं। पर इस अभियान का प्रमुख भार स्कूल और कालेजों के अध्यापकों पर पड़ना और इसके संगठन का प्रमुख दायित्व सभी प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं पर पड़ना। हम सिफारिश करते हैं कि उच्चतर प्राथमिक, माध्यमिक उच्चतर माध्यमिक तथा व्यावसायिक स्कूलों और विश्व विद्यालय की पूर्व स्नातक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रम के अंग के रूप में, जिसकी चर्चा हमने अन्यत्र की है प्रौढ़ों को पढ़ना आवश्यक ठहराया जाना चाहिए। उतना ही आवश्यक यह भी है कि अवसर आने पर सभी प्रकार के अध्यापक प्रौढ़ों को पढ़ाएं और इस अभियान में अनिवार्यतः भाग लें। प्रौढ़ शिक्षा उनके सामान्य कर्तव्य का अंग होनी चाहिए। उन्हें ऐसा करने में सहायता देने के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि या तो स्कूल के सामान्य कार्य से उन्हें छुट्टी दी जाए या प्रौढ़ शिक्षा कार्य के लिए पारिश्रमिक दिया जाए। जब भी आवश्यकता पड़े, उनकी सेवाएं प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी कार्य के लिए उपलब्ध होनी चाहिए। नियमपूर्वक साक्षरता कक्षाएं चलाना सभी शैक्षिक संस्थाओं के लिए आवश्यक होना चाहिए और इन्हें अपने निकट के निर्दिष्ट क्षेत्र में निरक्षरता को समाप्त करने की जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए। क्षेत्र का आकार स्कूल के उन अध्यापकों और विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिए जो साक्षरता कार्य के लिये उपलब्ध हों।

17.25 **स्कूल के नये कार्य**—प्रौढ़ शिक्षा की नई जिम्मेदारी का अर्थ यह होगा कि स्कूल के कार्य और दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया जाए। उसका मुख्य कार्यक्षेत्र स्कूल के बच्चों तक ही सीमित नहीं होगा। बल्कि वह सारी स्थानीय जनता उसकी परिधि में आ जायेगी जिसकी वह सेवा करता है। उसे समुदाय के जीवन के केन्द्र की तरह कार्य करना होगा। बच्चों के स्कूल के बदले उसका रूप बदलकर जनता का स्कूल हो जायेगा। ऐसी स्थिति में उसे सामुदायिक जीवन के केन्द्र और विस्तार सेवाओं के महत्वपूर्ण आधार के रूप में सज्जित और रक्षित करना होगा। अन्य सहायक सामग्री के अलावा, उसमें पुस्तकालय, रेडियो, प्रदर्श, दस्तकारी, माडल और प्रौढ़ शिक्षा की अन्य सामग्री रखनी होगी।

17.26 **साक्षरता कार्यक्रमों की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें**—सावधानी का एक शब्द यहां आवश्यक है। प्रौढ़ साक्षरता का कोई भी अभियान पूर्व योजना और समुचित तैयारी के बिना नहीं चलाना चाहिए। यद्यपि हमारा सुझाव यह नहीं है कि किसी कार्यक्रम को आरम्भ करने से पहले प्रत्येक क्षेत्र का वर्षों का अध्ययन और सर्वेक्षण अपेक्षित है, तथापि हमारा विश्वास है कि यदि नीचे लिखी अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखा जाये तो लाभकर होगा और निराशा नहीं होगी

(1) किसी भी कार्यक्रम को आरम्भ करने से पहले लोगों में रुचि जगाने और उनका समर्थन प्राप्त करने के लिये सभी राजनीतिक, सामाजिक

और अन्य नेताओं को तथा सभी सरकारी विभागों को जुट जाना चाहिये।

(2) जिन प्रौढ निरक्षरों को कार्यक्रम में शामिल करना हो उन्हें मनोवैज्ञानिक ढंग से तैयार करना चाहिए और उनमें प्रेरणा जगानी चाहिए। उन्हें समझना चाहिए कि साक्षरता का उनके लिए क्या अर्थ होगा और उन्हें विश्वास दिलाना चाहिए कि साक्षरता प्राप्ति के लिये वे जो प्रयास और त्याग करेंगे, वह व्यर्थ नहीं किया जायेगा।

(3) लोगों के मन में दृढ निश्चय जगाने, उसे बनाये रखने तथा कार्यक्रम के दौरान और बाद में उन्हें सहारा देने के लिये सामूहिक संचार-साधनों का व्यापक उपयोग करना चाहिए। साक्षरता कार्य की सफलता के लिये अनुकूल वातावरण बनाने और उसे बनाये रखने के लिए रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, भाषण और अन्य साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए।

(4) प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम के लिए अपेक्षित सामग्री पहले से ही तैयार कर लेनी चाहिए और अभियान शुरू करते समय उसे पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना चाहिए। इसमें पाठ्य-पुस्तकें और अन्य पाठ सामग्री, चार्ट, नक्शे, निर्देश-पुस्तकें और अन्य शैक्षिक सामग्री तथा कार्यकर्ताओं के लिए सहायक सामग्री आदि होनी चाहिए।

(5) साक्षरता कार्यक्रमों की योजना स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर सावधानी से बनाई जानी चाहिए। पढ़ने लिखने में कुशल बनाने के सिवा निरक्षर वयस्कों को उनके व्यवसाय के सम्बन्ध में जानकारी और कुशलता बढ़ाने में भी सहायता मिलनी चाहिए, वे अपने समुदाय, देश और संसार की महत्वपूर्ण समस्याओं के प्रति जागरूक हो जाएं और उन्हें जनसंख्या नियंत्रण जैसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सक्रिय योग देना आवश्यक जान पड़े और देश के जीवन और संस्कृति को समझने में सहायता मिले।

(6) साक्षरता कार्यक्रम ऐसे हों जिनसे नवसाक्षर निरन्तर शिक्षा पाने के लिये लालायित रहें। साक्षरता को सर्वाधिक सफलता तभी मिलती है जब व्यक्ति अपनी समस्याओं को स्वयं ही सुलझाने के लिए अपनी जानकारी का उपयोग करना सीख जाता है और स्कूल, पुस्तकालय तथा संग्रहालय जैसे ज्ञान-वृद्धि के साधनों से लाभ उठाने लगता है। योजनाबद्ध अनुवर्ती कार्यक्रम साक्षरता अभियान का अनिवार्य अंग है।

(7) यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि साक्षरता कार्यक्रम, जैसी हमारी संकल्पना है, केवल अध्यापकों के भरोसे नहीं चलाए जा सकते। अध्यापकों के कार्य को इस प्रकार सहारा मिलना चाहिए

(क) विश्वविद्यालयों और उद्योग, कृषि जन-स्वास्थ्य, सहकारिता, सामुदायिक विकास आदि विभागों की विस्तार-सेवाओं के द्वारा लोगों को व्यावसायिक जानकारी कुशलता और पद्धतियों को विकसित करने में सहायता मिलनी चाहिए, और

(ख) नागरिक जीवन और राष्ट्रीय विकास के महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के प्रति प्रौढ निरक्षरों की चेतना जगाने के लिए सामूहिक संचार साधनों और विशेषत आकाशवाणी का उपयोग किया जाना चाहिए।

(8) यदि पुस्तकालयों की स्थापना नहीं की गई और अच्छी पाठ सामग्री तथा समाचार पत्र लगातार न मिलते रहे तो साक्षरता-कार्यक्रमों के प्रभाव स्थायी नहीं हो गे।

(9) सोच समझकर बनाई गई कार्य योजना में स्थानीय नागरिकों, अन्य प्राधिकारियों तथा

नेताओं का पूर्व प्रशिक्षण सम्मिलित होना चाहिए। कार्यक्रम से सम्बन्धित व्यक्तियों को कार्रवाई विस्तार से समझा दी जाए और यह भी बता दिया जाए कि विशेष रूप से उन्हें क्या करना चाहिए।

(10) जो विद्यार्थी और शिक्षित व्यक्ति पढ़ाने के लिए अपने नाम दें, उन्हें शिक्षण पद्धतियों और प्रौढ़ों से व्यवहार करने के बारे में अल्पकालिक प्रशिक्षण दिया जाए। उनके लिए निर्देश पुस्तकों और अन्य सहायक सामग्री की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(11) प्रशासन और देखरेख के लिए एक कार्यकुशल संगठन अपेक्षित है। स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग सुनिश्चित होना चाहिए तथा सतर्कता पूर्ण मूल्यांकन और अनुसंधान का बल भी मिलना चाहिए।

(12) सघन साक्षरता अभियान की समाप्ति के बाद जो कार्रवाई करनी हो उसका समावेश भी योजना मे होना चाहिए। साक्षरता कार्यक्रमों मे भाग लेने वालों को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि शिक्षा जारी रखने के लिये वे एक दूसरे की सहायता करें और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अध्ययन-दलों, संस्थाओं, क्लबों या मनोरंजन दलों की स्थापना करें।

(13) साक्षरता कार्यक्रमों की सफलता के लिए सार्वजनिक प्रतिबद्धता, समर्थन और उत्साह अत्यावश्यक है। कार्यक्रम की सफलता पर सार्वजनिक प्रशंसा, गतिविधियों की शिथिलता पर सार्वजनिक चिन्ता, प्रक्रिया के सुधार में सार्वजनिक सहयोग, उत्कृष्ट कार्यकर्त्ताओं को सार्वजनिक प्रोत्साहन—ये सभी बातें अत्यन्त महत्व की हैं। समाचार पत्रों, सामाजिक और राजनीतिक नेताओं, विद्वन्मण्डलों और अन्य संस्थाओं की सहायता से जन-सहयोग और समर्थन को बनाए रखना आवश्यक है।

17.27. स्त्रियों मे साक्षरता—स्त्रियों मे साक्षरता की स्थिति विशेष दुखदायी है। सन् 1961 की जनगणना से पता चलता है कि शहरी क्षेत्रों 34.5 प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्रों मे केवल 8.9 प्रतिशत स्त्रियां साक्षर हैं। यह सर्वमान्य है कि जब तक स्त्रियाँ शिक्षित नहीं हो जातीं, सामाजिक रूपान्तरण की कोई आशा नहीं। फिर भी, वयस्क स्त्रियों को साक्षर बनाने के नगण्य प्रयत्न हुए हैं। हम इससे जोरदार सिफारिश नहीं कर सकते कि स्त्रियों मे, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों की स्त्रियों म, साक्षरता बढ़ाने के लिये महत्त्वपूर्ण सुविचारित और प्रभावकारी कदम बहुत जल्द उठाने चाहिए। इस रिपोर्ट मे उन कारणों पर विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता नहीं है जो स्त्रियों के बीच साक्षरता कार्यक्रम चलाने मे बाधक हैं। यह सर्वविदित है कि स्त्रियों म सीखने की प्रेरणा क्षीण होती है, स्त्रियों के बीच साक्षरता कार्यक्रम चलाने मे सामाजिक वातावरण बाधक होता है, स्त्रियों को अवकाश कम ही मिलता है और वे निश्चित ही उस समय की प्रतीक्षा मे बैठी नहीं रह सकतीं जब उन्हें पढ़ने की फुर्सत होगी। स्त्रियों के लिये अध्यापक खोजने की समस्या सबसे कठिन है। कुछ कठिनाइयां तो हमारे इस सुझाव से दूर हो जायगी कि उन्हें पढ़ाने का काम स्कूल के बच्चों को सौंपा जाए। बच्चे घर घर जाकर स्त्रियों को उनकी सुविधा के समय मे पढ़ा सकते हैं। घर घर जाकर स्त्रियों को पढ़ाने वाले इन 'छोटे अध्यापकों' का सामाजिक विरोध भी नहीं होगा।

17.28 आशा की जाती है कि स्कूलों मे अधिकाधिक अध्यापिकाएं नियुक्त की जाएँगी और स्कूलों द्वारा सेवित क्षेत्रों की निरक्षर स्त्रियों को पढ़ाने की विशेष जिम्मेदारी उन्हें लेनी होगी। जिन स्त्रियों की शिक्षा अधूरी रह गई है उनके लिये 'सहत पाठ्यक्रम चलाने तथा शिक्षा और उपचर्या जैसे कुछ क्षेत्रों म उन्हें आगे प्रशिक्षण देने की व्यवस्था केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा कार्यान्वित जिस योजना मे है वह हम सफल जान पड़ती है। हमारा यह भी सुझाव है कि ग्रामीण स्त्रियों को पढ़ाने और स्थानीय स्त्रियों मे प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के लिए 'ग्राम बहनों' की नियुक्ति की जानी चाहिये। जहां तक

हो ग्राम बहन ऐसी स्थानीय स्त्री ही होनी चाहिए जिसे प्रौढ शिक्षा काम के लिए कुछ वेतन दिया जा सके। यह प्रशिक्षित होनी चाहिए और प्रौढ शिक्षा के नए तरीके सीखने के लिए उस समय समय पर दुबारा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। शहरी क्षेत्रों की स्त्रियों के बीच साक्षरता प्रसार सरकारी पेंशन भोगी और सेवानिवृत्त व्यक्ति कर सकेंगे।

17 29 रेडियो, टेलीविजन और दृश्य-श्रव्य साधनों का योगदान—हमारा विचार है कि निरक्षर और अशिक्षितों की भारी संख्या राष्ट्र जीवन और उसके विकास के लिये बहुत गंभीर बाधा है। इसलिए उनकी शिक्षा में देर करना खतरा मोल लेना है। यह भी स्पष्ट है कि निरक्षरता धीरे धीरे ही मिट सकती है। अधिकतम राष्ट्रीय प्रयास के प्रयोग के फलस्वरूप देश के कुछ ही भागों मे सम्पूर्ण साक्षरता के लिये दो दशक लग सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि साक्षरता का उपयोग करने में जो पढना है उसका चुनाव करने और जो पढा गया है उसे समझने मे समय लगता है। जिन्हे लम्बे समय तक विधिवत् शिक्षा मिली है उन्हे भी पठन-क्षमता का लाभ उठाने के लिये बौद्धिक परिपक्वता की जरूरत पडती है। फिर भी लोगो को शिक्षित करने का काम तब तक रुका नहीं रहना चाहिए जब तक कि वे साक्षर न हो जाय, बल्कि यह काम साक्षरता माध्यम से पहले, उसके साथ साथ और बाद मे भी होना चाहिए। इसी उद्देश्य से हमने सिफारिश की है कि सामूहिक संचार-साधनों और फिल्मो तथा अन्य दृश्य श्रव्य साधनों का पूरा पूरा लाभ उठाया जाए। वास्तव में सिनेमा रेडियो भित्ति चित्र चित्र और इस प्रकार के अन्य साधन पहले से ही निरक्षर और साक्षर दोनो को शिक्षित कर रहे हैं। इन शिक्षा और अशिक्षा के बीच चुनाव नहीं करना है, बल्कि चुनाव ऐसी शिक्षा जो राष्ट्रीय विकास और एकता के लिए आवश्यक है तथा वह जो केवल आमोद मनोरंजन के लिए दी जाती है के बीच करना है। लोगों के ज्ञान स्तर और उनके जीवन स्तर को सुधारने के लिए अनुकूल वातावरण बनाने तथा जानकारी और कुशलता प्रदान करने के लिए सामूहिक संचार साधनों का उपयोग सशक्त माध्यम के रूप में होना चाहिए। इस दिशा मे हमारा विचार यह था कि प्रौढ शिक्षा के लिए रेडियो और टेलीविजन सेवाओं के उपयोग के सम्बन्ध में व्यापक सिफारिशें प्राप्त की जायें। पर श्री ए० के० चन्दा की अध्यक्षता मे सूचना और प्रसारण मन्त्रालय द्वारा स्थापित समिति की रिपोर्ट ने हमारा काम बहुत हल्का कर दिया है। इस अध्याय के सम्बद्ध पैराग्राफों मे लिखा है कि विभिन्न प्रौढ शिक्षा कार्यक्रमों के लिये रेडियो और टेलीविजन का क्या विशेष उपयोग किया जाये। प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र में रेडियो और टेलीविजन के उपयोग के सम्बन्ध मे सूचना और प्रसारण समिति द्वारा की गई सिफारिशों का हम सामान्यत समर्थन करते हैं। हम समिति से सहमत हैं कि टेलीविजन निरक्षर प्रौढों के लिये अधिक उपयुक्त साधन है। अपेक्षाकृत कम शिक्षित लोगो को और अनपढो को सामान्य शिक्षा देने के लिए टेलीविजन और रेडियो दोनो का उपयोग किया जा सकता है और किया जाना चाहिए, इनका उपयोग उत्पादन बढाने और समाज को बदलने के साधन के रूप में भी किया जाना चाहिए। आधुनिक जीवन की परिस्थितियों मे जनता की प्रवृत्ति और रुचि निश्चित करने मे रेडियो, टेलीविजन और सिनमा का योग महत्वपूर्ण हो सकता है इसलिए यह आवश्यक है कि उनका उपयोग मानवीय और राष्ट्रीय हित में किया जाय। बहुसंख्यक जनता को उपयोगी जानकारी देने और उन्हें यह समझाने के लिए इससे बडा और कोई साधन नहीं हो सकता कि देश क्या चाहता है और किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए घोर संघर्ष कर रहा है।

17 30 अनुवर्ती कार्य—सारे अभियान स्वभावत समाप्त हो जाते हैं पर साक्षरता अभियान समाप्त नही होता। यदि शिक्षा प्राप्ति की प्रक्रिया किसी न किसी रूप में जारी न रहे तो साक्षरता-अभियान का उद्देश्य ही समाप्त हो जायगा। प्राय व्यक्त की जाने वाली यह चिन्ता अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि साक्षरता कार्यक्रम के बाद निरक्षरता लौट ही पुन आ धमती है। सीमित वित्तीय साधनों और प्रशिक्षित कार्मिकों के अभाव में जब निरक्षरों को पढ़ाने के लिये विद्यार्थियों और अध्यापकों को

स्वैच्छिक सेवाओं का उपयोग करना आवश्यक हो जाता है तब यह आशंका प्रबल हो जाती है। जीवन के किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए लगातार उपयोग करने पर ही प्राप्त साक्षरता को बनाये रखा जा सकता है। हम यह सुझाव दे चुके हैं कि साक्षरता कार्यक्रमों की प्रारम्भिक तैयारी के रूप में शिक्षा प्राप्ति की प्रेरणा उत्पन्न करना कितना जरूरी है। वास्तव में सार्वजनिक शिक्षा सामूहिक प्रचार साधनों तथा अन्य ऐसे साधनों की सहायता से शुरू की जानी चाहिए जिनसे लोगों को जीवन के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक सन्दर्भ का ज्ञान हो सके। साक्षरता की आवश्यकता और उसके अभाव में होने वाली हानि का अनुभव निरक्षर को ही होना चाहिए। पढ़ना लिखना सीखते हुए उसके लिए यह जानना भी उतना ही आवश्यक है कि प्राप्त ज्ञान का उपयोग वह किस तरह कर सकता है। निरक्षरों को पढ़ाने के लिए विद्यार्थियों और शिक्षित स्वयं सेवकों को परिस्थितिवश ही लगाना पड़ता है परन्तु वे प्रौढ़ों को बहुत ही कम आगे बढ़ा पाते हैं वे पढ़ना लिखना और गिनती सिखा सकते हैं और निरक्षर का उसके व्यक्तिगत और नागरिक जीवन की कुछ समस्याएं भी समझा सकते हैं। इस प्रारम्भिक अवस्था के बाद अध्यापन नियमित अध्यापकों द्वारा स्कूलों में होना चाहिए और नवसाक्षरों को धीरे धीरे विविध प्रकार की ऐसी अनौपचारिक शिक्षा की ओर प्रवृत्त करना चाहिए जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। प्रौढ़ों को यह सिखाना कि मनोरंजन और लाभ के लिए वे पुस्तकालय का उपयोग किस तरह करें साक्षरता कार्यक्रमों का प्रमुख अंग होना चाहिए। तात्पर्य यह कि हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि अनुवर्ती कार्यक्रम साक्षरता कार्यक्रम से भिन्न नहीं है। अनुवर्ती कार्य के अनिवार्य तत्व साक्षरता-कार्यक्रम में ही निहित होने चाहिए। यह समझना भूल है कि अनुवर्ती कार्य विधि के अन्तर्गत पर्यवेक्षित कार्यकलाप साक्षरता अभियान की समाप्ति पर और प्रौढ़ों के पढ़ना लिखना सीख लेने पर ही शुरू किए जाने चाहिए। साक्षरता के सर्वांगीण कार्यक्रम के रूप में ही ऐसे तत्व होने चाहिए जो साक्षरता को स्थायी और उपयोगी बनाने के लिए जरूरी हों। साक्षरता काम के एक बार शुरू हो जाने पर उसे प्रौढ़ शिक्षा के विविध रूपों में से किसी न किसी एक रूप के साथ समाविष्ट कर देना चाहिए और सीखने की प्रक्रिया एक बार शुरू हो जाये तो उसे जारी रखने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिए।

17.31 हमने सुझाव दिया है कि साक्षरता और प्रौढ़शिक्षा कार्यक्रमों की योजना के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की सामग्री भी तैयार की जानी चाहिए जो आवश्यकता पड़ते ही सुलभ हो सके। नवसाक्षरों के लिए पाठ्य पुस्तकें अन्य पुस्तकें तथा विविध प्रकार का अन्य साहित्य—जैसे सूचना पत्र पत्रिकाएं पुस्तिकाएं जिनमें कृषि विज्ञान अथवा शिल्प या प्रौढ़ों की रुचि के किसी विषय के किसी पक्ष के बारे में उपयोगी सूचना हो—सर्वाधिक महत्व की सामग्री है। अध्यापक स्वयं सेवकों की बड़ी सेना के लिए सहायक निदेश पुस्तकों तथा ऐसे ही अन्य साहित्य के सृजन का भी वैसा ही महत्व है। चार्ट नक्शे, माडल फिल्में फिल्म पट्टियां और विविध प्रकार के अन्य दृश्य श्रव्य साधन तैयार करना बहुत आवश्यक है। यह विशाल कार्य है। इसके लिए बहुत सूझ बूझ और संगठन चाहिए। यदि सामग्री तैयार न हुई तो साक्षरता कार्यक्रम रुक जायगे। सामग्री तैयार करने का काम जल्द से जल्द होना चाहिए। कम से कम निरक्षरों तथा उनके व्यावसायिक या अव्यावसायिक अध्यापकों के लिए पुस्तकें तो तैयार कर ही ली जाएं। भाषा सम्बन्धी कारणों से और प्रत्येक भाषा में पुस्तकों की भारी मांग के विचार से प्रत्येक राज्य में साहित्य सृजन के लिए एक सक्षम अनुभाग की स्थापना जरूरी हो जाएगी। स्थानीय समस्याओं हितों का ध्यान रखने से ये पुस्तकें रुचिकर हो सकेंगी। यह सुनिश्चित करने के लिए अन्तर्राज्य सहयोग होना चाहिए कि जो साहित्य तैयार किया जाए वह राष्ट्रीय नीतियों का प्रसार करे और राष्ट्रीय एकता तथा देशभक्ति की भावना को सशक्त करे। अन्तर्राज्य सहयोग से कुछ मामलों में उत्पादन लागत को घटाने में भी मदद मिल सकती है। हमारा विचार है कि साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा में कार्यक्रमों के लिए अपेक्षित साहित्य के सृजन के लिए राज्यों और विभागों के बीच सहयोग स्थापित करने का काम शिक्षा मन्त्रालय को करना चाहिए।

निरन्तर शिक्षा

17.32 महत्व—समय बीतते-बीतते निरक्षरता समाप्त होनी चाहिये और स्कूल-पद्धति द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उसकी पुनरावृत्ति न हो। राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में प्रौढ़ शिक्षा का कार्य निरन्तर चलता है। द्रुत परिवर्तन ज्ञान की पृष्ठभूमि के विचार से मनुष्य को निरन्तर सीखते रहना होगा ताकि वह पूर्णता से जिए। सीखते रहना सभ्य जीवन की रीति है।

17.33 अब यह सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया है कि शिक्षा की आधुनिक पद्धति के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की और विभिन्न स्तरों की पूर्णकालिक शिक्षा की ही व्यवस्था नहीं होती बल्कि उसमें पाठ्यक्रम और अध्यापन के ऐसे बहुविध प्रकार सम्मिलित होते हैं जो पूर्णकालिक स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त प्रौढ़ों के व्यक्तिगत, व्यावसायिक सामाजिक और अन्य हितों के साधन में सहायक होते हैं। इस दृष्टि से प्रौढ़ शिक्षा ऐसी उपज और फसल है जिसके लिए विधिवत शालागत अध्ययन केवल रोपण और कर्षण का काम करता है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि विकसित समाजों में प्रौढ़ शिक्षा, शिक्षा का सर्वाधिक तेजी से बढ़ने वाला अंग बन गई है।

17.34 सामान्य सिफारिश—मोटे तौर पर निरन्तर शिक्षा की पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो दो विभिन्न वर्गों के लोगों के लिए उपयुक्त हो। इनमें पहला वर्ग उनका है जो शैक्षिक संस्थाओं में या विविध ऐजेन्सियों द्वारा विशिष्ट विषयों में आयोजित तदर्थ शिक्षा की कक्षाओं में अल्पकालिक अध्ययन के लिए दूसरों के साथ मिलकर समूह बना सकते हैं। ये एजेन्सियां हैं—विकास से सम्बन्धित विभाग, विश्वविद्यालय, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, तकनीकी, व्यावसायिक और कृषि शिक्षा संस्थाएं या विदग्ध मण्डलियां और स्वैच्छिक संस्थाएं। दूसरा वर्ग उन लोगों का है जिन्हें अपने घर उस समय के बीच पढ़ना है जो उन्हें इस उद्देश्य से मिले, पर जो अपनी सुविधा के अनुसार सहायता चाहते हैं। प्रौढ़ शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विविध उद्देश्य पूरे करे और प्रौढ़ों के ऐसे विभिन्न समूहों के काम आए जिनके शैक्षिक स्तर ही भिन्न नहीं हैं, बल्कि जिनकी व्यावसायिक रुचि सांस्कृतिक महत्वाकांक्षाएं और सार्वजनिक मामलों के प्रति दायित्व-भाव भी एक दूसरे से भिन्न हैं। हम पहले लोगों का उल्लेख कर चुके हैं, जिन्हें प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के पूर्व ही स्कूल छोड़ देना पड़ा, और सुझाव दे चुके हैं कि उन्हें इस स्तर की शिक्षा पूरी करने योग्य बनाना चाहिए। ऐसे लोग भी हैं जो विधिवत शिक्षा को पूरा करना चाहते हैं और अनेक विषयों में, जिनमें विज्ञान, शिल्प विज्ञान और कृषि शामिल हैं, विश्वविद्यालयी डिग्री लेना चाहते हैं। ऐसे भी हैं जो खेतों, कारखानों, फैक्टरियों, वाणिज्य संस्थानों में काम कर रहे हैं, और ऐसे जो अपने ही धंधों में लगे हैं और अपनी कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण चाहते हैं। ऊंचे व्यावसायिक स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों को भी अपने ज्ञान को ताजा करने और अपने विशिष्ट क्षेत्र में हुए नव-चिन्तन और नई रीतियों की जानकारी प्राप्त करने की जरूरत होती है। विशेष रूप से सभी स्तरों के अध्यापकों को, जिनमें विश्वविद्यालय के अध्यापक भी शामिल हैं, अवसर मिलने चाहिए कि वे ज्ञान के बढ़ते हुए सीमान्तों से परिचित रह सकें। यही बात वकीलों डाक्टरों, व्यापार प्रबंधकों, उद्योगप्रमुखों और व्यवसायों के अन्य शीर्षस्थ व्यक्तियों पर भी लागू होती है, ऐसे लोग भी हैं जो केवल 'स्वान्तः सुखाय' कुछ न कुछ सीखना चाहते हैं, उदाहरणार्थ, कोई विदेशी भाषा, या चित्रकला, या संगीत या आन्तरिक सज्जा, पाकशास्त्र, पुष्प-विन्यास, या कोई ऐसा काम जो उनके व्यवसाय से सम्बन्धित नहीं है। प्रौढ़ शिक्षा को सब की रुचि और आवश्यकता के अनुकूल बनाया जाना चाहिए। महत्व की बात यह है कि बहुविधि रुचियों के विचार से तैयार किए गए अच्छे और कल्पनापूर्ण पाठ्यक्रम ही अध्ययन को प्रेरणा देने वाले सशक्त साधन बन जाते हैं।

17.35. हम सिफारिश करते हैं कि सभी प्रकार की और सभी स्तरों की शैक्षिक संस्थाओं को प्रोत्साहन और सहायता दी जाए कि काम के नियमित घंटों को छोड़कर शेष समय में जिन शैक्षिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था कर सकें, करें, और अपने द्वारा उन सब लोगों के लिए खोल दें जो शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हैं और शिक्षा पाने के

[आवरण पृष्ठ ३ पर

पृष्ठ २८ का शेष]

लिए इच्छुक हैं। इस दृष्टिकोण को ससार-भर मे समर्थन मिला है, पर हमारे देश की परिस्थितियों के विचार से तो स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उचित शिक्षा या प्रशिक्षण प्राप्त किए बिना ही जीवन आरम्भ करने के लिए देश की ऐतिहासिक परिस्थितियों ने बहुतों को विवश किया है। इसलिए हमारा सुझाव है कि उन लोगो के लिए, जो शैक्षिक सस्थानो मे केवल शाम को अवकाश के कुछ घटों के बीच अथवा अन्य सुविधाजनक समय मे ही जा सकते हैं, एक समान्तर शिक्षा-पद्धति अपनाई जाए ताकि वे भी उन प्रमाण-पत्रो डिप्लोमाओ और डिग्रियों के लिए अर्हता प्राप्त कर सकें जिनके लिए शैक्षिक सस्थाओं के नियमित विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। देश के विभिन्न भागो मे सायकालीन कालेज का जो विकास हुआ है, वह हमे मालूम है। हमे आशा है कि विभिन्न भागो मे चलने वाले सायकालीन कालेज ऐसे वातावरण मे अच्छी शिक्षा की व्यवस्था करेंगे जिसमें अध्ययन की प्रेरणा मिले, नियमित शिक्षा पद्धति मे बाहर के लोगों को नाममात्र की हाजिरी दर्ज करके परीक्षाओ मे बैठने की पात्रता खरीदने के योग्य नहीं बनायेंगे। माध्यमिक स्कूलों और कालेजों को ही नहीं, सभी सस्थाओं को विशेषकर व्यावसायिक, तकनीकी और कृषि संस्थाओं को काम के नियमित घटों के बाद अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।

17 36 शैक्षिक सस्थाओं को ऐसे तदर्थ पाठ्यक्रम मे अग्रणी होना चाहिए जो लोगों को अपनी समस्याओं को समझने और उन्हें हल करने मे तथा व्यापक ज्ञान और अनुभव प्राप्त करने मे सहायता दें। उदाहरण के लिए भूमि प्रबन्ध, उर्वरकों का प्रयोग, मुर्गी-पालन, फलोद्यान, शिशुपालन, पोषण, उपचर्या सम्बन्धी सक्षिप्त पाठ्यक्रमों के नाम गिनाए जा सकते हैं। ऐसे कार्यक्रमों की सम्भावनायें अनन्त हैं बशर्ते की अच्छी तरह योजना बनाई जाए और सरकारी विभागों, विश्वविद्यालयों, कालेजों, तकनीकी सस्थाओं और स्थानीय नेताओं का सहयोग मिले। इन पाठ्यक्रमों को आयोजित करना ही पर्याप्त नहीं, महत्व की बात है-लोगों मे अध्ययन की प्रवृत्ति जगाना और विभिन्न पाठ्यक्रमों में रुचि लेने वालों के समूह सगठित करना।

—क्रमशः

जब तक लाखों करोड़ों लोग
भूख और अज्ञान से ग्रस्त हैं
तब तक मैं उस आदमी को
गद्दार मानता हूँ
जो उन गरीबों के ही पैसों से
सीखकर उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देते।
मेरे विचार के अनुसार हमारा
सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप है
आम जनता की ओर हमारी उपेक्षा
और हमारी अवनति का
एक कारण यही है।
कितनी भी राजनीति करते रहो
उसका कोई लाभ होने वाला नहीं है।
जब तक कि भारत की आम जनता
अच्छी तरह शिक्षित नहीं होती।
उन्हें उत्तम खाना नहीं मिलता
और उनकी फिक्र नहीं की जाती।

—स्वामी विवेकानन्द

अखिल भारत नयी तालीम समिति के लिए श्री अजय कुमार करण, अध्यक्ष उत्तर प्रदेश नयी तालीम समिति द्वारा प्रकाशित तथा विद्या मुद्रण स्थली भदैनी, वाराणसी से मुद्रित।

नयी तालीम

विश्वविद्यालय प्रांगणों में असंतोष

सार्वजनिक परीक्षाएं

प्रौढ़ शिक्षा की पृष्ठभूमि

हमें स्कूल क्यों समाप्त करना है

पूर्व बुनियादी या नर्सरी शिक्षा

अखिल भारत नयी तालीम समिति

वर्ष २७
फरवरी
मार्च

अंक
४

फरवरी मार्च '७६
नयी तालीम का वार्षिक शुल्क बारह रुपये तथा एक अंक का मूल्य दो रुपये है।
नयी तालीम द्वैमासिक पत्रिका है, इसका वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
पत्र व्यवहार के लिए सभी पाठक कृपया अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
नयी तालीम में व्यक्त विचारों का दायित्व पूर्णतया लेखक का है।

विश्वविद्यालय प्रांगणों में असंतोष

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० प्रतापचन्द्र ने लोकसभा में बताया कि यह कहना गलत है कि अधिकांश विश्वविद्यालयों में असन्तोष है और शैक्षिक कार्य अस्त व्यस्त है। उन्होंने आंकड़े देते हुए कहा कि देश के १०९ विश्वविद्यालयों में से केवल ३३ असंतोष और अव्यवस्था से प्रभावित रहे। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री एक उच्चकोटि के विद्वान और अनुभवी व्यक्ति हैं। किन्तु जिस प्रकार वक्तव्य सामने आया है उससे यह प्रतीत होता है कि नौकरशाही ऐसे व्यक्ति पर भी किस प्रकार प्रभाव जमा सकती है। माननीय शिक्षामन्त्री जी के समक्ष जो आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं उन पर उन्हें विश्वास करना ही था। कभी कभी हम किसी विशेष परिस्थिति में रहकर गलत बातों को वास्तव में सही समझने लगते हैं।

ये आंकड़े विश्वविद्यालयों के कुलपतियों और अधिकारियों ने भेजे होंगे और इनमें अधिकांश वे हैं जो शासन के कृपाकांक्षी हैं। इनका अपना न तो कोई व्यक्तित्व है और न कोई लक्ष्य। ऐसे लोग वैसे ही आंकड़े भेजते हैं जिनसे सत्ता में लोग यह समझें कि विश्वविद्यालय पूर्णरूप से अनुशासित हैं और कम से कम घटनाएं अशान्ति, अव्यवस्था और असन्तोष की सूचित की जाती हैं। स्थिति कुछ वैसी ही है जैसे पुलिस प्रशासन अपराधों को संख्या में कमी इस आधार पर प्रदर्शित करता है कि पुलिस थानों पर बहुत सी घटनाएं या तो दर्ज ही नहीं की जातीं या लोग इस दृष्टि से दर्ज कराने ही नहीं जाते कि कौन बवाल में फंसे।

वास्तविक स्थिति यह है कि ३३ या लगभग इतने ही विश्वविद्यालय ऐसे और होंगे जिनमें छात्रों के असन्तोष और विश्वविद्यालय प्रशासन की दुर्व्यवस्था के कारण शैक्षिक वातावरण अस्त-व्यस्त रहा होगा। कुछ विश्वविद्यालय ऐसे हैं जिनमें देर से सत्र प्रारम्भ हुए किन्तु परीक्षायें समय से करा दी गयी या करा दी जा रही हैं। छात्रसंगठनों को आपस में लड़ाकर छात्रों को दबाये रखा जा रहा है। शिक्षण कार्य अत्यन्त निकृष्ट स्तर पर चल रहा है। भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर है। ऐसी स्थिति में यदि माननीय शिक्षा मन्त्री को यह सन्तोष है कि केवल एक तिहाई विश्वविद्यालय प्रभावित हैं और ७६ विश्वविद्यालय ठीक से चल रहे हैं तो यह तूफान को सामने देखकर शुतुर्मुर्ग वाली नीति अपनाने वाली बात चरितार्थ होती है।

यह प्रसन्नता की बात है कि लोकनायक जयप्रकाश ने गम्भीररूप से अस्वस्थ होने के पूर्व प्रधानमन्त्री को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि विश्वविद्यालय असन्तोष के ज्वार की लहरों में फंसे हुए हैं और उनमें अराजकता की स्थिति व्याप्त है। यह समझ में नहीं आता कि शिक्षा मंत्री के वक्तव्य पर विश्वास किया जाय या लोकनायक के।

इसका समाधान क्या है? यह प्रश्न आज देश के सामने है। लोकतांत्रिक सरकार सबसे बड़ा उपकार यह करेगी यदि विश्वविद्यालयों में कुलपतियों की नियुक्ति चाटुकारिता और सुविधा के आधार पर नहीं प्रत्युत वास्तविक योग्यता और क्षमता के आधार पर की जाय। ऐसे व्यक्ति इस गौरवपूर्ण पद को सुशोभित करें जो

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र

डा० देवेन्द्र दत्त तिवारी

जीवन में ज्ञानार्जन करने और ज्ञानार्जन कराने की रुचि प्रारम्भ से ही रही है। इसीलिए शैक्षिक प्रशासन का क्षेत्र मुझे कभी रुचिकर नहीं लगा। विश्वविद्यालय में आने के पूर्व अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं, संस्थाओं और व्यक्तियों को प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में काम करने के लिए मैं अभिप्रेरित कर चुका था। स्वयं भी कम से कम दो प्रौढ़ों को शिक्षित करने का काम भी कर चुका था। दोनों प्रौढ़ों के लिए दो भिन्न भिन्न मार्ग अपनाने पड़े थे। एक राजनीतिक चेतना से परिपूर्ण था, यद्यपि वह निरक्षर था। मैंने उसे समाचार पत्र के माध्यम से पढ़ने की प्रेरणा दी। जब पढ़ना आ जाता है तो लिख कर अपनी बातों को कहने की क्षमता का विकास करने में कठिनाई नहीं होती। आज वह धड़ल्ले से अखबार पढ़ता है और थोड़ा बहुत अपना कामकाज चलाने के लिए लिख भी लेता है। उसमें एक आत्मविश्वास है और यदि वह अधिक दिन साथ रहता तो कदाचित् कोई परीक्षा भी पास कर लेता।

दूसरा व्यक्ति जो मेरे निजी सम्पर्क में ४-५ वर्ष रहा। वह मेरा भोजन बनाता था और पूरा हिसाब कार्यालय के बाबुओं से लिखवाता था। एक दिन मैंने उससे कहा कि तुम दूसरों को सब पता देते हो कि मैं क्या खाता हूँ, खाने पर कितना खर्च करता हूँ। उसको यह बात लग गई और उसने अक्षर ज्ञान तथा कुछ गणित सीख लिया। मात्राएँ उसने नहीं सीखीं, लेकिन 'टमाटर' को 'टमटर' और 'गोभी' को 'गभ' लिखकर काम चला लेता था और मैं उसे समझ लेता था।

मैंने ये दो उदाहरण इसलिए दिये हैं कि प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वालों को यह स्पष्ट हो जाय कि प्रौढ़ों की प्रेरणा के स्रोत भिन्न-भिन्न होते हैं, उनमें एकरूपता नहीं होती और हमें यह समझने की आवश्यकता है कि हर प्रौढ़ जिसे हम शिक्षित करना चाहते हैं, उसकी प्रेरणा का स्रोत कहाँ है। दूसरी बात यह है कि किसी निर्धारित पाठ्यक्रम का आदी नहीं बन सकता। कुछ ऐसे भी निकल आयेंगे जो कोई परीक्षा देना चाहते हों लेकिन यह लम्बा रास्ता है और बहुधा इससे कोई उसे लाभ भी नहीं होने वाला है। ध्यान इस बात पर रखना चाहिए कि वह अपने काम को अच्छी तरह से कर सके, ऐसी शिक्षा उसे दी जाय। बहुधा रेडियो और समाचार पत्र या फिल्म से अच्छा काम निकल सकता है।

मैंने विश्वविद्यालय में जब इस प्रकार के कार्यक्रमों को करना चाहा तो एक दिन विश्वविद्यालय के एक प्रतिष्ठित एवं विद्वान मित्र द्वारा यह भी सुनने को मिला कि प्रौढ़ शिक्षा का उच्च शिक्षा से क्या सम्बन्ध है और दोनों को एक साथ जोड़ना उचित नहीं है, जब कि प्रौढ़ शिक्षा की 'राष्ट्रीय नीति की घोषणा' तथा 'प्रौढ़ शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम' इन दोनों अभिलेखों में केन्द्रीय सरकार ने विश्वविद्यालयों के विशेष दायित्व पर बल दिया है। 'प्रौढ़शिक्षा के राष्ट्रीय कार्य की रूप रेखा' में केन्द्रीय सरकार ने कहा है —

'For too long the universities have theoretically espoused about desirability of contact with the community. The NAEP Provides a challenging situation for the University and college to overcome their seclusion and to

enter the main stream of mass educataion".

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस कार्यक्रम से विश्वविद्यालयों को सम्बन्धित करने के लिए अनेक सुझाव अपने एतद्‌विषयक परिपत्र में दिये हैं। विश्वविद्यालय में प्रौढ़-शिक्षा इकाई की स्थापना की बात भी कही गयी है। तदनुसार विश्वविद्यालय में कुलपति की अध्यक्षता में एक परामर्शदात्री-समिति गठित की गई है और प्रौढ़-शिक्षा को शिक्षाचार्य के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के लिए भी कदम उठाये गये हैं। इस तथ्य का उल्लेख इसलिये किया गया है कि अभी विश्वविद्यालय के लोगों को इस बात का आभास नहीं है कि प्रौढ़-शिक्षा उच्च शिक्षा से किस प्रकार सम्बन्धित है। सिद्धान्ततः शिक्षा एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है इसलिये निरक्षर प्रौढ़ भी कभी उच्चशिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। लन्दन में जो 'खुला विश्वविद्यालय (Open Uhiversity) है उसमें प्रवेश पाने के लिये केवल २१ वर्ष की सीमा का ही एक प्रतिबन्ध है। अन्यथा कोई भी उसमें प्रवेश ले सकता है और आज उस विश्वविद्यालय में ७०,००० छात्र-छात्राएं हैं।

शैक्षिक-अनुसन्धान की दृष्टि से प्रौढ़ों को सीखने-सिखाने, सम्प्रेरणा आदि के सम्बन्ध में शोध की आवश्यकता है जो विश्वविद्यालय ही कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालयों को यह समझाना है कि प्रौढ़-शिक्षा का दायित्व उसी प्रकार है जिस प्रकार उच्च-शिक्षा का अन्य क्षेत्र में।

इस सन्दर्भ में विश्वविद्यालय के प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र की कहानी बता देना आवश्यक है। पहले मैंने यह सोचा कि अधिकारियों के अधिकार का प्रयोग करके कक्षाएँ चलाई जायें। इस पर अधिकारियों ने आदेश निर्गत किये कि जो कर्मचारी इन कक्षाओं से लाभ उठाना चाहें वे शिक्षाशास्त्र-विभाग में उपस्थित हों किन्तु कोई उपस्थित नहीं हुआ। फिर मैंने कर्मचारी संघ के पदाधिकारियों और विद्यार्थियों का सहारा लेना उचित समझा। जब उनसे बात हुई तब यह देखा कि पहले दिन जब हल्की वर्षा हो रही थी और बिजली भी नहीं थी, लगभग २१कर्मचारी भीगते हुए बाहर बैठे रहे। उनसे बात किया और उन्होंने इन कक्षाओं में रुचि दिखाई और दूसरे दिन आने को कहा।

दूसरे दिन संख्या बढ़ गई। कुछ विश्वविद्यालय के और कुछ बाहर के लोग भी आए। कुछ बच्चे भी आए जो किसी कारणवश शिक्षा से वंचित रह गये हैं, यद्यपि घोषणा प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए ही की गयी थी।

इस प्रकार ३ बच्चे प्राइमरी आयु वर्ग के और २४ प्रौढ़ लगभग निरक्षरता की परिधि में तथा तीन ऐसे हैं जो जू० हा० स्कूल से ऊपर भी शिक्षा पाये हुए हैं, किन्तु आगे पढ़ने की उनकी इच्छा है। विभिन्न आयु-वर्गों की इस कक्षा रचना में यह बात स्पष्ट हुई कि प्रौढ़-शिक्षा का जो भी केन्द्र बने उसमें इस बात पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता कि वे किसी निश्चित आयु के हों या केवल निरक्षर ही हों। यह इस बात का भी संकेत करता है कि सबकी आवश्यकताएं, उपलब्धियाँ और क्षमताएं भिन्न-भिन्न हैं और सबको एक ही कक्षा में नहीं रखा जा सकता है।

अतः पहले ही दिन चार ग्रुप में कक्षाओं को बाँट देना पड़ा। समस्या यह भी थी कि अकेले मैं कैसे इस समस्या का समाधान कर सकूंगा। मेरे छात्रों और छात्राओं ने मेरी कठिनाई को समझा। एम० एड० कक्षा के विद्यार्थियों ने मेरी परेशानी समझ कर अपना सहयोग दिया। एक-एक ग्रुप को उन्होंने सम्भाल लिया। इन छात्र छात्राओं का कोई पूर्व अनुभव नहीं था। यदि होगा भी तो अपने बचपन या घर में अपने से छोटों से सम्बन्धित अनुभव ही होगा। इनमें से एक छात्रा ने तो प्रौढ़ों की भाषा में ही बोल-चाल कर उनसे तादात्म्य कर लिया। परिणाम यह हुआ कि प्रतिदिन संख्या तथा उपस्थिति बढ़ने लगी।

मेरे पास कोई साधन नहीं था। अपनी साधन-हीनता के कारण परेशानी भी थी। देश में करोड़ों रुपया प्रौढ़-शिक्षा पर व्यय किया जा रहा है। किन्तु यदि कोई काम अच्छे ढंग से प्रारम्भ किया जाय तो उसके लिए कोई प्रोत्सा-

हुए नहीं है। उ० प्र० के प्रौढ़ शिक्षा विभाग के सरकारी अधिकारियों ने बताया कि नगर में इस प्रकार के केन्द्र को सहायता देने का कोई प्राविधान नहीं है। यू० जी० सी० ने मुझे यह बताया कि २५०० रु० की धनराशि बीज रूप में स्वीकृति की गई है किन्तु विश्वविद्यालय को अभी इसकी कोई सूचना नहीं है। एन० एस० एस० के अन्दर इस प्रकार के कार्य करने का दायित्व है किन्तु, उधर से भी कोई ठोस सहयोग नहीं है।

कुछ धनराशि स्लेट, चाक, पुस्तकों के ऊपर खर्च की गयी है, उसकी भी व्यवस्था नहीं हो पायी है। प्रौढ़ शिक्षा विश्वविद्यालय के दायित्व का एक महत्वपूर्ण अंग है, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, किन्तु विश्वविद्यालय परिसर में इसका आभास भी नहीं है।

मुझे एक प्रश्न और परेशान कर रहा है, वह पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। केन्द्र को चलाने से यह स्पष्ट हो रहा है कि कोई पूर्व निश्चित पाठ्यक्रम काम नहीं देगा और पाठ्यक्रम प्रत्येक प्रौढ़ से परामर्श करके स्वयं बनाना होगा। जहां तक शिक्षण विधि का प्रश्न है, चूंकि हम लोग एकाएक इतनी संख्या से सम्बद्ध हो गये, अतः किसी विधि या सुनिश्चित रूप से कक्षा चलाने की तैयारी भी हम लोग नहीं कर पाये। कुछ परम्परागत विधि, कुछ समाचार पत्र, कुछ पत्र-पत्रिकाओं का प्रयोग करके काम चलाया जा रहा है।

उपर्युक्त विवरण से यह भलीभांति स्पष्ट है कि राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा योजना के कार्यक्रम में जो ५० रु० के एक प्रौढ़ शिक्षक से काम कराने की बात कही गयी है, वह नितान्त अव्यवहार्य है और एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र पर एक शिक्षक से किसी भी अवस्था में काम नहीं चल सकता है। जो दिल्ली में बैठकर योजना बनाते हैं और क्षेत्र में काम करने के लिये जिसके पास समय नहीं है, वही एक प्रौढ़ शिक्षक से केन्द्र चलाने की बात कर सकते हैं।

अन्त में मुझे इस बात की चिन्ता है कि इस केन्द्र को स्थायी और जीवन्त रूप किस प्रकार बनाया जाय। यह बन सके तो लगभग ५०० ६०० प्रौढ़ आने लगेंगे सरकारी नियमों में क्या यह प्रयोग, प्रयोग ही रह जायेगा या विश्वविद्यालय समाज सेवा के इस कार्यक्रम को अपना बना सकेगा। यह प्रश्न चिन्ह सामने है।

कुलपति, आचार्य बद्रीनाथ शुक्ल की नये प्रयोगों में रुचि रहती है। समाज-सेवा-कार्यों में उनकी सत्य-वृत्ति है। उन्होंने अभी वाणी से समर्थन दिया है मुझे विश्वास है कि अन्य प्रकार से भी उनका समर्थन इस कार्य के लिए प्राप्त होगा।

छात्र छात्राओं के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूं कि मेरी इस संकल्पना को साकार करने में वे निःस्वार्थभाव से परिश्रम कर रहे हैं और अपना समय दे रहे हैं।

प्रौढ़ शिक्षा की पृष्ठभूमि

डा० सीताराम जायसवाल, शिक्षा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता लगभग २९ प्रतिशत है। दूसरे शब्दों में भारत के लगभग ७० प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। यदि भारतीय लोकतंत्र को शक्तिशाली और दृढ़ बनाना है तो हमें भारत को निरक्षरता के अभिशाप से मुक्त करना होगा।

प्रश्न यह है कि भारत में निरक्षरता की मात्रा इतनी अधिक क्यों है? भारत में अंग्रेजी शासन के पूर्व शिक्षा की स्थिति काफी अच्छी थी। निरक्षरता की मात्रा भी कम थी। प्रमाणस्वरूप १८२३ ई० में प्रकाशित ईस्टइंडिया कम्पनी की एक रिपोर्ट का निम्नलिखित अंश उल्लेखनीय है 'शिक्षा की दृष्टि से संसार के किसी भी अन्य देश में किसानों की दशा इतनी अच्छी नहीं है जितनी ब्रिटिश भारत के अनेक भागों में है।'[1]

उन्नीसवीं शती के दूसरे और तीसरे दशक में भारतीय

[1] दे० लेखक की पुस्तक प्रौढ़-शिक्षा प्रसार, हिन्द स्काउट सहकारी प्रकाशन, इलाहाबाद, १९४८, पृ० १५.

जनता गरीबी और अशिक्षा से पीड़ित न थी। ३ जून सन १८१४ को बंगाल के गवर्नर जनरल ने अपने पत्र में लिखा था। 'शिक्षा की जो प्रणाली बहुत पुराने समय से भारत में यहाँ के आचार्यों के अधीन जारी है, उसकी सबसे बड़ी प्रशंसा यही है कि रेवरेंड डा० बेल के अधीन जो मद्रास में पादरी रह चुके हैं, यही तरीका इस देश (इंग्लैंड) में भी प्रचलित किया गया है, अब हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं में इसी प्रणाली के अनुसार शिक्षा दी जाती है क्योंकि हमें विश्वास है कि इससे भाषा का सिखाना बहुत सरल तथा सीखना सुगम हो जाता है।'[1]

भारतीय शिक्षा जन सामान्य में किस रूप में प्रचलित थी इसका उल्लेख हम उस प्रतिवेदन में भी मिलता है जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८८२ में नियुक्त भारत सरकार के शिक्षा आयोग (हंटर कमीशन) के सम्मुख प्रस्तुत किया था। शिक्षा आयोग की प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर भारतेन्दु ने लगभग २०,००० शब्दों में अंग्रेजी भाषा में लिखकर भेजा था। अपने साक्ष्य में भारतेन्दुजी ने अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पूर्व पश्चिमोत्तर प्रान्त के नगरों में प्राचीन परिपाटी की शिक्षण संस्थाओं के बड़ी संख्या में होने का उल्लेख किया था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्राचीन परिपाटी की शैक्षिक संस्थाओं का सात श्रेणियों में वर्गीकरण किया था जो कि निम्नलिखित है :

१. चटशाले, जिनमें नागरी, कैथी या महाजनी वर्णमाला पढ़ाई, मौखिक गणित, जोड़, बाकी, गुणा, भाग, सूद तथा सूद दर सूद निकालना सिखाया जाता था।

२. संस्कृत पाठशालाएँ जिनमें ज्योतिष, न्याय, दर्शन काव्यशास्त्र पढ़ाया जाता था।

३. वेद, मीमांसा, वेदान्त आदि की शिक्षा देने वाली पाठशालाएँ।

४. महाजनी पाठशालाएं जिनमें देशी व्यापार, गणित तथा बहीखाता लिखना सिखाया जाता था।

उपर्युक्त चार श्रेणी की पाठशालाओं में प्रायः हिन्दू विद्यार्थी ही पढ़ते थे।

५. मकतब जिनमें फारसी लिखना और पढ़ना सिखाया जाता था। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों विद्यार्थी पढ़ते थे। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद इन मकतबों की संख्या तेजी से घटने लगी थी, क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने फारसी की जगह अंग्रेजी को राजभाषा बना दी थी।

६. अरबी साहित्य, व्याकरण, न्याय, दर्शन आदि की शिक्षा देने वाले मकतब।

७. कुरान हिफज करने वाले मकतब।

यदि प्राचीन परिपाटी की शैक्षणिक संस्थाएं चलती रहती तो भारत में निरक्षरता की वृद्धि न होती। लेकिन विदेशी शासकों की नीति थी कि भारत के लोगों को दबा कर रखा जाय और उन्हें ऐसी शिक्षा न दी जाय जो उनके मन में राष्ट्रीय चेतना और देशभक्ति उत्पन्न करे। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी शासकों ने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए प्रयास किया। ग्रामीण क्षेत्रों की विदेशी शासकों ने उपेक्षा की और नगरों में रहने वालों को ऐसी शिक्षा प्रदान की जाने लगी जो उन्हें विदेशी शासकों के प्रति निष्ठावान बनाती थी। सन १८५७ से १९१९ ई० तक ब्रिटिश शासकों ने जनसाधारण की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया। फलतः कुछ स्वयं सेवी संस्थाओं ने अपने प्रयास से कुछ संस्थाएँ खोलीं। बड़ौदा राज्य में एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना सन् १९१० में की गयी। इसी प्रकार बंगाल में भी देशभक्त लोगों के प्रयास से कई प्रौढ़ पाठशालाएँ स्थापित की गयी।

प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में दूसरी ऐतिहासिक तिथि है १९१९। १९१९ से लेकर १९४७ तक की अवधि में भारतीय प्रौढ़ शिक्षा का एक क्रमबद्ध स्वरूप दिखाई पड़ता है। यह स्मरणीय है कि प्रथम विश्व युद्ध १९१९ में समाप्त हुआ था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारत के लोगों में देश की आजादी के प्रति एक नया उत्साह उत्पन्न हुआ। फलतः भारत में साक्षरता प्रसार के प्रयास भी होने लगे।

---

१ वही पृ० ६५-६६ २ स्वतंत्र भारत, साप्ताहिक परिशिष्ट, ३ सितम्बर सन् १९७८, पृ० ८

गांधीजी और प्रौढ़शिक्षा

गांधी जी ने जीवन के सभी पक्षों पर सम्मिलित प्रकाश डाला है। उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा के महत्व की उस समय चर्चा की जब लोग केवल साक्षरता पर ही ध्यान दे रहे थे। यह उल्लेखनीय है कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्रौढ़ साक्षरता पर अधिक बल दिया गया। इसका कारण यह था कि उस समय जन संचार के माध्यम, जैसे रेडियो और सिनेमा, का विकास नहीं हुआ था। फलतः पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही लोगों को नयी जानकारी प्राप्त होती थी। अतः जो लोग निरक्षर थे, उन्हें साक्षर बनाना आवश्यक समझा गया।

इसमे सन्देह नहीं कि प्रौढ़ शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग साक्षरता है। लेकिन केवल अक्षर ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। इस संदर्भ मे गांधी जी का निम्नलिखित कथन ध्यान देने योग्य है:

"दरअसल मेरी राय में हमारे अफसोस करने और लज्जित होने का कारण निरक्षरता इतना नहीं है जितना कि अज्ञान है। इसलिए वयस्क लोगों की शिक्षा के लिए भी मुझे उनका अज्ञानान्ध दूर करने का एक जबरदस्त कार्यक्रम बनाना चाहिए। .. मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि उन्हें वर्णमाला का ज्ञान नहीं कराऊँगा। .. नहीं, इसकी तो मैं अधिक कीमत आँकता हूँ कि शिक्षा के एक साधन के रूप मे मैं उसे हल्की नजर से नहीं देखता।'

यह बात गांधीजी ने सन् १६३७ में कही थी और आज भी यह पूर्णतः सत्य है। प्रौढ़ साक्षरता प्रौढ़शिक्षा का साधन है न कि साध्य। लेकिन अधिकतर लोगों ने प्रौढ़ साक्षरता को ही प्रौढ़ शिक्षा मान लिया था। फलतः १६.६ में जब भारत के अधिकतर प्रदेशों में कांग्रेस के नेताओं ने शासन भार संभाला तब प्रौढ़ साक्षरता के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा पर बल दिया जाने लगा।

प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत समाज के दुर्बल वर्ग, विशेषकर ग्रामीण समाज के अपढ़ निवासियों की आवश्यकताओं पर ध्यान रखते हुए ऐसे विषयों को प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम मे स्थान देना आवश्यक है जो व्यक्ति और समाज की दृष्टि से उपयोगी है। इस सदर्भ मे गांधीजी का यह कथन महत्वपूर्ण है कि निरक्षरता से अधिक आवश्यक है अज्ञान के अन्धकार को दूर करना। दूसरे शब्दो मे, गांधीजी ने यहाँ एक ऐसे तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है जो प्रायः हम भूल जाते हैं। यह तथ्य है साक्षरता और शिक्षा मे अन्तर। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक साक्षर व्यक्ति अशिक्षित हो सकता है और एक निरक्षर व्यक्ति को शिक्षित माना जा सकता है यदि हम शिक्षा को सही अर्थों मे स्वीकार करें।

महात्मा गांधी के अनुसार, विद्या वह है जो मुक्ति दिलाने वाली हो 'सा विद्या या विमुक्तये' .. ऐसी शिक्षा कोरी पोथियों से थोड़े मिल सकती है। .. यह शिक्षा तो जीवन की पुस्तक से मिलती है।[2]

अतः यह स्पष्ट है कि गांधीजी पुस्तक पढ़ लेने की क्षमता को ज्ञान का पर्याय नहीं मानते थे। सच्चा ज्ञान जीवन में जीवन द्वारा और जीवन के लिए प्राप्त होता है। यही कारण है कि नई तालीम की व्याख्या करते हुए उसे जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त चलने वाली शिक्षा के रूप मे स्वीकार किया गया। इतना ही नहीं, नई तालीम को सत्य और अहिंसा पर आधारित करके भारतीय संस्कृति से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया गया और व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सत्य और अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

स्वतन्त्र भारत में प्रौढ़-शिक्षा

१५ अगस्त सन् १६४७ को भारत जब स्वतन्त्र हुआ तब मौलाना अबुल कलाम आजाद भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री नियुक्त किये गये। इन्होंने प्रौढ़ शिक्षा के स्थान पर समाज शिक्षा शब्द के प्रयोग पर बल दिया। इसका कारण कदाचित यह था कि प्रौढ़ शिक्षा केवल प्रौढ़ साक्षरता पर बल न देकर प्रौढ़ के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास पर भी ध्यान देने लगी। शिक्षा मंत्री मौलाना

---

१ रामनाथ सुमन, शिक्षण और संस्कृति (गांधीजी), उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि, वाराणसी १६६८, पृ० २१३

२. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १६६३, पृ० ७४

अबुल कलाम आजाद ने यह स्पष्ट घोषणा की कि प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत सामाजिक चेतना के विकास पर भी बल दिया जाय। फलत समाज शिक्षा का एक पंच सूत्री कार्यक्रम बनाया गया जो इस प्रकार है।

१. साक्षरता प्रसार

२. स्वास्थ्य तथा सफाई के नियमों के ज्ञान का प्रसार

३ वयस्क व्यक्तियों के आर्थिक स्तर की उन्नति

४ नागरिकता की भावना, अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति जनता में जागरूकता को प्रोत्साहन देना, और

५ सामाजिक व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करना।[1]

इसमें सन्देह नहीं कि समाज (प्रौढ़) शिक्षा का यह कार्यक्रम समग्र जीवन को प्रभावित करने वाला था क्योंकि इसका सम्बन्ध व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं से जोड़ा गया था।

सन् १९५२ के आसपास जब भारत में सामुदायिक विकास की योजना चलाई गई तब उसमें समाज शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया गया और इसके लिए समाज शिक्षा अधिकारियों की नियुक्ति की गई। लेकिन कालान्तर में सामुदायिक विकास की योजना का परिणाम आशातीत न हुआ। सामुदायिक विकास की योजना में प्रदर्शन और प्रचार की ओर आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया गया। कागजी योजनाएं और उनसे सम्बन्धित उपलब्धि के आंकड़े अविश्वसनीय हो गये।

भारत को पाकिस्तान और कुछ समय बाद चीन से युद्ध करना पड़ा। इसका प्रभाव भी जन कल्याण की योजनाओं पर पड़ा। आर्थिक अभाव के कारण समाज शिक्षा की प्रगति में बाधा पड़ी। सन् १९७१ की जन गणना के अवसर पर यह ज्ञात हुआ कि १९५१ से लेकर १९७१ की अवधि में भारत में साक्षरता की वृद्धि केवल १२ ६७ प्रतिशत हुई जो कि असन्तोषजनक मानी जायगी यदि हम १९६१ से लेकर १९७१ की अवधि में साक्षरता की प्रगति देखें तो यह केवल ५ ३१ प्रतिशत हुई।

अतः यह स्पष्ट है कि भारत में निरक्षरता और अज्ञान की समस्या का समाधान केवल सरकारी प्रयासों से नहीं हो सकता। इसके लिये प्रत्येक शिक्षित नर नारी को प्रयास करना होगा।

प्रौढ़शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम

समाज शिक्षा की संकल्पना अपेक्षित मात्रा में साकार न हो सकी। इसके बाद क्रियात्मक साक्षरता (फंक्शनल), अनवरत शिक्षा [कांटीनुइंग एडूकेशन] तथा अनौपचारिक शिक्षा [नान फार्मल एडूकेशन होने लगी। इन नवीन संकल्पनाओं के मूल में यह भावना प्रमुख थी कि सीमित समय के लिये प्रदान की जाने वाली औपचारिक शिक्षा तीव्र गति से होने वाले सामाजिक परिवर्तन के सदर्भ में अपूर्ण होती है। फलत शिक्षा में क्रिया और दस्तकारी का समावेश करके इसे जीवनोपयोगी बनाने पर बल दिया गया। साक्षरता के कार्यक्रम को भी क्रियात्मक रूप दिया जाने लगा।

यह उल्लेखनीय है कि हमारे देश के संविधान में ६ से १४ वर्ष के आयु वर्ग के बालकों एवं बालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्राविधान है। अत १५ वर्ष और उसके ऊपर की आयु के व्यक्तियों के लिए चाहे वे निरक्षर हों अथवा साक्षर ऐसी प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था होगी जो उनमें देश प्रेम, सांस्कृतिक जागरूकता के साथ-साथ अच्छे नागरिक बनने की प्रेरणा प्रदान करे।

भारत सरकार की वर्तमान जनता सरकार ने यह अनुभव किया कि जब तक देश में अज्ञान और निरक्षरता का बोल बाला रहेगा तब तक समाज के पीड़ित और दुर्बल वर्ग का उत्थान न हो सकेगा। यह स्मरणीय है कि गरीबी और अशिक्षा एक दूसरे के पूरक हैं। यदि हमें अपने देश से गरीबी को हटाना है तो ऐसी प्रौढ़ शिक्षा की योजना बनानी होगी जिसका सीधा सम्बन्ध समाज के गरीब और दुर्बल वर्ग से हो। इतना ही नहीं प्रौढ़ शिक्षा के राष्ट्रीय कार्यक्रम में जनता की मूलभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा और शिक्षण की ऐसी पद्धति अपनानी होगी जो लोकरंजन और मनोरंजन दोनों में सहायक हो।

---

१ श्रीधर मुखर्जी, भारत में शिक्षा, आचार्य बुक डिपो, बड़ौदा, १९६०, पृ० २५३

भारत की सांस्कृतिक संपदा अपार है। कबीर, नानक दादू, रैदास आदि संत अपने युग के सही अर्थों में प्रौढ़ शिक्षक थे। इन्होंने जनता की भाषा में सत्य का उद्घाटन किया और सच्चाई से जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्रदान की। सन्तों की सरल वाणियों को हमें फिर से प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम में सम्मिलित करना होगा। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि हम सभी धर्मों की मूल एकता को जन जन के मन में भर दें। राम, रहीम, कृष्ण, करीम को लेकर कबीर ने जिस नवमानवतावाद का प्रसार किया था वह आज भी सभी लोगों के लिए, चाहे वे साक्षर हों अथवा निरक्षर, उपयोगी है।

अन्त में एक चेतावनी देना चाहता हूँ। प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम एक प्रकार का ज्ञान यज्ञ है। यदि कोई व्यक्ति इस कार्यक्रम को व्यक्तिगत लाभ का साधन बनाता है तो यह राष्ट्र के प्रति एक अपराध माना जायगा अतः प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का यह नैतिक दायित्व है कि वह कम से कम एक निरक्षर व्यक्ति को साक्षर अवश्य बनाए। इतना ही नहीं, अपने पास पड़ोस में भी लोक रंजन तथा मनोरंजन के ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करें जो सामाजिक दूरी को घटा कर सभी वर्गों के लोगों में अच्छे सम्बन्ध विकसित करने में सहायक हों।

प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम की सफलता बिना जन सहयोग के सम्भव नहीं है। इसमें संस्थाओं को आगे बढ़ कर काम करना होगा और सरकार को चाहिए कि वह इनकी आर्थिक सहायता करते हुए परोक्षरूप से समय-समय पर मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन प्रदान करे। यदि प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम में सरकारी तन्त्र की प्रधानता होगी तो इसकी सफलता में संदेह होना स्वाभाविक है।

●

शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का स्थान

चन्द्रावती खास्नीवाला

धर्म और शिक्षा दोनों ही जीवन के प्रेरक और व्याख्याता हैं। एक क्रिया है तो दूसरा उसका आत्मबल है। धर्म दोहरा सम्बन्ध स्थापित करता है–"पहला मनुष्य और ईश्वर के बीच, और दूसरा ईश्वर की सन्तान होने के कारण मनुष्य और मनुष्य के बीच।" मनुष्य और मनुष्य के बीच सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है जब हम पूरी शक्ति से दूसरों की भलाई करें। यह तभी सम्भव है, जब हम नम्र, पवित्र, दयालु और निष्पक्ष हों।

धर्म का उदय मानव सभ्यता और संस्कृति के उदय के साथ ही हुआ है। एक समय था जब धर्म जीवन के सब अंगों पर पूरी तरह छाया हुआ था। उसने व्यक्ति और समाज को असत्य से हटाकर सत्य की ओर, अशिव से हटाकर शिव की ओर और अंधकार से हटाकर प्रकाश की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया। जीवन में इतना महत्व-पूर्ण स्थान रखने पर भी आज धर्म वैज्ञानिक प्रगति, आर्थिक संघर्ष, कुछ स्वार्थियों के कुचक्र तथा ऐसे ही कतिपय अन्याय कारणों से प्रभाव रखने वाला हो गया है। जो धर्म कभी विश्वभर के देशों की शिक्षा संस्थाओं में अग्रगण्य था आज ठुकरा दिया गया है।

धर्म और शिक्षा में समन्वय —

प्राचीन काल में शिक्षा का ध्येय आध्यात्मिक था। धर्म ने मानव हृदय का परिष्कार किया और शिक्षा ने बुद्धि का। धर्म, मानव जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक पहलू से सम्बन्धित है तो शिक्षा भी व्यक्ति के आध्यात्मिक और नैतिक जीवन पर प्रभाव डालती है। यदि शिक्षा

द्वारा मानव के व्यवहार व कुशलता में परिवर्तन लाया जा सकता है तो आदर्श शिक्षा में नैतिकता और आध्यात्मिकता धर्म द्वारा ही मिलती है"। मनुष्य को भौतिक सुख शान्ति की जितनी आवश्यकता है, उससे भी अधिक मानसिक सुख शान्ति की। मनुष्य कितना ही धनवान हो, कितना ही ऐश्वर्य सम्पन्न और समृद्ध हो, परन्तु वह भी मानसिक शान्ति के लिए भटकता देखा गया है। स्पष्ट है कि शान्ति के लिए उन्हें धार्मिक शिक्षा नहीं मिली। मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये है—

धृति, क्षमा, दमोऽस्तेय, शौच मिन्द्रिय निग्रह,
धी विद्या, सत्यक्रोधो, दशकं धर्मं लक्षणम् ।।

ये है—धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, स्वच्छता, इन्द्रिय निग्रह, विद्वता, विवेक, शीलता, सत्य और क्रोध। इन तत्वों के पालन से पूर्णता प्राप्ति की इच्छा की तृप्ति होती है और सृष्टि के साथ प्रेम भाव रखने की प्रेरणा मिलती है।

धर्म मानव जीवन की एक उच्च और उदात्त पवीत और पवित्र भावना है। किल पैट्रिक महोदय का कहना है "धर्म एक सांस्कृतिक ढांचा है जो अलौकिक अथवा भ्रम धारणा से सम्बन्ध रखता है जैसा कि उन विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा विचार किया जाता है जो इसमें आस्था रखते हैं।" धार्मिक भावनाओं से मनुष्य में सात्विक प्रवृत्तियों का उदय होता है। परोपकार, समाज सेवा, सहयोग, सहानुभूति आदि भावनायें जाग्रत होती हैं। धर्म के लिये मनुष्यों को शुभ कर्म करना चाहिए और अशुभ कर्मों का परित्याग कर देना चाहिए। काम, क्रोध, मोह लोभ आदि मानसिक प्रवृत्तियाँ मनुष्य के कर्म में प्रायः उपस्थित रहती हैं। धर्म मनुष्य को भौतिक सुखों की अवहेलना करता है, कष्ट सहता है, परन्तु अपने धर्म के मार्ग से विचलित नहीं होता। हिन्दू धर्म के अनुसार मनुष्य की आत्मा अमर है और शरीर नाशवान है। मृत्यु के पश्चात भी मनुष्य अपने सूक्ष्म शरीर से अपने किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगता है। धार्मिक लोग स्वर्ग, नरक और परलोक में आस्था रखते हैं। इसलिए उनका विचार यह है कि इस अल्प जीवन में सुख भोगने की अपेक्षा अपना परलोक सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

धार्मिक शिक्षा से असंख्य भारतीयों का जीवन शुभत्व की ओर बढ़ा। उन्होंने मनुष्य से देवत्व प्राप्त किया जितने भी उच्चकोटि के महापुरुषों जैसे भगवान महावीर, गौतम बुद्ध, महात्मा गाँधी आदि ने राजसी वैभव का त्याग कर तथा संयम, अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य आदि को अपनाकर अपना जीवन परहित के लिये उत्सर्ग कर दिया। इन आदर्शों को प्रचार दिया और उनके प्रभाव से कितने ही व्यक्तियों का जीवन सुधर गया। इन महापुरुषों के जीवन से जन हृदय में श्रद्धा उमड़ पड़ी। उनके प्रभाव से छोटे तथा बड़े सभी नगरों में मठों, मन्दिरों और आश्रमों की स्थापना की गयी।

धर्म नाम धर्म के वास्तविक सिद्धान्तों में विकार उत्पन्न होने लगा। धर्मोपदेशकों, साधुओं, महात्माओं और पंडितों में मिथ्याडंबर की भावनाएं भर गयीं। इस प्रकार जो धर्म समाज को उन्नति की ओर ले जा रहा रहा था वह अन्ध विश्वास और अन्ध श्रद्धा में बदलकर पतन का कारण बन गया। पण्डित, पुरोहित तथा धर्म गुरु भोली और अनपढ़ जनता को ठगकर यजमान का स्थान स्वर्ग में सुनिश्चित करने लगे।

शिक्षा की उन्नति के साथ ही अन्धकार और अन्ध विश्वास से निकलकर मानव ने बुद्धि और तर्क की शरण ली। धर्म की आड में जो लोग अपने स्वार्थ साधन में संलग्न थे, उनके हितों ने शिक्षा को बहुत गहरा धक्का पहुँचाया।

धर्म और शिक्षा—

धर्म पूर्ण सत्य, पूर्ण कल्याण और पूर्ण सुन्दरता प्राप्त करना चाहता है, किन्तु इसकी प्राप्ति के लिए मानव का नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास आवश्यक है। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा यह विकास सम्भव हो सकता है। अतः शिक्षा धर्म की प्रथम सीढ़ी है। दूसरी ओर धर्म शिक्षा को उच्चतम लक्ष्य प्रदान करता है। इसलिए कहा गया है, "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करे। अतः शिक्षा और धर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं वरन् दोनों के उद्देश्यों में समानता है।

दोनों ही व्यक्ति की भौतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। दोनों व्यक्ति के दृष्टिकोण

को विस्तृत बनाते हैं तथा पूर्णता की इच्छा की तृप्ति करते हैं। दोनों मनुष्य के मानसिक विकास को व्यापक बनाकर उसकी उच्च आकांक्षाओं को बढ़ाना चाहते हैं।

धर्म के इतने उत्तम लक्ष्य और इतने व्यापक प्रभावोत्पादकता के बावजूद भी आधुनिक विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा, एक विवादास्पद प्रश्न है। कुछ धर्म को उत्तम शिक्षा का अनिवार्य तत्व मानते हैं। किन्तु आधुनिक शिक्षा में कहीं भी धर्म को महत्व नहीं दिया गया है। कुछ संस्थाओं जैसे कैथलिक, जैन, आर्य समाज आदि द्वारा संचालित विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है। पर इस तरह की शिक्षा जातिवाद अथवा सम्प्रदायवाद को जन्म देती है। मेरी राय में तो सभी धर्म के सिद्धान्त एक हैं। सभी धर्म क्रोध, मान, माया, लोभ से परे अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य पर बल देते हैं फिर क्यों नहीं 'सर्व धर्म समानत्व' को अपनाकर विश्वधर्म की एकता के तत्व को मानकर शिक्षा के पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा को यथासम्भव उपयुक्त स्थान दिया जाय।

धार्मिक शिक्षा के समर्थकों का कहना है—धर्म ही मनुष्य को पशु से भिन्न करता है तथा धार्मिक शिक्षा से जीवन का पूर्ण विकास होता है। आज के अशांत, संघर्ष प्रधान और युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त विश्व को धर्म ही शान्ति दे सकता है। वर्तमान समय में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बुराइयां दिखती हैं अनुशासनहीनता चारित्रिक पतन, मानसिक अशान्ति, वैमनस्य आदि का जो बोलबाला है उसका मूल कारण धार्मिक भावना का अभाव है। रास महोदय का कहना है कि, सभ्यता को कालग्रस्त होने से बचाना है अथवा उसे बर्बरता में परिणत होने से रोकना है, तो शिक्षा की योजना धर्म के आधार पर करनी होगी। धर्म सद्गुणों का मूल स्रोत है। सद्गुणों से ही चरित्र का निर्माण होता है। अतः यदि शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण है तो शिक्षा में धर्म का स्थान भी सुरक्षित रखना होगा। धर्म आस्तिकता का स्रष्टा है और आस्तिकता से व्यक्ति और समाज दोनों का हित होता है, इसमें संदेह नहीं। अतः धार्मिक शिक्षा आवश्यक है।

धर्म अन्ध विश्वासों का द्योतक नहीं है अपितु वैज्ञानिकता का पूरक है। धर्म को सच्चे अर्थों में समझने वाले और उसके स्वरूप की सच्ची व्याख्या करने वाले लोग होने चाहिए। धर्म बालक के दृष्टिकोण में व्यापकता और वैज्ञानिकता लाता है।

इतना होते हुए भी धार्मिक शिक्षा को आधुनिक दार्शनिकों ने कुछ तर्कों के साथ छोड़ा है किन्तु त्यागा नहीं है। महात्मा गांधी ने कहा है—'हमने वर्धा शिक्षा योजना में धर्म का परित्याग (Left out) इसलिए कर दिया है क्योंकि हम डरते हैं कि आजकल जो धार्मिक शिक्षा दी जाती है तथा जिस प्रकार अनुसरण किया जाता है वह एकता की अपेक्षा संघर्ष का ही जनन करती है। परन्तु दूसरी ओर मेरा विचार है कि सत्य जो सभी धर्मों में समान रूप से विस्तृत है बालकों को पढ़ाया जाना चाहिए।

आचार्य विनोबाजी ने अपनी पुस्तक 'शिक्षण-विचार' में धर्म शिक्षण की व्याख्या करते हुए लिखा है—'निस्सन्देह धार्मिक शिक्षण दिलचस्प विषय है। पर आज धर्म शब्द का अर्थ बड़ा ही संकुचित और समाज भंजक बन गया है। यही कारण है कि विचारशील लोगों का झुकाव पाठशालाओं में धर्म शिक्षण न देने के पक्ष में ही है। मेरी दृष्टि में सच्चा धर्म शिक्षण साहित्य का विषय ही नहीं है। चरित्र-निष्ठा ईश्वर-विषयक श्रद्धा और देह से पृथक आत्मा का भाव, यही धर्म का सार है और यह सत्पुरुषों की संगति से ही मिल सकता है। इसलिए सुशील शिक्षकों की योजना ही मेरी धर्म-शिक्षण की योजना है।" उन्होंने आगे कहा है, 'चित्त शुद्धि की तनिक भी परवाह न कर कुछ तान्त्रिक आचारों और क्रिया कलापों से सीधे पुण्य हथियाने की कल्पनाएं जो सभी धर्मों में रूढ़ हैं, वह नष्ट होनी चाहिए। अगर यह सब सध सके तो मैं समझूंगा कि सारा धर्म शिक्षण मिल गया।" इन विचारों से गांधी जी और विनोबा जी ने परोक्ष रूप से धार्मिक शिक्षा को स्वीकार किया है।

अतः मानव के सर्वांगीण विकास और वैभव के लिए यह आवश्यक है कि धर्म और शिक्षा में सामंजस्य और समन्वय स्थापित हो। एकाकी ज्ञान और एकाकी समृद्धि न ज्ञान है और समृद्धि ही। जिस प्रकार अकेला धर्म संसार को शान्ति प्रदान नहीं कर सकेगा, उसी प्रकार अकेली शिक्षा संसार को समृद्ध नहीं बना सकती। धर्म का सम्बन्ध मुख्यतया हृदय से है तो शिक्षा का संबंध मस्तिष्क से। हृदय और मस्तिष्क का समन्वय ही सुख, समृद्धि और शान्ति दे सकता है। मेरे ख्याल में तो धर्म और शिक्षा दोनों आपस में मित्र हैं। मित्र मित्र की सहायता करता है तभी विजय मिल सकती है। आज विश्व को शान्ति भी चाहिये और समृद्धि भी। इसलिए धर्म और शिक्षा दोनों में सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है।

हमें स्कूल क्यों समाप्त करना है

अनुवादक डॉ देवेन्द्र दत्त तिवारी

[इवान इलिच की प्रसिद्ध पुस्तक 'डि-स्कूलिंग सोसाइटी' का अनुवाद हम क्रमश 'नयी तालीम' मे इसलिए प्रकाशित कर रहे है कि इवान इलिच के विचार गाधीवादी विचारधारा से मिलते-जुलते है।]

(गताक से आगे)

अब भी प्रर्याप्त ज्ञानार्जन आकस्मिक रूप से होता है और ऐसी क्रियाओं का उपपरिणाम है जो कार्य अथवा अवकाश (Leisure) की परिभाषा मे आते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि सुनियोजित शिक्षण से सुनियोजित ज्ञानार्जन को लाभ नही होता है और न यह समझना चाहिए कि दोनो मे सुधार की आवश्यकता नहीं है। बलवती प्रेरणायुक्त विद्यार्थी, जो एक नवीन विषम कौशल सीखना चाहता है उस विषय से पर्याप्त लाभ उठा सकता है, जो अब पुराने ढग के उस शिक्षक से सम्बद्ध है जो पढना, हिब्रू, प्रश्नोत्तर और गुणा रटाकर सिखाता था। स्कूल के इस प्रकार के रटटू शिक्षण को अब बहुत कम और प्रतिष्ठाहीन कर दिया है। फिर भी बहुत से कौशल ऐसे हैं जिनपर एक प्रेरणायुक्त और सामान्य अभिरुचियुक्त विद्यार्थी कुछ ही महीनों में अधिकार प्राप्त कर सकता है, यदि उनका शिक्षण परम्परागत ढग से किया जाय। ये प्रतीक (कोड्स) और उनके बोध द्वितीय तथा तृतीय भाषा ज्ञान के लिए उतना ही सत्य हैं जितना सामान्य लिखने और पढने के लिए और उतना ही सत्य उन विशेष भाषाओ के लिए है जैसे बीजगणित, कम्प्यूटर, (प्रोग्रामिंग) रासायनिक, विश्लेषण या हाथ के कौशल के लिए जैसे टाइप करना, घडी बनाना, मिस्त्री का काम करना, तार लगाना, टी० वी० या नृत्य, मोटर चलाना या पनडुब्बी की कला सीखना।

कुछ मामलो मे, ज्ञानार्जन के उस कार्यक्रम मे, जिसका लक्ष्य एक विशेष कौशल मे दक्षता प्राप्त करना हो सम्मिलित होने के लिए किसी दूसरे कौशल की दक्षता भी आवश्यक हो सकती है किन्तु उसके ऐसी प्रक्रिया पर निर्भर होना आवश्यक नही है जिनके द्वारा ये कौशल सीखे गये थे। टी०वी० की मरम्मत के लिये साक्षरता तथा कुछ गणित का पूर्णज्ञान आवश्यक है, पनडुब्बी की कला के लिये अच्छी तैराकी और ड्राइविंग के लिये दोनो का बहुत कम पूर्वज्ञान चाहिए।

ज्ञानार्जन का कौशल नापा जा सकता है। एक अभिप्रेरित औसत प्रौढ के सीखने के लिये उपयुक्त समय और सामग्री का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। अमरीका मे एक दूसरी पश्चिम योरोप की उच्चतरीय भाषा सीखने का खर्च चार से छ सौ डालर के बीच में आता है और किसी प्राच्य भाषा सीखने के लिये दुगुना समय लगेगा। फिर भी यह खर्च न्यूयार्क नगर मे १२ वर्ष की स्कूली शिक्षा पर होने वाले व्यय की तुलना मे बहुत कम होगा (सफाई विभाग मे कार्यकर्त्ता के लिये अनिवार्य योग्यता वह लगभग पन्द्रह हजार डालर होगा। निःसंदेह न केवल शिक्षक प्रत्युत औषधि निर्माता अपने व्यवसाय के इस सार्वजनिक भ्रमको प्रचलित कर सुरक्षित रखते हैं कि उनके लिये प्रशिक्षण बहुत खर्चीला है।

इस समय स्कूल बहुत सा शैक्षिक धन हथिया लेते हैं। शिक्षण की ड्रिल जो स्कूली खर्चे से कम खर्चीली है अब उन धनिको का विशेषाधिकार है जो स्कूली शिक्षा की उपेक्षा कर सकते हैं और जिन्हें या तो सेना या बडे उद्योगपति सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिये भेजते हैं। अमरीका मे शिक्षा के क्रमिक रूपसे स्कूल विहीन होने के कार्यक्रम मे प्रारम्भ मे ड्रिल प्रशिक्षण के लिये साधन अत्यन्त सीमित

होवे। किन्तु अन्ततोगत्वा किसी के लिये जीवन में किसी समय में भी जनता के खर्च पर सैकड़ों कौशलों में से किसी एक कौशल के शिक्षण को चुनने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

अभी भी किसी कौशल – शिक्षण केन्द्र पर शैक्षिक क्रेडिट केवल गरीबों को नहीं बल्कि सभी वर्ग के लोगों को एक सीमित मात्रा में मिल सकता है। मैं यह सोचता हूं कि भविष्य में हर नागरिक को उसके जन्म पर ही इस प्रकार की क्रेडिट एक शैक्षिक-पासपोर्ट या एक शैक्षिक क्रेडिट कार्ड के रूप में मिल जाए। गरीबों के प्रति सहानुभूति की दृष्टि से, जो अपनी वार्षिक सहायता प्रारम्भिक जीवन में प्रयोग में नहीं ला सकेंगे, ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि बाद में इकट्ठा क्रेडिट कार्ड प्रयोग में लाने वालों को ब्याज मिलता रहे। ऐसी क्रेडिट से ऐसे कौशल जिनकी मांग अधिक होगी, अपनी सुविधा से अधिक अच्छे ढंग से, अधिक शीघ्रता से और अधिक सस्ती विधि से प्राप्त कर सकेंगे और स्कूल के बुरे पार्श्व प्रभावों से भी बच सकेंगे।

पोटेंशल कौशल—शिक्षकों की अधिक दिनों तक कमी नहीं रहती। किसी समाज में कौशल की मांग उसके प्रयोग पर निर्भर करती है। दूसरी ओर जो कौशल का प्रयोग कर सकते हैं, वे उसे सिखा भी सकते हैं। किन्तु इस समय जो ऐसे कौशल का प्रयोग करते हैं जिनकी मांग अधिक है और जिनके लिए मौलिक अध्यापक की आवश्यकता है, उन्हें इस बात से हतोत्साहित किया जाता है कि वे उसे दूसरों को भी सिखाएं। ऐसी स्थिति या तो उन शिक्षकों द्वारा उत्पन्न की जाती है जो लाइसेंस पर एकाधिकार रखते हैं या यूनियनों के द्वारा जो अपने व्यावसायिक हितों की परिणामों के आधार पर किया जायगा, न कि उस स्टाफ के आधार पर जो उनके पास है और न उस प्रक्रिया के आधार पर जो वे काम में लाते हैं, काम के अप्रत्याशित अवसर उपस्थित किये जा सकेंगे, बहुधा उन लोगों के लिये भी जिन्हें आजकल रोजगार में लगाने के अयोग्य समझा जाता है। वास्तव में इसका कोई कारण नहीं है कि ये कौशल–शिक्षण–केन्द्र काम करने के स्थान पर ही क्यों न हों। इससे रोजगार देने वाला और उसके सहकर्मी, जो शिक्षण भी देंगे और साथ ही उन लोगों को काम भी देंगे, जो अपनी शैक्षिक क्रेडिट का इस प्रकार प्रयोग करना चाहते हैं।

१९५६ में न्यूयार्क के धर्माचार्य के प्रबन्ध क्षेत्र में स्पेनिश सिखाने हेतु सैकड़ों अध्यापकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं जिससे वे स्पेनिश लोगों से सम्वाद स्थापित कर सकें। मेरे मित्र गैरी मारिस ने एक स्पेनिश रेडियो स्टेशन से यह घोषणा की कि हार्लम (न्यूयार्क में नीग्रो लोगों की आबादी) से मूल भाषा—भाषियों की आवश्यकता है। दूसरे दिन लगभग २०० टीन एजर (बीस वर्ष से कम उम्र वाले) उनके कार्यालय के सामने इकट्ठा हो गए और उन्होंने उनमें से ४० को चुन लिया। उनमें से काफी संख्या अधूरी स्कूली शिक्षा लिए हुओं (ड्राप आउटस) की थी। उन्होंने उन बच्चों को यू. एस. फारेन सर्विस इंस्टीट्यूट मैनुअल के प्रयोग में प्रशिक्षण दिया। यह मैनुअल स्नातक प्रशिक्षण प्राप्त भाषाविज्ञों के प्रयोग के लिए बनाई गयी थी। एक सप्ताह के भीतर उनके शिक्षक (टीन एजर) आत्म निर्भर हो गए और प्रत्येक ने चार ऐसे न्यूयार्क के रहने वाले को सिखाने के लिये चुना जो स्पेनिश बोलना चाहते थे। ६ महीने के भीतर मिशन पूरा हो गया। कार्डिनल स्पैलमैन ने यह दावा किया कि उनके १२७ गिरिजाघरों में कम से कम तीन लोग ऐसे थे जो स्पेनिश बोल सकते थे। कोई भी स्कूल इस प्रकार का कार्य पूरा नहीं कर सकता था।

कौशल के शिक्षकों की कमी का कारण लाइसेंस में विश्वास है। प्रमाण-पत्रीकरण बाजार का गोरखधन्धा है और केवल स्कूली मस्तिष्क ही इसे व्यवहार में ला सकता है। कौशल कला के अधिकतर स्कूली अध्यापक अच्छे शिल्पकारों और व्यवसायियों की अपेक्षा कम निपुणता कम मौलिकता और कम प्रेषणीयता रखते हैं। बहुत से हाई स्कूल के शिक्षक स्पेनिश या फ्रांसीसी भाषा उतनी अच्छी तरह नहीं बोलते जितनी अच्छी तरह उनके शिष्य ६ महीने के उपयुक्त अभ्यास के बाद बोल लेते हैं। प्यूरटोरिको में एडिलविस्टीसों ने जो प्रयोग किए हैं उनसे संकेत मिलता है कि बहुत से टीन एजर, यदि उन्हें उचित प्रोत्साहन दिया जाय और साधन भी दिए जांय तो अपने

प्रौढ़ शिक्षा

कोठारी शिक्षा आयोग की रिपोर्ट

(गतांक से आगे)

17.37 औद्योगिक कामगारों की शिक्षा—संगठित उद्योगों के कामगारों को शिक्षित करने के लिए क्रमबद्ध पद्धति शीघ्र कार्यान्वित करने की आवश्यकता पर हम पहले ही बल दे चुके है और यह सुझाव भी दे चुके हैं कि उन्हें तीन वर्ष के भीतर साक्षर बनाया जाय। हमने यह सुझाव भी दिया है कि उनकी शिक्षा नियोक्ताओं और शिक्षा विभागों के सहयोगात्मक प्रयास के रूप में होनी चाहिए। नियोक्ता समय अन्य सुविधाएं और प्रोत्साहन दें तथा शिक्षा विभाग शिक्षा कार्यक्रम तैयार करें अध्यापकों और पुस्तकों की व्यवस्था करें तथा अन्य प्रकार की सहायता दें। उत्पादन बढ़ाने में श्रमिक वर्ग के महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए उनके काम चलाऊ साक्षर होने के साथ ही उनकी शिक्षा समाप्त न होने दी जाय। हम सिफारिश करते हैं कि कामगारों को भी शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि उनका ज्ञान, कारीगरी उन्नत हो जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यापक हो अपने व्यवसाय के प्रति उनमें दायित्व भावना पैदा हो और वे अपने काम में आगे बढ़ें। उनके लिए विशेष अंशकालिक और 'सैंडविच' कार्यक्रम चलाये जाय ताकि वे क्रमशः पाठ्यक्रमों को अपनाते जाय।

17.38 इस विषय में एक महत्वपूर्ण उपाय यह

होगा कि औद्योगिक कामगारों के लिए ऐसे विशेष पाठ्यक्रम चलाए जाय जो गुणता और स्तर के विचार से स्कूल के नियमित विद्यार्थियों के उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रमों के समतुल्य हों। कारखानों में वयस्क, यथार्थवादी और व्यवहार कुशल कामगार तथा जीवन में किसी निश्चित व्यवसाय में न लगे हुए स्कूलों के निश्चित किशोर—इन दोनों की आयु प्रवृत्तियों और महत्वाकांक्षाओं का अन्तर समझना आवश्यक है। स्कूलों से निकल कर विद्यार्थी जैसे जैसे उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में पहुंचते जाते हैं आयु वृद्धि के साथ यह अन्तर घटने लगता है, पर माध्यमिक स्तर उसका जो अनन्य महत्व है वह कामगारों के लिए ऐसे पृथक-पृथक अंशकालिक और पत्राचार पाठ्यक्रमों द्वारा व्यक्त होना चाहिए जिनमें उनकी परिपक्व आवश्यकताओं तथा विशिष्ट व्यावसायिक और अन्य हितों पर बल दिया गया हो।

17.39 केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा तत्काल इस दिशा में कार्य प्रारम्भ होना चाहिए। सरकारी क्षेत्र के औद्योगिक उद्यमों को भी अपने कामगारों के लिए कक्षाओं का आयोजन करने की और उन्हें परीक्षाओं की तैयारी के लिए प्रोत्साहित करने की पहल करनी चाहिए। विशेष रूप से तैयार किये गये कार्यक्रमों के अन्तर्गत चलाये गए अंशकालिक पाठ्यक्रमों से कामगारों को और भी सहायता मिलेगी जो उनके भविष्य से सम्बद्ध सामान्य, तकनीकी, प्रबन्ध विषयक और अन्य प्रकार की शिक्षा के विविध क्षेत्रों में उन्हें यथासम्भव ऊँचे स्तर तक ले जाने में समर्थ हों।

17.40 कामगारों की शिक्षा, शिक्षा मन्त्रालय तथा श्रम और रोजगार मन्त्रालय का संयुक्त दायित्व होना चाहिए। औद्योगिक कामगारों के लिये शिक्षा के संगठनात्मक पक्ष का दायित्व श्रम और रोजगार मन्त्रालय का होना चाहिए जो विभिन्न समूहों के लिए कक्षाओं की व्यवस्था करें, शिक्षा के लिए उचित समय पर छोड़ दें, कक्षा के लिए कमरे, पुस्तकालय, वाचनालय और जहाँ सम्भव हो प्रयोगशाला आदि की सुविधाएं दें तथा सबसे बढ़कर यह है कि जो प्रगति दिखाएं, उन्हें प्रोत्साहन दें। श्रम और रोजगार मन्त्रालय, नियोक्ता विश्वविद्यालय, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और तकनीकी शिक्षा के प्रभारी अधिकारियों से परामर्श करके औद्योगिक कामगारों के लिए अपेक्षित विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों और पाठ्यक्रमों की तैयारी का संगठन शिक्षा मन्त्रालय करे। अध्यापक, पाठ्यपुस्तकें तथा अन्य सुविधाएं भी शिक्षा मन्त्रालय को देनी चाहिए और सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा की सहयोगी संस्थाओं से कामगारों को शिक्षा के लिए जो भी सहायता मिल सके, दिलानी चाहिए।

17.41. औद्योगिक कामगारों के लिए प्रौढ़ शिक्षा की योजना सर्वाधिक ध्यान और सोद्देश्य भाव से बनानी चाहिए। जो वर्तमान कार्यक्रम एकमात्र व्यावसायिक संघों, श्रम नीतियों और इसी प्रकार की अन्य बातों अथवा साक्षरता और मनोरंजन के कार्य-कलापों पर ही बल देते हैं उनमें पाए जाने वाले असंतुलन इन कार्यक्रमों में न रहे ऐसा प्रयत्न होना चाहिए। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि अधिकाधिक कामगारों को उच्चतर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा मिले ताकि वे उद्योगों में व्यावसायिक पद संभाल सकें। इस उद्देश्य के विचार से कामगारों की शिक्षा को सामान्य, व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा की मुख्य धाराओं से पृथक नहीं समझा जा सकता। जैसा कि हम अन्यत्र जोर देकर कह चुके हैं सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के स्कूलों, कालेजों, माध्यमिक शिक्षा बोर्डों, विश्वविद्यालयों और तकनीकी शिक्षा संस्थाओं को औद्योगिक कामगारों की शिक्षा का अधिकाधिक दायित्व लेना चाहिए।

17.42 विशेष कार्यक्रम और संस्थाएं—यह सम्भव नहीं है कि स्कूल और कालेज पद्धति के अन्तर्गत अंशकालिक पाठ्यक्रम प्रौढ़ शिक्षा की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा कर सके। उनमें से कुछ के लिए विशेष संस्थाओं की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए समाज कल्याण बोर्ड द्वारा खोली गई संस्थाओं के मूल्यवान कार्यक्रम की ओर हमारा ध्यान दिलाया गया है। अर्ध शिक्षित स्त्रियों को विविध सामाजिक सेवाओं का प्रशिक्षण देने के लिए ये संस्थाएं संक्षिप्त पाठ्यक्रम आयोजित करती हैं और अन्य समाज सेविकाओं के रूप में स्त्रियों को

जितनी भारी संख्या में हो सके प्रशिक्षण दिया जाय। इसका अभिप्राय यह हुआ कि सहृत पाठ्यक्रमों के केन्द्रों की संख्या कई गुना अधिक होनी चाहिए और चुनी हुई शैक्षिक संस्थाओं—जैसे कालेजों, हाई स्कूलों, अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षण के लिए स्टाफ बढ़ाया जाय और अन्य आवश्यकताएं पूरी की जाय। ग्रामीण संस्थाओं और मैसूर राज्य के विद्यापीठों का हमें जो ब्योरा दिया गया है हम उससे प्रभावित हुए हैं। एक तरह से यह विद्यापीठ डेनमार्क के लोक हाई स्कूलों की तरह काम करते हैं और चुने हुए ग्रामीण दलों को थोड़ी देर के लिए नहीं रखकर उन्हें सामान्य और व्यावसायिक दोनों प्रकार की शिक्षा देते हैं। जैसा होना चाहिए इन संस्थाओं में शिक्षा का रूप उत्पादनानुकूल होता है और उसमें कृषि और ग्राम शिक्षा पर जोर दिया जाता है। कुछ ग्राम संस्थाएं, ग्राम पंचायत समितियों के प्रधानों और पदाधिकारियों के दलों के लिए ऐसे संक्षिप्त पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करती हैं जिनसे उन्हें अपने पदों की जिम्मेदारियों की ओर नागरिक संस्थाओं को निर्णय पर पहुंचने की लोकतन्त्रिक कार्यविधियों को समझने में सहायता मिले। हमारा सुझाव है कि विद्यापीठों और ग्राम संस्थाओं के काम की बार-बार समीक्षा होनी चाहिए ताकि वे ग्रामीण समाज के लिये उपयोगी हों। इन संस्थाओं का स्टाफ उच्चतम कोटि का और विशेष रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए। यह जरूरी है कि यह संस्थाएं कृषि प्रदर्शन कार्यों और विस्तार सेवा केन्द्रों के साथ मिलकर काम करें। ऐसी और संस्थाओं की आवश्यकता है, पर उनका विस्तार वहीं तक सीमित रखा जाय जहां तक सक्षम स्टाफ और अन्य सहायक सेवाएं उपलब्ध हों।

17.43 वयस्कों के लिए अंशकालिक पाठ्यक्रमों के आयोजन व शैक्षिक संस्थाओं के पास वांछित साधन होने चाहिए, यह सुनिश्चित करना केन्द्र और राज्य सरकारों का काम है। इन नई सेवाओं के लिए, उन संस्थाओं के पास अतिरिक्त स्टाफ, पर्याप्त पुस्तकें, शिक्षण सामग्री और सहायक साधन, पुस्तकालय और प्रयोगशालाएं होनी चाहिए। अंशकालिक विद्यार्थियों को पढ़ाने की प्रणालियां भिन्न होंगी। इस बात का पूरा लाभ उठाना चाहिए कि उनमें सीखने की प्रवृत्ति प्रबल होगी। ऐसी ही महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी सहायता के लिए स्तर में ढिलाई नहीं होनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो पाठ्यक्रमों की अवधि बढ़ा देनी चाहिए ताकि अंशकालिक विद्यार्थियों के लिए उन्हें पूरा करना अपेक्षाकृत सरल हो जाय।

पत्राचार पाठ्यक्रम

17.44 कोई ऐसा तरीका भी होना चाहिए जिससे शिक्षा उन लाखों करोड़ों लोगों तक पहुंच सके जो पढ़ने के लिए अपने ही प्रयत्नों पर निर्भर हैं और जब समय मिलता है, पढ़ते हैं। हमारा विचार है कि पत्राचार या गृहशिक्षा पाठ्यक्रम इन स्थितियों का ठीक हल है।

17.45 पत्राचार या गृहशिक्षा पाठ्यक्रम अच्छी तरह आजमाई और जांची हुई तकनीक है। संसार के दूसरे देशों, जैसे अमेरिका, स्वीडन, रूस, जापान और आस्ट्रेलिया के अनुभव से हमें प्रोत्साहन मिला है कि व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस तरीके का पूरा-पूरा लाभ उठाने की सिफारिश करें। यह आशंका निर्मूल है कि पत्राचार पाठ्यक्रम नियमित स्कूलों और कालेजों द्वारा दी गई शिक्षा से घटिया दर्जे की शिक्षा का रूप है। भारत के भीतर और बाहर प्राप्त हुए अनुभवों से जो परिणाम निकले हैं, उन पर विचार करने से पत्राचार शिक्षा प्रणाली को बल मिलता है।

17.46 इसमें सन्देह नहीं कि पत्राचार प्रणाली में अध्यापक के प्रेरक व्यक्तित्व का अभाव रहता है। पर प्रेरणा देने वाले अध्यापक दुर्लभ हो गए हैं। पत्राचार प्रणाली में वयस्क की सीखने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। इस प्रणाली में अध्यापक से व्यक्तिगत और निजी सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिसके पत्रादि द्वारा सतत एवं संक्षिप्त चर्चा और मंतव्य को प्रोत्साहन मिलता है। वास्तव में विद्यार्थी और अध्यापक के बीच व्यक्तिगत और सोद्देश्य सम्बन्ध के अभाव में प्रभावकारी शिक्षा सामने नहीं होती। अनेक उदासीन और अतिकार्यग्रस्त कालेजों में अध्यापक और विद्यार्थी के बीच कोई सार्थक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। इसी एक बात से इस प्रणाली के

शैक्षिक मूल्य को समर्थन मिलता है कि पत्राचार प्रणाली में पढ़ने के लिए मुख्य प्रयास विद्यार्थी को स्वयं करना है और उसे विविध अभ्यास और परीक्षाएं लिखित रूप में देनी होती हैं।

17.47. पत्राचार प्रणाली का अर्थ लिखित हिदायतों और अभ्यासों का आदान प्रदान नहीं है। इस प्रणाली का एक अनिवार्य पक्ष यह है कि विद्यार्थी और अध्यापक यदाकदा—थोड़े समय के लिए ही सही - मिलते रहते हैं और विशेष रूप से तैयार किए गए कार्यक्रमों में, जिनमें भाषण, सेमिनार और सामूहिक चर्चाएं शामिल हैं, भाग लेते हैं। जिन्होंने विज्ञान और तकनीकी विषय लिए हों, उन्हें सप्ताह के अंत में या सप्ताह के बीच प्रयोगशाला और वर्कशाप में जाने देना चाहिए। अनेक प्रकार के अन्य साधन पत्राचार कार्यविधियों को समृद्ध बना सकते हैं। एक ही क्षेत्र में रहने वाले और समान विषयों में रुचि रखने वाले पत्राचार पाठ्यक्रम के विद्यार्थी स्वाध्याय दल बना सकते हैं और एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं। यह बहुत जरूरी है कि उन्हें मान्यता प्राप्त विद्यार्थियों का दर्जा दिया जाय। पुस्तकालय तथा शैक्षिक फिल्में देखने, विशिष्ट विद्वानों के रेकार्ड सुनने जैसी अन्य सुविधाओं का लाभ उठाने दिया जाय।

17.48 शिक्षा के कुछ क्षेत्रों में ऐसे पत्राचार या गृहशिक्षा कार्यक्रम, जो क्रमबद्ध पढ़ाई के सिद्धान्तों पर तैयार किए गए हों, बहुत ही लाभप्रद हो सकते हैं। बताया गया है क्रमबद्ध कार्यविधियों के परिणाम उस स्थिति में बहुत अच्छे होते हैं जब विद्यार्थी को नये विषय से परिचित कराया जाता है और उसे उसकी मूलभूत अवधारणाओं को समझना होता है कि पत्राचार पाठ्यक्रम में क्रमबद्ध पढ़ाई का प्रयोग लाभप्रद हो सकता है।

17.49 रेडियो और टेलिविजन के समन्वित कार्यक्रमों का सहारा पत्राचार पाठ्यक्रमों को मिलना चाहिए। अभी यह सम्भव नहीं हो पाया है कि आकाशवाणी का नियमित विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय, तथापि अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों के अपेक्षाकृत मूलभूत और सूक्ष्म विषयों को रेडियो और टेलीविजन उद्भासित कर सकते हैं। हम यह जरूरी समझते हैं कि पत्राचार पाठ्यक्रम चलाने वाले विश्वविद्यालयों और अन्य एजेन्सियों को आकाशवाणी' तथा टेलीविजन के साथ मिलकर काम करना चाहिए और ऐसे रेडियो तथा टेलीविजन कार्यक्रम तैयार करने चाहिए जो पत्राचार पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के लिए मूल्यवान हों। दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा सगठित पत्राचार पाठ्यक्रम के अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण विषयों पर विशेष रूप से तैयार की गई वार्ताओं और चर्चाओं को 'प्रसारित' करके शुभारम्भ किया जा सकता है।

17.50 विश्वविद्यालय की डिग्रियों की प्राप्ति के लिए विद्यार्थियों को तैयार करने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। उन विषयों की उपयुक्त शिक्षा के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम के अन्तर्गत महत्वपूर्ण कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं जो उद्योगों, कृषि और अन्य क्षेत्रों में लगे कामगारों को उत्पादन बढ़ाने में मदद दें। कुछ विषय जिनमें पाठ्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं, इस प्रकार हैं—रचना दस्य निर्माण और वायवानी वास्तुशिल्प ड्रेवरी, डीजल इजन, मशीनसाजी, इंजीनियरी, व्यवसाय प्रशासन, भवन निर्माण और ब्लूप्रिंट रीडिंग, सर्वेक्षण, प्रशिक्षण, गणित, कोट, धातु, स्वचल यान्त्रिकी, वाणिज्य कला, इलेक्ट्रानिकी, रेडियो—टैलीविजन मरम्मत और प्रसारण, सहायक उपचर्या, व्यावसायिक पुनर्वास के विषय, औद्योगिक इलेक्ट्रानिकी और स्वचालन पोशाक बनाना और लिपिककार्य विषय, वातानुकूलन सापन, प्रशीतन, फौजदारी और दीवानी तफतीश, यातायात प्रबन्ध, होटल प्रबन्ध, फैक्टरी प्रबन्ध और कार्यकारी प्रशिक्षण, हवाई कम्पनी प्रशिक्षण, फोटोग्राफी, ताले बनाने का व्यवसाय, पोलिश और अचल सम्पत्ति, ऐसा क्षेत्रों से विचार पूर्वक सम्बद्ध अच्छे पत्राचार पाठ्यक्रम अपनी मांग स्वयं पैदा कर लेंगे और उत्पादन की अच्छी पद्धतियों के लिए लोगों का सहयोग प्राप्त करने में सहायक होंगे।

17.51. पत्राचार पाठ्यक्रम उन लोगों के लिए भी होने चाहिए जो सांस्कृतिक और कलात्मक विषयों के अध्ययन द्वारा जीवन को समृद्ध बनाना चाहते हैं जैसे—

जायाए दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, कलाबोध, साहित्यालोचन, मनोविज्ञान आदि। ये विषय वस्तुतः विशेष उपयोग के नहीं हैं, और भले ही ये आर्थिक उन्नति में विशेष सहायक न हों, बौद्धिक और कलात्मक स्तर को उठाने और जीवन दृष्टि के रूपान्तरण में जरूर सहायता करते हैं।

17 52 यह स्पष्ट है कि इन पत्राचार पाठ्यक्रमों का आयोजन करने वाली एजेंसी विश्वविद्यालय ही नहीं होनी चाहिए। पत्राचार पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना कृषि, उद्योग, सहकारिता, स्वास्थ्य जैसे सहकारी विकास-विभागों की विस्तार सेवाओं का भी एक महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए। शिक्षितों और नवसाक्षरों तक जो जानकारी और उन्नत तकनीक ये विभाग पहुंचाना चाहते हैं उसके लिए पत्राचार पाठ्यक्रम मूल्यवान तरीका सिद्ध होगा।

17 53 हम यह भी सिफारिश करते हैं कि स्कूलों के अध्यापकों के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम के विशेष कार्यक्रम शुरू किए जाय ताकि वे जिन विषयों को पढ़ाते हैं उनके बारे में नई जानकारी से तथा शिक्षण के नये तरीकों और तकनीकों से परिचित रहें। यह उपाय स्कूलों की इस निराशापूर्ण पृष्ठभूमि में और भी जरूरी हो जाता है, जिसमें अध्यापकों को काम करना पड़ता है, जहां पुस्तकालय की सुविधाएं कम होती हैं तथा बौद्धिक चर्चा नहीं हो पाती। अध्यापक जो भी पढ़ाते हैं उसके बारे में इससे बाइसल हो जायेंगे और शायद नई चुनौतियों से प्रेरणा भी ग्रहण करेंगे।

17 54 अन्य मंत्रालयों के सहयोग से शिक्षा मंत्रालय का राष्ट्रीय गृह अध्ययन परिषद की स्थापना करनी चाहिए। इस परिषद को अनेक कार्य संचालने का प्राधिकार मिलना चाहिए जिसमें एजेंसियों को मान्यता देना और मूल्यांकन करना भी शामिल हो। परिषद को उन क्षेत्रों का पता लगाना चाहिए जिनमें पत्राचार पाठ्यक्रम लाभप्रद हो सकते हैं। इन्हें या तो परिषद स्वयं स्थापित करे या उन्हें चलाने के लिए सरकारी विभागों, विश्वविद्यालयों, शिक्षा - बोर्डों, तकनीकी शिक्षा - संस्थाओं और गैरसरकारी एजेंसियों की सहायता करें। पत्राचार द्वारा शिक्षा देने के अनेक कार्यक्रमों का लगातार मूल्यांकन भी परिषद को करते रहना चाहिए।

१७ ५५ पत्राचार पाठ्यक्रमों की लागत के विषय में कुछ मतभेद है। एक विचार है कि पत्राचार कार्यक्रमों पर यदि अधिक नहीं तो उतनी ही लागत आती है जितनी स्कूल, कालेज और अन्य संस्थाओं की नियमित पढ़ाई पर आती है। चूंकि पत्राचार विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है, इन पर आवास में दी जाने वाली नियमित शिक्षा की अपेक्षा निश्चय ही कम खर्च आना चाहिए यह दूसरी धारणा है।

विभिन्न देशों में इस पर होने वाले लागत - व्यय की तुलना सरल नहीं है क्योंकि मान्यतायें अलग - अलग हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि इसमें विद्यार्थी की संख्या-वृद्धि के साथ - साथ पर्यवेक्षक स्टाफ की आवश्यकता नहीं बढ़ती और उत्कृष्ट स्टाफ का लाभ विद्यार्थियों की बहुत भारी संख्या तक पहुंच जाता है। विद्यार्थी पढ़ने के साथ-साथ काम भी करता है और कमाता भी है। यदि वह उत्पादन करने वाला कामगार है तो उत्पादन में भी सहायता देता है, यदि पत्राचार पाठ्यक्रम व्यवसाय से सम्बन्धित जानकारी और कारीगरी को उन्नत करने में सहायता देता है, यदि पत्राचार पाठ्यक्रम व्यवसाय से सम्बन्धित जानकारी और कारीगरी को उन्नत करने में सहायक होता है तो विद्यार्थी अपना काम पहले से कहीं अच्छा कर सकेगा। उसके लिए अलग से किसी इमारत और उपस्कर की, खेल के मैदान और व्यायामशाला की, छात्रावास और विशेष ट्यूशनों की, विशेष पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की आवश्यकता नहीं पड़ती।

१७ ५६ हम यह सिफारिश करते हैं कि प्राइवेट उम्मीदवारों के लिए, वे चाहे कहीं काम कर रहे हों, यह सम्भव होना चाहिए कि वे देश के माध्यमिक शिक्षा बोर्डों और विश्वविद्यालयों की कोई या सभी परीक्षाएं दे सकें। बहुत से गम्भीर विचार वाले वयस्क (कम आयु के लोग भी) विशेषकर लड़कियां और स्त्रियां देश के माध्यमिक शिक्षा बोर्डों और विश्वविद्यालयों की कोई या सभी परीक्षाएं नहीं दे सकते क्योंकि वे उपस्थित सम्बन्धी शर्तों को

पूरा नहीं कर पाते। कोई कारण नहीं कि उन्हें इन परीक्षाओं की तैयारी के लिए अपने प्रयत्नों पर निर्भर रहने के लिए प्रोत्साहित न किया जाय।

पुस्तकालय

१७.५७ इस अध्याय के विभिन्न भागों में हमने पुस्तकालयों की आवश्यकता का उल्लेख किया है और हमारा विचार है कि एक अच्छी पुस्तकालय पद्धति, जो पुस्तकों को सबके पास पहुंचा सके; प्रौढ़ शिक्षा पद्धति का मूलाधार है। इसके बिना, विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रों में जहां पुस्तकें बांटना कठिन है, प्रौढ़ों में पढ़ाई की आदत पड़ने की कोई आशा नहीं है। योजना आयोग के कार्यकारी दल ने देशभर में बड़े पैमाने पर पुस्तकालय स्थापित करने की सिफारिश की है। हम सामान्यतया इस सिफारिश से सहमत हैं।

१७.५८ पुस्तकालय सलाहकार समिति (१९५७) की देशभर में पुस्तकालयों का जाल बिछाने की मुख्य सिफारिशों को भी हम स्वीकार करते हैं। दिल्ली में एक राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय, प्रत्येक राज्य में एक राज्य केन्द्रीय पुस्तकालय और जिला, खंड और पंचायत स्तर पर पुस्तकालय इनमें शामिल हैं। इस तरह ऐसा ढांचा बन जायगा जिससे देशभर में व्यापक पुस्तकालय विकास और संगठित सेवाएं स्थायी हो जायगी।

१७.५९ स्कूल पुस्तकालयों को सार्वजनिक पुस्तकालय पद्धति के साथ समेकित कर देना चाहिए। हमने इस बात पर जोर दिया है कि स्कूलों को प्रौढ़-शिक्षा और विस्तार सेवाओं का केन्द्र बनाया जाय। इस उद्देश्य से शाखा-पुस्तकालयों को विकसित किया जाय और इस काम में उनकी सहायता की जाय।

प्रौढ़ शिक्षा के साधन को सही काम में लाने के लिए पुस्तकालयों के पुनर्गठन की आवश्यकता है। उन्हें ऐसी पाठ्य सामग्री का भंडार रखने की जरूरत पड़ेगी जो नव साक्षरों को धीरे धीरे साधारण परन्तु रुचिकर पठन द्वारा मूल्यवान जानकारी देने वाली, अपेक्षाकृत उच्च स्तर की पुस्तकों तक ले जाए। पुस्तकालयों में ऐसी पुस्तकों और पाठ्यसामग्री की भी आवश्यकता पड़ेगी जिनका वयस्कों की व्यावहारिक जरूरतों और रुचियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो। जहां सम्भव हो, पुस्तकालयों में टेपरिकार्डों, ग्रामोफोन रिकार्डों, फिल्मों और अन्य उपयोगी साधनों का संग्रह रहना चाहिए। पुस्तकालयों का उपयोग वे सभी लोग करेंगे जो अंशकालिक शिक्षा पा रहे हैं, जिन्होंने पत्राचार पाठ्यक्रम ग्रहण किए हैं और जो अपने ही प्रयत्नों पर निर्भर हैं। यह जरूरी है कि पुस्तकालय-उपक्रम में इन सबकी आवश्यकताएं पूरी हों।

१७.६० जैसा स्वभावतः होता है, पुस्तकालय पुस्तकों का भंडार ही नहीं होना चाहिए, वे गतिशील हों, वयस्कों को शिक्षित करें और उन्हें आकृष्ट करें। ऐसा करने के अनेक जाने-माने ढंग हैं। एक ढंग जो इस देश में प्रौढ़ शिक्षा की प्राचीन परम्परा के अनुरूप है, वह है श्रोताओं को इकट्ठा करके उन्हें कोई रुचिकर पुस्तक या कविता पढ़कर सुनाना। वायएं, चर्चा-मंडलियां और पुस्तक क्लब शुरू किए जांय और पुस्तकालय को जनरुचि का केन्द्र बनाने के यत्न किए जाय। उदाहरण के लिए हम दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा किए गये उपयोगी कार्य का उल्लेख करते हैं जिसने लोगों का चित्त पुस्तकों की ओर आकर्षित ही नहीं किया, बल्कि पुस्तकालय को विविध सांस्कृतिक कार्यकलापों का गतिशील केन्द्र बनाने का भी प्रयास किया है।

प्रौढ़ शिक्षा में विश्वविद्यालयों का योगदान

१७.६१ महत्व—विश्वविद्यालय के बारे में यह कल्पना अब पुरानी हो चुकी है कि वह विद्वानों का ऐसा संकुचित शैक्षिक समुदाय है जो ज्ञान का सृजन और प्रसारण करता है तथा अपने स्वयं को शाश्वत बनाता है। वे दीवारें जो उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों और अनपढ़ ग्रामीणों के बीच खड़ी थीं, ढह चुकी हैं और अब दोनों की परस्पर समृद्धि की दृष्टि से विश्वविद्यालय के जीवन को अन्य समुदाय के जीवन से अच्छी तरह सम्बद्ध किया जा सकता है।

१७.६२ यह बदला हुआ दृष्टिकोण उन विश्वविद्यालयों में स्पष्ट है जहां विश्वविद्यालय की चहार दीवारी के बाहर विद्यार्थियों के लाभार्थ पत्राचार पाठ्यक्रमों से

ऐसे और पाठ्यक्रमों की माग पैदा कर दी है। राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा प्रौढ शिक्षा विभाग की स्थापना स्वागत योग्य है और उससे बड़ी आशा है। हम अनुभव करते है कि हमारे देश के विश्वविद्यालयो को प्रौढ शिक्षा का अधिकाधिक भार उठाना चाहिए।

१७ ६३ कार्यक्रम— विश्वविद्यालय का काम है अपने सेवित समुदाय को उसके सामाजिक आर्थिक, शैक्षिक तथा सास्कृतिक विकास मे मदद देना। अपनी विशेष एजेंसियो के द्वारा वह लोगो को आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक जीवन के कुछ सवेद्य क्षेत्रों पर स्वयम् प्रभाव डाल सकता है। इस विषय मे आगे बढने का एक महत्वपूर्ण तरीका यह है कि सामाजिक और आर्थिक समस्याओ के बारे मे नए वैज्ञानिक निष्कर्ष और नए विचार लोगो तक पहुचाए जाय। इसी प्रकार विभिन्न व्यवसायो के मुख्य मुख्य कार्मिको की पुनशिक्षा के विविध कार्यक्रम विश्वविद्यालय द्वारा प्रभावकारी ढग से चलाए जा सकते हैं। अध्यापकों की पुनशिक्षा का विशेष उल्लेख भी इस प्रसग मे उचित होगा। इसकी जरूरत इतनी अधिक है और यह समस्या इतनी व्यापक है कि प्रभावशाली नेतृत्व के लिए देश विश्वविद्यालयो की ओर इस आशा से देखेगा कि वे अध्यापकों को पुनशिक्षा दें उन्हे शिक्षण की नई रीतियो नवीन पद्धतियो शिक्षा के अभिनव दर्शन और सम्बन्धित ज्ञान क्षेत्र मे विकास से पूरी तरह अवगत कराए। कुछ मूलभूत राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति जन समुदाय मे स्वस्थ प्रवृत्ति जगाने मे विश्वविद्यालय सहायता दे सकते हैं। वे ऐसे कार्यक्रमो का आयोजन भी कर सकते हैं जो राष्ट्र के नेताओ और जनता को नागरिक और राजनीतिक जन जीवन की जानकारी दें और राष्ट्रीय जीवन की चुनौती देने वाली कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं पर निर्णय करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान और व्यापक अनुभव का लाभ भी उन्हे दें। राष्ट्रीय अभिरुचि तथा जनता की आदतो और सामाजिक व्यवहार के स्तर को उठाने मे भी उन्हे सहायता देनी चाहिए। विश्वविद्यालय अपनी क्षमता को तोले और वर्तित समाज के सामाय सर्वोत्तम योजना बनाए। इस अध्याय के अन्य स्थलो पर हम पहले ही कह चुके हैं कि देश से निरक्षरता का उन्मूलन करने और इस उद्देश्य से नेताओ को शिक्षित करने मे विश्वविद्यालयो को क्या सहायता देनी चाहिए।

17 64 विश्वविद्यालय ऐसे तरीके स्वय निकाल सकते है जिनके द्वारा अपने साधनो के अनुसार समुदाय के लाभार्थ सेवाए सगठित की जा सकें। सायकालीन कक्षाए प्राय ऐसे वयस्को के लिए आयोजित की जाती हैं जो कहीं नौकरी करते हो और जिन्हे परीक्षाओ की तयारी करनी हो। व्यावसायिक लाभ के लिये विशेष अध्ययन मडलियां और अल्पकालिक विशेष पाठ्यक्रमो के आयोजन की भी आवश्यकता है। साथ ही विविध विस्तार कार्यक्रम भी आवश्यक हैं जिनमे भाषण सत्र कार्य, प्रदर्शन सास्कृतिक तथा मनोरजन आदि कार्यकलाप शामिल हो। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयो को समाज सेवा शिविरों का आयोजन भी करना चाहिए और विकास तथा निरक्षरता उन्मूलन के गहन कार्यों के लिए स्कूलों और अन्य सामाजिक सेवाओ की देखभाल के लिए गावो को अपना लेना चाहिए। ऐसे अनगिनत तरीके हैं जिन्हे विश्वविद्यालय अपनी विस्तार सेवा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अपना सकते है।

17 65 प्रशासन और वित्त—योजनाबद्ध प्रौढ शिक्षा कायक्रमो को ध्यानपूर्वक चालू करने और उनकी उपलब्धियो के मूल्याकन के लिए विश्वविद्यालयो के पास एक कार्यकुशल तत्र होना चाहिए। हमारा सुझाव है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय मे एक प्रौढ शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जाय जिसमे प्रौढ शिक्षा कार्यक्रमो को, तैयार करने तथा उनके निष्पादन से सम्बन्धित सभी विभाग शामिल हो। उप कुलपति इस बोर्ड का अध्यक्ष हो। बोर्ड को नीति निर्धारित करनी चाहिए और योजना बनानी चाहिए। सचालन के लिए अनेक विभागो के सम्मिलित प्रयास का दिशा निर्देश करना चाहिए और कार्यक्रमो की सफलता का मूल्याकन भी करना चाहिए। हमारा विचार है कि देश के कुछ विश्वविद्यालयों को प्रौढ शिक्षा विभाग स्थापित करने चाहिए। इन विभागो का उद्देश्य होना चाहिए प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र मे विशेषज्ञों और अध्यापकों को प्रशिक्षण देना। शिक्षा समाजशास्त्र और मनोविज्ञान

के अन्य सम्बन्धित विभागों के सहयोग से प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर अनुसंधान आरम्भ करना मार्गदर्शन करना तथा विस्तार सेवा के अन्तर्विभागीय कार्यक्रमों के लिए प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड का सहयोग देना और उनकी कार्यान्विति में सहायता देना।

17.66 कहने की आवश्यकता नहीं कि विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत प्रौढ़ शिक्षा कार्य के लिए उन्हें विशेष वित्तीय सहायता और उपस्कर आदि मिलने चाहिए। विस्तार सेवाओं को आरम्भ करने के लिए विश्वविद्यालय के सामान्य साधन अपर्याप्त होंगे। यह ठीक है कि अधिकांश कार्य स्वैच्छिक आधार पर होगा पर विश्वविद्यालयों को कुछ अतिरिक्त स्टाफ और विशेष पुस्तकालयों की आवश्यकता भी पड़ेगी जिनमें फिल्में टेप संग्रहालय दृश्य श्रव्य साधन परिवहन के उपयुक्त साधन शिविर उपस्कर और अन्य शैक्षिक साधन शामिल हैं। हमें विश्वास है कि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के लिए विश्वविद्यालयों को दी गई सहायता पूर्णतः लाभकर होगी।

संगठन और प्रशासन

17.67 हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में पहले किए गए कार्य की मुख्य कमजोरियां रही हैं—एक समग्र योजना और विभिन्न सरकारी विभागों तथा स्वैच्छिक एजेन्सियों के समन्वय का अभाव।

17.68 राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड—इन त्रुटियों को दूर करने के लिए योजना कार्य समिति की समाज शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट में केन्द्रीय समाज शिक्षा बोर्ड की स्थापना की सिफारिश की गयी थी। पूना में सन् १९६५ में प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय सेमिनार ने राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता बोर्ड बनाने की सिफारिश की गयी थी। हम इसी प्रकार के राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड की स्थापना की सिफारिश करते हैं जिसमें सभी सम्बन्धित मन्त्रालयों और एजेंसियों के प्रतिनिधि हों। इसकी स्थापना के लिए शिक्षा मन्त्रालय प्रारम्भिक कार्रवाई कर सकता है। इस बोर्ड के कार्य इस प्रकार होंगे

(१) अनौपचारिक प्रौढ़ शिक्षा और प्रशिक्षण से सम्बन्धित सभी मामलों में केन्द्रीय और राज्य सरकारों को सलाह देना और उनके विचारार्थ योजनाएं और कार्यक्रम बनाना

(२) जहां आवश्यक है साहित्य तथा अन्य शिक्षण सामग्री के सृजन और अपेक्षित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए एजेंसियों और सेवाओं की स्थापना को बढ़ावा देना

(३) विभिन्न मन्त्रालयों तथा सरकारी और गैर सरकारी एजेंसियों के बीच समन्वय सुनिश्चित करना

(४) समय समय पर इस दिशा में हुई प्रगति की समीक्षा करना उसमें परिवर्तन और सुधार के लिए सुझाव देना और

(५) अनुसंधान जांच-पड़ताल और मूल्यांकन को प्रोत्साहन देना।

राज्य स्तर पर भी इस तरह के निकाय स्थापित किए जाने चाहिए। जिला स्तर पर समितियां स्थापित की जाये जो जहां जिला परिषद हैं वहां उनके अंगों के रूप में कार्य करें। उनकी सहायता के लिए खण्ड और ग्राम पंचायतों की अन्य समितियां हों। ग्राम स्तर पर स्कूलों को सामुदायिक केन्द्रों के रूप में विकसित किया जाये।

17.69 प्रौढ़ शिक्षा—एक पूर्णतया सरकारी कार्य—हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि प्रौढ़ शिक्षा की बहुविधता, उसकी व्यापकता और विविधता को देखकर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यह किसी मन्त्रालय के उसी एक विभाग का काम है जो प्रशासनिक रूप से संभालता है। यह जरूरी है कि इसे प्रत्येक विभाग का कार्य माना जाये। योजना बनाने के स्तर पर ही नहीं कार्यान्विति के स्तरों पर भी उसके कार्यक्रम बनाने और उसका प्रसार करने में विभागवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। हमें बताया गया है कि प्रशासनिक उदासीनता के कारण इस क्षेत्र में कार्य को बहुत हद तक हानि पहुंची है। यह ठीक है कि प्रौढ़ शिक्षा मुख्यतः शिक्षा मन्त्रालय का कार्य है पर ऐसी कार्यविधियां को अपनाना जरूरी है जिनसे समग्र प्रशासनतन्त्र का व्यावहारिक सहयोग सुनिश्चित हो।

17.70 स्वैच्छिक एजेंसियां—इन क्षेत्रों में काम करने वाली स्वैच्छिक एजेंसियों को हर प्रकार का वित्तीय और तकनीकी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा ऐसा क्षेत्र है जो स्वैच्छिक प्रयत्नों के लिए बहुत अनुकूल है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। उसकी सफलता में स्वैच्छिक प्रयासों का बहुत बड़ा हाथ होगा।

—समाप्त

□

प्रौढ़-शिक्षा में आत्मानुभूति

सुषमा मिश्रा,

शिक्षाचार्य (एम०एड०) मे अध्ययन करते हुए एक दिन प्रौढ़ो को शिक्षित करने मे आचार्य जी ने एकाएक मुझे लगा दिया। मैं पहले से इसके लिए बिलकुल तैयार नही थी। जो कुछ अनुभव था, बच्चो को ही पढाने का था। इस सम्बन्ध मे मैं अपने अनुभव लिख रही हूँ। इसमे किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं है।

मेरा यह अनुभव है कि बच्चो को तो प्यार से डांट डपट कर नियन्त्रित किया जा सकता है और उन्हें पढाने के लिए अनेक विधियां हैं। उनके ज्ञानार्जन के सबंध मे बहुत से शोध, अनुसंधान भी हुए हैं, किन्तु प्रौढ़ों के साथ वही तकनीक नही अपनायी जा सकती है, क्योंकि वे न तो सहज नियन्त्रण के योग्य ही होते है और न उनका मानसिक दृष्टिकोण ही शिष्य बनने के लिए उन्हें प्रेरित करता है। प्रौढ़ो मे रुचि उत्पन्न करना भी एक समस्या है। उनकी अनेक समस्याए रहती है।

एक दिन विभाग मे हमे देर से रुकना पड़ा, देखा कि हमारे विभाग के अध्यक्ष महोदय प्रौढ़ो को एकत्रित कर पढ़ा रहे हैं। मेरी भी इच्छा पढ़ाने की हुई थी, मैंने भी वर्णमाला क्रम से ही पढ़ाना प्रारम्भ किया। प्रौढ़ो ने अनेक प्रकार के प्रश्न किए। एक ने कहा —'गुरु जी! कार्यालय से सीधे पढ़ने आते हैं। सर दर्द कर रहा है।" वे बेचारे थके मांदे रहते थे ही। मैंने सहानुभूतिपूर्वक कहा थोड़ा आराम कर लो, फिर ठीक हो जायगा। दूसरे ने कहा-'बहन जी! सोझत नाही बा।' मैंने समाधान करते हुए कहा कि बोर्ड के पास जाओ तो ठीक दिखाई देगा। ये प्रश्न इस बात की ओर भी संकेत करते है कि प्रौढ़ों की व्यक्तिगत समस्याओं को समझना पहले आवश्यक है।

इन सब प्रश्नोत्तरो से मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ दूसरे दिन जब मैं विश्वविद्यालय गयी, तो मेरे आचार्य जी ने कहा कि तुम रोज क्लास लिया करो, मैं प्रतिदिन क्लास लेने लगी। साथ ही साथ मेरे मन में एक और भावना उत्पन्न हुई। मेरे पति एक सरकारी अस्पताल मे डाक्टर हैं। अस्पताल मे ४ पद–डाक्टर, कम्पाउन्डर नौकर और स्वीपर–हैं। मैंने उनमे से स्वीपर के परिवार को पढ़ाने का विचार किया। मैंने उससे कहा कि तुम और तुम्हारी औरत दोनो प्रतिदिन शाम को हमारे पास आया करो। पहले दिन तो उसकी स्त्री ही आयी। उससे मैंने पूछा, 'रघुनाथ क्यो नहीं आया।' उसने कहा—'उनके शरम लागत बा कि साहब से हम कैसे पढबैं। मैंने कहा कि अरे इसमे लजाने की क्या बात है, कम से कम अपना नाम तो लिखना सीख जायगा। किसी तरह वह आया और पढने को राजी हुआ। दूसरे दिन वह स्वत आया और बहुत ही नम्र भाव से बोला 'साहब आ गइली।' ठीक है तुम हमारे पास आया करो और जिस तरह पढ़ोगे, हम पढ़ाएगे। ऐसा मैंने उससे कहा। उन्हें अक्षर लिखने का एक तरीका मैंने अपनाया। मैंने कहा–

'अक्षर बनाना आता है?'

उसने उत्तर दिया—'थोड़ी थोड़ी साहिब।'

मैंने कहा —'अच्छा, पहले इस प्रकार चूल्हा बनाओ' 'बोर्ड पर बनाते हुए।'

उत्तर—'बनाय देहली साहिब।'

मैंने कहा—'उसी मे एक चूल्हा और बनाओ।'

उसने उत्तर दिया– 'बनाय दिहली साहिब।'

मैंने कहा—'दोनों के बीच एक पाई खींचो।'

उसने उत्तर दिया—'खींच देहली साहिब।'

मैंने कहा—अब उसके ऊपर एक टोपी उढ़ा दो, अब तुम्हारा अ तैयार हो गया। इसी तरह से हर एक अक्षर का बोध मैंने उन्हें कराया। धीरे-धीरे आठ-दस दिन में वह नाम आदि लिखने लगा। कुछ दिनों में रामायण आदि की किताब भी कुछ-कुछ पढ़ने लगा। मैंने उन्हीं की बोली में बोलकर पढ़ाने का कार्य किया और कर भी रही हूं, मैं देखती हूं कि उनसे तादात्म्य कर लेने पर हर विधि सहज हो जाती है।

धीरे धीरे लोगों की रुचि बढ़ रही है। हर वर्ग, हर योग्यता के लोग आ रहे हैं। तीन महिलाएं भी आने लगी हैं बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के हमने अपने आचार्य के निर्देशन में कार्य प्रारम्भ किया है। उनका कहना है, "काम करके सीखना ही, सबसे अच्छा प्रशिक्षण है। कार्यक्रम की लोकप्रियता ही हमारा प्रमाण है।"

पूर्व बुनियादी या नर्सरी शिक्षा

शुभद्रा तेलंग, चन्द्रभूषण

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी ढाई वर्ष से ६ वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था न नगरों में और न गांवों में हो सकी है, यद्यपि धनीमानी परिवारों के बच्चों के लिये बड़े शहरों में पश्चिमी पद्धति के बाल-मंदिर खोले गये हैं। किन्तु ये शालाएं विदेशी पद्धति से प्रभावित हैं एवं अंग्रेजी भाषा पर अधिक बल देती हैं, और ये शालाएं आमदनी का साधन बन गई हैं। बढ़ती हुई आबादी और शिक्षा के लिए बढ़ती हुई मांग को देखते हुए ये बाल मंदिर भी अपर्याप्त हैं और गांवों में तो बाल मंदिर हैं ही नहीं। सात वर्ष के बच्चों के लिए प्राइमरी शालाएं हैं पर वे भी अपर्याप्त हैं और ये शालाएं भी केवल अक्षर-ज्ञान या भाषा की शिक्षा देकर ही संतोष पाती हैं। नर्सरी और प्राइमरी शालाओं में शिक्षा संतोषजनक नहीं है। शैशवकाल के संस्कार स्थायी होते हैं। बालक के चरित्र निर्माण हेतु प्रारम्भ के सात वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। इस अवधि में ही उनके सर्वांगीण विकास की स्थायी नींव डाली जा सकती है। अतएव यह आवश्यक है कि बाल मन्दिरों की स्थापना अथवा शिशु शिक्षा की व्यवस्था सम्पूर्ण देश में हो। पूर्व बुनियादी अथवा बाल मन्दिर की शिक्षा का स्वरूप प्रचलित खर्चीली और मात्र लिखने पढ़ने की शिक्षा से भिन्न, सर्व सुलभ तथा सर्वांगीण विकास का होना चाहिए।

पूर्व बुनियादी या नर्सरी शिक्षा के सम्बन्ध में शासन सर्वथा उदासीन रहा है, अतः शासन ने इसे कुछ विशेष मोड़ देने का प्रयत्न नहीं किया है। इस कार्य में अधिकांश गैर सरकारी व्यक्तियों या संस्थाओं की ही पहल रही है और उन्होंने अपनी अपनी कल्पना के अनुसार पूर्व बुनियादी या नर्सरी कक्षाएं खोली हैं। वस्तुतः ये शालाएं शासन की मुखापेक्षी नहीं है और शहरों में चलने वाली मान्टेसरी, नर्सरी या किन्डर गार्टन शालाएं धनीमानी परिवारों की इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति की साधन हैं। इन शालाओं में शुल्क, पोशाक, साज-सज्जा आदि के लिए अभिभावक अत्यधिक व्यय भार खुशी से वहन करते हैं। इन शिशु शालाओं का वातावरण पूर्णतया शहरी होता है। इन शालाओं में उच्च-मध्यम वर्गीय मनोवृत्ति एवं आचार व्यवहार पनपते हैं। ग्रामीण अंचलों में ऐसी शिशु शालाएं अनुपयोगी एवं खर्चीली सिद्ध होंगी। ग्रामीण पर्यावरण एवं देश की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक मनोकामनाओं से ये अति दूर हैं। हस्तकला, चित्रकला, संगीत आदि विषय इन शालाओं में सिखलाए जाते हैं, परन्तु समाजोपयोगी

दृष्टिकोण का अभाव इनमें पाया जाता है और ये सब केवल मनोरंजनात्मक कार्य बन कर रह जाते हैं। अध्यापकों की दृष्टि इस दिशा में स्पष्ट करनी होगी कि हस्तकला आदि समाजोपयोगी हो और बच्चों में उनके द्वारा श्रम के प्रति आदर की भावना एवं रुचि उत्पन्न हो।

शिक्षा का उद्देश्य शिक्षा का मूल उद्देश्य बच्चों के अन्दर छपे हुए गुणों एवं प्रतिभा का प्रकाशीकरण करना ही होना चाहिए, तथा शिक्षा जीवन के लिए होनी चाहिए और शिक्षा द्वारा शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास परिलक्षित होना चाहिए साथ ही शिक्षा लोकतन्त्रीय धर्मनिरपेक्ष शोषण मुक्त अहिंसात्मक समाजवादी समाज के निर्माण की महत्वपूर्ण कड़ी बननी चाहिए। वस्तुत शैशव काल में प्राप्त संस्कारों का प्रभाव गहरा एवं स्थायी ढंग का होता है, ये ही संस्कार आगे चलकर उनके जीवन जीने का आधार बन जाते हैं। शिशुओं की शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि उसके द्वारा बच्चों के शरीर, मन, भावना और आत्मा का सतुलित विकास सम्भव हो सके। अतएव शिशुओं की पाच इन्द्रियों शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध का विकास समुचित रूप से किया जाना चाहिए। क्योंकि मनुष्य के ज्ञान और अनुभव के ये ही द्वार हैं। शिशुओं की शिक्षा के लिए इन पाचों इन्द्रियों का उपयोग सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए। शिक्षक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि उसे बालक बालिका के अन्दर छुपी हुई शक्तियों योग्यताओं, प्रतिभाओं का प्रकटीकरण करना है और प्रत्येक बच्चे को शाला में उसकी रुचि और क्षमता के अनुसार विकसित होने की सुविधा प्राप्त कराना है। एक ही लाठी से सब बच्चों को हांकना ठीक नहीं होगा क्योंकि हर बच्चा अपने समय में ही विकसित होगा। अतएव शिशु शालाओं में ढीला-ढाला, लचीला टाइम टेबुल होना चाहिए। धर्म, लिंग वर्ग, जाति के भेदभाव के बिना शिक्षा सभी भावी नागरिकों के लिए उपलब्ध होनी चाहिए।

शालाओं का संगठन एवं वातावरण गांवों और शहरों में सौ सौ परिवारों पर एक शिशु शाला होनी चाहिए, जिससे शिशुओं को घर से बहुत दूर न जाना पड़े शिशुशाला में ढाई वर्ष से ६ वर्ष के बच्चों को प्रवेश मिलना चाहिए और कक्षाएं खुली हवादार, साफ सुथरी होनी चाहिए। गांवों में नर्सरी शालाएं, प्राईमरी शालाओं से संलग्न की जा सकती हैं। वर्तमान प्राइमरी स्कूलों में शिक्षकों की संख्या आवश्यकता से अधिक है। अत इनमें से शिक्षक पूर्व बुनियादी कक्षाओं में पढ़ाने के उपयोग में लाये जा सकते हैं। ग्राम पंचायतों द्वारा भी पूर्व बुनियादी कक्षाएं खोली जा सकती हैं और ग्राम पंचायतें पूर्व बुनियादी कक्षा में चलाने के लिए स्वेच्छा से कोष संग्रहीत कर सकें इसके लिए शासन उन्हें ऐसा करने की सुविधा प्रदान करे जिससे इन कक्षाओं का व्यय भार ग्राम पंचायतें वहन कर सकें। इसी प्रकार प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के साथ भी पूर्व बुनियादी कक्षाएं जोड़ी जा सकती हैं दोनों ही कार्यों के लिए शिक्षक को १५० रु० प्रतिमास वेतन दिया जा सकता है। गांवों के प्राइमरी जूनियर स्कूलों, हाईस्कूलों तथा इन्टरमीडिएट कक्षाओं के साथ पूर्व बुनियादी कक्षाएं जोड़ी जा सकती हैं। वे पूर्व बुनियादी शिक्षकों की नियुक्ति कर सकते हैं। इससे व्यय कम होगा। परन्तु इसके लिए सरकारी नियमों में परिवर्तन करना पड़ेगा। इसके अलावा स्वयं सेवी संस्थाओं, लायन्स, रोटरी क्लब इत्यादि सर्वोदय मण्डलों रचनात्मक संस्थाओं व्यापक समितियों, ग्राम-उद्योग संस्थाओं द्वारा शासन की पहल से तथा सार्वजनिक संस्थाओं की पहल से सम्मिलित रूप से दोनों की पहल से पूर्व बुनियादी कक्षाएं खोली जा सकती हैं। शासन की ओर से कारखानों मिलों आदि पर यह प्रतिबन्ध लगाया जाय कि ये संस्थाएं अपने कर्मचारियों के बच्चों के लिए पूर्व बुनियादी शालाएं चलाएं। ऐसी कक्षाएं खेतों के समीप हों और यथासम्भव कम खर्चीले खेलकूद का भी सामान रखें। शिशु कक्षाओं के अध्यापन कार्य के लिए गांव के प्रशिक्षित बेरोजगार अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की नियुक्ति करना उपयोगी होगा।

प्रत्येक शिशु शालाओं में ५०-६० तक विद्यार्थी होने चाहिए, शिशु कक्षाएं खुली हुई आकार में बड़ी, साफ-सुथरी हवादार और रोशनीदार होनी चाहिए। शिशु शालाओं के आसपास छोटा सा खेल कूद का मैदान हो, यहाँ

पर खेलकूद का सामान हो। वह मैदान पेड़, फूल पौधों से सुशोभित होना चाहिए। गांवों में पालतू जानवर, गायों आदि का सामीप्य शिशुओं के लिए किया जाना चाहिए। इनके द्वारा बच्चों में स्नेह, दया, पेड़-पौधों की देख-रेख की कोमल भावनाएं, भूमि और मिट्टी, हम सबका भरण पोषण करती है आदि भावनाएं पैदा की जा सकती हैं।

अतः शालाओं का वातावरण आनन्ददायक, प्रफुल्लित करने वाला साफ सुथरा एवं कलात्मक होना चाहिए। चिड़ियों की चहचहाट के शब्द, मिट्टी पानी से स्पर्श तथा फूल-पौधों की सुगन्ध से रूप, रस, गंध आदि पांचों इन्द्रियों के द्वारा बालक अनुभव एवं ज्ञान प्राप्त कर सकता है। बच्चों में संवेदनशीलता और कोमलता की भावना जगाने के ये उत्तम प्राकृतिक साधन हैं। इन्हीं के द्वारा बच्चों में जानवर, पेड़-पौधे तथा मनुष्य मात्र के प्रति स्नेह और प्रेम की भावना जगाई जा सकती है। प्राणिमात्र, पत्थर, वनस्पति, जीवजन्तु, पशु-पक्षी सभी ईश्वर की सृष्टि हैं। सभी में विभिन्न स्तर की चेतना है। इन भावनाओं का निर्माण शिक्षक कर सकता है। इसी परिवेश में लोककला, लोकगीत, रामायण, पुराण उपनिषद की कथाएं सरल शब्दों में बतलाई, सिखलाई जानी चाहिए। पृथ्वी के सब धर्मों के महापुरुषों की जीवनी अति सरल शब्दों में बताकर बच्चों में सब धर्मों के प्रति आदर और उदार भावना बढ़ाई जा सकती है। शालाओं में धार्मिक वातावरण पैदा करना आवश्यक है। अतः सब धर्मों की प्रार्थना, भजन आदि से ही कक्षाओं का कार्य आरम्भ किया जाना चाहिए। धर्म, विद्वेष, जातिपांति, ऊंच-नीच भावना आदि को सूझबूझ से समझाना, उनमें उदार वृत्ति पैदा करना भी आवश्यक है। अध्यापक को इसे कुशलतापूर्वक करना चाहिए।

शिशु शालाओं का वातावरण शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच परस्पर प्रेम आदर एवं अपनत्व की भावना का होनी चाहिए। शिशु शालाओं में भय प्रतिद्वंद्विता, हिंसा उपेक्षा, ऊंच-नीच की भावना कदापि पनपनी नहीं चाहिए। समानता से ओतप्रोत, स्नेहमय वातावरण होना आवश्यक है। शिक्षकों का यह महत्वपूर्ण दायित्व हो जाता है। शिशुओं की भावनाओं को सुन्दर संवेदनशील बनाना शिशु शालाओं का धर्म है।

पाठ्य विषय—

स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा— सभी शिशु शालाओं में पीने के पानी की तथा शौचालयों की व्यवस्था आवश्यक है। बच्चों को इनका ठीक ठीक उपयोग करने की आदत डालनी चाहिए। स्वच्छता पर उनका ध्यान आकृष्ट करना, स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वच्छ जल और शौचालयों की आवश्यकता तथा उसका सही उपयोग उन्हें सरल शब्दों से समझाना चाहिए। उनमें व्यक्तिगत सफाई हाथ, नाक, कान, मुंह, आंख, नाखून आदि साफ करना सिखाया जाय और नित्य इनकी सफाई द्वारा उन्हें अभ्यास कराया जाय। शौचालयों, मूत्रालयों, कक्षा खेल का मैदान आदि सार्वजनिक स्थानों को स्वच्छ रखने का अभ्यास भी उन्हें कराया जाय। इसकी उपयोगिता भी उन्हें बताई जाय। सफाई का शिशु के जीवन पर स्थायी प्रभाव होता है। कहते हैं बाह्य शुद्धि से अन्तर शुद्धि भी हो जाती है।

अतः यह कहना सार्थक होगा कि बच्चों में स्वास्थ्यप्रद आदतें डालना शिशु शिक्षा का आवश्यक अंग है। स्मरण रहे कि केवल कहानियाँ बतलाकर या सिद्धान्त रूप में इन सभी बातों को कहना पर्याप्त नहीं है। इन सबको व्यावहारिक रूप से शिक्षकों द्वारा किया जाना चाहिए, और शिक्षार्थी से करवाया जाना चाहिए। तभी बच्चों पर इन आदतों की छाप पड़ेगी। उदाहरणस्वरूप यदि शिक्षक, बच्चों को खुली हवा और सफाई के बारे में बतलाता है, परन्तु कक्षा की सब खिड़कियां बन्द हैं और साफ हवा कक्षा के अन्दर आ ही नहीं सकती है, कक्षाओं में मकड़ी के जाले लगे हुए हैं, कमरे में, खिड़कियों पर, साथ दरवाजे पर धूल भरी हुई है, ऐसी दशा में केवल मात्र कहने का कोई असर नहीं पड़ेगा। व्यावहारिक रूप से खिड़कियां प्रतिदिन बच्चों द्वारा खुलवानी चाहिए। बच्चों और शिक्षक द्वारा सफाई करवानी चाहिए। तभी शिक्षक के कहने का असर होगा और बच्चों में सफाई की आदत पैदा होगी। इसके साथ ही बच्चों के साथ गांवों में सफाई करवाना, घरों में सफाई करवाना आदि, कार्यक्रम भी शालाओं के रचनात्मक कार्यों का अंग बनाया जा सकता है, ये ही उपयोगी रचनात्मक कार्य हैं। इन्हीं के द्वारा बच्चे की क्रियाशीलता का उपयोग किया जा सकता है। शरीर के सम्बन्ध में तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान देकर बालक की क्रियाशीलता का उपयोग किया जा सकता है। शरीर तथा

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान देकर बालक की क्रियाशीलता बढ़ाने के साथ उनके ज्ञान की भी अभिवृद्धि की जा सकती है।

बच्चों के शारीरिक अवयवों का उपयोग तथा उनकी वाणी का उपयोग शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति के महत्वपूर्ण साधन हैं। शिक्षक को इन साधनों का उपयोग सावधानी-पूर्वक और विवेक से करना चाहिए। यह सर्वविदित सत्य है कि बालक क्रियाशील होते हैं और उन्हें सब प्रकार की शारीरिक एवं अन्य प्रकार की हलचल पसन्द होती है। यदि इस क्रियाशक्ति का सदुपयोग किया जाता है तो यह शक्ति बच्चों के कलात्मक एवं भावनात्मक विकास की महत्वपूर्ण कड़ी बन सकती है। कलात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक विकास, व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के विकास के एवं प्रस्फुटन के आवश्यक अंग हैं। खेल खेल के माध्यम से और बच्चों की क्रियाशीलता का उचित मार्गदर्शन करते हुये शिक्षक इस प्रकार के विकास को प्रोत्साहित कर सकता है। विविध प्रकार की शारीरिक हलचलों का उपयोग विवेक-पूर्वक किया जाना चाहिए। अतः दौड़ना, कूदना, चलना, चढ़ना, खड़े होना, खींचना, धकेलना, गेंद खेलना, समूह खेल खो-खो, कबड्डी, गुल्ली डंडा, रस्सा कसी, आँख-मिचौली आदि, लोक-नृत्य आदि, अवयवों की विविध प्रकार की हलचलें बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के साधन हैं। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन वास करता है। इन क्रियाओं से बच्चे आनन्द का अनुभव करते हैं। इनके द्वारा शरीर पर नियंत्रण, अनुशासन आदि गुणों का विकास बच्चों में होता है। बच्चों की अभिव्यक्ति की भी क्रियाएँ होती हैं जिनके द्वारा बच्चों का मानसिक एवं भावात्मक विकास होता है। बोलना, नये शब्दों को सीखना, प्रश्न पूछना, ठीक-ठीक ढंग से अपनी बात को समझाना, कविता पाठ, संगीत, अभिनय आदि बच्चों की अभिव्यक्ति के साधन हैं। इन क्रियाओं को भी खेल-खेल में ही किया जाना चाहिए। इन सभी क्रियाओं का उपयोग शिक्षक को सावधानी पूर्वक सूझ-बूझ के साथ करना चाहिए जिससे कि बच्चों की प्राकृतिक प्रवृत्ति का विकास हो सके। इन क्रियाओं के पीछे जो उद्देश्य है उसे शिक्षक को विस्मृत नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह सम्भव है कि ये सब क्रियाएँ यांत्रिक मात्र हो रहेंगी, दिनचर्या का एक हिस्सा बनकर रह जायेंगी और इन क्रियाओं की केवल पूर्ति मात्र होगी। इनका उद्देश्य, बालकों के मानसिक, शारीरिक, भावात्मक जगत की अभिव्यक्ति है। इसे विस्मृत नहीं करना चाहिए और इन उद्देश्यों पर विचार पूर्वक बल दिया जाना चाहिए।

भाषा और मानसिक विकास—भाषा के ज्ञान एवं मानसिक विकास में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि इन दोनों ही कार्यों को व्यावहारिक एवं प्रत्यक्ष रूप से बालक की क्रियाशीलता का उपयोग करते हुए उनके अनुभव पाने की उत्सुकता का भी उपयोग करते हुए करना चाहिए। ऊपर की पंक्तियों में इसका व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया गया है।

बालकों को प्रत्येक क्रिया में खेल की प्रसन्नता मिलती है। बच्चे की कार्यशक्ति की अभिव्यक्ति खेल ही है। अतः एक चतुर अध्यापक खेल की इस प्रवृत्ति का उपयोग शिक्षा कार्य में करके बच्चे की क्रियाशीलता का सदुपयोग करता है। बच्चे की क्रियाशीलता एवं अनुभव पाने की उत्सुकता का उपयोग भरपूर किया जाना चाहिए। इन कक्षाओं में भाषा का लगातार ज्ञान कराया जाना चाहिए। भाषा ही मनुष्य की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। आरम्भ में अध्यापक बच्चों को सरल शब्द बोलना, साफ बोलना, अपशब्द न बोलना, धीरे-धीरे सरल शब्दों का प्रयोग करना, सरल वाक्यों का प्रयोग करने की आदत डालता है। शिष्ट भाषा, शिष्ट व्यवहार आदि का प्रयोग करना सिखलाता है। पूर्व बुनियादी शिक्षा मातृभाषा में ही होनी चाहिए। पशु, पक्षी, मौसमी फूलों-पौधों को दिखलाना उनके नाम आदि बतलाना यह सब काम खेलों में खुली जगह में ले जाकर घुमा फिराकर सिखलाया जाना चाहिए। उन्हें कक्षाओं तक सीमित नहीं करना चाहिए। अतः शिशुओं को मंदिर का और चारों ओर की साधारण वस्तुओं से परिचय कराया जाना चाहिए। उन्हें छोटे छोटे वाक्य बनाना सिखलाया जाय। इसी प्रकार से बच्चों को भाषा का ज्ञान, प्रत्यक्ष अनुभव से कराया जाना चाहिए। इससे उनकी भाषा और ज्ञान का विस्तार होगा। इस प्रकार

अलग अलग मौसमों में खेतों में ले जाकर अनाजों, फलों, फूलों के रंग, उनके नाम आदि का ज्ञान कराकर उनमें कोमल भावनाएं जगाना, मिट्टी, पानी, गोबर आदि का अनुभव और इनकी समीपता भी शिक्षा का आवश्यक अंग होना चाहिए। जानवरों, कीड़ों, गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा, बिल्ली, कुत्ता पशु-पक्षियों का निरीक्षण उनका सामीप्य उनकी बोली नाम आदि से भाषा का ज्ञान कराना, उनमें कोमल भावनाएं जगाना उनमें संवेदन शीलता पैदा करना एवं कुशल शिक्षक का काम है। इसी प्रकार प्रकृति के परिचय हेतु जलचर, थलचर एवं नभचर के चित्र तथा खिलौने भी रखे जा सकते हैं। शिशुओं में ज्ञान भावना, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के विकास के उपरोक्त मुख्य साधन हैं। इसका माध्यम भाषा शब्द और वाक्य ही है। इस प्रकार इन अनुभवों से बुद्धि और ज्ञान का विकास किया जाना चाहिए भाषा सीखने का सरल और रुचिकर साधन यही है। विकास सहज रूप से किया जाना चाहिए। इसमें भय, प्रताड़ना या दबाव का पुट न हो। शिशु शालाओं की सारी शिक्षा मातृ भाषा में ही दी जाय।

कुछ शिक्षाविद ऐसा मानते हैं कि ६ वर्ष पांच महीने की आयु के बाद ही बच्चे को हिसाब और पढ़ना सिखाना चाहिए। किन्तु अभिभावक शिशु की प्रगति का मापदण्ड पढ़ना लिखना ही मानते हैं। इसलिए ६ वर्ष के बाद पढ़ना लिखना शुरू करने से अभिभावक अधीर हो जायेंगे। किन्तु इतना सत्य है कि केवल विषय ज्ञान पर बल देने की अपेक्षा, समग्र जीवन के लिए शिक्षा देना अधिक उपयोगी होगा, इस पर ध्यान देना चाहिए। अतः भाषा ज्ञान के साथ महापुरुषों की जीवनी कविता पाठ पहाड़े, सरल गणित, सामान्य ज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा आदि का ज्ञान और अनुभव मौखिक एवं व्यावहारिक रूप से कराया जाना चाहिए। किन्तु इन सब के लिए पहले बच्चे की मानसिक तैयारी कर लेना आवश्यक है। पूर्व बुनियादी शिक्षण कला की कुछ विशेष बातें शिक्षक को ध्यान में रखने योग्य हैं जो इस प्रकार हैं—बालक के शिक्षण में भय और बल का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। इससे उनकी सरल, खेल खेल की सहज प्रवृत्ति कुण्ठित हो जाती है। इस पद्धति में शिक्षण, खेल, पढ़ाई लिखाई रचनात्मक कार्य, स्वास्थ्य कार्य आदि सभी कार्य अलग अलग विषय न होकर एक समवेत रूप से बालक की क्रियाशीलता को बल देने की प्रक्रिया मात्र है। सभी शिक्षण कार्य समायोजित करते हुए उनके माध्यम से बालक खेल की अनुभूति प्राप्त करते हुए आनन्द प्राप्त करें। इस प्रकार शिक्षण शुष्क या भारस्वरूप मालूम नहीं होगा। खेल-खेल की प्रक्रिया से बालक सब कुछ अनजाने में ही सीख लेगा।

रचनात्मक कार्य —रचनात्मक कार्य पूर्व बुनियादी शिक्षण का आधार है। अतः रचनात्मक कार्य करने की प्रवृत्ति पर बल देना चाहिए और इस कार्य के प्रति बच्चे के हृदय में आदर और स्नेह की प्रवृत्ति जगानी चाहिए। उद्देश्य यही होना चाहिए कि बच्चे का रचनात्मक कौशल जागृत हो। इसके साथ ही स्मरण रहे कि रचनात्मक कार्य उत्पादक हो और समाजोपयोगी भी हो और सम्बद्ध समाज के वातावरण के अनुकूल हो। देखा गया है कि रचनात्मक कार्य कई शालाओं में शुरू किए गए हैं। परन्तु इनके पीछे जो दृष्टि होनी चाहिए उसका सर्वथा अभाव है। कई प्रकार के रचनात्मक कार्य जैसे कागज काटना सूत कातना आदि कार्य शालाओं में किये जाते हैं परन्तु वे सर्वथा उद्देश्यहीन होते हैं। वे समय बिताने या टाइम टेबुल के अंग मात्र बन गए हैं या वे यांत्रिक रूप से किए जाते हैं या इनका उपयोग मनोरंजन मात्र के लिए किया जाता है। यहाँ पर यह कहना उचित होगा कि जब रचनात्मक कार्य पर बल दिया जाता है तब उसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि पुस्तकीय ज्ञान या बौद्धिक ज्ञान या उसके विकास का अवमूल्यन किया जायगा। पुस्तकीय शिक्षा रचनात्मक विकास एवं आत्मिक विकास सभी शिक्षा के महत्वपूर्ण अंग हैं और सर्वांगीण दृष्टिकोण से इसका प्रयोग किया जाना चाहिए और समाज के परिवर्तन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है इसको विस्मृत नहीं करना चाहिए।

प्राथमिक कक्षाओं में बच्चे देखकर सुनकर, नकल करके और अन्य क्रियाओं द्वारा ज्ञान का अनुभव प्राप्त करते हैं। पांचों इन्द्रियों द्वारा मनुष्य मानसिक, भावनात्मक, शारीरिक ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करता है, इनके

हलचल से ही उसे अनुभव की प्राप्ति होती है। ग्रामीण समाज में बच्चे पेड़, पौधे, सब्जी, फलफूल के बगीचे आदि देखकर उनके विकास को देखकर अनुभव पाते हैं। पशु, पक्षी, कीड़े मकोड़े जानवर आदि की हलचल, उनका स्वभाव आदि देखते सुनते हैं और इससे उनके अनुभव विकास एवं ज्ञान की सामग्री बनती है। बच्चे गाँवों में खेती बढ़ई गीरी, लोहारगीरी, मकड़ों का काम, मिट्टी के बर्तन ईंट बनाना आदि काम देखते हैं और उनके विषय में सुनते हैं तथा व्यावहारिक ज्ञान पाते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है बच्चों में प्रेम भाव कोमल भावना, क्रूरता न करना, गाय, भैंस बकरी, घोड़ा, कुत्ते, बिल्ली आदि जानवरों के प्रति स्नेह भाव बढ़ाना, चिड़ियों पशुओं आदि के प्रति प्रेमभाव बढ़ाना इन सब की सेवा करना, पालन पोषण करना, उनकी उपयोगिता को समझना, खेतों में फूल फलों सरसों की पीली बालियां, नीले पीले सफेद फूल, हरियाली आदि की शोभा देखकर प्रकृति के सौंदर्य का अनुभव करना, सूरज चन्द्र, तारों को देखकर सौंदर्य बोध करना आदि ज्ञान व्यावहारिक रूप से बच्चों को दिया जाना चाहिए। चतुर अध्यापक इसे सूझ बूझके साथ कर सकता है। परन्तु इसके लिए अध्यापक को विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। अध्यापक के मस्तिष्क पर यह स्पष्ट छाप हो कि शिक्षा केवल मात्र पुस्तकीय ज्ञान नहीं है, परन्तु व्यवहारिकता और क्रियाशीलता के माध्यम से बच्चों की मानसिक पृष्ठभूमि के अनुकूल शिक्षा दी जाय और बच्चों का ज्ञान पक्ष, भाव पक्ष और क्रिया पक्ष सभी को जगाने की क्रिया ही सच्ची शिक्षा है। परन्तु इस प्रकार के अनुभवों की सम्भावना शहरों में कम होती है। इनकी पूर्ति और प्राप्ति शहरों में बच्चों को कराना आवश्यक प्रतीत होता है। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि अच्छी शिक्षा का यह महत्वपूर्ण साधन है। नहीं तो शहरी शिक्षा मात्र पुस्तकीय होगी और व्यावहारिकता तथा समाज से दूर होकर रह जायगी।

रचनात्मक कार्यों में बर्तन धोना, झाड़ लगाना सफाई करना, तश्तरी धोना, कागज आदि के टुकड़े को कूड़े की टोकरी में डालना, कूड़ा साफ करना, बागवानी, बगीचे की सफाई करना आदि कार्यों के संस्कार देना आवश्यक है। शिक्षक को इन कार्यों के महत्व एवं आवश्यकता को बच्चों को बतलाते हुए इन रचनात्मक कार्यों को कराना चाहिए। शिक्षा में श्रम के महत्व को बढ़ाने से जातिभेद की भावना भी दूर होगी और आरोग्य लाभ भी होगा। इससे बच्चों की बुद्धि का विकास होगा और उनमें स्वच्छता, अनुशासनता की आदतें पैदा होंगी। इसी परिवेश में शिक्षक इन कार्यों द्वारा बच्चों में कुछ चारित्रिक गुणों का बीजारोपण कर सकता है। नियमों का पालन आज्ञापालन, उत्तरदायित्व की भावना जगाना, ठीक समय से काम करना, समय नष्ट न करना परस्पर सहयोग एवं सहायता की भावना जगाना आदि नैतिक गुणों का बीजारोपण शिक्षक की सूझ बूझ से करना सम्भव है। इसी प्रकार मोती पिरोना, सुई में धागा डालना, सब्जी काटना, ब्लाकों और बीजों का वर्गीकरण करना, कागज के आकार में टुकड़े कैंची द्वारा काटना, कागज चिपकाना और चित्रकारी, रंगों का उपयोग, बालू मिट्टी से खेल तथा उससे आकार बनाना आदि कार्य भी रचनात्मक कार्य हैं। विद्यार्थी में समाजोपयोगी एवं नैतिक गुणों का सर्जन करना शिक्षक का धर्म है। शिक्षक के लिए यह चिन्तन का विषय है एवं व्यावहारिक चुनौती है। उपरोक्त सभी बातों का व्यावहारिक ज्ञान शिक्षक के प्रशिक्षण का अंग बनाया जाना चाहिए।

सामूहिक कार्य --शिशु कक्षाओं में कुछ कार्य व्यक्तिगत रूप से और कुछ कार्य सामूहिक रूप से किए जाते हैं। सामूहिक कार्य का प्रभाव बच्चों के जीवन पर अच्छा पड़ता है। उसमें सामूहिक कार्य से सहयोग सेवाभाव के साथ कार्य करने की आदत पैदा होती है। इसलिए वे सब कार्य जिनका उल्लेख पहले भी किया गया है उनसे सामूहिक रूपसे कराया जाना चाहिए। जैसे अभिनय, कविता पाठ, नृत्य संगीत, लोकगीत, लोक नृत्य, भजन, हस्तकला, मिट्टी का काम, खेलकूद, व्यायाम आदि भी सामूहिक कार्यों में आते हैं। शिशु बालकों से ये कार्य सामूहिक रूप से किए जाते हैं परन्तु यहां पर केवल यही कहना उचित है कि इन कार्यों द्वारा भी

बच्चों की नैतिक शिक्षा होनी चाहिए और उनमें नागरिक गुणों का सवर्धन होना चाहिए। सामूहिक कार्यों द्वारा शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों में एक साथ मिलकर काम करने की आदत डालें, लेन-देन, सहयोग, सेवा, अनुशासन सिखाए, छीनाझपटी न करने, धोखा धड़ी न करने आदि की आदतें डालें। पवित्र नागरिक धर्म पनपानेके बहुमूल्य साधन सामूहिक कार्य एव खेलकूद के मैदान ही होते हैं। शिक्षक को बहुत ही सूझ-बूझ के साथ इन नागरिक भावनाओं को जगाना है। शिक्षक के प्रशिक्षण में इन मूल्यों को क्रियाशील बनाने के उपयोगी साधन सम्मिलित किये जाने चाहिए।

मसँरी या पूर्व बुनियादी कक्षाओं के कार्य का समय साढ़े तीन घण्टे का होना चाहिए जिसमे नाश्ता एव विश्राम का समय भी सम्मिलित है। गावों मे फसल के अनुसार मूंग, मक्का, चना, मटर आदि तथा अमरूद, आम आदि को एकत्र कर बच्चों के नाश्ते की व्यवस्था की जा सकती है। इन दोनों कार्यों को नियमित रूप से किया जाय। इन शालाओं की ये आवश्यक प्रवृत्तियाँ हैं। इसी प्रकार सामूहिक कार्यों में बच्चों को कहानी सुनाने का भी घटा आवश्यक है। अच्छी तरह रुचिपूर्ण नाटकीय ढग से कहानियाँ कही जानी चाहिए। कहानियाँ इतने आकर्षक ढग से कही जाय कि बच्चे मुग्ध होकर उन्हें सुनें। कहानी कहना, विश्राम करना, चुपचाप बैठना, शान्त बैठना, शान्त वातावरण बनाना, या लेटना ये सब प्रक्रियाए शिशु कक्षाओं के आवश्यक अग हैं। उनके द्वारा शिक्षार्थी के शरीर, मन एव स्नायु को पूरा-पूरा विश्राम मिलता है, उनके अन्दर और बाहर शान्त वातावरण उत्पन्न होता है। मानसिक एव शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से ये आवश्यक है। अनेक प्रकार की मनोरजनात्मक कहानियाँ, दूसरे देशों के बालकों की कहानियाँ, साहसिक स्त्री-पुरुषों की कहानियाँ आदि विविध प्रकार की कहानियाँ सुनानी चाहिए। इन कहानियों द्वारा बच्चों के ज्ञान की वृद्धि होती है, उन्हें और उनके स्नायु को विश्राम मिलता है, बच्चों का मनोरजन होता है, उनकी कल्पना शक्ति को बढ़ावा मिलता है। इसके साथ ही उन्हें सौन्दर्य, भक्ति, श्रद्धा, साहस, शूरता आदि गुणों का बोध कहानियों द्वारा कराया जा सकता है।

शिक्षक —यह सत्य है कि उपर्युक्त बहुत से क्रियाकलाप शालाओं में किए जाते हैं। कुछ आलोचक कहेंगे कि इन विचारों मे कोई नवीनता नहीं है यह भी सत्य है। खेलकूद, रचनात्मक कार्य, व्यायाम, पाठ्य विषय सभी कार्य न्यूनाधिक सभी ऐसी शालाओं में किए जा रहे हैं। परन्तु शालाओं की प्रगति सतोषजनक नहीं मालूम होती है। उनमें बहुत कुछ कमी का अनुभव होता है। पहली बात यह है कि हमारी सारी शालाएं इन साधनों को अलग-अलग विषय के रूप में देखती समझती हैं। वे लोग यह दृष्टिकोण अपना नहीं पाए हैं कि शिक्षण एक समग्र या समन्वित कला है। शिक्षण एक समन्वित कार्यक्रम है, इसका भी उन्हें भान नहीं है। खेल द्वारा ही शिक्षण के विविध कार्यक्रमों को प्राण प्रदान करना होगा, यही शिक्षण की सबसे बड़ी कला है। अत सम्पूर्ण शिक्षण क्रिया एक समन्वित, समायोजित प्रक्रिया है, इसका भान शिक्षक को सतत होना चाहिए और यही दृष्टिकोण उनकी प्रेरणा का स्रोत होना चाहिए और नाना प्रकार के नए विचारों उपायों को सोचना और प्रयोग करते रहना चाहिए। इससे शिक्षक के जीवन में ताजगी आएगी और शिक्षण कार्य के प्रति उनका उत्साह बना रहेगा। बहुधा कुछ वर्षों के बाद शिक्षक, शिक्षण की मूल धारणाओं या मूल उद्देश्यों को भूल जाता है और यन्त्रवत् सारे शिक्षण कार्य करने लगता है। इससे शिक्षक के जीवन में रूक्षता और उत्साह विहीनता आने लगती है। शिक्षक को सक्रिय होते हुए भी अपने व्यक्तित्व एव प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप से बालक बालिकाओं पर लादना नहीं चाहिए। शिक्षक को शिक्षार्थी का मार्गदर्शन करना चाहिए, उनके खेल की प्रवृत्ति एव उत्साह को समाजोपयोगी बनाना चाहिए। उनमें अच्छे नागरिकों के गुणों का उद्बोधन करने का प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षकों में मृदुभाषिता स्पष्ट निर्देशन हसमुख रहन आदि गुणों का होना आवश्यक है। वस्तुत पूर्व बुनियादी कक्षाओं के शिक्षण कार्य के लिए अधिकांशत. महिला शिक्षिकाओं का होना लाभप्रद होता है, क्योंकि शिक्षक में माता का प्यार, माता की सी सहनशीलता, दया, क्षमा, त्याग, सयम, निःस्वार्थ सेवा आदि गुण आवश्यक हैं। महिलाओं में यह गुण अधिक मात्रा मे

गोवध पर प्रतिबन्ध

के० अरुणाचलम्

देश में लम्बी समय से यह माग चली आ रही थी कि संविधान के राज्य निर्देशक तत्व के अनुसार गोवध पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। इसके लिए १९७६ में विनोबाजी ने आमरण अनशन का भी अपना विचार घोषित किया था। किन्तु तत्कालीन सरकार के आश्वासन पर उन्होंने उसको एक वर्ष के लिए स्थगित कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप पश्चिम बंगाल और केरल को छोड़कर देश के सभी राज्यों में कानून पास करके गाय के वध पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी बीच केन्द्रीय तथा उन दो राज्यों की सरकारों में परिवर्तन आया और लम्बी प्रतीक्षा के बाद विनोबाजी को फिर घोषणा करनी पड़ी कि यदि इन दो राज्यों में भी प्रतिबन्ध नहीं लग जाता है तो वे १ जनवरी १९७९ से आमरण अनशन प्रारम्भ करेंगे। इस पर ग्राम स्वराज्य के कार्यकर्ताओं के सम्मेलन ने उनसे यह अनुरोध किया कि उन दोनों सरकारों को कानून बनाने के लिए राजी करने के लिए वे उनको कुछ और समय दें, और विनोबाजी ने १११ दिन का और समय दिया। इस बीच कार्यकर्ताओं ने इन दो राज्यों में कोशिश की, किन्तु उसके कुछ परिणाम न निकले।

अत विनोबाजी को २२ अप्रैल से अपना अनशन प्रारम्भ करना पड़ा। उनकी उम्र, स्वास्थ्य और बीमारी के कारण इससे देश में बहुतों को बड़ी चिन्ता हुई और राज्यों में असफलता मिलने पर दिल्ली में इसके प्रयास किए जाने लगे कि सत्ताधारी दल को विनोबाजी के प्राण बचाने हेतु उनकी मांग की पूर्ति के लिए कुछ करना चाहिए। प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई को भी लगा कि देश को विनोबाजी को खोना नहीं चाहिए और इसके परिणाम स्वरूप, अपनी अनिच्छा के बावजूद, उन्होंने यह साहसपूर्ण निर्णय लिया कि संविधान में उचित संशोधन किया जाय। इसकी घोषणा संसद में २६ अप्रैल को २ बजे अपराह्न की गयी। उसमें कहा ... कार इसी सत्र में संविधान संशोधन ... पूर्व श्री दादा धर्माधिकारी और श्री ... दिल्ली में कई सांसदों, दल नेताओं ने ... पूरी परिस्थिति से अवगत कराके उनको ... लिए राजी कर लिया था कि विनोबाजी को ... लिए कोई निर्णय तत्काल लिया जाना ... गाय की भी रक्षा होगी।

संसद में प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये ... श्री दादा धर्माधिकारी, श्री राधाकृष्ण ... श्री आर० के० पाटिल के अनुमोदन पर ... अपना अनशन समाप्त कर दिया। इससे ... अनुयायियों को बड़ी राहत हुई। किन्तु ... के समर्थकों का उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है ... कानून बनाकर अपना धर्म पूरा कर दे, ... भी आगे बढ़कर अपना कर्तव्य पूरा करना होगा ... कमजोर पशुओं की देखभाल जनता को करनी ... बूढ़े होने पर उनको रक्षा का भार उनपर ... कुछ खर्च भी आयेगा। यह कहा जाता है ... तथा सूख जाने पर गाय दो या तीन वर्ष और ... और प्रति गाय २ रुपये का प्रतिदिन व्यय ... इसकी व्यवस्था करना समाज का धर्म है ... उसका उस समय लाभ उठाया जबकि वह ... और खेती करने तथा भार ढोने के लिये ... सरकार के लिए बूढ़ी गायों की देखभाल एक ... समस्या होगी, किन्तु यदि स्थानीय समुदाय इसे ... उठा लेते हैं, तो यह भार बट जाता है। किन्तु ... क्षेत्रीय स्तर पर संगठन का है। गोरक्षण ... प्रभावी बनाने के लिए कार्यकर्ताओं को ... पर इस काम को संगठित ... के ... शक्ति लगानी होगी।

गोवध पर प्रतिबन्ध

के० अरुणाचलम्

देश में लम्बे समय से यह मांग चली आ रही थी कि संविधान के राज्य निर्देशक तत्व के अनुसार गोवध पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। इसके लिए १९७६ में विनोबाजी ने आमरण अनशन का भी अपना विचार घोषित किया था। किन्तु तत्कालीन सरकार के आश्वासन पर उन्होंने उसको एक वर्ष के लिए स्थगित कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप पश्चिम बंगाल और केरल को छोड़कर देश के सभी राज्यों ने कानून पास करके गाय के वध पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी बीच केन्द्रीय तथा उन दो राज्यों की सरकारों में परिवर्तन आया और लम्बी प्रतीक्षा के बाद विनोबाजी को फिर घोषणा करनी पड़ी कि यदि इन दो राज्यों में भी प्रतिबन्ध नहीं लग जाता है तो वे १ जनवरी १९७९ से आमरण अनशन प्रारम्भ करेंगे। इस पर ग्राम स्वराज्य के कार्यकर्ताओं के सम्मेलन ने उनसे यह अनुरोध किया कि उन दोनों सरकारों को कानून बनाने के लिए राजी करने के लिए वे उनको कुछ और समय दें, और विनोबाजी ने १११ दिन का और समय दिया। इस बीच कार्यकर्ताओं ने इन दो राज्यों में कोशिश की, किन्तु उसके कुछ परिणाम न निकले।

अत विनोबाजी को २२ अप्रैल से अपना अनशन प्रारम्भ करना पड़ा। उनकी उम्र, स्वास्थ्य और बीमारी के कारण इससे देश में बहुतों को बड़ी चिन्ता हुई और राज्यों में असफलता मिलने पर दिल्ली में इसके प्रयास किए जाने लगे कि सत्ताधारी दल को विनोबाजी के प्राण बचाने हेतु उनकी मांग की पूर्ति के लिए कुछ करना चाहिए। प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई को भी लगा कि देश को विनोबाजी को खोना नहीं चाहिए और इसके परिणाम स्वरूप, अपनी अनिच्छा के बावजूद, उन्होंने यह साहसपूर्ण निर्णय लिया कि संविधान में उचित संशोधन किया जाय। इसकी घोषणा संसद में २६ अप्रैल को २ बजे अपराह्न को गयी। उसमें कहा गया कि सरकार इसी सत्र में संविधान संशोधन बिल लायेगी। इसके पूर्व श्री दादा धर्माधिकारी और श्री राधाकृष्ण बजाज दिल्ली में कई सांसदों, दल नेताओं से मिले जुले थे और पूरी परिस्थिति से अवगत कराके उनको इस बात के लिए राजी कर लिया था कि विनोबाजी को बचाने के लिए कोई निर्णय तत्काल लिया जाना चाहिए और इससे गाय की भी रक्षा होगी।

संसद में प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये आश्वासन तथा श्री दादा धर्माधिकारी, श्री राधाकृष्ण बजाज और श्री आर० के० पाटिल के अनुमोदन पर विनोबा जी ने अपना अनशन समाप्त कर दिया। इससे उनके हजारों अनुयायियों को बड़ी राहत हुई। किन्तु साथ ही गोरक्षण के समर्थकों का उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। सरकार कानून बनाकर अपना धर्म पूरा कर ले, किन्तु जनता को भी आगे बढ़कर अपना कर्तव्य पूरा करना होगा। बूढ़े और कमजोर पशुओं की देखभाल जनता को करनी है और बूढ़े होने पर उनकी रक्षा का भार उनपर है। इस पर कुछ खर्च भी आयेगा। यह कहा जाता है कि साधारण तया सूख जाने पर गाय दो या तीन वर्ष और जीती है। और प्रति गाय २ रुपये का प्रतिदिन व्यय आता है। इसकी व्यवस्था करना समाज का धर्म है क्योंकि उसने उसका उस समय लाभ उठाया जबकि वह दूध देती थी और खेती करने तथा भार ढोने के लिये बैल देती थी। सरकार के लिए बूढ़ी गायों की देखभाल एक बड़ी वित्तीय समस्या होगी, किन्तु यदि स्थानीय समुदाय इस काम को उठा लेते हैं, तो यह भार घट जाता है। किन्तु यह प्रश्न स्थानीय स्तर पर संगठन का है। गोरक्षण कानून को प्रभावी बनाने के लिए कार्यकर्ताओं को स्थानीय स्तर पर इस काम को संगठित करने में अपना समय और शक्ति लगानी होगी।

नयी तालीम से सम्बन्धित प्रपत्र ४ का विवरण

१- प्रकाशन का स्थान :		सेवापुरी, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
२- प्रकाशन अवधि :		द्वैमासिक
३-	मुद्रक का नाम	श्री चन्द्रशेखर मिश्र
	राष्ट्रीयता :	भारतीय
	पता :	विद्या मुद्रण स्थली, मदैनी, वाराणसी
४-	प्रकाशक :	श्री अक्षय कुमार करण।
	राष्ट्रीयता :	भारतीय
	पता :	अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश नयी तालीम समिति सेवापुरी वाराणसी
५-	सम्पादक :	सर्व श्री के० अरुणाचलम्, द्वारिका सिंह, वजुभाई पटेल काशीनाथ त्रिवेदी ज्योतिभाई देसाई, देवेन्द्र दत्त तिवारी मदनमोहन
	राष्ट्रीयता :	भारतीय
	पता :	उत्तर प्रदेश नयी तालीम समिति सेवापुरी (वाराणसी)
६-	पत्रिका के मालिक का नाम व पता :	अखिल भारत नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र

मैं अक्षयकुमार करण यह घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

ह० अक्षयकुमार करण
प्रकाशक

भूल-सुधार

नयी तालीम पत्रिका का कार्यालय सेवाग्राम से सेवापुरी स्थानान्तरित हुआ। इस कारण भूलवश विगत दो अंकों में पत्रिका का वर्ष और अंकों का क्रम अशुद्ध छपा है। सुधी पाठक हमारी इस भूल के लिए क्षमा करें और विगत अंकों में निम्नवत संशोधन करके पढ़ें :—

नयी तालीम फरवरी-मार्च १९७८-७९

रजिस्टर्ड WD11 लाइसेंस नं० १

मंगलकामना

कोई कृति खो नहीं सकती
और न कोई संघर्ष व्यर्थ जायगा,
भले ही आशायें क्षीण हो जायं
और शक्तियां जवाब दे दें
हे वीरात्मन ! तुम्हारे उत्तराधिकारी अवश्य जनमेंगे
और कोई सत्कर्म निष्फल न होगा।
यद्यपि भले और ज्ञानवान कम मिलेंगे
किन्तु जीवन की बागडोर उन्हीं के हाथों होगी।
यह भीड़ सही बातें देर से समझती है,
तो भी चिन्ता न करो, मार्ग दर्शन करते जाओ।
तुम्हारा साथ वे देंगे जो दूरदर्शी हैं,
तुम्हारे साथ शक्तियों का स्वामी है।
आशीषों की वर्षा होगी तुम पर
ओ महात्मन् तुम्हारा सर्वमंगलमय हो।

—स्वामी विवेकानन्द

अखिल भारत नयी तालीम समिति के लिए श्री अजय कुमार करण अध्यक्ष उत्तर प्रदेश नयी तालीम समिति द्वारा प्रकाशित एवं विद्या मुद्रण स्थली, भदैनी, वाराणसी से मुद्रित।

नयी तालीम

सम्मेलन विशेषांक

राष्ट्रीय शिक्षा नीति

अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का प्रारूप १९७९

गांधी कुटी का सन्देश

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा : एक प्रयोग

अखिल भारत नयी तालीम समिति

वर्ष २७
अप्रैल-मई
जून-जुलाई

अंक
५, ६

अप्रैल—जुलाई ७९

नयी तालीम का वार्षिक शुल्क बारह रुपये तथा एक अंक का मूल्य दो रुपये है।
नयी तालीम द्वै-मासिक पत्रिका है इसका वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
पत्र व्यवहार के लिए कृपया पाठक कृपया अपनी ग्राहक सख्या अवश्य लिखे।

नयी तालीम

सम्पादकीय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति

संसद के विगत अधिवेशन में केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप प्रस्तुत किया गया। १९६८ में प्रथम बार केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की थी। उस समय शिक्षा का विषय राज्य के अन्तर्गत था, अतः कुछ राज्य सरकारों ने भी शिक्षा नीति विषयक कुछ चिन्तन किया था। गत दस वर्षों में देश में अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन हुए हैं जिनमें लोकशक्ति के विकास और ह्रास की कथा लिखी गयी है और लिखी जा रही है। किन्तु यदि आज किसी से भी यह प्रश्न किया जाय कि शिक्षा की प्रमुख समस्याएं क्या हैं जिन पर दिग्दर्शन और मार्गदर्शन की आवश्यकता है तो वह यही कहेगा कि विद्यालयों, विश्वविद्यालयों का अशान्त और अव्यवस्थित वातावरण, शिक्षा का रोजगार और स्वावलम्बन से सम्बन्ध न होना, अभिभावकों, शिक्षकों तथा शैक्षिक एवं अन्य प्रशासकों द्वारा शिक्षण की उपेक्षा, परीक्षा की भ्रष्टाचार लिप्त प्रणाली। लोक जीवन में सामान्य लोग इन समस्याओं का समाधान चाहते हैं। उनके सम्बन्ध में राष्ट्र के कर्णधारों से कुछ दिशा चाहते हैं। इस दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति का घोषणा-पत्र एक सघन निराशा का संचार करता है। २२ पृष्ठों और २३ प्रकरणों का यह घोषणा - पत्र पढ़ने से यह धारणा बनती है कि इसमें एक सूत्रता का अभाव है, समुचित आदर्श की कमी है, या यों कहें कि शरीर तो है किन्तु आत्मा नहीं है। प्रारूप में विभिन्न असम्बद्ध टुकड़े एक साथ जोड़ दिये गये हैं। गांधी ने हमारे सामने समग्र शिक्षा का एक रूप प्रस्तुत किया था। वह जीवन और समाज से एक रूप था, स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरता के मन्त्र से अनुप्राणित था। प्रधान मन्त्री के बार-बार इस बात पर बल देने पर भी कि बुनियादी शिक्षा ही शिक्षा का सर्वोत्तम स्वरूप है, प्रस्तुत प्रारूप में उसका कोई सार्थक उल्लेख नहीं है। पहले पृष्ठ पर अवश्य गांधी जी का नाम, उनके विचारों तथा प्रयोगों का उल्लेख किया गया है किन्तु बुनियादी शिक्षा या नयी तालीम शब्द का प्रयोग तक नहीं किया गया है, जिस बुनियादी शिक्षा को उस महापुरुष ने देश के लिए अपनी सर्वोत्तम देन कहा था।

प्रारूप की प्रस्तावना की भाषा अत्यन्त उलझी हुई, अस्पष्ट और शब्दों का जाल ही प्रतीत होती है।

प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में उत्पादक कार्य का उल्लेख किया गया है। किन्तु उत्पादक कार्य शिक्षा का माध्यम बनेगा, इसकी संकल्पना स्पष्ट नहीं की गयी है। नेबर-हुड स्कूल की योजना का उल्लेख किया गया है जो एक विदेशी संकल्पना है और इस देश के तथाकथित शिक्षा-विद अपनी विद्वता प्रदर्शित करने के लिए उसका उल्लेख अवश्य करते हैं। जो भाषा अपने देश के लोगों के लिए ग्राह्य है उस भाषा में और अपनी स्थिति के सन्दर्भ में कदाचित इन लोगों ने कुछ कहना सीखा ही नहीं है।

प्रौढ़ शिक्षा के सन्दर्भ में कोई नयी बात नहीं कही गयी है क्योंकि जो बातें कही गयी हैं वे सब प्रौढ़ शिक्षा की राष्ट्रीय नीति में १९७७ में घोषित हो चुकी हैं। इसमें पुनः स्वैच्छिक संस्थाओं को वरीयता देने की बात कही गयी है जिसका सरकारी कर्मचारी द्वारा अनुपालन नहीं किया जा रहा है और यह स्थिति उत्पन्न की जा रही है कि स्वैच्छिक संस्थाओं की सक्रियता और प्रतिष्ठा लोक-दृष्टि में कम हो जाय।

माध्यमिक शिक्षा में व्यवसायीकरण पर बल दिया गया है और यह पवित्र इरादा बहुत लम्बे अरसे से सर-कार द्वारा दोहराया जा रहा है। उच्च शिक्षा के संदर्भ में अनुच्छेद ५.२ में क्रान्तिकारी बात कही गयी है और वह यह कि सामान्य स्तर के काम धन्धों के लिए जिनके लिए विश्वविद्यालय की डिग्री की आवश्यकता नहीं है, उन्हें डिग्री से असम्बद्ध कर दिया जाय। यदि ऐसा हो सका और रोजगार की आवश्यकतानुसार लोगों को कामधंधे मिलने लगे, न कि कागजी प्रमाण पत्रों के आधार

पर, तो निश्चित है कि शिक्षा का स्तर भी ऊपर उठेगा और परीक्षाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार भी दूर होगा।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तीन वर्ष के डिग्री कोर्स की संस्तुति की गयी है। उन उच्चशिक्षा के कर्णधारों से, जिन्होंने इस प्रारूप की रचना में महत्वपूर्ण योगदान किया होगा यह पूछा जाना चाहिए कि क्या के विश्वविद्यालय, डिग्री के लिये उपलब्ध प्रथम दो वर्षों का समुचित उपयोग कर रहे हैं। दो से तीन वर्ष की अवधि बढ़ाने का औचित्य क्या है? क्या अवधि बढ़ा देने से स्तर ऊपर उठेगा? क्या उन स्नातकों का स्तर ऊपर उठा है जो डिग्री के लिए तीन वर्ष का समय व्यतीत करते हैं। फिर एक गरीब देश के लिए जहां तीस करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं, एक वर्ष की अवधि बढ़ाना गरीबों को उच्च शिक्षा से वंचित करना है। कदाचित सवर्ण उच्च शिक्षा के विशेषज्ञ ऐसा चाहते भी है कि गरीब उच्च शिक्षा से वंचित रह जाय। देश के लोगों को इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिए और अपनी आवाज एक वर्ष की अवधि वृद्धि के विरोध में उठानी चाहिए। जब दूसरे देश शिक्षा पर बढ़ते हुए व्यय से ऊबकर अवधि को कम करने के उपाय पर विचार कर रहे हैं, हम तीन वर्ष बढ़ाने के उपाय सोच रहे हैं। आशा है संसद सदस्यगण जो देश के करोड़ों गरीबों के प्रतिनिधि हैं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति के इस बिन्दु पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे।

शिक्षा के ढांचे के बारे में स्पष्ट बात नहीं कही गयी है। जो लोग १०+२ योजना के सर्जक, समर्थक और पोषक थे उन्होंने बड़ी चतुराई से गोलमोल शब्दों में यह अंकित कर दिया है कि स्कूली शिक्षा १२ वर्ष की रहेगी। वास्तव में १०+२ की योजना केवल वर्षों का प्रश्न नहीं था। वह विदेशी प्रयोगों से युक्त एक योजना थी जिसमें १० वर्ष की स्कूली योजना को आधार माना गया था। किन्तु गरीब देश में कदाचित ५ वर्ष या ८ वर्ष की भी समग्र स्वतः पूर्ण शिक्षा की बात सोचनी होगी। इसीलिए गांधीजी ने ७ या ८ वर्ष की प्राथमिक शिक्षा का प्रतिपादन किया था और प्रयास मंत्री भी इस बात पर बल दे रहे थे किन्तु १०+२ योजना से लोग इतना प्रतिबद्ध हैं कि शैक्षिक ढांचे की बात स्पष्ट रूप से नहीं कही गयी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रारूप में तकनीकी शिक्षा, कृषि शिक्षा तथा चिकित्सीय शिक्षा की बात भी कही गयी है जो समीचीन है। शारीरिक शिक्षा, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो, त्रिभाषा सूत्र आदि विषयों पर चर्चा की गयी है। देश की भाषाओं के विकास पर विशेष बल दिया गया। हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

परीक्षा सुधार के सम्बन्ध में अस्पष्ट बातें कहीं गयी हैं। बाह्य मूल्यांकन पर बल है और आंतरिक मूल्यांकन पर भी। सब से हास्यास्पद बात यह है कि राष्ट्रीय नीति में क्रेडिट सिस्टम की संस्तुति की गयी है। राष्ट्रीय नीति का लक्ष्य नीति की घोषणा करना है, न कि कैसे पाठ्यक्रम बनाया जाय, कैसे उसको संगठित किया जाय, ऐसे विषयों में हस्तक्षेप करना है। पृष्ठ १८ पर क्रेडिट सिस्टम का उल्लेख हमारी चिन्तन परतन्त्रता का द्योतक है। व्यवस्था में लचीलापन बिना क्रेडिट सिस्टम के भी लाया जा सकता है। यह कदाचित नीति का प्रारूप तैयार करने वालों को ज्ञात नहीं है।

अध्यापकों तथा अध्यापकों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में काल्पनिक आदर्शवाद की ओर अस्पष्ट बातें कही गयी हैं। शिक्षण प्रशिक्षण की आज जो ज्वलंत समस्याएँ हैं, उनके समाधान का कोई दिग्दर्शन नहीं है।

आर्थिक व्यवस्था में स्थानीय सहयोग की बात कही गयी है। किन्तु सरकार शिक्षा की हर बात का नियन्त्रण अपने हाथ में रखेगी तो स्थानीय सहयोग कैसे विकसित होगा? शिक्षा में विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त की पूर्ण उपेक्षा की गयी है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप निष्प्राण प्रतीत होता है। इसके विभिन्न प्रकरण सुसम्बद्ध भी नहीं हैं। कई स्थानों पर भाषा अस्पष्ट और उलझी हुई है। फिर भी यह प्रारूप एक महत्वपूर्ण अभिलेख है और आशा है देश के चिन्तनशील व्यक्ति, शिक्षकों के व्यवसायिक संगठन अपनी प्रतिक्रिया समय से प्रस्तुत करेंगे और शिक्षा को नयी दिशा देने में अपना सहयोग प्रदान करेंगे।

अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन

बैरकपुर, कलकत्ता का दिनांक २७, २८, २९ मई १९७९ का विवरण

अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन का आयोजन इस बार पश्चिम बंगाल नयी तालीम समिति ने कलकत्ता के मुख्य नगर से लगभग १५ मील दूरस्थ गांधी संग्रहालय बैरकपुर में किया था। सम्मेलन का हाल यथा संस्कृति के अनुकूल आकर्षक ढंग से सजाया गया था। सम्मेलन का उद्घाटन प्रधान मंत्री श्री मोरार जी देसाई ने २७ मई १९७९ को पूर्वाह्न ११ बजे किया।

सम्मेलन की अध्यक्षता अखिल भारत नयी तालीम समिति के अध्यक्ष श्री अरुणाचलम् जी ने किया। उद्घाटन समारोह प्रधान मंत्री के अतिरिक्त पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री त्रिभुवन नारायण सिंह, मुख्य न्यायधीश श्री एस० पी० मिश्र तथा केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० प्रताप चन्द्र चन्दर ने सम्बोधित किया।

प्रधान मंत्री तथा सम्मेलन में आए अन्य विशिष्ट महानुभावों, अतिथियों तथा प्रतिनिधियों का स्वागत श्री के० अरुणाचलम् अध्यक्ष, अखिल भारत नयी तालीम समिति तथा श्री शैलेश राय चौधरी, अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल, नयी तालीम समिति ने किया। श्री वजू भाई पटेल मन्त्री अखिल भारत नयी तालीम समिति ने समिति का कार्य विवरण प्रस्तुत किया और बताया कि यह सम्मेलन भी इस कठिन गर्मी के समय बुलाने का उद्देश्य भारत की प्रस्तावित राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर विचार करने का तथा चर्चा के परिणाम स्वरूप अभिमत तैयार करने का है।

माननीय मोरार जी भाई ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि गांधी जी ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली के विनाशकारी परिणामों की ओर हमारा ध्यान दिलाया था और छात्रों को तत्कालीन प्रचलित संस्थाओं की जहां अराष्ट्रीय शिक्षा दी जाती थी, छोड़कर राष्ट्रीय विद्यालयों में प्रवेश लेने के लिए प्रेरित किया। बुनियादी शिक्षा का आविर्भाव इसी पृष्ठभूमि में हुआ। अपेक्षा यह की गयी थी कि इससे सर्व सामान्य का विकास सम्भव हो सकेगा और वह अपनी कठिनाइयों से मुक्त हो सकेगा। नयी तालीम का मूलाधार आत्मविश्वास, निर्भयता, सत्यवादिता था, जो प्रचलित शिक्षा प्रणाली में नहीं था। श्री देसाई ने कहा कि कुशिक्षा के परिणाम स्वरूप गुरु और शिष्य के सम्बन्ध बिगड़ गया है। इनसे कुछ सूचनाएँ और सीख तो मिल जाती है किन्तु जीवन शिक्षा नहीं। गांधी जी चाहते थे कि विद्यार्थी में निर्भयता, स्वतन्त्रता के भाव विकसित हों तथा उसे जीवन की तालीम मिले। दुर्भाग्य से गांधी जी की कल्पना की नयी तालीम अथवा बुनियादी शिक्षा नहीं अपनायी गयी। आज शिक्षा के हर क्षेत्र में परिवर्तन की अत्यन्त आवश्यकता दिखायी देती है।

प्रधान मंत्री ने कहा कि शिक्षा के द्वारा केवल सूचनाओं की नहीं, विवेक की आवश्यकता थी और उसके साथ ही उत्पादक कार्य और सामुदायिक सेवा कार्य वांछित था। उन्हों ने कहा कि गांधी जी ने हाथ से कार्य करने पर जोर दिया था और कार्य के माध्यम से शिक्षा की बात कही थी। अच्छी शिक्षा से समता, भेदभाव और मनुष्य के प्रति मनुष्य के कर्तव्य की भावना विकसित होनी चाहिए।

श्री देसाई ने पाठ्यक्रम में अधिकाधिक विषयों की उपादेयता पर सन्देह व्यक्त किया और यह अपेक्षा की कि नवीन शिक्षा दर्शन के लिए शिक्षकों को तैयार किया जाना चाहिए। उन्हों ने सर्व सामान्य से तथा राजनीतिज्ञों से पुरजोर अपील की कि वे शिक्षा को राजनीति से अलग रखें और उसे दलगत स्वार्थों से भी मुक्त रखें। शिक्षा

दोनों ऐसे समाज के निर्माण में हाथ बटा सकें, जिसमें समानता हो और जिसमें निजी तथा सामाजिक जीवन के बुनियादी सिद्धान्तों के रूप में आत्म - निर्भरता तथा श्रम-निष्ठा को स्थान दिया गया हो।

प्रत्येक स्तर पर विषयवस्तु को नया रूप देने तथा समूची व्यवस्था को साकार देने के काम के पीछे गांधीजी द्वारा प्रतिपादित यह उद्देश्य स्पष्टतया रहना चाहिए कि शिक्षा निर्सीन किसी प्रकार के शारीरिक • और उत्पादन कार्य में केंद्रित हो तथा शिक्षार्थी के वातावरण के साथ अभिन्न रूप से सम्बन्धित हो। इस नीति के मसविदे को, विशेष रूप से उसकी प्रस्तावना, उद्देश्य, विषयसूची और व्यवस्था के बारे में अधिक निश्चित और असंदिग्ध बनाने की जरूरत है जिससे उसमें उपर्युक्त विचार प्रतिबिम्बित हो सकें क्योंकि हमारी जनता के एक बड़े भाग की, जो प्रचलित व्यवस्था में बड़े महत्वपूर्ण और बुनियादी परिवर्तन का इच्छुक रहा है, ऊंची अपेक्षाएं पूरी नहीं हो रही हैं। इस दृष्टि से सम्पूर्ण मसविदे के फोरम को पैना तथा सुग्रथित करना होगा, जिससे वह अधिक प्रभावी हो सके।

विशेषरूप से, उसके बारे में उत्पन्न शंकाएं दूर करने के लिए निम्न स्पष्टताएं जरूरी हैं—

१ प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया शिक्षा के सभी स्तर पर, जिसमें उच्च शिक्षा भी है, एक साथ प्रारम्भ होगी और काम करेगी।

२ शिक्षा के सभी स्तर पर चाहे वह प्रारम्भिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा हो या तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा हो, समाज की दृष्टि से लाभप्रद उत्पादक काम और सामुदायिक सेवा पाठचर्या का अभिन्न अंग होगा, और इस प्रकार की शिक्षा को दूसरे प्रकार की शिक्षा के बराबर, जो विषय, क्षेत्र, पढ़ाई, मूल्यांकन आदि की दृष्टि से भिन्न है, बराबर माना जायगा। इसको पाठ्य विषयतर या साथ में चलाया जाने वाला क्रियाकलाप नहीं माना जायगा। यह भी आवश्यक है कि इसके साथ पूर्ण रूप से एक पाठ्य विषय जैसा व्यवहार हो। इसके लिए निश्चित करना जरूरी होगा कि इस को कम से कम कितना समय दिया जाए और यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह समय उच्च स्तर की शिक्षा में बढ़ता जायगा।

३ यद्यपि मसविदे के अन्दर गांधीजी के ... है, किन्तु प्रादेशिक स्कूल व्यवस्था में ... शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसे सुधारा जाय और पूरी व्यवस्था को नयी तालीम नाम दिया जाय। नयी तालीम के आवश्यक सिद्धांतों को माध्यमिक और उच्च शिक्षा पर भी लागू किया जाय। जब तक नयी तालीम सार्वत्रिक नहीं हो जाती, बुनियादी शिक्षा संस्थाओं को अपना अस्तित्व अलग बनाए रखना होगा।

८ वर्षीय प्रारम्भिक शिक्षा के टुकड़े न होने चाहिए और इसलिए वह 'टर्मिनल' होनी चाहिए। संविधान अनुच्छेद ४५ को लागू करने की दृष्टि से प्रारम्भिक शिक्षा को सार्वत्रिक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि चाहे वह औपचारिक हो या अनौपचारिक वह कार्यकेन्द्रित और कर्म केन्द्रित होनी चाहिए।

४ चार वर्ष की माध्यमिक शिक्षा को इकाई मानना एक अच्छा कदम है, जिससे वह शिक्षा अधिक सुसम्बद्ध होती है। इस स्तर पर विविधता का रूप, विषयों के चयन से सम्बन्धित होगा, न कि अलग धाराओं के रूप में जैसा कि आज है। सामान्य रूप से माध्यमिक शिक्षा को अलग-अलग धाराओं में विभाजित करना या विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक स्कूलों का होना बिल्कुल वांछनीय नहीं है। इसका भी स्पष्टीकरण आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर शिक्षा अपने में पूर्ण होगी और उसका ध्येय अगले स्तर की शिक्षा के लिए छात्र मुहैया करने का नहीं होगा। अतः यह धारणा कि शिक्षा एक सीढ़ी की भांति है, अत्यन्त हानिकारक है और किताबों तथा विषयों के अनुचित बोझ को कम करना जरूरी है।

अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन १६७६

सर्वसम्मत निवेदन

अखिल भारत नयी तालीम समिति की ओर से नयी तालीम कार्यकर्ता तथा इसमें रुचि रखने वाले अन्य महानुभावों का एक अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन दिनांक २७, से २९ मई १९७९ को गांधी मण्डहालय बैरकपुर (कलकत्ता) में आयोजित किया गया जिसका उद्देश्य संसद के वर्तमान बजट सत्र में शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का, जो मसविदा पेश किया गया, उसका अन्वेषण करना था। सम्मेलन में नयी तालीम के शिक्षक, शिक्षामंत्री तथा अन्य महानुभावों के अलावा योजना आयोग और राष्ट्रीय शिक्षा शोध संस्थान (एन सी ई आर टी.) के अधिकारियों ने भी भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन प्रधान मंत्री माननीय श्री मोरार जी देसाई ने किया। पश्चिम बंगाल के राज्यपाल, कलकत्ता उच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश एवं केन्द्रीय शिक्षामंत्री श्री पी सी चुन्दर आदि ने सम्मेलन को सम्बोधित किया।

सम्मेलन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसविदे की बारीकी से छानबीन की गयी तथा चर्चा विचार के पश्चात् निम्न सर्व सम्मत निवेदन स्वीकृत किया गया :—

दिनांक २७, २८, २९ मई १९७९ को बैरकपुर (कलकत्ता) में आयोजित यह अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन शिक्षा की राष्ट्रीय नीति के मसविदे में सूचित निम्नलिखित आवश्यक मुद्दों के जरिए देश में प्रचलित शिक्षा पद्धति में पुनर्निर्माण करने के भारत शासन के प्रयत्नों की सराहना करता है :-

१) समाजोपयोगी उत्पादन कार्य

२) समाज-सेवा

३) नैतिक शिक्षा

४) प्रारम्भिक स्तर को छोड़कर, जहां मातृभाषा शिक्षा का माध्यम हो, उच्च-शिक्षा समेत सभी स्तर पर प्रादेशिक भाषा के माध्यम से शिक्षण

५) शिक्षक-प्रशिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका।

नयी तालीम के कार्य में लगे संगठन एवम् दिसम्बर १९७७ में दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आदि सभी के द्वारा इन आवश्यक मुद्दों की सिफारिश की गयी है। पिछले करीब चार दशकों से भी अधिक समय से नयी तालीम समिति वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गांधी जी के अनुरूप परिवर्तन लाने की दृष्टि से तथा नयी तालीम का क्षेत्र विश्वविद्यालयीन, उच्चस्तरीय शिक्षण समेत सभी स्तर पर लागू करने के लिए वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करती रही है। नयी तालीम की दिशा में किये गए प्रयोगों ने गांधीजी के विचारों में जो ताकत और सम्भावना है उन्हें पूर्ण रूप से स्थापित किया है।

फिर भी, क्योंकि शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था विभाजित करने वाली और विशिष्ट वर्गीय है तथा स्तरीकरण (स्ट्रेटीफिकेशन) और परकीयकरण (एलिएनेशन) को प्रोत्साहन देनेवाली है, इसलिए केवल इतना पर्याप्त नहीं होगा कि सरकार को ये आवश्यक बिन्दु स्वीकार हैं। उसके साथ-साथ सरकार में नयी तालीम के दर्शन तथा कार्यक्रम के प्रति ऐसी प्रतिबद्धता भी होनी चाहिए, जो स्पष्ट और असन्दिग्ध हो।

नयी शिक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन तभी हो सकेगा, जबकि इन हानिकारक प्रवृत्तियों का प्रभावी ढंग से निराकरण हो, जिससे शेष ८० प्रतिशत लोग भी, जो प्रचलित शिक्षा व्यवस्था से अछूते हैं, उसका लाभ उठा सकें। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी शिक्षा व्यवस्था का विकास किया जाय, जो व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो और जिसमें इस बात पर विशेष बल हो कि इसके दायरे में अधिकारहीन ८० प्रतिशत लोगों को भी लाया है। इसके लिए जरूरी यह है कि शरीर, मस्तिष्क और आत्मा (हाथ, दिल और मस्तिष्क) का एक साथ विकास हो जिससे विद्यार्थी और शिक्षक

गये सामान्य भी सुगम होनी चाहिए और उसे स्वतन्त्र, स्वच्छ और शुद्ध होना चाहिए।

डा० चन्दर ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया और शिक्षा के सार्वजनीकरण, प्रौढ़ शिक्षा और औपचारिक शिक्षा की चर्चा की। उन्होंने शारीरिक और नैतिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। शिक्षा मंत्री ने कहा कि शिक्षा नीति निर्धारण ही पर्याप्त नहीं है। उसका कार्यान्वयन उतना ही महत्वपूर्ण है।

श्री के० अरुण चलए जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे हरीपुरा कांग्रेस मे बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव को स्वीकृति और उसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के गठन से नयी तालीमी समिति के अद्यतन कार्य पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि नयी तालीम मे क्रिया और ज्ञान का समन्वयन अद्वितीय है। नयी तालीम का क्रम स्कूल तक ही सिमित न रहकर जीवन पर्यन्त चलने वाला क्रम है। आपने प्रसन्नता व्यक्त किया कि १९७४ तथा १९७६ के नयी तालीम सम्मेलनों मे राष्ट्रीय शिक्षा के लिए जो मूल्य निर्धारित किए गए थे उनमें से अधिकांश वर्तमान प्रस्तावित राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे सम्मिलित कर लिए गए हैं। आपने इस तथ्य पर खेद व्यक्त किया कि कोठारी आयोग ने बुनियादी शिक्षा की सराहना तो की किन्तु प्रकारान्तर से बुनियादी शिक्षा को समाप्त कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि एकाध राज्यों के अतिरिक्त राज्य सरकारों ने बुनियादी शिक्षा को समाप्त कर पुनः पुस्तकीय पाठ्यक्रम अपना लिया है। वर्तमान प्रस्तावित राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे भी बुनियादी शिक्षा का कहीं उल्लेख नहीं है।

आपने श्रम की प्रतिष्ठा पर बल दिया और शारीरिक श्रम तथा बौद्धिक श्रम के पारिश्रमिक में भारी अन्तर को दूर करने पर बल दिया। आपने शिक्षा की दुर्दशा का उल्लेख करते हुए इस बात पर बल दिया कि राजकीय तथा गैर राजकीय सेवाओं मे चुनाव योग्यता के आधार पर किए जाय। चुनाव के लिए प्रत्येक सेवा के लिए अपनी जाँच प्रणाली होनी चाहिए। नौकरियों के लिए उपाधियों और प्रमाण-पत्रों की शर्तें समाप्त की जानी चाहिए, तभी शिक्षा में व्याप्त भ्रष्टाचार दूर हो सकेगा और सेवाओं के लिए अधिक योग्य व्यक्ति मिल सकेंगे।

प्रथम कार्य सत्र अपराह्न ३ बजे प्रारम्भ हुआ। प्रो० रामलाल पारिख सांसद ने प्रारम्भ मे राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उसके मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डाला।

२८ मई को प्रातः के सत्र मे प्रस्तावित शिक्षा नीति मे प्रारम्भिक शिक्षा विषय पर चर्चा हुई। इस विषय को प्रारम्भ मे डा० ध्याफ, मुख्य, शिक्षा अनुभाग, योजना आयोग ने किया। इसी सत्र मे राज्य नयी तालीम समितियों ने अपने राज्यों मे नयी तालीम के कार्य के सम्बन्ध मे अपनी आस्था प्रस्तुत किया। अपराह्न के सत्र का शुभारम्भ डा० शिव मित्र, निदेशक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद ने किया। इस सत्र में शिक्षकों की भूमिका चर्चा का विषय था।

सम्मेलन के सभी सत्र प्राणवान रहे। प्रतिनिधियों ने भारी संख्या मे चर्चा मे भाग लिया। अन्त मे प्रतिनिधियों ने अभिमत का प्रारूप तैयार करने के लिए एक उप समिति का चयन किया। उप समिति ने २९ मई की प्रात प्रारूप तैयार किया। यह प्रारूप उसी दिन दस बजे से प्रारम्भ होने वाले सत्र मे प्रस्तुत हुआ और सर्व मतों सहित स्वीकार किया गया।

प्रारम्भिक तथा माध्यमिक सभी अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं को, चाहे छात्राध्यापकों को बुनियादी स्कूलों में पढ़ना है या गैर-बुनियादी स्कूलों में नयी तालीम के अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में परिवर्तित किया जाना चाहिए। बुनियादी शिक्षा की पद्धति तथा जीवन शैली में प्रशिक्षित अध्यापक वर्तमान अध्यापकों से कहीं अच्छे सिद्ध होंगे।

केवल सामान्य नौकरियों के लिए नहीं, किन्तु सभी प्रकार की नौकरियों के लिए डिगरियों का नौकरी से सम्बन्ध विच्छेद होने से उच्च शिक्षा अधिक अर्थपूर्ण बन सकेगी।

उच्च तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के अधिकाधिक महंगे होते जाने के कारण जनता का अधिकारहीन वर्ग उससे वंचित रह रहा है। यह बात बड़ी चिंता की है और तत्काल ध्यान की मांग करती है।

शारीरिक और बौद्धिक कार्य से होने वाली आय में जो खाई है, उसको पाटने के लिए तथा बराबरी के समाज के ध्येय को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार की मजदूरी नीति समता की हो।

९ प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के पुनर्निर्माण में समर्पित स्वयंसेवी संस्थाओं का रोल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः उनको नए प्रयोग करने के लिए स्वायत्तता प्रदान करके मजबूत बनाना चाहिए और उनको इसके लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। यदि शिक्षा का संबंध आम लोगों से होना है, तो उसका संचालन नौकरशाही के हाथ में न रहकर मुख्यरूप से स्वयंसेवी संस्थाओं के हाथ में रहना चाहिए।

१० शिक्षा केवल राष्ट्रीय नीति तक सीमित रहकर वास्तव में एक राष्ट्रीय प्रयास बने, इसके लिए अन्य बातों के समान ही यह जरूरी है कि शिक्षा सम्बन्धी निर्णय और शिक्षा संस्थाएं दलगत राजनीति से मुक्त हों।

इस पर तथा सम्बन्धित अन्य बिन्दुओं पर ज्यादा विस्तृत चर्चा को प्रोत्साहन देने के लिए नयी तालीम समिति के अध्यक्ष, शिक्षा शास्त्रियों के एक वकिंग ग्रुप को मनोनीत कर सकते हैं।

विभिन्न प्रदेशों की नयी तालीम समितियों को इन बिन्दुओं पर जनमत बनाने के लिए विचार-गोष्ठियां आयोजित करनी चाहिए।

सम्मेलन में पारित राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षण कार्यक्रम सम्बन्धी प्रस्ताव

नयी तालीम कार्यकर्ताओं का यह सम्मेलन भारत सरकार के अपने उपक्रम से प्रौढ़ शिक्षण के राष्ट्रीय कार्यक्रम को प्रारम्भ करने, साथ ही इस कार्य के लिए एक वृहद धनराशि स्वीकार कर इसे राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम बनाने की सराहना करता है। पिछले दशकों के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अनुभवों ने गांधीजी के इस विचार से अपनी एकात्मता सिद्ध की है कि केवल साक्षरता शिक्षण का न तो प्रारंभ है और न अन्त। वह तो केवल आत्म निर्भरता और आजीवन शिक्षण को सिद्ध करने की प्रक्रिया का एक साधन, एक औजार मात्र है।

सम्मेलन यह महसूस करता है कि सामाजिक शिक्षण के उचित लक्ष्यों को प्राप्त करने की संभावनाओं को विकसित करने की दृष्टि से यह कार्यक्रम एक विशाल एवं व्यापक अवसर हमारे सामने प्रस्तुत करता है और नयी तालीम समिति से एक कार्यकारी दल 'टास्क फोर्स' की रचना करने के लिए अनुरोध करता है। कार्यकारी दल का यह प्रमुख कार्य रहेगा कि वह इस कार्यक्रम में लगी हुई या लगने वाली संस्थाओं से अपना तादात्म्य साधे और प्रौढ़ शिक्षण के कार्यक्रम को एक नयी दिशा देने में उनकी सहायता करे। प्रौढ़ शिक्षण की हमारी धारणा के अनुसार

ग्राम समाज ही पाठशाला बन जाता है। ग्रामीण समाज के मानवीय, सामाजिक एवं आर्थिक स्रोत ही शिक्षण का माध्यम बनेंगे। इसी को ग्राम स्वराज्य नयी तालीम की अवधारणा कहा गया है। यह परिकल्पना न केवल उन लड़के-लड़कियों को जो बीच में ही अध्ययन छोड़ चुके हैं तथा आर्थिक तथा सामाजिक सकटमय परिस्थिति के कारण पाठशाला में नहीं जा पाते हैं उन्हें अपने शैक्षणिक दायरे में लाएगी, बल्कि ऐसे प्रौढ़ों को भी, जो जीवन में शिक्षण का अवसर खो चुके हैं और जो शिक्षा के साधन मिलने पर अपनी कुशलता समृद्ध करने में सक्षम हैं, का भी समावेश करेगी। यह अवधारणा अपने में विनोबा की १ घंटे की पाठशाला की कल्पना तथा गांधी की समन्वित प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा शिक्षा में आत्मनिर्भरता की परिकल्पना के तत्व का समावेश करती है।

हम मानते हैं कि अब समय आ चुका है जबकि इस अवधारणा को विभिन्न प्रकार के प्रयोग तथा अनुभवों के आधार पर व्यवस्थित रूप दिया जाय। साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में ग्राम विकास की दृष्टि से कार्यरत साथियों को यह चुनौती स्वीकार करने का आवाहन किया जाय। नयी तालीम के लिए इस रूप में एक नया अध्याय खुल जाता है जिसके द्वारा नयी तालीम में निहित उन मूल्य और तकनीकों का प्रत्येक परिवार तथा समूचे गांव तक प्रसार किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रयोगों और अनुभवों के समुचित दस्तावेज 'रेकार्ड' आदि भविष्य की दृष्टि से सुरक्षित रखे जाय तथा उनका विश्लेषण भी किया जाय। उन प्रयोगों के आधार पर समुचित साहित्य का निर्माण भी किया जाय। इसके आधार पर समूचे राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को एक नया गुणात्मक मोड़ और गति मिले बिना नहीं रहेगी लोक शिक्षण की सीमा या परिधियों को भी वह प्रकट करेगी क्योंकि जो कुछ हासिल होगा वह शिक्षार्थियों के समृद्ध और प्रचुर अनुभवों पर आधारित होगा। समिति को प्रौढ़ शिक्षण कार्यक्रम के कार्यान्वयन का समय समय पर मूल्यांकन तथा समालोचना करनी चाहिए और इस प्रकार ग्राम स्वराज्य नयी तालीम की अपनी शिक्षा की तकनीकी प्रक्रिया को उत्तरोत्तर तथा सतत समृद्ध करते रहना चाहिए।

यह सम्मेलन अपने कार्यकर्ताओं से अपेक्षा करता है कि वे नये सदस्यों को भर्ती करते हुए प्रादेशिक नयी तालीम समितियों को मजबूत करें तथा प्रदेश स्तर पर इस प्रकार के सम्मेलन आयोजित करें। यह भी एक महत्वपूर्ण बात होगी कि नयी तालीम के कार्यकर्ता अपनी बात प्रभावी ढंग से प्रतिपादित करें और नयी तालीम की भावना और तत्व को ध्यान में रखते हुए शालेय शिक्षण को नवीन रूप देते हुए प्रयोग आदि करने की दृष्टि से स्वैच्छिक कार्य में इस अवसर का पूरा उपयोग करें।

समूचा शालेय शिक्षण जब नयी तालीम की शिक्षा पद्धति के रूप में परिवर्तित होगा उस समय विभिन्न विषय वस्तु तथा पद्धतियों पर आधारित इन प्रयोगों का महत्व हमारे लिये कीमती साबित होगा।

गांवों में सामाजिक पुनर्निर्माण के लिये उपयुक्त ऐसी मनःस्थिति एवं परिस्थिति निर्माण करने की दृष्टि से अपेक्षित चेतना का विकास करने हेतु नयी तालीम के कार्यकर्ताओं को अपने आपको निष्ठापूर्वक तथा समर्पण भाव से इस काम में लग जाने के लिए यह सम्मेलन अनुरोध करता है।

अध्यक्षीय भाषण

श्री वे० अरुणाचलम्

हम नयी तालीम समिति के वार्षिक सम्मेलन के लिए ऐसे क्षेत्र में एकत्र हुए हैं जिसने राष्ट्रीय शिक्षा के विचार को १९०६ में ही जन्म दिया है। श्री गोखले ने निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का एक विधेयक साम्राज्यीय विधान परिषद में १९११ में प्रस्तुत किया। गांधी जी उन दिनों टालस्टाय फार्म पर शिक्षा का प्रयोग कर रहे थे। वे श्री गोखले के अनिवार्य शिक्षा के विचार से सहमत नहीं हुए, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि ऐसी शिक्षा जो मनुष्य नहीं तैयार करती थी और जो हमें कर्तव्य पालन के योग्य नहीं बनाती थी, देश पर अनिवार्य रूप से लाद दी जाय।

गांधी जी प्रचलित शिक्षा पद्धति में विश्वास नहीं करते थे। अतएव उन्होंने निश्चय किया कि टालस्टाय फार्म पर अपने अनुभव और प्रयोग द्वारा ऐसी वास्तविक पद्धति विकसित करेंगे जो व्यक्ति के चरित्र और व्यक्तित्व का विकास करे। अपने वर्षों के प्रयोग से उन्होंने जो पद्धति विकसित की उसे ही 'बुनियादी शिक्षा' या 'नयी तालीम' कहते हैं। गांधी जी के अनुसार उनके द्वारा देश को दिए गए कार्यक्रमों में यह सर्वोत्तम है। नयी तालीम 'राष्ट्रीय शिक्षा' का प्रतिरूप है। नयी तालीम क्रिया और ज्ञान को समन्वित करती है। यह उसका अद्भुत (Unique) स्वरूप है। विद्यालय में क्रिया और ज्ञान अलग-अलग माने जाते हैं और स्कूल से तात्पर्य होता है वह स्थान जहाँ ज्ञान दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि स्कूल की पद्धति से कुछ वर्षों में सफल जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक समस्त ज्ञान दिया जाता है। गांधी जी ने प्रारम्भ में सात वर्ष की बुनियादी शिक्षा की बात कही। किन्तु १९४४ में आगा खां महल से मुक्त होने के बाद उन्होंने आजीवन शिक्षा—जन्म से मृत्यु तक की शिक्षा की बात कही। उन्होंने कहा कि सीखना, जीवन और उसकी विभिन्न प्रक्रियाओं के साथ सतत चलने वाला क्रम है। इस प्रक्रिया में कार्य से ज्ञान उत्पन्न होता है और मनुष्य के लिए कार्य के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना अमूर्त रूप में ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा सरल है। कार्य और ज्ञान के मिश्रण से अधिक अच्छे नागरिक तैयार होते हैं।

हरीपुरा कांग्रेस में फरवरी १९३८ के द्वितीय सप्ताह में श्री सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। उसके अनुसार 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा' का कार्यक्रम तैयार करने तथा उसको विकसित करने की दृष्टि से प्रयोग करने हेतु श्री जाकिर हुसैन तथा श्री आर्यनायकम् जी को अधिकृत किया गया। इस तरह हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का जन्म हुआ। यह संघ सर्व सेवा संघ के साथ, उस समय विलीन हो गया, जब लगभग सभी रचनात्मक संस्थाएँ ग्राम विकास का समन्वित कार्यक्रम चलाने हेतु संयुक्त हो गयीं। सर्व सेवा संघ ने एक स्वतंत्र संस्था "अखिल भारत नयी तालीम समिति" इस कार्य को आगे चलाने हेतु गठित किया। अपने जन्म (inception) के साथ ही यह विभिन्न प्रदेशीय संगठनों के साथ अपना कार्य कर रही है।

समिति द्वारा आयोजित राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलनों में १९७४ में सेवाग्राम में तथा १९७७ में नयी दिल्ली में अनेक प्रस्ताव देश में शिक्षा के क्रम को मजबूत करने हेतु पारित हुए। यह प्रस्ताव उपयुक्त संस्थाओं के सम्मुख कार्यान्वयन हेतु प्रस्तुत किए गए।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि इनमें अनेक संस्तुतियाँ राष्ट्रीय शिक्षा प्रस्ताव के प्रारूप में स्वीकार की गयी हैं और उसमें सम्मिलित की गयी हैं। यह सम्मेलन इस प्रारूप पर गहराई से विचार करेगा और अपनी सुविचारित राय प्रस्तुत करेगा।

गांधी जी की बुनियादी शिक्षा स्वतंत्र भारत में नीति के रूप में स्वीकार हुई थी और यह प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं तक चलती रही है। विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के अध्ययन हेतु अनेक आयोग गठित हुए थे। कोठारी आयोग ने, जो इस तरह का अन्तिम आयोग था, बुनियादी शिक्षा की सराहना की है। किन्तु उसने सुझाव दिया कि प्रारम्भिक स्तरों पर शिक्षा को एकाग्रता से

लिए इसे प्राइमरी शिक्षा कहा जाय। ऐसे विशेषज्ञों ने, जिनके मन में शारीरिक श्रम के प्रति निरुत्साह था, इस अवसर का लाभ उठाकर कार्य आधारित शिक्षा को पुस्तक आधारित शिक्षा में परिवर्तित कर दिया। यहां तक कि प्रदेशों में जहां बुनियादी शिक्षा ने स्थायित्व पा लिया था, इस अवसर का लाभ उठाकर पुस्तकीय शिक्षा को पुन अपना लिया। केवल एक या दो राज्यों ने गांधी जी की पद्धति और मूल्यों को बनाए रखा है। कुछ स्वय सेवी संस्थाएं भी हैं जो बुनियादी शिक्षा की पद्धति और तकनीक का प्रयोग कर रही हैं। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि उन्हें भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है राष्ट्रीय शिक्षा नीति का घोषणा पत्र जो १९६८ में प्रस्तुत हुआ था, अपने प्रयास के बावजूद प्रचलित पद्धति से आगे नहीं जा सका।

सौभाग्य से वर्तमान शासन ने, जो गांधी जी के आदर्शों के कार्यान्वयन हेतु प्रतिबद्ध है, नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप प्रस्तुत किया है। यह गांधी जी के सिद्धान्तों के अधिक निकट है। किन्तु इस प्रारूप में भी बुनियादी शिक्षा का उल्लेख न तो प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा पर है, न माध्यमिक और उच्च स्तर पर ही। इसमें स्वयंसेवी संस्थाओं का उल्लेख अत्यन्त सामान्य रूप से किया है। शिक्षा तथा शिक्षा में नवीन प्रयोगों को एकरूपता के नाम पर प्रोत्साहन नहीं मिलता। सबको समान ढांचा के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली, जिसका विगत से अभीभूत सम्बन्ध है नवीन विचार धारा में बदलने के लिए संघर्ष कर रही है। इसने जो भी प्रयास किया है, वह सफल नहीं हो पाया है और न ७० प्रतिशत आबादी को संतुष्ट ही कर पाया है। शिक्षा शास्त्री सारी भाषा में स्कूली शिक्षा अधूरी छोड़ देने वालो (drop out and wastage) की समस्या से परेशान हैं। फिर भी वे ऐसी शिक्षा प्रणाली नहीं विकसित कर पा रहे हैं, जो विद्यालयीय शिक्षा प्रणाली से शिक्षा ग्रहण करने वाले भारी संख्या के लोगों को शिक्षित कर सके। वर्तमान प्रस्तावित शिक्षा नीति ने विद्यालयीय प्रणाली को अपूर्ण छोड़कर पिछले लोगों के लिए कार्यपरक शिक्षा के सम्बन्ध में सोचा है। विद्यालयीय प्रणाली को विभिन्न स्तर के लोगों के लिए उपयोगी बनाने की चेष्टा की अपेक्षा लोगों की आवश्यकतानुसार विद्यालयीय प्रणाली से भिन्न शिक्षा पद्धति विकसित करना अधिक उपयोगी है। इस हेतु पर्याप्त धन की व्यवस्था करनी होगी। ग्रामीण बच्चों को, जब वे कहीं काम कर रहे हों अथवा खेल रहे हों, शिक्षित किया जाना चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षा नीति, जो न केवल साक्षर बनाने हेतु अपितु स्वशिक्षा की आदत विकसित करने हेतु सामाजिक जागरूकता लाने को है, गांधी जी के विचारों के अधिक निकट है।

दुर्भाग्य से आज शिक्षा को रोजगार से जोड़ दिया गया है। शिक्षा का उद्देश्य चरित्र का विकास न होकर, नौकरी हेतु प्रमाण पत्र और उपाधियां प्राप्त करना हो गया है। यह प्रवृत्ति बदलनी चाहिए। शासकीय सेवाओं में चुनाव के लिए जांच करने का अपना पाठ्यक्रम विकसित करना चाहिए, जिसमें उपाधियों का आग्रह न हो। गैरसरकारी सेवाओं में भी यही नीति होनी चाहिए। नौकरियों में उपाधियों की पाबन्दी हटा देने से विश्वविद्यालयों, कालेजों में प्रवेश की भीड़ कम होगी, परीक्षाओं के भ्रष्ट तरीके समाप्त होंगे और सेवाओं में अधिक योग्य अभ्यर्थी मिल सकेंगे।

इस देश में प्रत्येक व्यक्ति श्रम की प्रतिष्ठा की बात करता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि श्रम की प्रतिष्ठा कोई नहीं करता है। यहां श्रमिक को, जीभ और कलम चलाने वालों से कम मजदूरी मिलती है। शिक्षा नीति के साथ ही मजदूरी और आय की नीति भी होनी चाहिए। जब तक प्रमाण पत्रों तथा उपाधियों के द्वारा अधिक वेतन प्राप्त होता रहेगा, तब तक चरित्र और व्यक्तित्व के विकास पर बल देना सम्भव न होगा। लोग प्रमाण-पत्रों और उपाधियों के पीछे ही भागते रहेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि शिक्षा नीति को औद्योगिक, कृषि नीति आदि के साथ जोड़ा जाय, अन्यथा प्रशंसनीय शिक्षा नीति कागज तक ही सीमित रह जायगी।

卐

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का प्रारूप [१९७९]

शिक्षा एवं समाज मन्त्रालय भारत सरकार

प्रस्तावना :—

१–१ आदर्श शिक्षा व्यवस्था वह है जो लोगों को उनको शारीरिक और मानसिक क्षमताओं का ज्ञान कराए और उन्हें पूर्णरूप से विकसित करने के योग्य बनाए, और जो उनमें सामाजिक और मानवीय मूल्यों की चेतना को विकसित करने में सहायता करे जिससे वे दृढ़ चरित्र का विकास कर सकें और समाज के जिम्मेदार सदस्यों के रूप में बेहतर जिन्दगी बसर कर सकें और अपने दायित्वों का निर्वाह कर सकें। मनुष्य में व्यक्तिगत रूप से परिवर्तन लाकर ही समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है।

उद्देश्य :—

१–२ शिक्षा का उद्देश्य सत्यनिष्ठ जीवनपर आधारित व्यक्ति का ऐसा विकास होना चाहिए जो समाज के कल्याण और प्रगति तथा स्वतन्त्रता, समता एवं सामाजिक न्याय के आकांक्षित आदर्शों की प्राप्ति में बाधक न हो। इस दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य लोकतान्त्रिक धर्मनिरपेक्षवादी तथा समाजवादी मान्यताओं को सशक्त बनाना है।

शिक्षा को राष्ट्रीय एकता में अपनी संस्कृति के प्रति गर्व और देश के भविष्य में विश्वास को बढ़ाने में सहायक होना चाहिए। जीवन में वैज्ञानिक तथा नैतिक मूल्यों का समावेश करने तथा ज्ञान की ओर अग्रसर होने का प्रयास होना चाहिए।

विषय वस्तु :—

१–३ शिक्षा की विषय वस्तु को पूर्ण रूप से बदलने की आवश्यकता है जिससे शिक्षा की प्रक्रिया, लोगों की क्षमता और अनुभूति, आवश्यकताओं के सन्दर्भ में कार्योपयोगी हो सके। सिखाने की अपेक्षा सीखने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए, क्योंकि सीखने वाले की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षा में गान्धी जी के विचार और प्रयोग उनको सभी प्रकार के ज्ञानार्जन में अन्त दर्शन की विधि, उनका हाथ और हृदय के सहसम्बन्ध पर बल जिससे बौद्धिक और हाथ के काम के सहयोग की प्राप्ति होती है तथा उनकी शिक्षा की सामाजिक जिम्मेदारियों पर बल अब भी महत्व रखता है। इस दृष्टि से वे अत्यन्त आवश्यक तथा उपयोगी हैं। समाज सेवा तथा रचनात्मक एवं समाजोपयोगी कार्यों में भाग लेना सभी स्तरों पर शिक्षा का अनिवार्य अंग होना चाहिए।

आत्म निर्भरता और श्रम के प्रति सम्मान का पोषण हो सके, सभी विषयों के परस्पर सम्बद्ध पाठ्यक्रमीय और पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों के माध्यम से नैतिक शिक्षा पाठ्य-विषय वस्तु का अंग बननी चाहिए और उसकी जिम्मेदारी सभी शिक्षकों और पूरी संस्था पर होनी चाहिए। पाठ्य विषय वस्तु में महान राष्ट्रीय नेताओं की सीख और जीवनवृत्त तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास का भी समावेश होना चाहिए।

व्यवस्था —

१–४ वर्तमान भारतीय वास्तविकताओं और आवश्यकताओं के सन्दर्भ में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का पुनर्गठन होना चाहिए, राष्ट्रीय सहमति के आधार पर निर्धारित स्वतन्त्रता, समता और न्याय की बुनियादी संकल्पनाओं को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा व्यवस्था लचीली और विभिन्न परिस्थितियों के प्रति उत्तरशील होनी चाहिए, समता के आदर्श की उपेक्षा न करते हुए, उत्तमता प्राप्त करने का दृढ़ प्रयास होना चाहिए. शिक्षा व्यवस्था में इस बात का प्रयास होना चाहिए कि जनता और शिक्षित वर्ग के बीच की खाई कम हो और उसमें उच्च भावना, हीनभावना और दुराव दूर होना चाहिए। पाठ्यक्रम का चयन विषय वस्तु तथा अवधि में लचीलापन होने से विद्यार्थी अपने समय और अध्ययन की विधा का चुनाव स्वयं कर सकता है और अपनी गति से प्रगति कर सकता है। शिक्षा संस्थाएं तथा समाज एक दूसरे की सहायता करें तथा अभिभावक परस्पर सहयोग से बच्चों को बेहतर ज्ञान और कौशल प्रदान करें और इस प्रकार उनके बेहतर भविष्य की व्यवस्था करें। स्थानीय क्षेत्र के

विकास सम्बन्धी क्रियाकलापों से स्कूल का घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।

सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा

सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा :—

२-१ जैसा कि संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों में अंकित है, १४ वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने को सर्वोच्च वरीयता देनी चाहिए। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा सामान्य होनी चाहिए, न कि विशेषीकृत और विद्यार्थियों को भाषा तथा अन्य उपयोगी विषयों पर विश्वासयुक्त अधिकार प्राप्त होना चाहिए। साथ ही उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश होना चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य और विषय वस्तु —

२-२ प्राथमिक शिक्षा में व्यक्तित्व और चरित्र के विकास पर बल होना चाहिए, प्राथमिक शिक्षा की विषय वस्तु का पुनर्गठन न केवल उन परम्पराओं और मान्यताओं की दृष्टि से, जो देश की समन्वित संस्कृति का निर्माण करती हैं, प्रत्युत वर्तमान वास्तविकताओं और सबके भविष्य की सङ्कल्पना की दृष्टि से भी आवश्यक है। इस स्तर पर शिक्षा की विषय वस्तु में भाषा, गणित, इतिहास, साधारण प्रारम्भिक विज्ञान, जो पर्यावरण और सांस्कृतिक संस्थाओं से विशेष रूप से सम्बद्ध हों, तथा शारीरिक शिक्षा का समावेश होना चाहिए। पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से सोद्देश्य हाथ के श्रम के माध्यम से समाजोपयोगी उत्पादक कार्यों का समावेश होना चाहिए जिससे समाज को आवश्यक सामान और सेवाएँ उपलब्ध हो सकें। यथासम्भव कृषि और उद्यान सम्बन्धी कार्यों की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इस प्रकार शिक्षा कार्योपयोगी होगी और लोगों के जीवन तथा पर्यावरण से भी सम्बद्ध होगी। शिक्षा से वैज्ञानिक मनोवृत्ति को बढ़ावा मिलना चाहिए जिसके फलस्वरूप आत्मालोचन की क्षमता एवं उदार मानवीय दृष्टिकोण प्राप्त होता है। शिक्षा में लचीलापन और परिवर्तन की गुंजाइश से अध्यापकों को बच्चों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायता मिलेगी।

२-३ प्रारम्भिक शिक्षा के प्रारम्भिक वर्षों में ज्ञानार्जन प्रक्रिया के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है। औपचारिक शिक्षण की अपेक्षा सर्जनात्मक आनन्दप्रद प्रक्रियाओं पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

औपचारिक शिक्षण की मात्रा न्यूनतम होनी चाहिए और तीन घंटे प्रति दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए, किसी अपरिवर्तनशील बंधे हुए शैक्षिक वर्ष को निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार स्कूल का सत्र निश्चित होना चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा के लिए सुविधाएँ

२-४ जहाँ यह आवश्यक है कि ६-१४ आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए प्राथमिक विद्यालयों में औपचारिक शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार किया जाय, वहीं ड्राप आउट तथा ऐसे ६-१४ आयुवर्ग से अधिक आयु वाले बच्चों के लिए जिन्हें किसी प्रकार की शिक्षा नहीं मिली है, अनौपचारिक शिक्षा की योजनाएँ बनाना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उद्देश्य यह है कि आगामी १० वर्षों में ऐसे उपाय किए जाने चाहिए जिससे ६-१४ आयु वर्ग के सभी बच्चे शिक्षा की परिधि में आ जाय। इससे बच्चों को बिना कोर्स पूरा किए हुए स्कूल छोड़ने से रोका जा सकेगा। अपव्यय की समस्या का विस्तारपूर्वक अध्ययन होना चाहिए और उसे दूर करने का उपाय करना चाहिए।

२-५ पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जो विभिन्न प्रकार के सीखने वालों और सीखने की परिस्थितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें और स्थानीय स्थितियों के आधार पर निर्मित हो।

शैक्षिक उपलब्धियों और आगामी कौशल तथा ज्ञान की प्राप्ति की तुलना की दृष्टि से बुनियादी विषय वस्तु का एक मूल आधार होना चाहिए। यह मूल आधार न्यूनतम होना चाहिए, ज्ञानार्जन की व्यवस्था औपचारिक अथवा अनौपचारिक प्रबन्ध के माध्यम से संगठित होनी चाहिए, जो आंशिक रूप से संस्थागत अथवा व्यक्तिगत हो सकती है। संस्थागत प्रबन्ध ऐसा परिवर्तनशील नहीं होना

चाहिए जिससे ऐसे ज्ञानार्जन करने वाले, जो आंशिक रूप से ही इस प्रबन्ध से लाभ उठा सकते हैं, वंचित रह जाय।

प्रोत्साहन :—

२-६ गरीब विद्यार्थियों के लिए ऐसे प्रोत्साहन की जैसे मध्याह्न भोजन, निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें, स्टेशनरी और वस्त्र व्यवस्था की जाय। बालिकाओं तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के बच्चों के लिए शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

विद्यालय और समाज :—

२-७ पास पड़ोस के विकास के महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में विद्यालय को कार्य करना चाहिए। इसके बदले में समाज को शैक्षिक प्रयास में पूर्णत: सम्मिलित होना चाहिए। विद्यालय के शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए समाज में उपलब्ध कारीगरों से लाभ उठाना चाहिए।

संयुक्त स्कूल व्यवस्था :—(COMMON SCHOOL)

२-८ प्राथमिक स्तर से ही संयुक्त स्कूल व्यवस्था के लिए बचाव किए जाने चाहिए। प्रयास यह होना चाहिए कि अच्छे प्रकार की शिक्षा उपलब्ध हो सके। इस बात को निश्चित कर लेना चाहिए कि सभी स्कूलों में शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो और शुल्क तथा प्रवेश के नियम एकरूप हों।

पासपड़ोस के स्कूल की योजना :—

२-९ संयुक्त स्कूल व्यवस्था की मुख्य विशेषता पास-पड़ोस स्कूल की योजना होगी जिसमें एक क्षेत्र के स्कूलों को पासपड़ोस के सभी बच्चों को प्रवेश देना होगा, इससे सामूहिक हितों और सामाजिक समन्वय का संवर्द्धन होगा।

प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता :—

३-१ ऐसा अनुमान है कि अपने देश की आबादी के १० करोड़ प्रौढ़ निरक्षर हैं। ये अधिकतर निर्धनतम तथा सर्वाधिक उपेक्षित वर्ग के हैं। यदि इन्हें कुछ शिक्षा मिल जाय तो राष्ट्रीय कल्याण में उनका योगदान अपेक्षाकृत अधिक हो सकता है। उनकी यह दशा है कि वे उन लाभों से वंचित रह जाते हैं जो उन्हें विभिन्न विकास योजनाओं में उपलब्ध हैं और वे शोषण और सामाजिक दुर्बलताओं के शिकार बने रहते हैं। राष्ट्र का यह पुनीत कर्तव्य है कि इन्हें शिक्षा प्रदान करे। राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा योजना कार्यक्रम, जो चालू किया गया है, तात्कालिकता तथा अप्रतिहतशक्ति से क्रियान्वित करना चाहिए। इस कार्यक्रम का तात्कालिक लक्ष्य ५ वर्ष की अवधि में १० करोड़ लोगों को शिक्षित करना है, जिससे अपने देश में सार्वभौम साक्षरता कम से कम समय में वास्तविकता को प्राप्त कर सके।

सकल्पना :—

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का अर्थ केवल साक्षरता और गणित सिखाना नहीं है, प्रत्युत इसका अर्थ कार्योपयोगी विकास तथा सामाजिक चेतना है, जिससे लोगों को स्वयं सीखने अथवा ज्ञान प्राप्त करने की आदत पड़ जाय।

संयोजित न्यूनतम-आवश्यकता-कार्यक्रम :—

३-२ प्रौढ़ शिक्षा, संयोजित न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का अनिवार्य अंग है जिसका उद्देश्य (अ) गरीबों तक पहुंचना है (ब) ऐसे सभी कार्यों का समन्वय विकास में रत सभी विभागों में करना है और (स) उन्हें क्षेत्रीय नियोजन से सम्बद्ध करना है। संयोजित न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम जिसमें प्रौढ़ शिक्षा भी सम्मिलित है, केवल एक मन्त्रालय, विभाग अथवा अभिकरण का उत्तरदायित्व नहीं हो सकता।

अभिकरण :—

३-३ इतना बड़ा कार्यक्रम बड़ी लागत की अपेक्षा करता है अतएव इसके क्रियान्वयन पग पग पर सभी भाँति योजना होगी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात, जो ध्यान में रखनी है वह यह है कि कार्यक्रम समावेशपूर्ण हो। इस कार्यक्रम के लिए अभिकरणों द्वारा साधनों को इस प्रकार निश्चित

करना है कि स्थानीय समाज तथा सरकार के बीच अधिकतम आदान-प्रदान रहे।

३-४ कार्यक्रम विविध उपकरणों के माध्यम से चलाया जायगा, जिसमें, जहाँ वे सुलभ हो, ऐच्छिक अभिकरणों की प्रधानता रहेगी। प्रारम्भ से ही अध्यापकों विद्यार्थियों, व्यापार, उद्योग, नवयुवकों तथा महिलाओं के संगठनों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, विकास-विभागों, नगर पालिकाओं, पंचायतों तथा अन्य स्थानीय निकायों का सहयोग सुनिश्चित कर लेना होगा।

ग्रामीण क्षेत्रों पर बल :—

३-५ प्रौढ़ निरक्षरता की वास्तविक समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में है। अतएव ग्रामीण समाज तथा ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापकों को इस कार्यक्रम के चलाने में सम्मिलित करने के लिए विशेष प्रयास करना होगा। महिला मंडलों और युवा संगठनों को सक्रिय बनाने के लिए भी विशेष प्रयास करना होगा। समाज की ओर से भी कुछ लागत का लगाना वांछनीय होगा जिससे यह कार्यक्रम निरन्तर चल सके।

महिला अनुदेशक :—

३-६ कार्यक्रम का उद्देश्य केवल निरक्षरता दूर करना नहीं है, प्रत्युत दूसरी समस्याओं के प्रति चेतना का निर्माण करना है। अतः यह वांछनीय होगा कि ऐसे कार्यक्रम जैसे परिवार नियोजन, स्वास्थ्य और भोजन शिशुओं तथा माताओं की देखभाल आदि विषय भी इस कार्यक्रम में निहित होना चाहिए। इसके लिए यह वांछनीय होगा कि कार्यक्रम के लिए उपयुक्त अनुदेशक यथासम्भव महिलाएं हों।

कौशल का विकास :—

३-७ निरक्षरता निवारण और चेतना निर्माण के अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा में विकास सम्बन्धी विषय वस्तु भी देनी चाहिए, समाज के जिन वर्गों में काम किया जाय, उनके कौशल के सुधार का स्तर भी सामने रखना चाहिए। इसके लिए व्यावसायिक शिक्षा की संस्थाओं की सहायता लेनी चाहिए।

उत्तर साक्षरता कार्यक्रम :—

३-८ प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में निरन्तर शिक्षा की व्यवस्था भी होनी चाहिए, जिससे उन प्रौढ़ों की, जिन्होंने कार्यक्रम से लाभ उठाया है, साक्षरता में रुचि बनी रहे और वे अपने आप अपने ज्ञान और कौशल का विकास कर सकें। इन उपायों में कम दाम की पुस्तकें और साहित्य ग्राम-पुस्तकालय, मासमिडिया के द्वारा प्रसारित सामग्री भी सम्मिलित होगी। ग्रामीण-पुस्तकालय-व्यवस्था का विकास, निरन्तर शिक्षा के कार्यक्रम के लिए आवश्यक है।

४ माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा का गुणात्मक सुधार :—

४-१ यद्यपि सर्वोच्च वरीयता प्राथमिक शिक्षा के विस्तार और प्रौढ़ शिक्षा के विकास को दी जाती है, तथापि माध्यमिक शिक्षा को सुधारना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जिससे विद्यालय छोडने पर विद्यार्थी आत्मनिर्भरता और विश्वास के साथ जीवन में प्रवेश कर सकें और सामान्य ज्ञान तथा सम्बन्धित कौशल से युक्त होकर काम में लग सकें।

शैक्षिक बोझ का विविधीकरण तथा कम करना :—

४-२ माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम बहुविध होना चाहिए और अतिरिक्त शैक्षिक भार को हटाकर इसका बोझ कम कर देना चाहिए, जिससे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायता मिल सके। पाठ्यक्रमीय और पाठ्येत्तर कार्यक्रम, शारीरिक शिक्षा, खेल, समाजोपयोगी उत्पादक कार्यक्रम और समाज सेवा ऐसे होने चाहिए जिसमें विद्यार्थी जीवन में गान्धीवादी आदर्शों से युक्त लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी समाज के लिए ज्ञान और कौशल, अभिवृत्तियां और मान्यताएं अर्जित कर सकें।

४-३ शैक्षिक कार्यक्रम के विविधीकरण में जहाँ ग्रामीण औद्योगीकरण, लघु सिंचाई, ग्रामीण स्वास्थ्य, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण व्यावसायिक व्यवस्था और अन्य ग्रामीण विकासों पर बल हो। ग्रामीण क्षेत्रों

को विविधीकृत विकेन्द्रित अर्थ - व्यवस्था का भी ध्यान रखना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा की भूमिका :—

४-४ पूरी शिक्षा व्यवस्था को एक शृंखला समझना चाहिए। इस शृंखला में केन्द्रीय कड़ी माध्यमिक शिक्षा है, क्योंकि इसी के माध्यम से पिछली और आगामी कड़ियाँ जोड़ी जाती है। प्राथमिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे माध्यमिक शिक्षा की बुनियादें सुदृढ़ हो और माध्यमिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी पर्याप्त ज्ञान और कौशल से युक्त होकर आर्थिक जीवन के किसी भी क्षेत्र मे सीधे भाग ले सके। माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप व्यापक होना चाहिए। एक ओर वह उन लोगो के लिए जो आगे शिक्षा नहीं प्राप्त करना चाहते या नहीं कर सकते, अन्तिम सीढ़ी हो और दूसरी ओर उन लोगो के लिए जिनके पास प्रतिभा है और उच्च शिक्षा के लिए अभिरुचि है, माध्यमिक शिक्षा उच्च स्तरीय अध्ययन के लिए सुदृढ़ बुनियाद तैयार करें। इसके अतिरिक्त व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि विद्यार्थी जब उनकी इच्छा हो एक धारा से दूसरी धारा मे जा सकें।

व्यावसायिक शिक्षा :—

४-५ कुछ भी हो, माध्यमिक शिक्षा की दोनो धाराओं के पाठ्यक्रम मे सुदृढ़ व्यावसायिक अंश होना चाहिए और उसमें इतनी विविधता होनी चाहिए कि वह उपर्युक्त दोनो धाराओं की आवश्यकता पूरी कर सके। स्पष्टतः अन्तिम सीढ़ी के रूप मे माध्यमिक शिक्षा मे दूसरी धारा की अपेक्षा व्यावसायीकरण का अंश कहीं अधिक होना होगा। माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की बुनियाद समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के रूप मे और पहले से ही डालनी होगी जिसमे व्यावहारिक कार्य पर बल प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग होगा।

४-६ व्यावहारिक शिक्षा म विविध ज्ञान और कौशल तथा सम्बद्ध विज्ञान, कृषि तथा खाद्य प्रोसेसिंग कार्यों के साथ साथ तकनीकों के प्रशिक्षण भी सम्मिलित होंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रम में उपलब्ध सुविधाओं से व्यवस्थित सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। उद्देश्य यह होना चाहिए कि विद्यार्थी रोजगार के योग्य बन सकें या उनमें स्वयं काम में लगने की क्षमता उत्पन्न हो सके।

४-७ व्यावसायीकरण का कार्यक्रम प्रारम्भ करने के पूर्व सर्वेक्षण करना होगा जिससे रोजगार के उपलब्ध और स्थानीय अवसरों का मोटे तौर से गुणात्मक अनुमान लगाया जा सके। ऐसे सर्वेक्षण और अनुमान समय-समय पर किए जाने चाहिए, जिससे व्यावसायीकरण के कार्यक्रम का पुनरीक्षण हो सके और समय समय पर उन्हें परिवर्तित या संशोधित किया जा सके।

४-८ ऐसे व्यावसायिक कोर्सों और अवसरों की व्यवस्था करने का प्रयास होना चाहिए जिससे स्वरूप और समनलीय प्रगति रह सके, ऐसा अनौपचारिक विधियो के आधार पर उपयुक्त डिप्लोमा तथा सर्टीफिकेट कोर्सों की व्यवस्था करके किया जा सकता है। व्यावसायिक कोर्सों से निकले हुए लोगों को अन्य व्यवसायों की ओर अग्रसर होने का अवसर मिलना चाहिए।

४-१० जो व्यावसायीकरण स्वरोजगार की दृष्टि से किया जाय उसमें क्रेडिट बाजार आदि की पूरक लागत का भी ध्यान रखा जाय, साथ ही उद्देश्य यह होना चाहिए कि जिला औद्योगिक केन्द्रों और अन्य संस्थाओं से जिनकी देश में स्थापना हो रही है, प्रभावी सम्बन्ध की भावनाओं का विस्तार हो सके। उस विद्यार्थी को, जो व्यावसायिक कोर्स पूरा करता है, उचित मान्यता मिलनी चाहिए। व्यावसायीकरण को आगे बढ़ाने के लिये अपरेंटिस योजनाएं इन कोर्सों में भी लागू की जानी चाहिए।

समाज का सहयोग :—

४-११ विद्यालय और समाज दोनो को एक साथ जोड़ना होगा। कार्यक्रमों और कोर्सों को सुनिश्चित करने में और काम धन्धों में सुविधाओं की व्यवस्था करने में समाज का सहयोग सफलता मूलक होगा। इसके अतिरिक्त इससे स्वरोजगार के लिए बहुत से अवसर भी निकलेंगे।

विश्वविद्यालय, की व्यवस्था को समाज के विकास और विशेष रूप से पूरी शिक्षा व्यवस्था के विकास की बढ़ती हुई जिम्मेदारियां लेनी चाहिए। विश्वविद्यालयों को कालेजो से सहयोग करना चाहिए और इस प्रकार कालेजो को पास पड़ोस के माध्यमिक और प्राथमिक विद्यालयों से सहयोग करना चाहिए जिससे प्रत्येक समय पर शिक्षा के स्तर में सुधार आ सके। विश्वविद्यालयों, कालेजों तथा समाज के पारस्परिक सेवार्थ सहायता हेतु घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। विश्वविद्यालयों के विस्तार ,कार्यक्रमो को वही स्थान मिलना चाहिए जो शिक्षण और शोध को मिलता है। अवकाश के दिन जहा आवश्यक हो कम कर दिए जाय और उनकी ऐसी पुनर्व्यवस्था की जाय जिसे विद्यार्थी तथा अध्यापक ग्रामीण समाज के विकास के कार्यक्रमो में हाथ बटा सकें।

उत्तमता के केन्द्र—

५६ उत्तमता के केन्द्र जिनका स्तर विश्व के सर्वोत्तम केन्द्रो से कम न हो, अत्यन्त आवश्यक है। इन्हे विकसित करने के लिए हर प्रयास किया जायगा।

६१ शिक्षा का ढाचा—

शिक्षा के ढांचेमे मोटे ओरसे तीन स्तर होंगे प्राथमिक माध्यमिक तथा स्नातक। स्कूली शिक्षा १२ वर्ष की होगी जिसमे प्राथमिक और माध्यमिक सम्मिलित होंगे। माध्यमिक शिक्षा के अन्त में एक सार्वजनिक परीक्षा होगी। स्नातक स्तर की शिक्षा ३ वर्ष की अवधि की होनी चाहिए। विश्वविद्यालय चाहे, तो वहा दो वर्ष का सामान्य कोर्स और ३ वर्ष का आनर्स कोर्स रख सकते हैं।

७. तकनीकी शिक्षा :—

जनशक्ति की आवश्यकता और तकनीकी शिक्षा—

७१ तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र मे एक अच्छी राष्ट्रीय जन-शक्ति सूचना व्यवस्था की आवश्यकता है, जिसका विकास आगामी ५ वर्ष में हो जाना चाहिए। सामाजिक आर्थिक विकास की परिवर्तित प्राथमिकताओं को दृष्टि मे रखते हुए सभी स्तरो पर एक अधिक सन्तुलित तकनीकी शिक्षा व्यवस्था सगठित की जानी चाहिए। तकनीकी शिक्षा का कार्यक्रम अधिक दक्ष और सार्थक आधार पर निर्भर होना चाहिए।

कोर्सों का पुनर्गठन

७२ तकनीकी शिक्षा की सस्थाएँ विशेषकर पालीटेकनिक ऐसी केन्द्र बिन्दु होंगी जहां ग्रामीण क्षेत्रो की समस्याओं का अध्ययन किया जायगा और उनका समाधान निकाला जायगा। कार्यक्रम ऐसे बनेगें जिसमे उद्योग के साथ सार्थक सम्बन्ध और सहयोग अनिवार्य रूप मे होगा। प्रयोगशालाए और कार्यशालाएं सुदृढ की जानी चाहिए और प्रशिक्षण मे गुणात्मक सुधार होना चाहिए। तकनीकी शिक्षा कोर्सों का उद्देश्य काम धन्धा प्रारम्भ करने का कौशल प्रदान करना भी होना चाहिए। प्रबंध, विज्ञान शिक्षण के कोर्स इस प्रकार से पुनर्गठित किए जाने चाहिए, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों को छोटे और मध्यम उद्योग धन्धों को तथा ऐसी विभागीय आवश्यकताओं के लिए जैसे यातायात, विद्युत, स्वास्थ्य, कृषि, सहयोग और ग्रामीण विकास, प्रबन्धात्मक जन शक्ति मिल सके, तकनीकी शिक्षा सस्थाओ मे मानवीय और सामाजिक अध्ययन के उपयुक्त कोर्स रखे जाने चाहिए जिससे अच्छे मूल्यो का विकास हो सके।

७३ देश मे सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रों मे एक अत्यधिक विविधतापूर्ण औद्योगिक ढाचे का विकास हो चुका है, इसलिए उद्योगों को तकनीकी सन्तुलित व्यवस्था कायम रखने मे और शोध तथा विकास के आधार का निर्माण करने के लिए तकनीकी जन-शक्ति का उचित उपयोग करने मे अपनी अधिकाधिक भूमिका अदा करनी चाहिए।

अनुसन्धान

७४ अनुसधान मे औद्योगिक और ग्रामीण विकास पर बल होगा। सस्थाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उच्च स्तरीय शोध उन क्षेत्रों में करेंगी जो राष्ट्र के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जैसे—ऊर्जा के साधन और ग्रामीण विकास के लिए तकनीकी।

८—कृषि शिक्षा

अध्ययन के कोर्स

८.१ सभी प्रदेश की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार होना चाहिए और कृषि के विविध कार्यों के माध्यम से अपने आप काम में लगने पर बल देना चाहिए। कृषि विश्वविद्यालयों को जहाँ तक वे हों, कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए प्रदेश-व्यापी जिम्मेदारी लेना चाहिए। प्रत्येक कृषि विश्वविद्यालय में एक सुदृढ़ अनुसंधान केन्द्र, प्रत्येक कृषि सम्बन्धी जलवायु क्षेत्र में रखना चाहिए, जिससे स्थल विशेष के लिए अनुसंधान किया जा सके। कृषि विश्वविद्यालयों को कृषि विकास से सम्बद्ध उच्च स्तरीय अध्ययन और बुनियादी अनुसंधान करना चाहिए। दूसरे विश्वविद्यालयों के कृषि विभागों और संकायों को, जिन के पास आवश्यक क्षमता है, सहायता इस दृष्टि से दी जानी चाहिए, जिससे वे कृषि शिक्षा के पूरक कार्यक्रमों का विकास कर सकें।

सम्बन्धन

८.२ कृषि विश्वविद्यालयों और विकास विभागों के बीच में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए, जिससे नयी तालीम गावों को स्थानान्तरित किया जा सके। कृषि विश्वविद्यालयों को अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए, जिसमें पत्राचार कोर्स भी सम्मिलित हों। इससे ग्रामीण समाज की कार्योपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरन्तर शिक्षा दी जा सके।

कृषि विज्ञान केन्द्र

८.३ कृषि विश्वविद्यालयों तथा उपयुक्त स्वयं सेवी अभिकरणों को कृषि-विज्ञान केन्द्रों का संगठन और संचालन करना चाहिए जिससे ग्रामीण युवकों को समबद्ध कौशलों में प्रशिक्षित किया जा सके और वे प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों में भाग ले सकें।

९ चिकित्सीय शिक्षा

९.१ चिकित्सीय शिक्षा के क्षेत्र में जो शिक्षा दी जाती है विशेष रूप से स्नातक स्तर पर वह अस्पताल की आवश्यकताओं पर आधारित होती है और उसका बहुत कम सम्बन्ध देश की वास्तविक समग्र स्वास्थ्य रक्षा की आवश्यकताओं से रहता है। फलस्वरूप जहाँ आधुनिक चिकित्सीय पद्धति में विश्व के विकासों के साथ अपनी गति अधिकतर ठीक रखी है, वहाँ हमारे मेडिकल कालेजों से निकले हुए स्नातक समाज की आवश्यकताओं को पर्याप्त रूप से समझने में और उस स्तर की समस्याओं और गुत्थियों को सुलझाने में असमर्थ रहते हैं। अतः हमारी चिकित्सीय शिक्षा को स्वास्थ्य जन शक्ति की आवश्यकताओं के वास्तविक मूल्यांकन के आधार पर पुनर्गठित होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यवस्था को इस प्रकार उन्मुख करना चाहिए, जिससे वह समाज की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुकूल हो सकें।

९.२ इसके साथ ही देशी चिकित्सा पद्धति (परंपरागत चिकित्सा पद्धति) जैसे आयुर्वेद, यूनानी, सिद्धयोग, प्राकृतिक चिकित्सा और होमियोपैथी वर्षों की उपेक्षा के पश्चात अपना स्थान प्राप्त कर रही हैं। राष्ट्रीय साधनों के उचित उपयोग की दृष्टि से यह आवश्यक है कि ये सब पद्धतियाँ और आधुनिक पद्धति भी अपनी सीमाएं और क्षमताएं समझें। परस्पर एक दूसरे को सहयोग दें और एक दूसरे से प्रेरणा प्राप्त करें।

१०—संस्कृति

संस्कृति और शिक्षा का सम्बन्ध

१०.१ परम्परागत और आजकल के सांस्कृतिक तत्वों का औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा से समन्वय सुनिश्चित करने के लिए ठोस प्रयास होना चाहिए। शिक्षा पद्धति ने देश की समृद्ध और विविध विरासत का और उन विशाल सांस्कृतिक सम्पदाओं का, जो सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए समाज में उपलब्ध है, अभी तक पूरा लाभ नहीं उठाया है। इन सभी संसाधनों का

प्रयोग किया जाना चाहिए और उन्हें सभी स्तर के शिक्षा के ताने-बाने में बुना जाना चाहिए।

११–शारीरिक शिक्षा

शिक्षा के अनिवार्य अंग के रूप में शारीरिक शिक्षा–

११.१ शारीरिक शिक्षा जिसमे खेल-कूद, देसी खेल, योग, व्यायाम तथा साहस की भावना के बढ़ाने वाले कार्य कलाप सम्मिलित हैं, विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का अंग होना चाहिए। बालकों और बालिकाओं को प्रतिभा ज्ञात करने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए और उन्हें ऐसी सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए, जिससे वे अपनी क्षमताओं का विकास कर सकें और खेल-कूद की दक्षता में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अभिमानों को प्राप्त कर सकें। सभी स्तरों पर स्वास्थ्य और शारीरिक योग्यता के लिए व्यावहारिक ज्ञान दिया जाना चाहिए।

१२–शिक्षा का माध्यम

माध्यम और भाषा का अध्ययन—

१२.१ सभी स्तरों पर शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिए। प्राइमरी स्तर पर शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा होनी चाहिए।

१२.२ स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षण या एक विदेशी भाषा के शिक्षण की सुविधा प्रदान की जायगी जिससे विद्यार्थी अपने चुने हुए क्षेत्र में विश्व के विशेष और सम्वर्धनशील ज्ञान से सीधे परिचय प्राप्त कर सकें।

१३. त्रिभाषा सूत्र

१३.१ माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र का क्रियान्वयन किया जायगा। इसमें हिन्दी भाषा प्रदेशों में हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा का अध्ययन करना होगा। यथासम्भव दक्षिण की भारतीय भाषा हिन्दी भाषेतर प्रदेशों में क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी का अध्ययन करना होगा।

१४. भाषाओं का विकास

१४.१ भाषा शिक्षण की तकनीकों मे सुधार लाने का प्रयास किया जाएगा।

१४.२ भारतीय भाषाओं और साहित्य के विकास के लिए प्रयास जारी रखा जाएगा और सुदृढ़ किया जायगा।

१४.३ अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं को संस्कृत ने किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। संस्कृत के अध्ययन को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयास किया जायगा।

१४.४ अन्य प्राचीन भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जायगा।

१४.५ एकत्रिक भाषा के रूप में हिन्दी के विकास और प्रचार को बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को सुदृढ़ किया जायगा।

१४.६ उर्दू के अध्ययन को उचित मान्यता और प्रोत्साहन दिया जायगा।

१४.७ सिन्धी भाषा के अध्ययन को भी बढ़ावा दिया जायगा।

१५. परीक्षा सुधार

परीक्षाओं का स्थान

१५.१ परीक्षाएं विशेषरूप से सार्वजनिक परीक्षाएं आधुनिक अधिक वस्तुनिष्ठ और विश्वसनीय होनी चाहिए? मूल्यांकन के द्वारा शिक्षक अपने शिक्षण की प्रभावशीलता समझ सकता है और विद्यार्थी अपने सीखने के प्रयासों के परिश्रम का मूल्यांकन कर सकते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन, शिक्षण और ज्ञानार्जन प्रक्रिया, जिसमें पाठ्यक्रम की विषयवस्तु और शिक्षण विधियाँ भी सम्मिलित हैं, दोनों में ही सुधार लाने के साधन के रूप में कार्य करता है।

१५.२ मूल्यांकन की विधि ऐसी होनी चाहिए, जिसमें रटाई को हतोत्साहित किया जाय और वह इतनी व्यापक होनी चाहिए जिससे पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों के सम्पूर्ण सीखने के अनुभवों को उसमे सम्मिलित किया जा सके।

सार्वजनिक परीक्षाएं

१५.३ सामान्यतः पूरी शिक्षा की अवधि मे स्नातक

संस्थाओं के विशेष अधिकारों को उचित मान्यता दी जायगी।

क्षेत्रीय असन्तुलन—

१७६ कुछ राज्य देश के अन्य भागों की अपेक्षा शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं। केन्द्र तथा सम्बन्धित राज्यों को सबके समान स्तर पर आने के लिए सामान्य रूप से शिक्षा के क्षेत्र में, विशेषरूप से यथासम्भव कम से कम समय में साक्षरता को सार्वभौम बनाने के क्षेत्र में विशेष प्रयास करना चाहिए। ऐसा भी देखा गया है कि एक ही राज्य के अन्तर्गत सभी क्षेत्रों में शिक्षा का विकास एकरूप नहीं है। इसलिए आगामी योजना अवधि में सूक्ष्म प्रबोधन की व्यवस्था की जायगी और क्षेत्रीय योजना पर विशेष बल दिया जायगा जिससे यह निश्चित हो सके कि सभी अपेक्षाकृत पिछड़े हुए क्षेत्र का अपना स्तर ऊपर उठाने के लिए सहायता दी जा सके।

विकलांगों के लिए शिक्षा—

१७७ सभी विकलांग बच्चों के लिए शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार करने हेतु हर प्रयास किया जाएगा। अधिक विकलांग बच्चों के लिए उचित परिवेश में शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी जिससे उनकी क्षमताओं का पूर्ण विकास हो सके। अन्य बच्चे सामान्य स्कूलों में रखे जा सकते हैं और उन्हें आवश्यक अतिरिक्त सुविधाएँ दी जा सकती हैं। विकलांगों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम और शिक्षण तकनीकों का विकास, अनुसंधान तथा अन्य देशों में प्रयुक्त तकनीकों के अध्ययन के आधार पर विकसित की जानी चाहिए।

१८. अध्यापक—

अध्यापकों की भूमिका—

१८१ सभी स्तरों पर शिक्षा में सुधार लाने के लिए अध्यापकों को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। इसके लिए उन्हें सर्जनात्मक आदर्शवाद से प्रेरित होना चाहिए और अपने व्यवसाय के प्रति उन्हें गौरव का अनुभव करना चाहिए। सभी स्तरों पर अध्यापकों के व्यावसायिक कुशलता उन्नत करने के लिए उचित उपाय किए जाने चाहिए। शिक्षकों को अनुसंधान तथा परिवर्तन करने के लिए शैक्षिक स्वतन्त्रता सुनिश्चित होनी चाहिए।

१८२ अध्यापक वर्ग को अपने उत्तरदायित्व के प्रति उत्तरोत्तर जागरूक होना चाहिए जो उन्हें देश के भावी नागरिकों के जीवन और चरित्र के निर्माण में सम्प्राप्त है। इसके लिए राष्ट्रीय सामाजिक पुनर्निर्माण के कार्य से प्रतिबद्ध होकर उन्हें स्वयं आदर्श नागरिक बनना चाहिए।

अध्यापकों की शिक्षा—

१८३ प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर अध्यापकों की शिक्षा के पाठ्यक्रम में उचित परिवर्तन किए जायेंगे जिससे शिक्षा में सुधार लाने के लिए वे अपनी उचित भूमिका अदा कर सकें। उच्च शिक्षा में भी अध्यापकों के लिए शिक्षा विज्ञान सम्बन्धी और व्यावसायिक तैयारी की सुविधा होनी चाहिए। सेवारत प्रशिक्षण की सुविधाओं का विस्तार किया जायगा। पाठ्यक्रमीय और सहायक शिक्षण सामग्री का विकास करने के लिए, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में अध्यापकों के लाभ के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए केन्द्र स्थापित किए जायेंगे।

१९ सामाजिक सहयोग—

स्थानीय सामाजिक सहयोग—

१९१ स्थानीय समितियों की स्थापना करके एक क्षेत्र में विद्यालयों को स्थानीय समाज से सम्बद्ध करना वांछित होगा। ये समितियाँ संस्थाओं में शैक्षिक सुविधाओं में सुधार लायेंगी और अधिक दक्षता से काम करने के लिए विद्यालयों की सहायता करेंगी।

२०१ स्वैच्छिक संगठन—

राष्ट्रीय नीति को कार्यान्वित करने के लिए जो कार्यक्रम बनाया जायगा उसके समर्थन और सहयोग के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं को प्रोत्साहित किया जाएगा।

२१. अल्पसंख्यकों की शिक्षा—

सरकार इस बात को जानती है कि धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित संस्थाओं ने देश की संयुक्त संस्कृति में महत्वपूर्ण योगदान किया है। सरकार इस बात को भी मानती है कि उन्हें इच्छानुसार कानून सम्मत ऐसी संस्थाओं की स्थापना करने और चलाने के लिए अधिकार है जिससे समन्वित भारतीय समाज का लक्ष्य पूरा हो सके।

२२. शिक्षा में लागत—

२२.१ देश में शिक्षा पर सरकारी व्यय निरन्तर बढ़ता रहा है और अब प्रति वर्ष २८०० रुपये खर्च हो रहे हैं। जो नीति ऊपर निर्धारित की गयी है उसे कार्यान्वित करने के लिए अधिक धन की व्यवस्था करनी होगी फिर भी बचत का अभ्यास करके उपलब्ध संसाधनों, के प्राविधानों का और प्रभावी उपयोग करके तथा ऐसे कार्यक्रमों 'कार्य के लिए भोजन" जैसे कार्यक्रमों द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास होना चाहिए।

२२.२ माध्यमिक और उच्च शिक्षा की कक्षाओं में आबादी के उन वर्गों से फीस ली जा सकती है जो ऐसी दर दे सकते हैं जिसका उचित सम्बन्ध शिक्षा की व्यवस्था करने के ध्येय से हो।

२२.३ स्थानीय समाज से नकद तथा अन्य व्यापक रूप से, वर्तमान की अपेक्षा अधिक समर्थन करने के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

२२.४ यह ठीक है कि नीति को क्रियान्वित करने के सम्पूर्ण प्रयास में आर्थिक लागत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। किन्तु उससे भी महत्वपूर्ण स्थान दायित्व से प्रतिबद्ध मानवीय पक्ष, मानसिक और नैतिक शक्ति का है। बिना इस मानवीय सहयोग के ऊपर निर्दिष्ट संकेतों के अनुसार शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन और विस्तार तथा गुणात्मक सुधार सम्भव नहीं है।

२३. पुनरावलोकन—

२३.१ भारत सरकार प्रत्येक ५ वर्ष बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन का अवलोकन करेगी और अनुभव के आधार पर संशोधन करेगी।

— ❀ —

हमें स्कूल को क्यों समाप्त करना है

अनुवादक—डॉ. देवेन्द्र दत्त तिवारी

(गतांक से आगे)

किन्तु जेकस का प्रस्ताव इस अशुभ वक्तव्य से प्रारम्भ होता है कि कञ्जरवेटिव, लिबरल तथा उग्रपन्थियों सभी ने कभी न कभी यह शिकायत की है कि अमरीकी शिक्षा व्यवस्था पेशेवर शिक्षकों को बहुत कम प्रोत्साहन देती है जिससे अधिकांश बच्चों को उत्तम शिक्षा नहीं मिल पाती। इस प्रकार का प्रस्ताव ट्यूशन अनुदान, जो शिक्षा पर खर्च किया जायगा, प्रस्तावित करके स्वयं अपने को निन्दनीय बना लेता है।

यह बात ऐसी है कि किसी लगड़े आदमी को बैसाखी इस आशय से दे दी जाय कि वह इसका प्रयोग तभी करे जब उसके किनारे एक साथ बाँध दिए जाय। ट्यूशन अनुदान का जैसा स्वरूप इस समय है उसका दुरुपयोग न केवल पेशेवर शिक्षक करते हैं प्रत्युत जातिवादी धार्मिक स्कूलों के समर्थक तथा वे लोग भी करते हैं "जिनके स्वार्थ सामाजिक दृष्टि से विभाजित रहते हैं। सर्वोपरि बात यह है कि शैक्षिक सहायता, जो शिक्षा संस्थाओं से प्रयुक्त होनी चाहिए, उन लोगों के हाथों में पड़ जाती है, जो ऐसे समाज में रहना चाहते हैं जिसमें सामाजिक प्रगति वास्तविक ज्ञान पर आधारित नहीं है, बल्कि ज्ञान की उस परम्परा पर आधारित है जिसके द्वारा वह प्रगति गलत तरीके से प्राप्त की जाती है। शिक्षा की आर्थिक सहायता के सम्बन्ध में जेंक्स के विवेचन में शिक्षा संस्थाओं के पक्ष में यह भेदभाव प्रधानता रखता है और इससे शिक्षा के सुधार सम्बन्धी अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण उस सिद्धान्त की अवमानना होती है जिसमें ज्ञानार्जन या उसके अत्यन्त समीपस्थ शिक्षक की सक्रियता तथा आर्थिक जिम्मेदारी पर बल दिया जाता है।

समाज को स्कूल से मुक्त करने का अर्थ ज्ञानार्जन की प्रक्रिया के दो पहलुओं को मान्यता देना है। केवल कौशल के अभ्यास पर बल देना घातक होगा। उससे कम बल ज्ञानार्जन की विभिन्न प्रक्रियाओं पर नहीं होना चाहिए। किन्तु वास्तविकता यह है कि कौशल के ज्ञान के लिए भी स्कूल ठीक जगह नहीं है और शिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से तो वह और भी खराब स्थान है। स्कूल दोनों काम बहुत खराब ढंग से करता है, इसका अधिक कारण यह भी है कि स्कूल दोनों बातों के अन्तर को नहीं समझता। स्कूल कौशल देने में अयोग्य है क्योंकि वह पाठ्यक्रम की सीमाओं से विशेष रूप से बँधा रहता है। अधिकांश स्कूलों में एक कार्यक्रम, जो किसी एक कौशल के सुधार के लिए होता है, सदैव किसी दूसरे असम्बद्ध कार्य से जुड़ा रहता है। इतिहास को गणित की प्रगति से और कक्षा में उपस्थिति को खेल के मैदान का प्रयोग करने से जोड़ दिया जाता है।

स्कूल उन परिस्थितियों की व्यवस्था करने में और भी बुरे हैं जो अर्जित कौशलों को खुले और गवेषणात्मक प्रयोग में सहायक होते हैं। इसके लिए मैं 'उदार शिक्षा' (लिबरल एजूकेशन) का प्रयोग करूँगा। इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि स्कूल के कार्य में एक अनिवार्यता है, और वहां शिक्षा की व्यवस्था केवल स्कूल के लिए रहती है—अध्यापकों के साथ जबरदस्ती रहना और इस तरह के और अधिक संसर्ग को प्रोत्साहन। जैसे कौशल की शिक्षा को पाठ्यक्रम के बन्धनों से मुक्त रखना चाहिए उसी प्रकार उदार शिक्षा को अनिवार्य उपस्थिति से अलग कर देना चाहिए। सर्जनात्मक और रचनात्मक व्यवहार के लिये कौशल ज्ञान तथा शिक्षा की संस्थागत प्रबन्ध द्वारा प्रोत्साहन दिया जा सकता है, किन्तु वे प्रायः भिन्न और विरोधी प्रकृति के होते हैं।

बहुत से कौशलों में अभ्यास से सुधार हो जाता है क्योंकि कौशल का अर्थ परिभाष्य तथा अनुमान्य व्यवहार पर अधिकार प्राप्त करना है। कौशल के शिक्षण में उन काल्पनिक स्थितियों पर निर्भर किया जा सकता है, जिनमें कौशल का अभ्यास सम्भव है। किन्तु शिक्षा के

अर्थ में कौशल के गवेषणात्मक तथा सर्जनात्मक प्रयोग में अभ्यास पर निर्भर नहीं किया जा सकता। शिक्षा, शिक्षण का परिणाम हो सकती है, यद्यपि वह शिक्षण जिसका परिणाम शिक्षा हो, अभ्यास से बुनियादी तौर से भिन्न होगा। शिक्षा अपनी प्रक्रिया के सहयोगियों के परस्पर सम्बन्धों पर निर्भर करती है, उनके पास ऐसी पूंजी होती है जो समाज के उन सस्कारों से परिचय कराती है, जो वह सुरक्षित रखता है। यह शिक्षा उस सबके उस विवेचनात्मक उद्देश्य पर निर्भर करती है जो सस्कारों का सर्जनात्मक ढग से प्रयोग करते हैं। यह शिक्षा प्रश्नों के अप्रत्याशित प्रश्नों के चमत्कार पर निर्भर करती है जो साधक और उसके सहयोगियों के लिए ज्ञान के नये द्वार खोलती है।

कौशल का शिक्षक निश्चित परिस्थितियों की व्यवस्था पर निर्भर करता है जिसमें ज्ञानार्जक को निश्चित उत्तर देने का अभ्यास करना पड़ता है। शैक्षिक निर्देशक या शिक्षण का कार्य यह होता है कि कौशल सीखने के भागीदारों को एक दूसरे से मिलने में सहायता दे जिससे ज्ञानार्जन सम्भव हो सके। वह ऐसे व्यक्तियों को तालमेल बैठाता है जिनके पास अपने ऐसे प्रश्न हैं जिनका समाधान उनके पास नहीं है। अधिक से अधिक वह सीखने वाले को अपनी समस्या के निरूपित करने में सहायता देता है क्योंकि समस्या की स्पष्टता से ही उसके अनुकूल और तालमेल रखने वाला व्यक्ति मिल सकेगा जो उसी की तरह प्रेरित होकर उसी प्रश्न का समाधान उसी सन्दर्भ में उसी समय खोज रहा है।

कौशल सिखाने और सेवा के भागीदारों की अपेक्षा शिक्षा की दृष्टि से तालमेल रखने वाले भागीदारों का मिलना प्रारम्भ में अधिक कठिन प्रतीत होता है। इसका एक कारण यह गम्भीर भय है जो स्कूल ने हमारे मन में जमा रखा है और जिसने हमें आशंका युक्त बना दिया है। बिना किसी मान्यता के कौशल के आदान प्रदान के परिणाम खराब कौशलों के आदान-प्रदान की आसानी से अनुमानित किए जा सकते हैं और इसीलिए आदान-प्रदान के उन असीमित अवसरों से कम खतरनाक है, जिसमें लोग मिलते हैं और ऐसी समस्या से सम्बद्ध होते हैं जो उनके लिए सामाजिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है।

ब्राजील के अध्यापक पाली फ्रेयरे अपने अनुभव से यह जानते हैं। उन्होंने अपने अनुभव से यह पाया कि प्रौढ़ ४० घण्टे में पढ़ना प्रारम्भ कर देता है, यदि पहले कुछ शब्द जिन्हें वह पहचानता है राजनीतिक अर्थ और महत्व रखते हैं। वह अपने अध्यापकों को गाँव में जाने के लिए कहता है और ऐसे शब्द खोजने के लिये निर्देश देता है जो ऐसी महत्वपूर्ण समस्याओं से सम्बद्ध रहते हैं जैसे कूआ और मालिक के कर्जों पर चक्रवृद्धि ब्याज। सायंकाल गाँव के लोग इनके बीच शब्दों पर विचार करने के लिये इकट्ठा होते हैं। वे यह समझने लगते हैं कि शब्द श्यामपट्ट पर ठहरा रह जाता है, यद्यपि उसकी ध्वनि समाप्त हो जाती है। अक्षर उनके जीवन के सत्य को उद्घाटित करने लगते हैं और समस्या के रूप में उसका समाधान करने में वे अपने को समर्थ पाते हैं। मैंने बहुधा देखा है कि किस प्रकार गाँव के विचार करने वाले लोगों की सामाजिक चेतना में विकास होता है और वे उतनी ही शीघ्रता से राजनीतिक कदम उठाने के लिए प्रेरित होते हैं जितनी शीघ्रता से वे जैसे-जैसे लिखना सीखते हैं, वैसे-वैसे वे जीवन की वास्तविकता को भी करतलगत कर लेते हैं।

(क्रमश)

—:$:—

गांधीकुटी का संदेश

[प्रसिद्ध विचारक इवान इलिचने ग्रामीण विज्ञान केन्द्र वर्धा द्वारा तीसरी दुनिया के गरीबों के लिए तकनीक विषय पर आयोजित गोष्ठी का उद्घाटन श्री गांधी आश्रम प्रतिष्ठान सेवाग्राम वर्धा में किया। यहां उसका सारांश दिया जा रहा है। सं०]

सुबह कुछ समय मैं सेवाग्राम-आश्रम की इस कुटीर में बैठा था, जहां महात्मा गांधी रहते थे। ऐसी कुटीर में रहने के पीछे की उनकी भावना ग्रहण करने की तथा उनका संदेश आत्मसात करने का मैंने प्रयत्न किया। इस कुटीर की दो चीजों ने मेरे चित्त पर गहरी छाप विशेष रूप से अंकित की है। एक है उसका आध्यात्मिक पहलू और दूसरी है उसमें रही सच्ची सुख-सुविधा। इस कुटीर के पीछे गांधी जी का क्या दृष्टिकोण है इस समझने की कोशिश मैं करता रहा। मुझ उसकी सादगी सुंदरता एवं सफाई खूब पसन्द आयी। यह कुटीर सबके प्रति प्रेम और समानता के सिद्धांत की घोषणा करती है।

गांधी कुटीर में सात प्रकार के स्थान हैं। प्रवेश करते ही एक जगह आप जूते निकालेंगे और अपने को शारीरिक रूप से कुटीर के भीतर जाने के लिए तैयार करेंगे। फिर मध्य खंड आता है जो एक बड़े परिवार को समा लेने के लिए पर्याप्त है। आज भोर में चार बजे मैं वहां प्रार्थना में बैठा था तब मेरे साथ चार लोग एक दीवार का सहारा लेकर बैठे थे। सामने की ओर भी उतने ही लोगों को बैठने की जगह थी। यह कमरा ऐसा है जहां हर कोई आ सकता है, मिल सकता है। तीसरी जगह थी, जहां गांधी जी स्वयं रहते थे। एक कमरा अतिथियों के लिए और एक दूसरा कमरा बीमार के लिए है। एक खुला बरामदा है और एक अच्छा प्राकृत स्नान गृह है। ये सब जगह एक दूसरे के साथ बिलकुल नैसर्गिकरूप से सलग्न दीखती है। उन सबके बीच एक आर्गेनिक—जीवन्त और प्राणवान सबंध है।

यह कुटीर बांस लकड़ी और मिट्टी से बनी है। उसको बनाने में यंत्रों ने नहीं बल्कि मनुष्य के हाथों ने काम किया है। मैं उसे कुटीर कहता हूं लेकिन हकीकत में वह है एक घर ही। दिल्ली में कुछ समय पहले जहां मेरा रहना हुआ, वह मकान तरह-तरह की सुख सुविधाओं और अनुकूलताओं की दृष्टि से बांधा गया था। पूरा मकान ईंट व सिमेंट से बना था, और जेल जैसा था।

तात्पर्य यह है जिंदगी में जो सब साजोसामान और तरह तरह की चीज हम इकट्ठा करते रहते हैं, वे हमें आतंरिक बल कदापि नहीं दे सकेगी। वे सब तो हैं मानो पंगु मनुष्य की बैसाखियां। जैसे-जैसे हमारे पास ये सब सुख सुविधाएं बढती जायेंगी। हम ज्यादा से ज्यादा उन पर निर्भर होते जायेंगे। हमारा जीवन दिन-ब दिन अधिकाधिक सीमित बनता जायेगा। गांधी कुटी में मैने जो फर्नीचर देखा है वह सब कुछ अलग ही प्रकार का है वह इस प्रकार का है कि मनुष्य उस पर अवलंबित बन जायें ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता।

अधिक सुविधा में भरा मकान बताता है कि हम उतनी मात्रा में निर्बल बने हैं। जैसे हमारी लालसा बढती है वैसे ही उसकी पूर्ति के लिए स्पष्ट की गयी चीजों पर हमारी निर्भरता भी बढ़ती जाती है। यह तो ऐसी बात है जैसे लोगों के आरोग्य के लिए हम अस्पतालों पर निर्भर रहें और अपने बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूलों पर। दुर्भाग्य से अस्पताल और स्कूल राष्ट्र के आरोग्य और बुद्धिमत्ता दर्शाने वाला कोई नाप हो नहीं है। वस्तुतः अस्पतालों की बढ़ती हुई

सौ अनुदेशकों के चुनाव के बाद भारत सरकार के प्रौढ़ शिक्षा मन्त्रालय के साथ सम्पर्क स्थापित करके अनुदेशकों के प्रशिक्षण का कार्यक्रम बना। इस कार्यक्रम के निर्माण में हम निदेशक प्रौढ़ शिक्षा मन्त्रालय, डा० के जलालुद्दीन तथा डा बैजनाथ सिंह जी कन्सल्टेंट शिक्षा मन्त्रालय का विशेष मार्गदर्शन मिला। विशेष साहित्य भी हम लोगों को मन्त्रालय द्वारा मिला। साथ ही हमें इस कार्यक्रम में विशेष मार्गदर्शन श्री करण भाई जो डा डी डी, तिवारी अध्यक्ष शिक्षा संकाय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का रहा। डा चतुर्वेदी निदेशक राष्ट्रीय सेवा योजना गोरखपुर विश्वविद्यालय, आर एन अग्रवाल वरिष्ठ शिक्षाधिकारी फर्टिलाइजर गोरखपुर डा कृष्ण मुरारी लाल अग्रवाल आचार्य बी आर डिग्री कालेज देवरिया, मदन सिंह प्रौढ़ शिक्षा संघ देवरिया, श्री प्रभुनाथ त्रिपाठी, दोहरी घाट आजमगढ़ श्री केशवचन्द्रजी मिश्र प्राचार्य म मदनीय डिग्री कालेज भाटपाररानी तथा शिक्षाविद श्री धनंजय सिंह परयना धीश देवरिया का मिला। श्री सिंहासन सिंह, श्री सूरति नारायण मणि त्रिपाठी, भूतपूर्व कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, श्री लालजी सिंह महा प्रबन्धक रेलवे तथा आयुक्त गोरखपुर ने भी उदारतापूर्वक समय दिया। श्री त्रिभुवन प्रसाद तिवारी, वित्त सचिव उत्तर प्रदेश सरकार तथा श्री बलवन्त सिंह जिलाधीश गोरखपुर ने तो रात म ८-४० बजे २ जुलाई को पधार कर अनुदेशकों को जो प्रशिक्षण शिविर में थे सम्बोधित किया। श्री हसनजमील परियोजना प्रशासक (प्रसार) गडक परियोजना से भी बडा सहयोग मिला। श्री वेदवृत जी उपनिदेशक समाज कल्याण ने विशेष समय दिया। प्रशिक्षण शिविर के संचालक श्री बांके बिहारी चन्द्रजी थे

प्रशिक्षण के बाद साज सज्जा की व्यवस्था करके ५० केन्द्रों का संचालन १५ जून से और शेष ५० का १५ जुलाई से शुरू कर दिया गया। प्रत्येक अनुदेशक को २० प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र दिया गया। इस तरह निर्मित क्षेत्रों का नाम इस प्रकार :—१-महात्मा गांधी क्षेत्र २-टैगोर क्षेत्र ३-अरविन्द क्षेत्र, ४ जयप्रकाश क्षेत्र, ५-विनोबा क्षेत्र।

'यह कार्यक्रम बिना जनसहयोग के सम्भव नहीं— अतः प्रत्येक गाँव में प्रौढ़ शिक्षा समिति, जिसे हम लोक शिक्षण समिति कहते हैं— संगठित की गयी। इन समितियों के संयोजकों की गोष्ठियों और शिविरों का आयोजन होता रहता है। उनके द्वारा समिति को विकास और गति मिलती रहती है।

ग्रामीण शिक्षित, अशिक्षित युवकों का सहयोग लिए बिना यह कार्यक्रम जन आन्दोलन नहीं बन सकता। इसके लिये प्रत्येक गाँवों में युवक शान्ति सेना की स्थापना की गयी है। इसका उद्देश्य तरुणों के विकास के साथ उनके द्वारा गाँव का विकास है। इनके प्रशिक्षण की भी व्यवस्था है— इस सम्बन्ध में २ दिन का स्काउटिंग का शिविर और ३ दिन का शान्ति सेना का शिविर १०, ११, १२ सितम्बर को श्री अमरनाथ भाई, अखिल भारतीय शान्ति सेना मंडल द्वारा होने जा रहा है।

अनुदेशकों ने सर्वप्रथम अपने अपने गावों का सर्वेक्षण किया और १५ से ३५ आयु के प्रौढ़ों की सूची तैयारी करके ३० प्रौढ़ों की कक्षा प्रारम्भ किया। प्रारम्भ करने के पूर्व कुछ सम्पर्क और आयोजन का भी कार्यक्रम रखा। इधर केन्द्रों के देखने और अध्ययन करने से विशेष अनुभव मिले। इन केन्द्रों में २० केन्द्र महिलाओं के हैं। उनका भी प्रशिक्षण अनुदेशकों के साथ ही हुआ तथा उनको कुछ विशेष कार्यक्रम दिया गया और एक महिला पर्यवेक्षिका भी है—उन्होंने इनका समय समय पर विशेष प्रशिक्षण ट्रेनिंग के दौरान ही दिया। इनके गावों में महिला मण्डल भी बनाने की योजना चल रही है। साथ ही इस क्षेत्र में गावों में कत्तिन स्त्रियों की संख्या हजार से भी ज्यादा है। हम लोग गांधी आश्रम से सम्पर्क करके एक ऐसा कार्यक्रम बनाना चाहते हैं कि जिस दिन वे सूत बदलने और रुई लेने गांधी आश्रम पर आती हैं— उस दिन गांधी आश्रम के ही सहयोग से २, ३ घंटे का ऐसा कार्यक्रम हो जिसमें उन्हें आज के स्त्रियों तथा घरों की आजकी समस्यामूलक कार्यक्रम जैसे पारिवारिक सफाई, स्वास्थ्य, बच्चों का लालन पालन, सद्गुण, परि-

वार नियोजन तथा खादी इत्यादि पर चर्चा हो। इसका एक पाठ्यक्रम बने और कुछ समयरूप से गाँव के लिए गाँव और उन गाँवों में स्त्रियों के बीच भी निरक्षरता उन्मूलन और महिला मण्डल का कार्यक्रम चले। इस योजना को हम विनोबा जयन्ती से शुरू करने जा रहे हैं और महिला पर्यवेक्षिका के देख-रेख में यह कार्यक्रम चलेगा।

अनुदेशकों द्वारा केन्द्रों पर कार्यक्रम धरती पर उतारने को जो अनुभव हुए और हो रहे हैं, वे उत्साह-वर्द्धक और मार्गदर्शक हैं। लोगों की विभिन्न प्रतिक्रियाएं हुई हैं।

स्थानीय स्तर पर अध्ययन सामग्री तैयार करने में हम कार्य शुरू कर दिए हैं। इस सम्बन्ध में हम साक्षरता कौशल और व्यावसायिक कौशल को आज की चुनौतियों में तथा विकास के क्रिया कलापों से जोड़ कर एक सूत्र में बाँधने का प्रयास कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में 'पूनेरवों' की अध्ययन सामग्री से भी हम सहायता लने जा रहे हैं।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य जागरूकता व्याव-सायिक कुशलता तथा साक्षरता है। प्रशिक्षण में भी इस पर बल दिया गया है लेकिन प्रौढ़ शिक्षक साक्षरता ही कार्य पर अभी बल ज्यादे दे रहे हैं। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को एक शैक्षणिक कार्यक्रम के रूप में कल्पित करना मूल होगी—निरक्षरता गरीबों में सबसे अधिक है साथ ही इस कार्यक्रम का निर्धन दलित एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग ने खुले दिल से स्वागत किया है। साक्षरता की पारम्परिक धारणा को रोजगार प्रधान कार्यात्मक साक्षरता के रूप में परिणित करने का प्रयास किया जा रहा है। कठिनाई जरूर है, फिर हमें इसके लिए सहयोग भी मिल रहा है।

सम्पन्न और शिक्षित गावों में इस कार्यक्रम के प्रति न उत्साह है और न इस कोई महत्व दिया जा रहा है। गावों में स्थित कालेजों के कुछ प्राचार्यों और आचार्यों की धारणा है कि प्रौढ़ शिक्षा पर म धन लगाने के स्थान पर बालकों की शिक्षा पर साधन लगाना लाभ-दायक होगा। प्रौढ़ शिक्षा तत्त्वों और सामाजिक दोनों दृष्टिकोणों से सामाजिक पूर्वाग्रहों को तोड़ने, लोगों की मस्तिष्क को आधुनिकीकरण के विचारों से जोड़ने के लिए अनिवार्य थी। साथ ही यह गावों के सर्वांगीण विकास कार्यक्रम है जिससे सभी गाँव स्वावलम्बी हों, कोई बेरोजगार न रहे, और हर प्रकार से मुक्त हो। यह मुक्ति का आन्दोलन है। हर प्रकार का शोषण, जो गाँव के आधार पर है सामाजिक, आर्थिक, अन्धविश्वास, भाग्यवादिता इत्यादि सभी से मुक्त हो। एक ऐसे सहयोगी समाज का निर्माण हो जिसमें सभी प्रेमपूर्ण वातावरण का सृजन करके एक सच्चे समुदाय का निर्माण कर सकें।

आज एक महीने से अधिक कार्यक्रम के संचालन का अनुभव है कि पूरे क्षेत्र में २० केन्द्र ऐसे हैं जिन्हें हम उत्तम की संज्ञा दे सके हैं। उत्तम से हमारा अभिप्राय है जहाँ केन्द्र के लिए पर्याप्त खुली जगह हो तथा सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा और सुव्यवस्थित हो। जहाँ प्रौढ़ों की २८ औसत उपस्थिति हो, प्रौढ़ों में चेतना आ गयी हो और इस कार्य में रुचि लेते हों। साहित्य सृजन की दिशा में कुछ कार्यक्रम हो। लोक शिक्षण समिति तथा युवक संगठन शान्ति सेना का निर्माण हो। महिलाओं के बीच कार्यक्रम हो। गाँव में स्थानीय रचनात्मक नेतृत्व इस कार्य के लिए उभर रहा हो या आगे आकर कुछ जिम्मेवारी वहन कर रहा हो। साक्षरता का भी स्तर ठीक हो।

इसके बाद 'अच्छा' दूसरी श्रेणी के २१ हैं, जिनमें ऊपर दिए कार्यक्रम विकसित होकर व्यवस्थित १५ से १८ तक है। केन्द्र का स्थान है लेकिन संकुचित है। अभी विभिन्न कार्यक्रम संगठनात्मक जो किए गए हैं—वे जो अभी बन रहे हैं। २१ ऐसे हैं जहाँ उपस्थिति १५ से नीचे है और ठीक केन्द्र का स्थान भी नहीं बन पाया है।

साथ ही यह भी अनुभव मिला है कि ९१ दर्जन केन्द्रों पर प्रौढ़, प्रौढ़ शिक्षक से आगे है। वे मानीटर का ही कार्य नहीं कर रहे हैं—कक्षा में आनेवाले प्रौढ़ों को इकट्ठा करने और सब प्रकार की व्यवस्था

सख्या लोगो के गिरते हुए आरोग्य की ओर स्कूलो की बढती हुई सख्या उनके बढते हुए अज्ञान की सूचक है। उसी तरह जीवन मे ऐसी सब सुख-सुविधाए अनेक प्रकार से बढ जाती है, जो उनमे मानव जीवन मे सर्जनात्मकता की अभिव्यक्ति कम से कम होती जाती है।

आज की परिस्थिति की विडबना यह है कि जिनके पास जितनी ज्यादा सुख-सुविधाए हैं उतने वे लोग ज्यादा प्रतिष्ठित माने जाते हैं। जिस समाज मे बीमारी को ज्यादा महत्व दिया जाता हो, और कृत्रिम पैरो के उपयोग करने वालो को श्रेष्ठ गिना जाता हो, क्या उस समाज को 'अनैतिक समाज' नही कहा जा सकता ?

गाधी जी की कुटीर मे बैठे बैठे मैं आज की इस विडबना और विपरीतता के बारे में खेदपूर्वक सोचता रहा। मै इस नतीजे पर आया हू कि आज की हमारी औद्योगिक सभ्यता हमें मनुष्य जाति के विकास की ओर ले जा रही है ऐसा मानना बिलकुल गलत है। अब साबित हो चुका है कि हमारे आर्थिक विकास के लिए उत्पादन के बडे बडे भीमकाय यन्त्रो की और ज्यादा ज्यादा इजिनियरो, डाक्टरो, प्राध्यापको वगैरह की कोई जरूरत नही है। मेरे लिए एक बात पक्की हो गयी है कि ऐसे सब लोग तन, मन और जीवन की दृष्टि से दरिद्र होते हैं। ऐसे लोगो को ही, गाधी जिसमें रहे थे, उस कुटीर की अपेक्षा अधिक बडी जगह की जरूरत पडती है। ऐसा बरताव करके वे लोग खुद को एव अपने जीवन व्यक्तित्व को निर्जीव ढाचे के हवाले कर देते हैं। चैतन्यरहित, प्राणहीन कबाडे की शरण जाते हैं। इस प्रक्रिया में वे अपने शरीर का लचीलापन और भिन्न भिन्न स्थिति के अनुकूल हो जाने की शक्ति खो बैठते है। अपने जीवन का तेज भी गवा देते हैं। प्रकृति के साथ उनका सबध का विच्छेद हो जाता है और अपने मानवबन्धुओ के साथ की निकटता भी कम हो जाती है।

आज के आयोजनकारो को जब मै पूछता हू कि गाधीजी का सिखाया यह सरल अभिगम आपकी समझ में क्यो नही आता ? तब व कहते है कि गाधी जी का रास्ता बडा कठिन है, लोग उस रास्ते से नही जा सकेंगे। परन्तु सही बात यह है कि गाधी जी के सिद्धातो म बीच के बिचौली दलालो के लिए स्थान नही है और केन्द्रित व्यवस्था के लिए भी गुजाइश नही है। इसीलिए आयोजनकारो, व्यवस्थापको और राजनीतिज्ञो को गाधी जी के सिद्धातो के प्रति खास आकर्षण नही है। सत्य और अहिंसा का इतना सरल सिद्धात भी क्यो नही समझ म आता ? क्या लोगो को लगता है कि असत्य और हिंसा से उनका काम बनेगा ? नही, ऐसा तो नही है। साधारण मनुष्य इतना अवश्य समझता है कि सच्चे साधन ही उसको सच्चे ध्येय की प्राप्ति करा सकेंगे। सिर्फ वे लोग इस चीज को समझने स इनकार करते हैं, जिनका इसमे कुछ न कुछ स्थापित स्वार्थ होता है। धनी लोग यह बात समझना नही चाहते। 'धनी लोगो' मे मैं उन सबका समावेश समझता हू, जिन्हे आज साधारण मनुष्य को अप्राप्य ऐसी सारी सुख सुविधाएँ प्राप्त है। ये लोग सब अपग हो गए हैं। उनके उपभोग का प्रकार ऐसा है कि सत्य को समझने की उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। ऐसे लोगो के लिए गाधी को समझना, पहचानना मुश्किल है। सादगी और सरलता का उनके लिए कोई अर्थ नही हैं। दुर्भाग्य से उनकी परिस्थिति उ हे सत्य का दर्शन नही करने देती। उनका जीवन इतना उलझा हुआ और सकुल बन गया है कि जिस जाल मे वे फँस गये हैं, उससे छूटने की शक्ति उनमे नही बची है। भगवान का उपकार मान कि अभी भी बहुसख्य लोगो के पास उतनी दौलत नही है कि वे सरलता और सादगी के सत्य के लिए सवेदन खो बैठें। अथवा वे इतने अधिक दरिद्र नही है कि समझने की अपनी शक्ति गवा दें।

एक बात बिलकुल साफ हो जानी चाहिए कि आत्म-निर्भर समाज मे ही मनुष्य का गौरव रह सकता है। जैसे-जैसे हम उद्योगीकरण की दिशा मे आगे बढते जायेंगे वैसे वैसे मानवीय गौरव को हानि पहुचती रहेगी।

यह कुटीर समाज मे साथ समरस होने से मिलने वाल आनद का प्रतीक है। यहाँ स्वावलबन ध्रुवपद

(शेष पृष्ठ ३० पर)

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा : एक प्रयोग

बाबा राघवदास सेवाश्रम देवगांव
रामबचन सिंह, संचालक

बाबा राघवदास सेवाश्रम देवगांव, देवरिया में १०० प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्वीकृति गत अप्रैल १९७९ में मिली और उस कार्यक्रम के अन्तर्गत ५ पर्यवेक्षकों और १०० अनुदेशकों का चुनाव करके प्रशिक्षण दिलाया गया। पर्यवेक्षकों का प्रशिक्षण गांधी भवन लखनऊ और साक्षरता निकेतन में हुआ, तथा १०० अनुदेशकों का प्रशिक्षण दो बार में आश्रम पर ही आश्रम पद्धति से सम्पन्न हुआ। प्रशिक्षण कार्य में हमें कमिश्नरी स्तर के सभी विभागीय अधिकारी, विश्वविद्यालय के अधिकारी एवं प्रोफेसर, अन्य शिक्षाविद, विभिन्न संस्थाओं तथा सार्वजनिक रचनात्मक कार्यकर्ताओं का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

इस कार्यक्रम की पृष्ठभूमि तथा प्रारम्भिक तैयारी गत जनवरी १९७८ से ही विशेषरूप से श्री अनिल बोर्डिया, संयुक्त शिक्षा सचिव भारत सरकार के देवगांव आगमन के समय से प्रारम्भ हुई। इस कार्यक्रम हेतु उचित वातावरण तो कई वर्षों से निर्मित विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों यथा आचार्यकुल, तरुण शान्ति सेना द्वारा होता रहा। गोरखपुर मंडल में आचार्यकुल के अनेकों सम्मेलन हुए और १२५ शिक्षा संस्थाओं में आचार्यकुल की गोष्ठियां हुईं। गांधी विचार, विश्वविद्यालय, कालेज तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं में पहुंचाया गया। इन सभी संस्थाओं में गांधी साहित्य प्रकोष्ठ भी स्थापित किया गया। इस कार्यक्रम में डा० हरद्वारी लाल, संयुक्त शिक्षा निदेशक तथा डा० देवेन्द्र दत्त तिवारी, उप शिक्षा निदेशक की अमूल्य प्रेरणा और मार्गदर्शन मिला। डा० तिवारी तो आचार्यकुल की दर्जनों गोष्ठियों को सम्बोधित भी किए थे। देवरिया में १९७७ में एक जनपदीय अनौपचारिक शिक्षा सम्मेलन डा० हरद्वारी लाल जी, संयुक्त शिक्षा निदेशक की अध्यक्षता में किया गया था। इन सब कार्यक्रमों का केन्द्र बाबा राघवदास सेवाश्रम, देवगांव, देवरिया ही रहा है और आज भी रहता है।

सघन रूप से प्रौढ़ शिक्षा कार्य की तैयारी श्री करण भाई तथा श्री प्रेम भाई की प्रेरणा और डा० देवेन्द्र दत्त तिवारी जी के मार्गदर्शन में जनवरी १९७८ से प्रारम्भ की गयी। सर्वप्रथम शिक्षा विभाग के अधिकारी जिला विद्यालय निरीक्षक, उपविद्यालय निरीक्षक, डी. पी ओ. तथा गौरी बाजार और बैतालपुर प्रखण्ड के बी डी ओ के सक्रिय सहयोग से १०० गांव का एक क्षेत्र लिया गया। इस क्षेत्र के गांवों से सम्पर्क स्थापित हुआ तथा आश्रम पर इस सम्बन्ध में गोष्ठियों तथा शिविरों का आयोजन हुआ। फिर गौरीबाजार और बैतालपुर ब्लाक के खण्ड विकास अधिकारियों के सक्रिय सहयोग से इस क्षेत्र के १०० गांवों का सर्वेक्षण किया गया।

अक्तूबर १९७८ में गान्धी जयन्ती सप्ताह मनाया गया। उसके कार्यक्रम के समापन समारोह में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का शुभारम्भ ३ गांवों में जिलाधीश श्री पुनिया, आई ए एस ने किया। जिसमें डा क्षमानन्द जी, श्री मधुसूदन उपाध्याय ने इस कार्यक्रम में पूर्ण सहयोग दिया तथा श्री बांकेबिहारी चन्द्रजी, जो आश्रम के मंत्री हैं पूर्ण जिम्मेदारी के साथ समर्पित भावना से आश्रम पर ठहर कर इसके संयोजक और आयोजन में लगे।

सौ अनुदेशकों की खोज अनौपचारिक रूप से प्रारम्भ कर दी गई थी। भारत सरकार द्वारा स्वीकृति मिलने पर गांव के ५ रचनात्मक व्यक्तियों की, जिनकी इस कार्यक्रम के प्रति आस्था है, एक लोक शिक्षण समिति बनायी गयी। इस समिति को सहयोग से अनुदेशकों का चुनाव हुआ। इनमें कुछ गांवों में दलगत भावना से कठिनाईयां भी उपस्थित हुई, लेकिन निराकरण भी हो गया।

वार नियोजन तथा खादी इत्यादि पर चर्चा हो। इसका एक पाठ्यक्रम बने और कुछ समनरूप से गाँव के लिए जाय और उन गावो मे स्त्रियो के बीच भी निरक्षरता उन्मूलन और महिला मण्डल का कार्यक्रम चले। इस योजना को हम विनोबा जयन्ती से शुरू करने जा रहे हैं और महिला पर्यवेक्षिका के देख रेख म यह कायक्रम चलेगा।

अनुदेशको द्वारा केन्द्रो पर कार्यक्रम चलाते पर उतारने को जो अनुभव हुए और हो रहे हैं, वे उत्साह-वर्द्धक और मार्गदर्शक हैं। लोगो की विभिन्न प्रतिक्रियाएं हुई है।

स्थानीय स्तर पर अध्ययन सामग्री तैयार करने म हम कार्य शुरू कर दिए है। इस सम्बन्ध म हम साक्षरता कौशल और व्यावसायिक कौशल को आज की चुनौतियो से तथा विकास के क्रिया कलापो से जोड कर एक सूत्र में बांधने का प्रयास कर रहे है। इस सम्बन्ध मे यूनेस्को की अध्ययन सामग्री से भी हम सहायता लेने जा रहे हैं।

प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य जागरूकता व्याव सायिक कुशलता तथा साक्षरता है। प्रशिक्षण मे भी इस पर ध्यान दिया गया है लेकिन प्रौढ शिक्षक साक्षरता ही कार्य पर अभी बल ज्यादे दे रहे हैं। प्रौढ शिक्षा काय क्रम को एक दीर्घगामी कार्यक्रम के रूप मे कल्पित करना भूल होगी—निरक्षरता गरीबो म सबसे अधिक है साथ ही इस कार्यक्रम का निर्धन दलित एव आर्थिक दृष्टि म पिछडे वर्ग ने खुले दिल से स्वागत किया है। साक्षरता की पारम्परिक धारणा को रोजगार प्रधान कार्यात्मक साक्षरता के रूप मे परिणित करने का प्रयास किया जा रहा है। कठिनाई जरूर है फिर हमे इसके लिए सहयोग भी मिल रहा है।

सम्पन्न और शिक्षित गावो में इस कार्यक्रम के प्रति न उत्साह है और न इस कोई महत्व दिया जा रहा है। गावो में स्थित कालेजो के कुछ प्राचार्यों और आचार्यों की धारणा है कि प्रौढ शिक्षा पर स धन लगाने के स्थ न पर बालको की शिक्षा पर साधन लगाना लाभ दायक होगा। प्रौढ शिक्षा तकनीकी और सामाजिक दोनो दृष्टिकोणो से सामाजिक पूर्वाग्रहो को तोडने, लोगो को मस्तिष्क को आधुनिकीकरण के विचारो से जोड़ने के लिए अनिवार्य थी। साथ ही यह गावो के सर्वांगीण विकास कार्यक्रम है जिसमे सभी गाँव स्वावलम्बी हो कोई बेरोजगार न रहे और हर प्रकार से मुक्त हो। यह मुक्ति का आन्दोलन है। हर प्रकार का शोषण, जो गाँव के आधार पर है सामाजिक, आर्थिक अन्धविश्वास, भाग्यवादिता इत्यादि सभी से मुक्त हो। एक ऐसे सहयोगी समाज का निर्माण हो जिसमे सभी प्रेमपूर्ण वातावरण का सृजन करके एक सच्चे समुदाय का निर्माण कर सके।

आज एक महीने से अधिक कार्यक्रम के संचालन का अनुभव है कि पूरे क्षेत्र मे २० केन्द्र ऐसे है जिन्हे हम उत्तम की संज्ञा दे सके हैं। उत्तम म हमारा अभिप्राय है जहाँ केन्द्र के लिए पर्याप्त खली जगह हो तथा सुरुचिपूर्ण ढग से सजा और सुव्यवस्थित हो। जहाँ प्रौढो की २५ औसत उपस्थिति हो प्रौढो मे चेतना आ गयी हो और इस काय मे रुचि लेते हो। साहित्य सृजन की दिशा मे कुछ कार्यक्रम हो। लोक शिक्षण समिति तथा युवक सगठन शांति सेना का निर्माणा हो। महिलाओ के बीच कार्यक्रम हो। गाँव मे स्थानीय रचनात्मक नेतृत्व इस कार्य के लिए उभर रहा हो या आगे आकर कुछ जिम्मेवारी वहन कर रहा हो। साक्षरता का भी स्तर ठीक हो।

इसके बाद 'अच्छा' दूसरी श्रेणी के २५ है, जिनम ऊपर दिए कार्यक्रम विकसित होकर व्यवस्थित १५ स १८ तक है। केन्द्र का स्थान है लेकिन सकुचित है। अभी विभिन्न कार्यक्रम सगठनात्मक जो किए गए हैं— वे जो अभी बन रहे हैं। २५ ऐसे हैं जहाँ उपस्थिति १५ स नीचे है और ठीक केन्द्र का स्थान भी नहीं बन पाया है।

साथ ही यह भी अनुभव मिला है कि एक दजन केन्द्रो पर प्रौढ, प्रौढ शिक्षक से आगे है। वे मानीटर का ही काम नही कर रहे हैं—कक्षा मे आनेवाले प्रौढो को इकट्ठा करने और सब प्रकार की व्यवस्था

और सहयोग मे आगे हैं। एक स्थान पर एक प्रौढ ने बताया कि हमारे लिए त बडहन बात बा कि दिन भरी क थकान दूर हो जात बा—हम पुरान कुदारी न पटा टके वाडी जब राति क बजाइ ले सब आ जाला। ऐसी ही चर्चा कई जगह सुनने म मिली।

महिलाओं के भी २० म १८ केन्द्र अच्छ हैं। ४ की स्थिति आशा से भी नीचे हैं। इसके लिए प्रयास हो रहा है।

एक १० गाँव का ऐसा क्षेत्र बना है जिसम स्थानीय नेतृत्व विशेषरूप से काम समान रहा है। उस क्षेत्र मे विशेषरूप से कार्य करने का कायक्रम बनाया जा रहा है। दसो गावो के कायक्रम को विकसित करने के लिए स्वेच्छा से ही अवकाश प्राप्त जिला पचायत राज अधि अधिकारी ने जो उस क्षेत्र के निवासी है अपने ऊपर लिया है। साथ ही स्थानीय लोगो ने मुझ व स मैंने इस अपना क्षेत्र मान लिया है।

जन सहयोग उन गाँवो स ज्यादे मिल रहा है जहाँ पिछड वग के निरक्षर लोग हैं। वे निरक्षर साक्षर हैं। वे ज्ञानी हैं विचारवान है उनके जीवन के मूल्य है। उनका जीवन श्रम आधारित है। वे हृदय प्रधान हैं और उनके हृदय म करुणा और स्नेह है। श्रमनिष्ठा व साथ कतव्यपरायणता विनम्रता और शान्तिप्रियता है। वे सरल और सीधे है अत चालाकी के शिकार बन जाते है। उनके जीवन और जीविका म अनुराग है। अत उनमे सा कृतिक सृजन का स्रोत है। ऐसा आभास होता है कि प्रौढ शिक्षा कायक्रम द्वारा पीडा से मुक्त होने के लिए पीडित स्वय बढा होगा।

(पृष्ठ २६ का शेषाश)

है। हमे समझ लेना चाहिए कि मनुष्य अनावश्यक चीजो और साधनो का जितना ज्यादा संग्रह करता जाता है उतनी मात्रा म अपने आसपास की परि स्थिति और वातावरण से आनन्द प्राप्त करने की उसकी शक्ति घटती जाती है। इसीलिए गाधी ने बार बार कहा है कि उत्पादकता को हमेशा अपनी जरूरतो की सीमा मे ही रखें। परन्तु उत्पादन का आज का प्रकार ही ऐसा है कि जो किसी प्रकार की सीमा को ही नही मानता बल्कि दिन ब दिन बेतहाशा उत्पादन बढ़ते रहने मे ही प्रगति मानता है। आज तक यह सब हम स त आये हैं। परन्तु अब समय आ गया है जब मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि यत्रो पर अधिक निभर होते जाने मे वह अपना ही आत्मनाश कर रहा है।

तथाकथित सभ्य दुनिया अब यह बात समझने लगी है कि यदि हमे विकास करना है तो उपरोक्त माग ठीक नही है। व्यक्ति के और समाज के कल्याण के लिए यह स्पष्ट है कि लोग केवल अपनी प्राथमिक आवश्यकताए ही अपने पास रखें। हमे ऐसी कोई पद्धति ढूढ निकालनी चाहिए जो इस विचारधारा के प्रतिफलरूप आज की दुनिया में मूलत म आमूल परिवतन ला दे। यह मूल्य-परिवतन कानून क दबाव स नहीं हो सकेगा। बल्कि संस्थाओं के द्वारा भी यह काम नही बनेगा। इसके लिए लोक-जागृति का वातावरण बनाना पडेगा। लोगो को यह समझाना पडेगा कि समाज मे बुनियादी चीज कौनसी है।

आज तो मोटरकार रखने वाला मनुष्य सकुचित वाले म अपने को श्रेष्ठ मानता है। परन्तु यदि इसकी ओर हम सवसाधारण की दृष्टि स देखे तो ध्यान म आयेगा कि मोटर की अपेक्षा स इकिल ही सवसाधारण लोगो का वाहन है इसलिए वस्तुत सबसे अधिक महत्व साइकिल को देना चाहिए। रास्ते एव वाहन व्यवहार वगैरह सब प्रकार का आयोजन भी साइकिल को केन्द्र म रख कर होना चाहिए और मोटर को गौण स्थान मिलना चाहिए। परन्तु आज परिस्थिति इससे ठीक उल्टी है आज तो पूरा आयोजन मोटर को ध्यान म रखकर किया जाता है। साधारण मनुष्य की जरूरतो पर प्रति बिल्कुल ध्यान नही दिया जाता। सारा विचार इन गिने लोगो की जरूरतो के बारे म ही किया जाता है।

गाधी का यह कुटीर दुनिया को बता रहा है कि साधारण मनुष्य का गौरव किस प्रकार बढाया जाय। सादगी सरलता सेवा और सत्य का पालन कर हम कितना आनन्द प्राप्त कर सकते हैं इस बात का भी यह गाधी-कुटीर एक प्रतीक है। गाधी-कुटीर का यह सदेश हम आत्मसात् करें। ✲

वर्तमान सन्दर्भों में गांधी जी के शैक्षिक चिन्तन का महत्त्व

कु० कमला द्विवेदी

अधिकतर लोग यही समझते हैं कि गांधी एक राजनीतिज्ञ थे और उनका शिक्षा से कोई सीधा संबंध नहीं था। दूसरी आम धारणा यह है कि गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा के रूप में जो कुछ विचार देश को दिया उसका आज के नये सन्दर्भों में न तो कोई महत्व है, न उसकी कोई उपयोगिता ही है। मेरा यह मत है कि गांधी जी के सम्बन्ध में ये दोनों धारणाएं अत्यन्त भ्रमपूर्ण हैं। न तो गांधी जी मूलतः राजनीतिज्ञ ही थे और न उनके विचार किसी एक देश और काल में बंधे हुए थे। गांधी जी ने मनुष्य जीवन को सदैव समग्र दृष्टि से देखा जिसमें राजनीति अर्थ धर्म आदि अपना-अपना स्थान रखते थे। उनका चिंतन सार्वभौम और शाश्वत मूल्यों पर आधारित था। इसीलिए उन्होंने कहा था कि यदि अहिंसा के सिद्धांत को छोड़ने पर मुझे देश की स्वतन्त्रता मिले तो मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा। इसका अर्थ यह है कि गांधी जी पूरी मानवता को अपनी दृष्टि में रखते थे।

गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा की जो बात कही वह यद्यपि देश की तात्कालिक आवश्यकताओं से सम्बद्ध थी किन्तु बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त वास्तव में शाश्वत और सार्वभौम हैं और इसीलिए किसी का यह साहस नहीं होता कि उनको तिरस्कार की दृष्टि से देखे। कोठारी कमीशन ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत सर्वमान्य हैं। अभी राष्ट्रीय शिक्षा नीति की (१९७९) जो घोषणा भारत सरकार ने की है उसमें भी गांधी जी के शैक्षिक सिद्धांतों का अनुसरण करने की बात कही गयी है। इसलिए ऐसा समझना कि गांधी जी के शैक्षिक सिद्धांतों की नये सन्दर्भों में आवश्यकता नहीं है कम से कम आधिकारिक अभिमतों से सिद्ध नहीं होता। फिर प्रश्न यह उठता है कि क्यों आम धारणा यह बनी हुई है कि गांधी जी के शैक्षिक सिद्धांतों की आज उपादेयता नहीं है।

इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि अंग्रेजी हुकूमत में हमारे मन में शिक्षा की जो कल्पना बनी थी वह आज भी मिटी नहीं है और आज भी अच्छी शिक्षा वही समझी जाती है जिससे अच्छी नौकरी मिल सके। इसमें व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास का कोई महत्व नहीं है। दूसरा कारण यह है कि गांधी जी ने जो शिक्षा के सिद्धांत प्रतिपादित किये उनमें हाथ के श्रम पर अधिक बल दिया गया। हाथ द्वारा उत्पादन कार्य को ही शिक्षा का माध्यम माना गया। आज भी शिक्षा का लाभ उच्च वर्ग के ही लोग प्राप्त करते हैं। वे ऐसी शिक्षा को निकृष्ट समझते हैं जिसमें शरीर का श्रम या हाथ से मेहनत करनी पड़े। तीसरा कारण यह है कि लोगों के मन में आधुनिक विज्ञान से प्राप्त सुविधाओं के प्रति बड़ा आकर्षण है। वे आवश्यकता न होते हुए भी मोटर पर चलने का स्वप्न संजोते हैं। अच्छे मौसम में भी वातानुकूलन की सुविधा चाहते हैं। बड़े कारखानों के उत्पादनों पर अपनी जिन्दगी बसर करना चाहते हैं चाहे उनसे कितना ही विनाशकारी प्रदूषण क्यों न हो रहा हो। चौथा कारण यह है कि उच्च वर्गों के हाथ में ही प्रशासन की बागडोर है और वे गांधी जी के शैक्षिक सिद्धांतों की बाहर प्रशंसा करते हैं और भीतर ही भीतर उनसे घृणा करते हैं। यद्यपि वे अपने को शिक्षित समझते हैं किन्तु वस्तुतः उनसे अधिक कुशिक्षित देश में कम लोग होंगे क्योंकि उन्होंने अनुचित सुविधायें प्राप्त कर दूसरों को पीछे रखने की कला सीखी है। उन्होंने विकृत परीक्षा प्रणाली के आधार पर पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करके समाज के व्यावहारिक जीवन से अपने को अलग रखा है। उनका दृष्टिकोण संकुचित और स्वार्थरत होता है। ऐसे लोग अंग्रेजों के समय में भी और आज भी प्रशासन की रीढ़ समझे जाते हैं। गांधी जी के विचारों को धूमिल करने की जिम्मेदारी मुख्यतः इन्हीं लोगों पर है।

हम पुराने और नये सन्दर्भो पर विचार करें तो आज गांधी जी के शैक्षिक चिंतन की आवश्यकता और भी अधिक प्रतीत होती है। आज उद्योग और तकनीकी के विकास के कारण लोग शहरों मे सिमटने जा रहे हैं जहाँ खाने पीने रहने विश्राम करने, शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा अधिकांश लोगों को नहीं मिल पाती है और बड़े-बड़े नगरों के जीवन को यदि देखा जाय तो वहाँ के वातावरण में जीना इन्सान के लिए मुश्किल हो रहा है। बड़े बड़े कल कारखानो के कारण न केवल आर्थिक विषमता को प्रश्रय मिल रहा है बल्कि समस्त वातावरण प्रदूषित हो रहा है। समाज और परिवार का विघटन बड़ी तीव्रता से हो रहा है। बगल में रहने वाले व्यक्ति को लोग नहीं पहचानते और न उसके दुख-दर्द को समझने की पड़ोसियों को फुर्सत ही है। पिता-पुत्र पति-पत्नी, भाई बहन के सबंध आर्थिक शिलाओं पर टकरा कर चूर चूर हो रहे हैं। आज यह स्थिति केवल इस देश की ही नहीं है प्रत्युत विश्व में उन सभी तथाकथित प्रगतिशील देशों की है जो अपने को सम्पन्न समझते हैं।

यही नहीं आज विभिन्न राष्ट्र विध्वंसक शस्त्रास्त्रों के निर्माण म लगे हुए हैं। जो गरीब है वे भी अणुबम बनाने की तैयारी में हैं। यह कहा जाता है कि विभिन्न राष्ट्रो ने आज इतने विनाशकारी बम बनाकर रख लिए हैं कि जिनसे एक बार क्या दस बार यह पृथ्वी निष्प्राण की जा सकती है।

य है हमारे नये सन्दर्भ। इनसे बचने के लिए अगर कोई रास्ता है तो वह गांधी जी का बताया हुआ मार्ग ही है। गांधी जी ने जीवन की अर्थ व्यवस्था, राजनीति व्यवस्था को विकेन्द्रित करने की बात कही थी। उन्होंने अपनी आवश्यकताओं को कम करने और आत्म निर्भर बनने की बात भी कही थी। यह सभी को ज्ञात है कि बिना आत्म निर्भरता के चाहे वह व्यक्तिगत जीवन हो या सामाजिक अथवा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं होता। उन्होंने जीवन के इस शाश्वत लक्ष्य को बुनियादी शिक्षा के द्वारा प्राप्त करने की बात प्रतिपादित की थी। आज नये सन्दर्भों में उनके शैक्षिक सिद्धान्तों की आवश्यकता नहीं है। यह वही कह सकते हैं जो सामने खड़े हुये विनाश के प्रति उदासीन हो और जिन्हें यह चिंता नहीं है कि मानवता किसी भी क्षण सदैव के लिए विनाश के गर्त मे विलीन हो सकती है।

जैसा मैंने पहले कहा है कि गांधी जी राजनीतिज्ञ कम और मानववादी अधिक थे। वे एक महान शिक्षक थे। यह कम लोगों को मालूम है कि गांधी जी जहाँ एक ओर ऐसे साम्राज्य से लड़ाई लड़ रहे थे जिसमें सूर्यास्त नहीं होता था। वहीं वे हिन्दी सीखने के लिए पहली पुस्तक बाल पोथी भी लिख रहे थे। कितने विद्वानों ने इस आवश्यकता को महसूस किया है? यही नहीं गांधी जी ने उस पुस्तक मे लिखा है कि बच्चों और शिक्षकों के लिए कम से कम पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग किया जाय क्योंकि इससे शिक्षण और शिक्षक दोनों की ही मौलिकता नष्ट होती है। शिक्षक आवश्यकता पड़ने पर सन्दर्भ ग्रन्थों का प्रयोग कर सकते है। गांधी जी ने सूत्ररूप मे एक बहुत बड़े शिक्षा सिद्धांत की जो बात कही है उसे कार्यान्वित करना तो अलग समझना भी अनेक तथाकथित शिक्षाशास्त्रियों के लिए मुश्किल बात होगी। उनका यह सूत्र इतना क्रान्तिकारी है कि यदि उसका अनुसरण किया जाय तो आज के बोझिल पाठ्यक्रम और बोझिल पुस्तकों से मुक्ति अवश्य मिल जायगी और शिक्षा वास्तविक जीवन से सम्बद्ध हो सकेगी।

※

गत दस वर्षों में हमारी शिक्षा

—श्रीमती उषा सिन्हा
प्रवक्ता

आज हमारा देश सभी क्षेत्रों में परिवर्तनों के साथ आगे बढ़ रहा है। कल के परिवर्तनों की गति और भी तीव्र होगी। देश को प्रगति पथ पर लाने का श्रेय शिक्षा को है। भारत में आज नवीन और प्राचीन शिक्षा-पद्धति का अपूर्व संगम है। शिक्षाविदों के प्रयासों से ज्ञान की परिधि का जिस अनुपात में विकास हुआ है उस अनुपात में इस नये ज्ञान के प्रति हमारा उत्तर-दायित्व भी बढ़ा है।

देश में शिक्षा के वर्तमान विस्तार को सही अर्थों में समझने के लिए हम सम्पूर्ण राष्ट्र की स्थिति पर विचार करना होगा, क्योंकि आज देश में स्कूल जाने वाले कुल विद्यार्थियों की संख्या १० करोड़ है। पिछले दशक के दौरान शिक्षा की प्रगति पर गहरी नजर डालने से पता चलता है कि देश ने इस क्षेत्र में निश्चित नीति और योजना के आधीन प्रगति की है। यह सर्वथा स्वाभाविक था क्योंकि इस दशक के दौरान १९६६ में शिक्षा आयोग की रिपोर्ट और दो वर्ष बाद शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति के स्वीकार किए जाने से परिवर्तन की नयी हवा बह चली है। शैक्षिक संस्थाओं में पूर्ववत काम होता रहा किन्तु वातावरण में परिवर्तन होने लगा। इस प्रकार ऐसे युग का प्रारम्भ हुआ जिसमें मात्रा पर ही सम्पूर्ण ध्यान नहीं दिया जाता था, इसके साथ ही शिक्षा को उसके जड़ बन्धनों से मुक्त कराने तथा आर्थिक बन्धनों के बाद भी शिक्षा का संदेश जनता तक पहुँचाने के लिए नयी विचारधाराएँ पनपीं।

आंकड़ों की दृष्टि से भी शिक्षा की प्रगति अनूठी रही है आज शिक्षा पर व्यय होने वाली धनराशि कुल १,९५० करोड़ रुपये हैं जब कि १९४७ में शिक्षा पर केवल ५७ करोड़ रुपये खर्च होते थे। इस अवधि में विभिन्न स्तरों पर स्कूल छोड़ने वाले और कक्षा में रुकने वाले लड़कों की समस्या विशेषतः विचारणीय मानी गयी थी। पिछला दशक शिक्षा के क्षेत्र में नये मोड़ का दशक था।

शिक्षा आयोग ने इस बात पर जोर दिया था कि शिक्षा को सामाजिक एवं आर्थिक रूपान्तरण का साधन बनाया जाय। उसने इस बात का भी पता लगाया कि शिक्षा के बारे में एक सुसंगत नीति की आवश्यकता है। तदनुसार संसद ने १९६८ में शिक्षा में राष्ट्रीय नीति को स्वीकार किया, जिसमें शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे प्राथमिक क्षेत्रों को महत्व दिया था जहाँ राष्ट्रीय प्रयत्नों में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता थी।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने १९७२ में शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त स्थिति की समीक्षा की और पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के लिए विस्तृत कार्यक्रम की योजना की स्वीकृति दी। इन कार्यक्रमों पर ३,३२० करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान था। इस बात को देखते हुए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की स्थाई समिति ने जून, १९७२ में एक संशोधित कार्यक्रम तैयार किया और प्राथमिकता के अनुसार कुछ निश्चित कार्यक्रम प्रस्तावित किए।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की बैठक नवम्बर १९७४ में देश की आर्थिक स्थिति पर विचार करने के लिए पुनः हुई। बोर्ड ने यह स्वीकार किया कि देश की तत्कालीन स्थिति को देखते हुए शिक्षा को भी अपने व्यय में कटौती करनी होगी। उसने शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति सुनिश्चित करने के लिए एक नीति की घोषणा की थी।

इसकी प्रमुख विशेषताएँ—१ इन कार्यक्रमों और प्रथाओं को जो अब उपयोगी नहीं है, समाप्त करने के लिए सभी योजनागत खर्च की समीक्षा की गयी और

इस प्रकार बचाये गये धन से नये कार्यक्रम शुरू कराने या उन वर्तमान कार्यक्रमों को चलाने की आवश्यकता बतायी गयी जिन्हे अतिरिक्त धन की जरूरत है।

२—योजनागत और गैर योजनागत खर्च को मिला देने की आवश्यकता बतायी गयी ताकि गैर योजनागत खर्च का कोई भी अंश बचत कार्यों के लिए उपलब्ध न हो।

३—शिक्षण कार्य मे लगे व्यक्तियो का अधिक कारगर उपयोग करने पर बल दिया गया।

४—अधिक छात्रो को भर्ती करने या नये कार्यक्रम विकसित करने के लिए उपलब्ध इमारतो का उत्तम उपयोग करना आवश्यक बताया गया।

५—योजना के लिए नियत राशि को बढाने के लिए समाज के सभी वर्गों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता बतायी गयी।

नयी नीति—

बोर्ड ने निम्नलिखित सिफारिशें की १ उच्चतर माध्यमिक और उच्च शिक्षा मे वर्तमान संस्थाओ को युक्तिसगत बनाकर, उचित मानको को बनाए रखकर और छात्रों की भर्ती को नियंत्रित करके अव्यवस्थित और अनियोजित विस्तार को रोका जाए। नये विश्वविद्यालय की स्थापना मे सयम बरतना, और बहुत ही पिछडे इलाको को छोडकर नये कालेजो की स्थापना पर रोक लगाने की अपेक्षा है जहाँ पिछडे और उपेक्षित वर्गों के लिए सीटों का आरक्षण करने के स थ पूर्णकालिक छ त्रो की भर्ती को नियंत्रित किया जायगा। अनौपचारिक शिक्षा का विस्तार किया जायगा, ताकि उन सभी को, जो उच्च शिक्षा की इच्छा रखते हैं, इसका लाभ मिले।

२—कुछ विशेष महत्वपूर्ण और प्राथमिकता के कार्यक्रमो पर जोर दिया जाना चाहिए। इसमे प्रारम्भिक शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था और उसम सुधार माध्यमिक शिक्षा को व्यवसाय प्रधान बनाना, सभी राज्यो मे शिक्षा की १०+२+३ प्रणाली का चलन, युवक सेवाओ का विकास और १५-३५ आयु वर्ग के वयस्को की अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था शामिल है।

३—औपचारिक शिक्षा पर ही दिया जाने वाला जोर समाप्त कर दिया जाए और इस व्यवस्था के भीतर ही अनौपचारिक शिक्षा भी जाय। बहुप्रविष्टि और अशकालिक शिक्षा का कार्यक्रम बडे पैमाने पर स्वीकार किया जाना चाहिए। माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर पर अशकालिक और पत्राचार शिक्षा का विकास किया जाना चाहिए।

४—शैक्षणिक पुनर्निर्माण के सभी कार्यक्रमो मे अध्यापको छात्रो और समाज की पूरी तरह से सम्मिलित करके सभी शिक्षा सस्थाओ मे उत्साह और निरतर कठोर परिश्रम का वातावरण बनाया जाना चाहिए।

पिछले दशक के दौरान शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले विकास—

शिक्षा का समान अवसर—अब सभी राज्यो मे ६–११ आयु वर्ग के बच्चो के लिए नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था है। १२ राज्यो म ११–१४ आयु वर्ग के लडके लडकियो की शिक्षा भी नि शुल्क है। १९७४-७५ के अन्त तक ६–११ आयु वर्ग के ८३ प्रतिशत बच्चो के लिए और ११-१४ आयु वर्ग के लिए ३६ प्रतिशत बच्चो के लिए शिक्षा सुविधाओ की व्यवस्था की गयी है। पाचवी पंचवर्षीय योजना मे ६–११ आयु वर्ग के ९७ प्रतिशत और ११–१४ आयु वर्ग के ४७ प्रतिशत बच्चो के लिए शिक्षा सुविधाए प्रदान करने का लक्ष्य है। इसस १९८३–८४ तक देश भर म सर्वव्यापक प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लक्ष्य को प्राप्त करने म काफी सहायता मिलेगी।

पाँचवी पचवर्षीय योजना मे न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम पर विशेष जोर दिया गया है। इसमे प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार, क्षेत्रीय असतुलन और असमानताओं को दूर करने और अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जन जातियो, लडकियो एव समाज के दुर्बल वर्गों को, विशेषरूप से शिक्षा व्यवस्था म सहायता मिलेगी। शिक्षा व्यवस्था म प्रस्तावित परिवर्तन स जिसम अनौपचारिक शिक्षा पर जोर दिया ज.यगा और अनेक बिंदुओ पर प्रवेश स्वीकार

दिया जायगा, अतः ऐसे बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर मिलेगा, जो स्कूल नहीं जा सकते हैं अथवा जिन्होंने स्कूल छोड़ दिया है।

प्रोत्साहन—सरकार समाज के दुर्बल वर्गों विशेष रूप से अनुसूचित जाति व इनके बच्चों और लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अनेक तरह से प्रोत्साहन और छात्रवृत्तियां दे रही है। दोपहर का भोजन लड़कियों को निःशुल्क पोशाक, कागज पेंसिल आदि की भी व्यवस्था की जाती है। समाज के सभी वर्गों को शिक्षा का समान अवसर प्रदान करने के लिए राज्य सरकारें योग्यता और आय के आधार पर छात्र वृत्तियाँ प्रदान करती हैं। स्कूली शिक्षा में विज्ञान की शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र बाल-कोष की सहायता से विज्ञान के अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था और विज्ञान पाठ्यक्रम में सुधार करके स्कूलों में विज्ञान की पढ़ाई में सुधार किया गया है।

साइट एक दूसरा क्षेत्र जहाँ गुणात्मक सुधार हो रहा है, शिक्षा प्रोद्योगिकी है। उपग्रह, दूरदर्शन शिक्षा कार्यक्रम साइट के अधीन शैक्षणिक प्रसारण को सुग्राह्य बनाने के लिए छः राज्यों के ४०० गाँव की पाठशालाओं में दूर दर्शन सेट लगाये जा रहे हैं। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद दिल्ली द्वारा आयोजित विज्ञान प्रतिभा खोज और अनुसंधान कार्यक्रमों से भी स्कूली स्तर पर शिक्षा के सुधार में सहायता मिलती है।

शिक्षा क्षेत्र में निवेश—

१९४७ में शिक्षा पर होने वाला कुल व्यय ५७ करोड़ रुपये था। अब यह बढ़कर १,६०० करोड़ रुपये हो गया। स्कूल स्तर पर सबसे अधिक उल्लेखनीय अन्तर दशा १० तक की सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में कार्यानुभव को शामिल करना है। इसका लक्ष्य छात्रों में बुनियादी कुशलता पैदा करना है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रमों को व्यवसायिक स्तर प्रदान करने पर जोर दिया गया है।

शिक्षा और राष्ट्रीय विकास को संयुक्त करने वाला एक दूसरा कार्यक्रम वयस्क शिक्षा कार्यक्रम है। इसके दो भाग हैं, एक का सम्बन्ध अशिक्षित, अर्द्ध शिक्षित वयस्क जनता के समूह से है और दूसरे का किसानों को उनके काम से सम्बन्धित शिक्षा देने से है। पहले का उद्देश्य उन लोगों को न्यूनतम शिक्षा देना है जिनको कभी प्रारम्भिक शिक्षा पाने का भी अवसर नहीं मिला। ऐसे लोगों को सामान्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा दी जाती है और इस प्रकार अपनी व्यावसायिक शिक्षा बढ़ाने का अवसर दिया जाता है। दूसरे कार्यक्रम के आधीन ग्रामीणों को उनके कार्य से सम्बन्धित शिक्षा दी जाती है। इससे १९७३-७४ के अन्त तक तीन लाख किसान लाभ उठा चुके थे। १९७४-७५ में १ ५० लाख किसान अपने कार्य से सम्बन्धित शिक्षा ले रहे थे। यह कार्यक्रम १०७ जिलों में चल रहा है। पांचवीं योजना के दौरान इसे अन्य विकास योजनाओं जैसे बगानी खेती, छोटी और सीमान्त खेती, औद्योगिक विकास और परिवार नियोजन से जोड़ देने का प्रस्ताव है।

अनौपचारिक शिक्षा—

इसके अतिरिक्त अनौपचारिक शिक्षा का कार्यक्रम है, जो शिक्षा विकास की मुख्य रणनीति है। इसका लक्ष्य किसी काम में लगे लोगों को बुनियादी साक्षरता प्रदान करना और शिक्षा प्रयत्नों को विकास कार्यों के साथ जोड़ना है, जिससे वे युवक, विशेष रूप से १५-२५ आयु वर्ग के विकास कार्यों में सार्थक रूप से लगे रह सकें। प्रारम्भिक पेशेवर और व्यावसायिक कुशलता के विकास की ओर जो युवकों को रोजगार और अपना काम शुरू करने के लिए तैयार करेगी, समुचित ध्यान दिया जायगा। देश के सभी जिला मुख्यालयों में नेहरू युवक केन्द्रों की स्थापना की जा रही है, ताकि उन युवकों को, जो छात्र नहीं हैं, राष्ट्र निर्माण की मुख्य धारा में शामिल किया जा सके। १९७४-७५ में ऐसे ११० केन्द्र देश भर में कार्य कर रहे थे।

उपर्युक्त विवरण पिछले दशक के दौरान शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति को दर्शाता है। खेलकूद और शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

खेलकूद को प्रोत्साहन—

इस क्षेत्र में पिछले दशक की एक उल्लेखनीय विशेषता ग्रामीण और जन जातीय युवकों की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए विशेष कार्यक्रम शुरू किये जाने की है। नेहरू युवक केन्द्रों के साथ विशेषज्ञों को सम्बद्ध किया गया है, क्योंकि ग्रामीण और जन जातीय युवक, अधिकांशतः खेल-कूद की मुख्य धारा से अलग रहे हैं। १९७०-७१ में ग्रामीण खेलकूद प्रतियोगिताओं का एक देशव्यापी कार्यक्रम शुरू किया गया है। इस कार्यक्रम के अधीन कुछ निश्चित खेलों में देश भर में खण्ड स्तर पर प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। इसमें अब तक ६ लाख युवक युवतियों ने भाग लिया है। इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाया जा रहा है।

देश के सभी नगरों, विश्वविद्यालयों एवं कालेजों में खेल-कूद सुविधाएं प्रदान की गयी हैं। नये स्टेडियमों एवं स्विमिंग पूल के निर्माण के लिए सरकारी सहायता दी जाती है। नीचे स्तरों पर खेल-कूद के विकास का एक न्यूनतम कार्यक्रम तैयार किया गया और राज्यों को कार्यान्वयन के लिए भेजा गया है। आशा है कि पांचवीं योजना के अन्त तक ८० लाख ग्रामीण और जनजातीय युवक खेल-कूद की गतिविधियों में भाग लेने लगेंगे।

इस क्षेत्र में देश ने उल्लेखनीय प्रगति की है। हिंदी और भारतीय भाषाओं एवं विदेशी भाषाओं के शिक्षण का कार्य न केवल पूर्व स्तर तक बनाए रखा गया है वरन् पिछले १० वर्षों में उसमें तेजी लायी गयी है। अहिंदी भाषी राज्यों में २,००० से अधिक अध्यापक हिन्दी शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। आगामी वर्षों में उसमें बढ़ोत्तरी की जायगी। विभिन्न राज्यों में हिन्दी अध्यापकों के १६ प्रशिक्षण कालेज काम कर रहे हैं। दो नये प्रशिक्षण केन्द्र मणिपुर और मिजोरम में शुरू किये गये हैं। गैर हिन्दी राज्यों के छात्रों को मैट्रिक के बाद हिन्दी की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। पांचवीं योजना के अन्त तक ऐसी छात्रवृत्तियों की संख्या २,५०० कर देने का प्रस्ताव है। स्वयंसेवी संस्थाओं को हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए अनुदान दिया जाता है। गैर हिन्दी राज्यों में हिन्दी की कक्षाएँ चलाने के अतिरिक्त हिन्दी टाइप की कक्षाएँ और पुस्तकालय भी चलाये जाते हैं।

सांस्कृतिक मामले—

स्वतन्त्रता के बाद संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए कई कदम उठाये गये हैं। साहित्य अकादमी, ललित कला अकादमी, संगीत नाटक अकादमी ने भारत की प्राचीन समृद्ध संस्कृति ने अनेक नये और सघन रूपों में अपने को प्रकट किया है, जिसे पुनर्जागरण 'रेनैसा' का नाम दिया जा सकता है। साहित्य, संगीत, कला, सभी मंचों की स्थापना साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों के ख्याति प्राप्त लोगों को पुरस्कार चलती फिरती प्रदर्शनियों का आयोजन और सांस्कृतिक संस्थाओं के साथ सदस्यों का आदान-प्रदान इन अकादमियों का नियमित कार्य है जो प्रतिवर्ष विस्तार और विविधता में प्रगति कर रहा है। इसके अतिरिक्त विदेशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत बनाने में सहायता मिलती है। प्रत्येक वर्ष अनेक दलों का आदान-प्रदान होता है, इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान से विभिन्न देशों की जनता एक दूसरे के समीप आती है। इससे विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान में सहायता मिलती है।

शिक्षा और संस्कृति पर अमरीकी उप आयोग की स्थापना एक प्रमुख घटना है। इस उप आयोग ने विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में परियोजनाओं को मंजूरी दी है। देश के भीतर स्वैच्छिक सांस्कृतिक संगठनों, व्यावसायिक, नृत्य, नाटक, थियेटर समूहों को सहायता देना, अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्पदा की रक्षा के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान प्रयोगशालाओं की स्थापना, विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में छात्रवृत्तियां, सांस्कृतिक प्रतिभा की खोज, छात्रवृत्ति योजनाएँ आदि प्रमुख सांस्कृतिक गतिविधियां हैं। इसके अलावा भारतीय नरतत्वीय सर्वेक्षण संगठन, भारतीय अभिलेखागार, राष्ट्रीय संग्रहालय नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और राष्ट्रीय पुस्तकालय, हमारी सम्पन्न विरासत को बनाए रखने के लिए निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार शिक्षा और संस्कृति के सम्पूर्ण क्षेत्र में आगे प्रगति के लिए सभी स्थितियां विद्यमान हैं।

अनौपचारिक शिक्षा : कुछ विचार बिन्दु

प्रभाकर सिंह
क्षेत्रीय सलाहकार (रा० शै० अ० एव प्र० स०)

हमारे सविधान मे केवल दस वर्षों मे ही न्यूनतम (६-१४ वय वर्ग) अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य सिद्धि की अपेक्षा की गयी, जो हमारे तात्कालिक उत्साह तथा आकांक्षा का द्योतक है। ब्रिटिश समय की औपनिवेशिक शिक्षा-व्यवस्था से छुटकारा पाने की सभी लोगो ने दुहाई दी। फलत बेसिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की तथाकथित नई सकल्पनाएँ उभरी। उत्तर प्रदेश मे आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने प्रस्तावो की बहुत चर्चा हुई और कुछ कार्य योजनाएं बनी। स्कूल और कालेजो की तेजी से वृद्धि हुई। परिणाम हमारे सामने है—निरक्षरो की सख्या में बढोत्तरी ' मन्द गति से प्रतिशत मे वृद्धि की बात छोडिए" और साथ ही शिक्षितो मे अतिशय बेरोजगारी, हतोत्साह और बढती हुई बेचैनी। एक ओर शिक्षा पर लागत मे कमी की बात उठाई जाती है, तो दूसरी ओर परिणामो के सन्दर्भ मे अपव्ययिता अथवा साधनो के सदुपयोग मे कमी का भी दोष लगाया जाता है। बडी विडम्बना की परिस्थिति है। १९७० तक शिक्षा के सम्बन्ध मे जो भी सुखाभास का अनुभव हो रहा था, उसका अन्त दिखाई देने लगा। कोठारी आयोग मे शिक्षा सुविधा, स्वरूप और व्यवस्था के विकल्पो के बारे मे सोचना, इस परिस्थिति को प्रदर्शित करता है। आज हम शैक्षिक सकट के ऐसे बिन्दु पर आ पहुँचे हैं, जो हमे कुछ कर गुजरने के लिए चुनौती देता है। ऐसा लगता है कि अब हमारे पास गम्भीर रूप से सोचने के लिए भी समय नही। शिक्षातन्त्र का कही विस्फोट न हो जाय, भय लगता है।

नैराश्य के गह्वर से उभरने के लिए हम नये विकल्पो की रज्जु को पकडने म प्रयासशील प्रतीत होते हैं। लोकनायक जयप्रकाश जी ने व्यक्ति के विकास तथा सामाजिक परिस्थिति के परिवर्तन हेतु शिक्षा की सक्षमता को स्वीकार करते हुए विचार व्यक्त किया है कि "अभाग्यवश औपचारिक शिक्षा व्यवस्था हमारे उद्देश्यो को पूरा नहीं करती है। दूसरी ओर यह उच्च और मध्य वर्ग के लोगो को भी, जो इससे लाभान्वित होते है गलत शिक्षा देती है। [भूमिका, एजूकेशन फार आवर पीपुल] सम्भवत अनौपचारिक शिक्षा विकल्पो के खोज की प्रवृत्ति म एक शृखला है।

शिक्षा के विकल्प—

प्राविधान की दृष्टि से शिक्षा के तीन स्रोत कहे जा सकते हैं (१) आकस्मिक (२) अनौपचारिक (३) औपचारिक। इनके शाब्दिक अर्थ पर न जाकर इनको सार्थक बनाने के लिए पारिभाषित करना जरूरी है। आकस्मिक शिक्षा [इनफोरमल अथवा इन्सीडेन्टल] हम हर समय अपने जीवन के अनुभवो के साथ मिलती रहती है जिससे हमारे ज्ञान, कौशल तथा भावना पक्ष की अभिवृद्धि अनायास होती रहती है। हम इसके बारे मे कोई सचेत अथवा सकल्पित प्रयास नही करते, किन्तु इस माध्यम का समाज के नेता अथवा सरकार सुविचारित सदुपयोग करके व्यक्ति और समुदाय को एक दिशा विशेष मे अग्रसर कर सकते हैं। औपचारिक शिक्षा सस्थान व्यवस्थापक शिक्षा को कहते हैं। जैसा कि हम सभी जानते हैं सस्थागत शिक्षा मे एक निश्चित पूर्णकालिक शिक्षाक्रम होता है। इस शिक्षाक्रम मे यथासम्भव एक प्रशासकीय क्षेत्र विशेष अथवा समुदाय विशेष को दृष्टि मे रखकर एकरूपता पायी जाती है। भवन, कर्मचारी, उपकरण आदि का एक व्यवस्था के अनुसार प्राविधान होता है। पेशेवर अध्यापको की नियुक्ति, शिक्षक प्रधान शैक्षिक कार्यक्रम, विद्यार्थी की पूर्णकालीन उपस्थिति जैसे नियमो का आचरण इसम निहित है।

अनौपचारिक शिक्षा के सम्बोधन का प्रयोग औपचारिक शिक्षा के विरुद्धार्थ म किया जाता है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। अनौपचारिक शिक्षा क

प्रहण मे सुव्यवस्थित सस्था, एक निश्चित भवन, एव सुनिश्चित और एकरूप शिक्षाक्रम पेशेवर अध्यापको की नियुक्ति, विद्यालय मे पूर्णकालिक उपस्थिति आदि नियमों का पालन जरूरी नही है। लेकिन इतना अवश्य है कि एक निश्चित योजना होती है और कुछ न कुछ व्यवस्था भी—ऐसी व्यवस्था जो अपने द्वारा व्यर्थ की बाधा उपस्थित नही करती। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि अनौपचारिक शिक्षा का एक प्रधान लक्षण नमनशीलता है। अनौपचारिक शिक्षा आकस्मिक शिक्षा की भाति केवल प्रसगवश ही नही है वह प्रयोजनबद्ध है। अत अनौपचारिक शिक्षा को आकस्मिक शिक्षा और औपचारिक शिक्षा के बीच की कडी कहना अधिक उचित होगा अथवा यो कहिए कि यह उन दोनो के सातत्य पर कही बीच या एक कार्यपरक समझौता है। कहा जाता है कि इन लक्षणो के कारण शिक्षा म अनौपचारिकता की प्रकृति वरदान सिद्ध हो सकती है। क्यो और कैसे? यह विचारणीय है। इसे कम व्यय साध्य क्यों बताया जाता है। इसकी उपादेयता के क्या आधार हैं? जो परिणाम एक व्यवस्थित शिक्षा से नही निकल सके, उनको एक ढीली व्यवस्था के द्वारा प्राप्त करने की क्या सम्भावना है?

औपचारिक शिक्षा का मोह भग

'कहा जा रहा है कि सार्वजनिक शिक्षा स्कूल के माध्यम से सम्भव नही है। • • "शिक्षा म समान अवसर एव वाछित ही नही, अपितु सम्भाव्य लक्ष्य है। किन्तु इस प्रसग मे अनिवार्य स्कूली शिक्षा को वैसे ही समझना चाहिए जैसे कि मन्दिर जाने से मुक्ति प्राप्ति का भ्रम।" (इवान इलिच डी स्कूलिंग सोसाइटी।)। स्कूली शिक्षा मानव समाज मे वर्ग भेद पैदा करती है, क्यो कि यह व्यय साध्य है। यह उत्पादनपरक व्यवसाय को कम, उपभोगपरक अधिक है। स्कूल स्कूल मे भेद होता है। 'अमीरो के स्कूलोका गरीबो के स्कूलो से अच्छा होना स्वाभाविक है।' गुनार मिर्डल चैलेन्ज आफ वर्ड पावर्टी। यह भी कहा जाता है कि "सस्थागत शिक्षा शैक्षिक असमानता वेध बनाने का कारक सिद्ध होती है' हेल्सी एजूकेशन आब्जर्वर पृ० ८३)। स्कूली अथवा सस्थागत शिक्षा, इसम कालेज, विश्वविद्यालय भी शामिल हैं, के द्वितीय महायुद्ध के पश्चात एकाएक मोहभग का क्या कारण हो सकता है? गाधी जी के विचारो पर आधारित बेसिक शिक्षा ने भी सस्था की लक्ष्मण रेखा का उल्लघन करने का साहस नही किया। अत वैसिक शिक्षा के सन्दर्भ मे अनौपचारिक शिक्षा का क्या महत्व है?

सस्थागत शिक्षा की असमानता का एक कारण बताया जाता है, किन्तु सोचने की बात है, कि यदि व्यवस्था से नियन्त्रित शिक्षाक्रम लोकतन्त्रीय समानता के सिद्धात का क्रियान्वयन नही कर सकता है, तो एक ढीली ढाली सी अनौपचारिक शिक्षा इस कमी को कैसे पूरा करेगी? शिक्षा एक बहुत नाजुक क्षेत्र है। उचित मार्गनिर्देशन अथवा नियन्त्रण के अभाव मे अनेक विकृतिया पैदा हो सकती हैं ऐसा देखा गया है कि शिक्षा तन्त्र पर हावी होकर विदेशी शक्तिया अथवा आतरिक शक्तिशाली वर्ग विशेष अपने स्वार्थों को सिद्ध कर लेते हैं। अफ्रीका के नये राष्ट्रो की शिक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव की ऐसी जड है कि वह उनकी आर्थिक सक्षमता को अपने स्वार्थों के अनुरूप मोड देते रहते हैं। यही नही उनमे आन्तरिक कलह और भावात्मक शैथिल्य पैदा करने मे भी नही चूकते। "जब स्वाधीनता प्राप्त कर ली, तब नेहरू तथा अन्य नेताओ ने पूरी शिक्षा व्यवस्था म विप्लवकारी परिवर्तन लाने की बात कही। किन्तु यही वास्तविक बात थी, जो भारत तथा कुछ हद तक श्री लका को छोडकर अन्य एशियाई देशो मे नही हुई।" (गुनारमिडल, एशियन ड्रामा) भय है कि अनौपचारिक शिक्षा ऐसी ही शैक्षिक बदमाशी के लिए आखेट स्थल न बन जाय और शैक्षिक असमानता का एक बहाना न हो जाय। सम्पन्न वर्ग के लिए औपचारिक शिक्षा, कमजोर वर्ग के लिए अनौपचारिक शिक्षा खतरनाक नुस्खा है। इसके लिए क्या सावधानी बरती जाय? नियन्त्रण तथा नियोजन का क्या स्वरूप हो, ताकि कार्य सुचारुरूप से चले और प्रशासनिक जजाल से बचत भी बनी रहे।

विकल्पो का संमेजित प्रयोग

जिन तीन विकल्पों की ऊपर चर्चा की गयी है, वे एक दूसरे के विरोधी अथवा निवारक नहीं हैं। संस्थागत शिक्षा का अपना महत्व और उसका सम्वर्द्धन भी होना है। जहाँ संस्थागत शिक्षा से काम नहीं चल रहा है, अथवा व्ययसाध्य सिद्ध हो रही है वहाँ अन्य विकल्पो का प्रयोग जरूरी है। इस दृष्टि से अनौपचारिक शिक्षा एक विरोधी विकल्प नहीं है, और वह अन्य विकल्पों का सम्पूरक है। उदाहरणार्थ ६–११ वय के छात्रों मे विशेषरूप से ग्रामीण क्षेत्रों म लगभग दो तिहाई का ह्रास है, क्योंकि वह बालक पूर्णकालिक स्कूली शिक्षा के लिए समय नहीं दे सकते। कुछ प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा पाकर कोई व्यक्ति कुछ और पढकर अपनी नौकरी म कुछ आगे बढना चाहता है, तो उसे अंशकालिक अथवा अपने समय की सुविधा के अनुसार आगे की शिक्षा प्राप्त करने की जरूरत है। ऐसी अन्य अनेक परिस्थितियां हमारे सामने आती हैं, जिनके सन्दर्भ में अनौपचारिक शिक्षा को एक सम्पूरक विकल्प के रूप मे चलाना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। ६–१४ वय वर्ग के स्कूल की अपूर्ण शिक्षा वाले बालकों के लिए अनौपचारिक शिक्षा की एक व्यापक योजना पर कार्य हो रहा है, जिसे केन्द्रीय सरकार की सहायता से राज्य सरकार चला रही है। इसकी एक प्रशासनिक व्यवस्था भी बनायी जा रही है। इसी तरह प्रौढ शिक्षा से सम्बन्धित भी एक अनौपचारिक शिक्षा का कार्यक्रम चल रहा है। इस प्रसग में यह तथ्य विचारणीय है कि औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम यथासंभव आकस्मिक शिक्षा के कार्यक्रम भी एक दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित हों।

देखने म आता है कि शिक्षा की विभिन्न योजनाएँ बहुधा एक दूसरे से इतनी अलग अलग करके चलायी जाती हैं कि जिस धन और श्रम के अपव्यय को हम शिक्षा के क्षेत्र म कम करना चाहते हैं वह इन कार्यक्रमो के प्रार्थक्य से उलटा बढने लगता है। ऐसा मालूम होता है कि प्रशासनिक सत्ता एवं व्यापक समवाय हेतु योगदान देने मे असमर्थ सिद्ध होती है। वास्तव में औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा की योजनाओं को एक दूसरे से सगठित होना चाहिए। सफलता के लिए चाहिए कि उनको अलग-अलग चलाया ही न जाय यहाँ तक कि इनको एक दूसरे से जोड़कर अर्थात् यौगिक रूप भी उचित परिणाम कारक सिद्ध नहीं होता, क्योंकि इस स्थिति मे भी कार्यकर्ता म व्यर्थ का दोहराव बनाता रहता है, उदाहरणार्थ यदि किसी दूसरे के गाव म तीस प्रौढ के एक केन्द्र को देखने के लिए एक पर्यवेक्षक जाय, ९–१४ वय वर्ग के लिये दूसरा, बालकों के प्राथमिक विद्यालय के लिए तीसरा तथा बालिकाओं के प्राथमिक विद्यालय के लिए चौथा नियुक्त होता है तो क्या इसे हास्यास्पद अपव्यय नहीं कहेंगे? वास्तव मे चाहिए कि इन योजनाओं को सार्थक और मितव्ययी क्रियान्वयन के लिए एक अत्यन्त सगठित अथवा समन्वित नियोजन। यह कैसे हो, यह गम्भीर और स्पष्ट चिन्तन का विषय है।

आइये अब अनौपचारिक शिक्षा पर विशिष्ट रूप से विचार करें।

अनौपचारिक शिक्षा का स्वरूप—
अनौपचारिक शिक्षा का केन्द्र

जैसा कि ऊपर सकेत कर चुके हैं, अनौपचारिक शिक्षा एक प्रवृत्ति है, जो अनेक रूपों मे व्यक्त होती है। इसके कुछ जाने माने रूप अथवा नाम अंशकालिक शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, प्रादेशिक शिक्षा, आजीवन शिक्षा, सतत शिक्षा, सेवाकालिक शिक्षा, अवकाश कालिक शिक्षा, पुनर्यौवन प्रशिक्षण एपरेन्टिसशिप, प्रसार शिक्षा आदि है। बस्तर की जनजातियों के और मुरियों के रोग बोग आदि जिनमे नवयुवक और नवयुवतियाँ सहवास और आचार की शिक्षा पाते है, इसके ही रूप कहे जा सकते है। उपर्युक्त तालाओं से स्पष्ट हो जाता है कि अनौपचारिक शिक्षा प्रयोजन सिद्ध होती है, और इसके लिए उद्देश्य सर्वाधिक महत्व की बात है, व्यवस्था तथा प्रशासन केवल साधन मात्र हैं, साध्य नहीं। 'खुला विश्वविद्यालय' तथा 'खुला स्कूल' जिसकी देश और विदेश मे काफी चर्चा है इसी प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। स्पष्ट है कि अनौपचारिक शिक्षा के नियोजन तथा क्रियान्वयन

का एक मुख्य सिद्धान्त नमनशीलता है। इस प्रकार की नमनशीलता सस्थागत अर्थात् औपचारिक शिक्षा में भी परिलक्षित होनी चाहिए। स्कूल कालेजो के कार्यक्रम म भी अनौपचारिकता के सिद्धान्त को यथासम्भव मुख्य स्थान मिलना चाहिए। स्कूल स बाहर जाकर विद्यार्थियो को स्वानुभव तथा सामाजिक प्रतिभागी के रूप में सीखने का अवसर इसी प्रवृत्ति क उदाहरण है। पाठ्येतर कार्यक्रम भी इस प्रभाव को परिलक्षित करते हैं। वह दिन अत्यन्त शुभ होगा, जब हमारी सस्थाएँ भी अनौपचारिकता को अधिक स अधिक ग्रहण करेंगी और साथ ही गत्या जनित कार्यकुशलता को भी अक्षुण्ण बनाएँगी। यहाँ यह स्पष्ट करना भी उचित है कि अनौपचारिक शिक्षा म भी एक सुनियोजित व्यवस्था होती है, किन्तु वह न्यूनतम कार्य कुशलता म बाधक नही।

अनौपचारिक शिक्षा की वर्तमान आवश्यकता

एक प्रवृत्ति के रूप में शिक्षा के क्षेत्र म अनौपचारिकता के बहुत प्रयोग है, और अनेक अवसर हैं, किन्तु उभरती हुई परिस्थितियों म निम्नलिखित प्रयोग विचारणीय है।

१ निर्बल अथवा वंचित वर्ग की प्रभावी शिक्षा, ये लोग पूर्ण कालिक शिक्षण के लिए समय नही दे सकते। इनको, इनकी सुविधा तथा काम से बचे हुए समय में शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है। इस श्रेणी म प्रौढ शिक्षा तथा विद्यालय की अपूर्ण शिक्षा प्राप्त बालकों की शिक्षा आती है।

२ आगे की शिक्षा—बहुत से लोग रोजी रोटी कमाने की चपेट में अधिक शिक्षा प्राप्त नही कर पाते किन्तु अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने के लिए समय निकाल कर आगे की शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। यही नहीं अधिक पढे लिखे लोग भी अपनी अभिरुचि अथवा ज्ञानवर्द्धन के लिए आगे की शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक हो सकते हैं।

३ नये रोजगार की शिक्षा—बहुधा तकनीकीय परिवर्तन तथा बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए यह जरूरी है कि आवश्यकतानुसार विशिष्ट [कौशलों] की शिक्षा आयोजित की जाय, ताकि एक रोजगार की खत्म होने पर कारीगर दूसरे रोजगार में जाने के योग्य अपने को बना सके। यह हमारे बढ़ते हुए औद्योगिकरण के सन्दर्भ में आवश्यक है।

४ पुनर्बोधन प्रशिक्षण कार्यक्रम—इनकी आवश्यकता स्वय सिद्ध है।

५ अवकाश के सदुपयोग हेतु शिक्षा—

६ "सामाजिक शिक्षा—समाज में परिवर्तन लाने हेतु उचित नागरिकता, नैतिकता तथा सामान्य ज्ञान, परिवार नियोजन से सम्बधित शिक्षा को देने की आवश्यकता है। अनौपचारिक शिक्षा और उसके अन्य प्रयोग के सबध म हम राष्ट्रीय प्रदेशीय और स्थानिक स्तर पर सोचने की आवश्यकता है और साथ ही इन आवश्यकताओं में प्राथमिकता निश्चित करने की भी। इस हेतु विशेषज्ञ सहयोग अपेक्षित है, जो सर्वेक्षण और शोध के आधार पर मार्गदर्शन करें।

अनौपचारिक शिक्षा की कार्यविधि

अनौपचारिक शिक्षा म अनेक विधियों का प्रयोग किया जा सकता है जैसे अल्प कालीन प्रशिक्षण शिविर सायंकालिक शिक्षण पत्राचार, दूर दर्शन, विचार गोष्ठियाँ, कार्य गोष्ठियाँ आदि आदि। किस परिस्थिति में किस विधि का प्रयोग सभव है इसके लिए उचित योजना तथा कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है। अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्थापरक न होते हुए भी इसके लिए पूरी तैयारी और विस्तारपूर्वक योजना बनाने की आवश्यकता है। अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों को पाकशाला अथवा घरेलू दवाइयों के नुस्खे के रूप में शार्टकट अपनाना उसके प्रति अन्याय करना है। इस प्रसग में निम्नलिखित तथ्य विशेष रूप से विचारणीय है—इनके प्रचार करने की आवश्यकता है। साधारण अभियान के सन्दर्भ में तो विशेष रूप से उत्प्रेरणा सम्बन्धित प्रचार कार्य करने की जरूरत पड़ेगी। इसके लिए गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है।

२—सामाजिक आवश्यकताएं प्रमुख आधार अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों को सामाजोपयोगी होने की आवश्यकता है। यदि सामाजिक आवश्यकताओं

को राजनैतिक जागरूकता से सम्बन्धित कर दें तो यह और आकर्षक बन जाती है और राजनैतिक शिक्षा का एक उपयोगी माध्यम बन जाती है। पौलोफ्रेरे के ब्राजील में ऐसे प्रयोग बड़े सफल सिद्ध हुए हैं। यह एक अत्यन्त नाजुक प्रयोग है। इसकी क्या सम्भावनाएँ हमारे लिए हो सकती हैं?

३—सीखने के साथ भुलाने का कार्यक्रम अनौपचारिक शिक्षा के बहुत से कार्यक्रम ऐसे होते हैं जिसमें पहले सीखी हुई बातों में सुधार लाने की बहुत जरूरत होती है। वंचित वर्गों की शिक्षा के सन्दर्भ में उनकी मान्यताओं अंधविश्वासों तथा भ्रमों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा देना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य हो जाता है। इन परिस्थितियों का सामना किया जाय यह एक सुनियोजित चिन्तन का विषय है।

४ नमनशील पाठ्यक्रम जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है अनौपचारिक शिक्षा में स्थानीय आवश्यकताओं में तथा सामाजिक परिस्थिति को देखकर शिक्षाक्रम बनाने की आवश्यकता है। अनौपचारिक शिक्षा की इकाइयाँ संख्या की दृष्टि से इतनी छोटी होती है कि पाठ्क्रम रचना का विशेष काम इनके स्तर पर कैसे हो? कहा जाता है कि कुछ कोरा पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है और कुछ स्थानीय समस्याओं को लेकर सामादेश करने के लिए छोड़ा जा सकता है। कहना आसान है करना कठिन है। वास्तविकता की दृष्टि से इस पर सोचने की जरूरत है।

५—सामान्यताओं के प्रति जागरूकता तथा विचारों के निर्माण यदि वास्तव में अनौपचारिक शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाना है इसे विचारों के प्रचार और प्रसार और उन पर जनसाधारण को समीक्षात्मक रूप से अवसर देना आवश्यक है। उन्हें सोचने के तरीकों को बताना होगा। लेकिन इस बात की आवश्यकता है कि यह प्रोग्राम बड़े धैर्य और लगन से सजाये जाँय। इस सम्बन्ध में उचित विधियों का ज्ञान कराना है, और उनमें शिक्षा देने वालों को प्रशिक्षित भी करना है।

६—कार्याधारित शिक्षा अधिकांश लोग जो शिक्षा छोड़ देते हैं उनके छोड़ने में एक प्रमुख कारण शिक्षा की निरसता भी होती है। शिक्षा को कार्यकलापों से जोड़ कर निरसता को दूर किया जा सकता है।

७—समस्या आधारित शिक्षाक्रम इसकी उपयोगिता स्पष्ट है।

८—व्यक्तिपरक शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत हम बहुधा ऐसे लोगों को लाते हैं जो पढ़ाई से एक बार मुख मोड़ चुके होते हैं। अतः इन पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है। प्रौढ़ों के प्रसंग में यह तो और भी आवश्यक हो जाता है।

९ स्व शिक्षा तथा सह शिक्षण का प्रयोग आगे की शिक्षा के अनौपचारिक कार्यक्रम के प्रसंग में सर्वेक्षण का विशेष महत्व है।

१० —अनौपचारिक शिक्षा के विशेष प्रत्याशी वर्ग वैसे तो अनौपचारिक शिक्षा के प्रत्याशी अनेकानेक वर्गों के लोग हो सकते हैं जिनके बारे में ऊपर संकेत किया जा चुका है। किन्तु वर्तमान परिस्थिति में एक आन्दोलन के रूप में शिक्षाक्रम चलाने की बात है। उन लोगों के लिए प्रोग्रामों को तीन वर्गों में बाँट सकते हैं —

(क) साक्षरता अभियान तथा शिक्षा का सार्वजनीकरण।

(ख) उत्पादनपरक शिक्षा।

(ग) सामाजिक शिक्षा।

इस कार्यक्रम में ६ १४ वय के विद्यालय छोड़ने वाले अथवा विद्यालय में न जाने वाले बालक तथा १५ ४ या इससे अधिक आयु वाले अशिक्षित प्रौढ़ विशेषरूप से आते हैं। इनके लिए (१) साक्षरता तथा (२) उपयोगी शिक्षा, जिसमें उत्पादन प्रेरित तथा सामाजिक शिक्षा भी सम्मिलित है दोनों ही प्रकार के कार्यक्रम निहित हैं। इस समय साक्षरता पर ही विशेष बल तथा प्राथमिकता दी जा रही है। ६-१४ वय के बालक बालि-

कामो के लिए यह भी सोचने की आवश्यकता है इनको किस तरह द्रुतगति से शिक्षण देकर औपचारिक शिक्षा की धारा म डालकर कक्षा ८ तक की योग्यता प्रदान कराई जाय। इनम जो छात्र प्रतिभा सम्पन्न हैं उन्हे और आगे की शिक्षा देकर बढ़ने का अवसर दिया जाय। इस प्रसग म द्रुतगति शिक्षण के लिए १ पाठ्यक्रम की सख्या तथा २ अधिगम के मूल्याकन के स्वरूप के बारे म विशेष रूप से सोचने की जरूरत है। यह भी आवश्यक है कि इन औपचारिक शिक्षा केन्द्रो को उचित प्रतिष्ठा दी जाय। जिससे इनके शिक्षितो तथा शिक्षक दोनो ही हीन भावना ग्रस्त नही हो। साथ ही इन केन्द्रो का साहस भी बढ़े।

प्रौढ़ो की साक्षरता के बारे मे उनकी अभिरुचियो तथा उनकी मान्यताओ एव परिपक्व मानस के अनुरूप शिक्षाक्रम बनाने पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। भाषा शिक्षा पूरी पढाई की कुन्जी कही जा सकती है किन्तु इस सम्बन्ध म जो पाठ्यक्रम और साहित्य मिलता है, आकर्षक नही है, क्या उसकी विषय वस्तु सम्भ्रान्त नगरो के मस्तिष्क की ही उपज मात्र तो नही है?

उत्पादन परक शिक्षा

देश के आर्थिक विकास के सन्दर्भ मे यह आम बात कही जाती है कि हमारे किसान और कारीगरो की उत्पादन क्षमता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से अति न्यून है। इसम वृद्धि हेतु मनुष्य मे लागत के सिद्धात पर उचित तकनीक के प्रसार की आवश्यकता है। किसानो और कारीगरो को उसके सीखने और प्रयोग करने के लिए सक्षम बनाना है। इस सन्दर्भ मे अनौपचारिक शिक्षा की छत्रछाया मे विशेष कायक्रम चलाना जरूरी है।

इस प्रसग मे महिलाओं की भूमिका अत्यन्त महत्व पूर्ण होनी चाहिए क्योकि वे अधिकांशत घर के चूल्हे चक्की तक ही सीमित रह जाती है। महिलाओ के हस्तकौशल की क्षमता का प्रयोग करके अनेक प्रकार की दस्तकारियो का प्रसार किया जा सकता है। क्या इसके लिए हमारे सामने कोई प्रोग्राम है?

सामाजिक शिक्षा

सामाजिक शिक्षा की चर्चा बड़ी पुरानी है। इससे सम्बन्धित विभाग और उपविभाग भी कम नही थे। शायद फैशन के रूप म आये और उसी के अनुरूप लुप्त भी हो गये। इसके प्रोग्राम इधर उधर बिखर गये। आवश्यकता है कि सामाजिक शिक्षा के व्यापक कायक्रम चलाए जाय जो साक्षरता अभियान और उत्पादक कायक्रमो से जुड़े हो। इस प्रसग मे निम्नलिखित उद्देश्य विशेषरूप से ध्यान देने योग्य है।

(१) बच्चो की देख भाल
(२) घरो की साज सज्जा
(३) स्वास्थ्य शिक्षा तथा खेल कूद
(४) सांस्कृतिक तथा मनोरजन कार्यक्रम
(५) अच्छी नागरिकता की शिक्षा जिसम नेतृत्व की शिक्षा भी सम्मिलित है।

नागरिकता की शिक्षा के साथ राजनैतिक शिक्षा का जोड़ना समीचीन प्रतीत होता है। अब से तीन हजार वर्ष पूर्व पेरिक्लीज ने कहा था कि एथेन्सवासी अन्य लोगो से इस बात म श्रेष्ठ हैं कि उनका प्रत्येक नागरिक राजनीति मे सक्रिय भाग लेता है। यदि यह आदर्श आजकल के सदर्भ मे हमे मान्य हो तो हमे क्या करना चाहिए? विशेष रूप से दलितो और ग्रामीणो की शिक्षा के सन्दर्भ मे?

बच्चो की देख रेख के सम्बन्ध मे क्या यह उपयुक्त होगा कि गन्दी बस्तियो और ग्रामो मे शिशु केन्द्र खोले जाय। आगनबाडी और बालबाडी के कार्यक्रम कुछ राज्यो मे काफी सक्रिय है। उत्तर प्रदेश के सदर्भ मे इसके बारे मे सोचा जाय?

व्यवस्था तथा क्रियान्वयन

जैसा कि ऊपर सकेत कर चुके हैं अनौपचारिक शिक्षा को भी एक तरह की व्यवस्था चाहिए और सफलता के लिए एक उत्कृष्ट नियोजन। राष्ट्र की और विशेषरूप से हमारे राज्य की परिस्थितियो को देखते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि अनौपचारिक शिक्षा

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

शिक्षा पर राष्ट्रीय-नीति का प्रारुप

डा० माल्कम आदिशेषैया

सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री एवं संसद-सदस्य

इस निबन्ध में विद्वान लेखक ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के नवीन प्रारुप के एक-एक अंश का संक्षिप्त परन्तु तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत कर, समाज के सभी वर्गों के लोगों को इसका भली भांति अध्ययन करने की नेक सलाह दी है। लेख के अन्तिम भाग में इन्होंने कतिपय इसकी कमियों की ओर भी संकेत दिया है। वर्तमान सरकार का यह पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि इस नवीन प्रारुप को अन्तिम रूप में स्वीकार करने से पहले वह इन कमियों का निराकरण करें ताकि नवीन नीति के संदर्भ में यह शिक्षा-पद्धति किसी प्रकार की कुण्ठाओं से मुक्त रह कर राष्ट्र की युवा पीढ़ी को, परिवार, समाज तथा राष्ट्र के प्रति शत प्रतिशत उपादेय बनाने में सफल हो सके। —संपादक

सरकार ने शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति का प्रारूप, १९७९ में प्रस्तुत किया है। साढ़े सोलह पृष्ठों के इस विवरण-पत्र के कतिपय अंगों को प्रारम्भ में ही एक प्रकार के प्रस्तावना के रूप में स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

प्रथमत यह सरकारी नीति का विवरण पत्र है, किसी एक मंत्री अथवा मंत्रालय के किसी अधिकारी का वक्तव्य नहीं। यह एक नीति-विवरण-पत्र है जो केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा अनुमोदित है।

दूसरे, यह प्रारूप है। जैसा कि विवरण-पत्र के प्रारूप में कहा गया है, इसमें संसद कोई संशोधन अथवा परिवर्तन कर सकती है।

तीसरे, जनता सरकार के सत्तारूढ़ होने के समय से ही लेकर दो वर्षों के कई विस्तृत विचार-विमर्श का फल है। वस्तुत पहले ही दिन प्रधानमंत्री और शिक्षा मंत्री ने विचार विमर्श शुरू कर दिया था, जिसके लिए १९६८ की संसद द्वारा स्वीकृत शिक्षा की प्रथम राष्ट्रीय नीति में व्यवस्था भी है कि हर पांच वर्ष पर नीति विवरण पुनरीक्षित होना चाहिए। इसका पुनरीक्षण हमें १९७४ में ही कर लेना चाहिए था। पर हम चूक गये। इस प्रकार इस प्रथम विवरण-पत्र के स्वीकृत हुए आज १० वर्ष हो पूरे और पिछले दो वर्षों में कई बार विचार विमर्श होते रहे हैं। शिक्षा मंत्रालय ने, और स्वयं प्रधान मंत्री ने भी विशेषज्ञों, शिक्षाविदों तथा राज्यों के शिक्षा मंत्रियों से कई बार विचार विमर्श किए, बल्कि हर राज्य के शिक्षा मंत्री से विचार-विमर्श करने के लिए दो बार उनके सम्मेलन आयोजित किए गए। इस प्रकार प्रत्येक राज्य को माध्यमिक शिक्षा बोर्ड सम्मेलन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इत्यादि के साथ नीति के प्रारूप की जांच करने और उस पर टीका टिप्पणी करने का अवसर मिला था।

यह विवरण पत्र ऐतिहासिक निरन्तरता और साथ ही नयी उद्भावनाओं – कतिपय नयी बातों का परिपक्व सम्मिश्रण है। यह बिल्कुल नयी चीज हो, ऐसी बात नहीं। ऐसा हो भी नहीं सकता। शिक्षा अपना यह रूप नहीं भूल सकती कि वह एक स्थायी क्रिया है, जीवन पर्यन्त है, एक निरन्तर प्रक्रिया है, परीक्षण करती है। इसलिए ऐतिहासिक निरन्तरता का तत्व इसमें है और हममें से कोई अगर इसमें केवल नयी बातें ही देखना चाहें तो यह गलत होगा। इसमें नयी उद्भावनाएं भी हैं, किन्तु भारत की शाश्वत शैक्षिक प्रणाली के विस्तृत चौखटे के भीतर इस नीति विवरण का व्यापक प्रारूप है और इसमें शिक्षा के सभी अंग, प्राक्प्राथमिक स्तर, प्राथमिक स्तर, वयस्क शिक्षा स्तर, माध्यमिक

शिक्षा स्तर, विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा स्तर तथा तकनीकी, कृषि विषयक और चिकित्सकीय शिक्षा सबका समावेश है। इस विवरण-पत्र में इस बात की निश्चित व्यवस्था है कि प्रत्येक स्तर पर शैक्षिक प्रणाली का शेष समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध बने रहना चाहिए।

इस नीति विवरण के प्रारूप के निम्नलिखित महत्वपूर्ण पक्षों पर मैं विशेष बल देना चाहूँगा।

प्रथम, इस विवरण-पत्र के वे आदर्शपरक अंश मुझे बहुत पसन्द आये जहाँ कहा गया है कि शिक्षा का लक्ष्य है व्यक्ति का विकास और व्यक्ति के विकास से ही सामाजिक विकास सम्भव है। इस लक्ष्य में वस्तुतः सत्य यानी स्वयं नैतिकता पर अधिक जोर है। उदाहरण के लिए उसमें कहा गया है कि सत्यपूर्ण जीवन के द्वारा व्यक्ति का विकास ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए और जहाँ पाँच व्यापक शीर्षकों में शिक्षा के प्रयोजन की चर्चा है वहां इस बात पर जोर है कि यह प्रयोजन शिक्षण से हटकर ज्ञानार्जन होना चाहिए। बिल्कुल ठीक। समस्त शिक्षा ज्ञानार्जन ही तो है, शिक्षण तो मात्र एक साधन है।

द्वितीय, इस प्रयोजन में गांधीवादी शिक्षादर्शन के तीन मूल तत्वों का समावेश किया गया है। एक-समस्त ज्ञानार्जन के प्रति गाँधी का आत्म निरीक्षणात्मक दृष्टिकोण, इसका तात्पर्य यह कि ज्ञानार्जन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो आपके ही भीतर होती है, वह ऊपर से थोपी नहीं जाती। दूसरा—हाथ और हृदय के परस्पर सम्बन्ध पर उनका शिक्षा के प्रचलित रूप—बौद्धिक कार्य और शारीरिक कार्य में समन्वय स्थापित करता है, और तीसरा है शिक्षा के सामाजिक दायित्वों में गाँधी जी की आस्था।

इस प्रकार शिक्षा के प्रयोजन का तीसरा भाग है समुदाय-सेवा तथा रचनात्मक और सामाजिक उपयोग के कार्यों में भाग लेना, और अन्त में नैतिक शिक्षा पर पुनः जोर दिया गया है जिसकी, मेरी दृष्टि में, हमारे जीवन के इस चरण में बहुत जरूरत है। नैतिक शिक्षा सभी विषयों में अन्तसम्बन्धित पाठ्यक्रमों और सहपाठ्यक्रमी कार्यक्रमों के द्वारा पाठ्यक्रम का एक अंग हो जानी चाहिए, और यह सभी अध्यापकों और समस्त संस्थाओं का दायित्व होना चाहिए।

तब मैं उस उपाय पर जोर दूंगा जिससे शिक्षा एक ओर तो जीवन पर्यन्त क्रिया बनी रहे, स्कूल तथा कालेज अथवा वयस्क साक्षरता के क्लास, दस, छह वर्ष, आठ वर्ष बारह वर्ष के लिए न रहे, और दूसरे, प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह बच्चा हो या वयस्क, अपने ज्ञानार्जन का रास्ता चुनने के लिए स्वतन्त्र है। उस पर पाठ्यक्रम की कोई खास पद्धतियां, शिक्षा प्रणालियाँ और इस तरह की चीजें लादी नहीं जानी चाहिए।

चौथे में, प्राथमिकताएँ स्पष्ट कर दी गयी हैं। इसमें एक नयी उद्भावना है। एक तो प्रारम्भिक शिक्षा को नितान्त प्राथमिकता दी गयी है अर्थात् विवरण-पत्र में कहा गया है कि संविधान की व्यवस्था के अनुसार, १४ वर्ष तक की शिक्षा की अगले दस वर्षों में निश्चित व्यवस्था हो जायेगी और दूसरे, वयस्क शिक्षा को उच्च प्राथमिकता है। जहाँ तक माध्यमिक शिक्षा की बात है, कहा गया है कि उसका बहुत प्रसार नहीं, उसमें सुधार होगा और व्यवसायीकरण की व्यवस्था होगी। समस्त माध्यमिक शिक्षा के और खास अन्तिम दो वर्षों के व्यवसायीकरण की नयी दृष्टि को अपनाया गया है, और साथ ही उच्च शिक्षा में एक ओर तो संस्थागत-स्थायित्व की व्यवस्था होगी और दूसरी ओर शिक्षा की विभिन्न गैर औपचारिक प्रणालियों के द्वारा शिक्षा के इच्छुक व्यक्तियों के लिए उसके अवसर उपलब्ध रहेंगे।

पाँचवां, प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा ही रहेगी। यह एक नयी उद्भावना है, क्योंकि आप यह समझ लें कि पूर्वप्राथमिक स्तर से लेकर पी० एच० डी०, डाक्टरी शिक्षा, इन्जिनियरी की शिक्षा और कृषि शिक्षा के लिए नीति निर्धारित है कि हमें क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग को और बढ़ाना चाहिए। भविष्य के लिए यह बड़े महत्व की बात है। इससे हम उन सभी देशों के समकक्ष हैं जहाँ समस्त वास्तविक शिक्षा स्वयं अपनी भाषा, अपनी मातृभाषा में दी जाती है।

किन्तु हमारे देश म एक समस्या है जो अन्य देशों म इस हद तक नहीं है। हमारे देश मे कई भाषाएं--१४ प्रमुख भाषाएँ हैं। एक बहुत रोचक और महत्वपूर्ण सुझाव है कि प्राइमरी स्कूलों म काम के घण्टे घटाकर न्यूनतम कर देने चाहिए जो तीन घण्टे प्रतिदिन से अधिक न हों। कोई बधा बँधाया शैक्षिक वर्ष नहीं होना चाहिए। मतलब यह है कि ६ मास, १२ मास का न हो। वह प्राइमरी स्कूल हो जिसका समय स्थानीय आव श्यकताओं के अनुसार निर्धारित हो। अगर यह कार्या न्वित हुआ तो प्राइमरी स्कूल की बिल्कुल कायापलट ही हो जायगी। हमारे बच्चों के लिए तीन घण्टे प्रतिदिन काम के दिनों की संख्या पहले से ही नहीं बल्कि उनके खेती के काम और जिम्मेदारी के अनुसार निर्धारित होगी।

उधर वयस्क शिक्षा मे इस बात पर जोर है कि वह मात्र साक्षरता ही प्राप्त कर लेना नहीं है, बल्कि एक ओर तो कार्यकौशल प्राप्त करना और दूसरी ओर सामाजिक जागरूकता का होना है। मुझे यकीन है कि नीति विवरण में यह बात महसूस की गयी है कि इसमे एक अंतर्विरोध है क्योंकि जैसे ही वयस्क शिक्षा द्वारा गरीब, भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की जमात को अपनी स्थिति और शोषण का एहसास होने लगेगा, ग्रामीण शक्ति संरचना इस कार्यक्रम को रोकने और खत्म करने म कुछ उठा न रखेगी।

माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की मैं चर्चा कर चुका हूं, जिसम सामाजिक उपयोग के रचनात्मक कार्य और विभिन्न विशेषज्ञतापूर्ण व्यावसायिक कार्यक्रमों के द्वारा माध्यमिक विद्यालय के सभी छात्रों को किसी न किसी प्रकार का व्यावसायिक प्रशिक्षण मिल जायगा और कुछ को तो बिल्कुल पूरी अवधि का प्रशिक्षण प्राप्त होगा। यहाँ तक उच्च शिक्षा की बात है, इसमें गैर औपचारिक पद्धतियों पर जोर दिया गया है।

जैसा कि मैं बता चुका हूं कि यह नीति विवरण अभी प्रारूप की स्थिति मे है और आप मे से हर किसी को इसे पढ़ लेना चाहिए, माता-पिताओं को, छात्रों को, अध्यापकों को, उद्योगपतियों को, मजदूर संघों को और सबसे बढ़कर संसद के सदस्यों को, जिनके समक्ष यह प्रस्तुत किया गया है इसकी जाँच परख करनी चाहिए। खुद मेरे सामने भी छह या सात प्रश्न हैं, जिनकी व्यवस्था कर देना आवश्यक है। पहला, प्राथमिक शिक्षा म जो बर्बादी होती है उसम यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यह सब गरीबी के कारण है। यह बर्बादी रोकने मे स्कूल अन्तिम रूप से कुछ नहीं कर सकते हैं। हम जब गरीबी का उन्मूलन कर देंगे तभी गरीब तबकों के सभी बच्चे स्कूल म पढ़ सकेंगे। दूसरा मैं यह उक्ति पसन्द नहीं करता कि माध्यमिक शिक्षा सावधिक यानी टर्मिनल है। कोई भी शिक्षा टर्मिनल नहीं है। स्वयं नीति विवरण मे ही कहा गया है कि शिक्षा एक जीवन पर्यन्त क्रिया है, इसलिए 'टर्मिनल' शब्द को हटा देना चाहिए, क्योंकि जो व्यक्ति माध्यमिक शिक्षा समाप्त कर जीविकोपार्जन करते रहना चाहते हैं उन्हें फिर आकर अपनी इच्छा के अनुसार उच्च अथवा व्यावसायिक शिक्षा शुरू करने की स्वतन्त्रता रहनी ही चाहिए तीसरा, मेरा ख्याल यह है कि उच्च शिक्षा का खण्ड कमजोर है, क्योंकि आज शिक्षा का वास्तविक संकट प्राथमिक शिक्षा मे नहीं है, माध्यमिक शिक्षा मे नहीं है, वयस्क शिक्षा मे नहीं है हमारे विश्वविद्यालयों और कालेजों म है। किन्तु इस बात को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है। डाक्टरी शिक्षा का खण्ड भी अधूरा है यह एक ऐसे आर्डर की तरह है जो मुंह मे पानी तो ला दे पर बात वहीं खत्म हो जाए। सांस्कृतिक खण्ड तो बड़ा दयनीय है। इस त्रिभाषायी फार्मूला की बात दुहरायी गई है पर हम अच्छी तरह जानते हैं कि तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यों मे द्विभाषायी फार्मूला है और यहाँ उत्तर भारत में ही कुछ राज्य हैं जहाँ एक भाषायी फार्मूला है। इसलिए यह बात स्पष्ट कर दी जानी चाहिये यह त्रिभाषायी फार्मूला किस प्रकार एक राजनीतिक नारे के अलावा और भी कुछ है। तब समस्या है पब्लिक स्कूलों की, और उन्हें सामान्य प्रणाली के अधीन करने के लिए पब्लिक स्कूल के अधिकारियों म

बड़ी सावधानी से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता होगी।

और अन्त में अध्यापक विषयक खण्ड, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है, बिल्कुल दकियानूसी है और उस ओर भी कुछ करना आवश्यक है। अपनी यह वार्ता मैं इन्हीं शब्दों के साथ समाप्त करूँगा कि यह एक अच्छा विवरण-पत्र है जिस पर हमें विचार, चिन्तन-मनन करना चाहिए, और इसमें प्रत्येक व्यक्ति और प्रधान मंत्री के भी प्रयास की स्पष्ट छाप है। बल्कि प्रधान मंत्री ने अनेक अवसरों पर कहा कि काश "वे शिक्षा मंत्री होते।" इस कथन से निहित उनका भाव मैं समझ सकता हूं।

(पृष्ठ ४२ का शेषांश)

के उपर्युक्त तीनों कार्यक्रमों को बड़े पैमाने पर आन्दोलन के रूप में चलाया जाय। बड़े पैमाने पर चलाने से इकाई-व्यय भार कम होगा और बहुत सी कठिनाइयों को तो आन्दोलन की आंधी अपने आप उड़ा ले जायेगी। ऐसे आन्दोलन को गतिशील और प्रभावी बनाने के लिए वर्तमान ढंग का प्रशासन सम्भवतः कारगर सिद्ध न हो। प्रशासन कैसा हो और उसकी क्या संरचना हो? यह एक खुले विवाद का विषय है।

शोध तथा मूल्यांकन

अनौपचारिक शिक्षा की जो तस्वीर हमारे सामने उभर कर आती है उससे यही लगता है कि उसके क्रियान्वयन के लिए स्कूली शिक्षा की अपेक्षा कहीं अधिक पहल, समझदारी तथा कल्पना शक्ति की जरूरत है। ऐसी परिस्थिति का समानरूप से सामना करने के लिए अधिक जानकारी चाहिए। यह जानकारी सर्वेक्षण, प्रयोग तथा शोध द्वारा ही मिल सकती है। यह कैसे और कहाँ सम्पन्न हो? यह एक मूलाधार आवश्यकता है। इसी से सम्बन्धित निरन्तर कार्यक्रम मूल्यांकन का आयोजन भी होना जरूरी है। आज कल ऐसे मूल्यांकन से हम सभी कतराते हैं। जब करोड़ों रुपये स्वाहा हो जाते हैं तब पूछ-ताछ होती है कि क्या कोई लाभ हुआ है। इस परिस्थिति से कैसे बचें?

卐

किसी काम मे लगा देते थे। इस बारे म उनकी सेवा नेपाल के स्व तुलसी मेहर की कोटि की थी। प्रभाकर जी के द्वारा इस प्रकार की पारिवारिकता का दायरा बढता गया, बढता गया। इसका कारण था उनका स्फटिकवत् व्यक्तिगत चरित्र और अगाध प्रेम।

मैंने उनके अस्पताल काल मे देखा कि वे दूसरे व्यापक रचनात्मक कामो मे नही पडे थे। अपने दायरे म रहकर जो बन पडा, कर रहे थे। उसमें भी व्यक्तिगतरूप से जो भी व्यक्ति की सहायता हो सके, उस पर उनका बल था। शब्दो से नही स्नेह कार्य स हमें दुनिया जीतें, ऐसा उनका मानना था। जब तक भूदान आन्दोलन शुरू नही हुआ, वे सेवाग्राम वर्धा के बाहर के व्यापक क्षेत्र से कम ही सम्बन्ध रखते थे। विनोबा की आज्ञा से भूदान कार्य निमित्त आंध्र प्रदेश का सर्वोदय कार्य उनका क्षेत्र बना और तब से एक पैर सेवाग्राम और दूसरा आंध्र म रखते थे। उनका कहना रहता कि, रात को मैं जब भी, जहां भी सोता हू अनुभव करता हू कि बापू के आश्रम मे, सेवाग्राम मे ही हू और सुबह उठ कर उन्ही के कामो मे लग जाता हू। उनका दावा रहता कि रात की उपस्थिति सेवाग्राम मे गिनी जानी चाहिए। वे सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान बनाये जाने पर उसके मंत्री बने और हाल तक उस पद को निभाते रहे।

आंध्रप्रदेश मे सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओ से प्रेम का संपर्क रखकर उन्हें परस्पर जोडने का कार्य तो वे करते ही रहे पर उनकी दूसरी बडी विशेषता रही राजशक्ति के साथ नैकट्य प्राप्त करने की। दिल्ली मे हो या प्रदेश मे वे बडी जल्दी मंत्रीगणो से मिलकर उनका सहयोग प्राप्त कर लेते थे। बापू, राजेन्द्र प्रसाद, पंडित नेहरू, इन्दिरा जी सभी के पास उनका आना-जाना रहता था। मुझे कभी कभी शक होता है उनकी वेशभूषा बापू के अनुसार थी और उनका मधुर तथा निश्छल स्वभाव और निश्छल श्रद्धा यह सब सामने वाले को बापू की सहज याद दिलाते और अपने दिल की बात प्रभाकर जी को कहने की उसकी इच्छा होने। जो हो बडो-बडो मे उनका सम्बन्ध रहता था और उसके द्वारा वे अनेक सेवा कार्य कराने म सफल होते थे। किसी का कैसा भी कार्य हो, उसके प्रति द्रवित होकर वे उस काम को उठा लेते और जहां भी जाना-आना हो, दौड धूप कर के सुलझाते थे। उनके इस गुण से बहुतों को सहारा मिलता। यद्यपि सामाजिक कार्य और व्यक्तिगत कार्य के बीच की सीमारेखा मे इससे व्यवधान आता, पर उनका निज का मानना था कि उनकी वृत्ति सामाजिक हित की दृष्टि से ही सब कामो को देखने की है।

जिन सेवा-सस्थाओ से उनका घनिष्ठ सम्पर्क था उनमे प्राकृतिक चिकित्सा का स्थान था। उसके लिए उन्होने बहुत काम किया और अनेक उपचारालयो को सहायता पहुंचायी। उनके अपने जीवन मे भी वे प्राकृतिक सिद्धान्तो का अमल करते थे और उनकी अंतिम बीमारी मे भी जब तक उनको होश रहा दवाई लेने से इन्कार किया। शरीर से वे फुर्तीले और गठीले थे। कद छोटा और इकहरा था, पर काम करने की उनकी क्षमता किसी से कम न थी। उनका प्रवास तो इतना अधिक था कि कभी कभी तो आधा महीना रेल मे ही प्रवास रहता। अपने लिए, कष्ट सहन करने की उनकी आदत थी, पर दूसरे का दु ख देखा नही जाता था।

१९७७ मे आंध्र मे तूफान की चपेट मे कृष्णा जिले का दिवी तालुका [तहसील] सबसे अधिक प्रभावित हुआ। उसे उन्होने अपना क्षेत्र मानकर बहुत काम किया। अभी एक माह पूर्व दूसरा तूफान ओंगोल तट पर आया। वे उसी के निरीक्षण के लिए गये थे तब बीमार पड गये। मस्तिष्क के बाहरी भाग मे रोग का असर हो गया 'मेनिन्जाइटिस'। सात दिन बेहोश रहे। गुंटूर के बडे अस्पताल मे डॉक्टरो ने जी तोड कोशिश की, पर वे उनके शरीर को बचा नही सके। गुंटूर, विजयवाडा और हैदराबाद म हजारो ने उनका अंतिम-दर्शन किया। उनका अंतिम संस्कार हैदराबाद मे शिवरामपल्ली आश्रम म किया गया, जहाँ वे अपना आंध्र का हैडक्वार्टर बना कर रहते थे। पर वे तो सतत प्रवासी थे, अनिकेत वृत्ति मे। अनंत की उनकी यात्रा थी, अनंतपुर ग्राम के स्थान से शुरू हुई इस जन्म म और अनंत तक चलती रहने वाली है।

२१ साल पूर्व व्यक्त की गयी उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें अग्नि दी गयी, श्री कमला देसिकन के हाथ। आंध्र की असेंबली ने उनको श्रद्धांजलि अर्पित की और मंत्रीगण तथा विधायकों ने उनका अंतिम दर्शन किया।

गोसेवा के साथ वे सहज ही जुड़ गये। जनवरी माह से उन्होंने केरल की सीमा से बाहर के गाय-बैल कटने न जायँ इसके मुहिम में वे लगे थे। सभी रास्तों का अध्ययन कर के उनको रोकने में शक्ति लगा रहे थे। अर्धचेतन अवस्था में वे मरने के आठ दिन पूर्व बीच-बीच में यही बोलते थे, देखो-देखो गाय कटने जा रही है। उसे रोको केरल सीमा पर।

इस प्रकार सेवा के आनन्द द्वारा अपने को पहचानने का उनका रास्ता था। अनेकों को अनेकों प्रकार से उन्होंने सेवा की। सेवा लेना उनको अच्छा नहीं लगा। जन्म से ईसाई थे पर बापू के पास आ कर सभी धर्मों के साथ इतने सराबोर हो गये थे कि भूल गये कि धर्म का भेद क्या था। भजन, गीतों में डूब जाते थे। जात-पाँत की, आदमी-आदमी के बीच भेद-भाव करने वाली दीवारें उन्हें नापसंद थीं। उन्होंने ये दीवारें लाँघने वालों को हमेशा सहारा दिया। स्त्री-शक्ति विकास उनके कार्यों में प्रमुख स्थान पाता रहा। अविवाहित रहे पर अपना परिवार छोटा नहीं बनने दिया। सभी के परिवारों को वे अपना बना लेते थे। सबके सुख-दुख में शामिल होते थे। आज जब वे नहीं रहे, इन सभी परिवारों में उनके बिछोह का गहरा दुख है और दुख है उन अनेक संस्थाओं और आश्रमों में जिनको उन्होंने बनवा दिया। पर अव्यक्त दुख तो अनेकों को है ही।

बंदउँ संत असज्जन चरना,
    दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं,
    मिलत एक दुख दारुन देहीं।

जिस सांस्कृतिक क्रांति के बिना भारत का एवं भारतीयता का बचना दुष्कर प्रतीत हो रहा है, वह मानवीय क्रान्ति होगी, आन्तरिक क्रांति होगी—ऐसी क्रांति होगी, जिसमें भारत का अध्यात्म व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में उतर जायेगा। तब व्यक्ति अपने हितों का दर्शन समूह के हितों में करने लगेगा और वैसा ही जीवन जीने लगेगा। उस क्रांति के बिना न समाजवाद बन सकेगा न साम्यवाद। सर्वोदय तो उसी क्रांति का दूसरा नाम ही है। व्यक्ति समूह के लिए जीए और समूह व्यक्ति के लिए। यह हमारी सांस्कृतिक क्रांति आरोहण की एक प्रक्रिया है।

— जयप्रकाश नारायण

● ● ●

नयी तालीम अप्रैल-जुलाई १९७९

रजिस्टर्ड WDA/1 लाइसेंस नं० ५

हम यह नहीं चाहते हैं कि सुख बढ़ाते चले जायें। वह प्रयास अमरीका के लोग करते हैं। हम लोग इतना ही चाहते हैं कि दुःख मिटे। यदि दुःख नहीं रहेगा, संसार की चिन्ता नहीं रहेगी, तो हम प्रेम से भगवान का नाम लेते रहेंगे। यह अपने देश का हृदय है। यह बात दूसरे राष्ट्रों को सीखनी होगी। सुख को बढ़ाते रहने से सुख बढ़ता नहीं, उसे मर्यादा में रखने से ही बढ़ता है। यह बात सारी दुनिया को भारत से सीखनी होगी। दुनिया यह बात तब सीखेगी, जब हम हिन्दुस्तान में किसी को दुःखी नहीं रहने देंगे। फिर भारत की सभ्यता में जो शांति और प्रेम है, उसका मूल्यांकन दुनियां करेगी।

—विनोबा

अखिल भारत नयी तालीम समिति के लिए श्री अक्षय कुमार करण अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश नयी तालीम समिति द्वारा प्रकाशित एवं विद्या मुद्रणालय, [illegible] वाराणसी से मुद्रित